अलबेरूनीका भारत ।

दूसरा भाग ।



अनुवादक

सन्तराम बी. ए.

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

प्रथम वार] १९२० [मूल्य २)

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the
Indian Press Ltd., Allahabad.

विषय-सूची।

गुरु के नाम—इकहरे चरण—चरण की व्यवस्था पर हरिभट्ट के प्रमाण—पाद—अरबों और हिन्दुओं का श्लोक का अंकन—वृत्त पद्य—श्लोक का सिद्धान्त—ब्रह्मगुप्त का प्रमाण ४२—६३।

चौदहवाँ परिच्छेद।

फलित ज्योतिष तथा नक्षत्र-विद्या आदि दूसरी विद्याओं पर हिन्दुओं का साहित्य।

विद्या की उन्नति के प्रतिकूल समय—सिद्धान्त—ब्रह्मसिद्धान्त के विषय—तन्त्रों और करणों का साहित्य—फलित ज्योतिष की पुस्तकें जिन्हें संहिता कहते हैं—जातक अर्थात् जन्मपत्रिकाओं की पुस्तकें—वैद्यक ग्रन्थ—पञ्चतन्त्र। ६४—७३

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

हिन्दुओं पर परिमाण-विद्या पर टीका, जिससे तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक में वर्णित सब प्रकार के मानों को समझने में सुविधा हो जाय।

हिन्दुओं की तौल-प्रणाली—तौल के बाटों पर वराहमिहिर की सम्मति—चरक नामक पुस्तक के अनुसार तौल के बाट—वज़न के बाटों पर विविध लेखकों की सम्मति—हिन्दुओं का तराज़ू—शुष्क-मान—दूरियों के मान—योजन, मील और फ़र्सख़ का परस्पर सम्बंध—परिधि और व्यास में सम्बंध। ७४—८६

सोलहवाँ परिच्छेद।

हिन्दुओं की लिपियों पर, उनके गणित तथा तत्संबन्धी विषयों पर; और उनके कई एक विचित्र रीति-रिवाजों पर टीका-टिप्पणियाँ।

विविध प्रकार की लिखने की सामग्री—हिन्दू लिपि—हिन्दुओं के स्थानीय अक्षर—ओम् शब्द—उनके संख्यावाचक चिह्नों—गिनती के

सत्रहवाँ परिच्छेद।

अठारहवाँ परिच्छेद।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

ग्रहों, राशिचक्र की राशियों, चन्द्रस्थानों
और तत्सम्बन्धी चीज़ों के नामों पर।

बीसवाँ परिच्छेद।

ब्रह्माण्ड पर।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

हिन्दुओं के धार्म्मिक विचारानुसार आकाश और पृथ्वी का वर्णन, जिसका आधार उनका पौराणिक साहित्य है।

बाईसवाँ परिच्छेद ।

तेईसवाँ परिच्छेद ।

चौबीसवाँ परिच्छेद ।

पच्चीसवाँ परिच्छेद।

भारत की नदियों, उनके उद्गम-स्थानों और मार्गों पर।

छब्बीसवाँ परिच्छेद।

हिन्दू ज्योतिषियों के मतानुसार आकाश
और पृथ्वी के आकार पर।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद।

उन्तीसवाँ परिच्छेद।

तीसवाँ परिच्छेद।

लङ्का अर्थात् पृथ्वी के गुम्बज़ (शिखर तोरण) पर।

इकतीसवाँ परिच्छेद।

विविध स्थानों के उस प्रभेद पर जिसे हम रेखांश-भेद कहते हैं।

बत्तीसवाँ परिच्छेद।

सामान्यतः काल और संस्थिति (मुद्दत)-सम्बन्धी कल्पना पर और संसार की उत्पत्ति तथा विनाश पर।

तैंतीसवाँ परिच्छेद ।

चौंतीसवाँ परिच्छेद ।

पैंतीसवाँ परिच्छेद ।

छत्तीसवाँ परिच्छेद ।

सैंतीसवाँ परिच्छेद।

अट्ठतीसवाँ परिच्छेद।

उनतालीसवाँ परिच्छेद।

चालीसवाँ परिच्छेद।

इकतालीसवाँ परिच्छेद।

बयालीसवाँ परिच्छेद।

तेंतालीसवाँ परिच्छेद।

चवालीसवाँ परिच्छेद।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद।

छयालीसवाँ परिच्छेद।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद।

टीका

संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त।

निवेदन।



प्रसन्नता का विषय है कि इस पुस्तक के पहले भाग को विद्वानों ने प्रशंसा की दृष्टि से देखा है। पञ्जाब-सरकार ने उसके लिए २००) दो सौ रुपये और इन्दौर की महाराजा होल्कर्स हिन्दी कमिटी ने ६०) साठ रुपये पारितोषिक रूप में देकर मुझे अनुगृहीत किया है। सच तो यह है कि ऐसे ऐसे प्रोत्साहनों से ही मुझे इस दूसरे भाग को तैयार करने का साहस हुआ है। अब एक और भाग—तीसरे भाग—में अलबेरूनी की यह सारी पुस्तक समाप्त हो जायगी।

डाक्टर ज़ाख़ो ने इस अरबी पुस्तक का जो अँगरेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया है उसमें उन्होंने यूनानी और लातीनी भाषा के बहुत से शब्द और वाक्य रख दिये हैं। इन दोनों भाषाओं को न जानने वाले पाठकों के लिए उनका अर्थ समझना बड़ा कठिन प्रत्युत असम्भव है। फिर उनके अनुवाद में बहुत से वाक्य ऐसे भी हैं जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं। इन और ऐसी ही अन्य कठिनाइयों के कारण केवल अँगरेज़ी अनुवाद से ही स्वदेश-भाषा में भाषान्तर करना कठिन होगया है। फिर अकेली मूल अरबी से भी अनुवाद करना सुगम नहीं, क्योंकि इसके वाक्य बड़े ही अस्पष्ट और दुर्बोध हैं। उनके युक्ति-सङ्गत अर्थ लगाना डाक्टर ज़ाख़ो ऐसे विद्वान् का ही काम है। इस-लिए मैंने अपना यह आर्य-भाषानुवाद अँगरेज़ी भाषान्तर और मूल अरबी को मिला कर किया है। इतने पर भी पाठक देखेंगे कि कुछ वाक्य अस्पष्ट रह गये हैं। वे वाक्य ऐसे हैं जिन को ज़ाख़ो महाशय भी स्पष्ट नहीं कर सके। पाठक यदि इस पुस्तक के अन्त में दी हुई

'टीका' का पाठ करेंगे तो उन्हें मेरे उपर्युक्त कथन की सत्यता का बहुत कुछ प्रमाण मिल जायगा।

इस पुस्तक में आये हुए यूनानी नामों को लिखने में भी मुझे बड़ी अड़चन पड़ी है। अलबेरूनी ने अरबी में उनके नाम कुछ अपने ढंग के दिये हैं। अरबी लोग ट, प, भ, ग इत्यादि कुछ एक वर्णों का उच्चारण नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ वे भागलपुर को बाजलफ़ोर, प्लेटो को अफ़्लातन, सोक्रटीज़ को सुक़रात, डायोजनीज़ को देवजानस और Artaxerxes को अर्दशीर कहते हैं। अब आर्य भाषा में किस भाषा के नामों का—मूल यूनानी या अरबी का—प्रयोग किया जाय इस बात का मैं कुछ निश्चय नहीं कर सका। इसलिए मैंने उनके दोनों—यूनानी और अरबी—रूप दे दिये हैं। हाँ, जहाँ अरबी नाम अधिक परिचित और सुगम मालूम हुआ है, जैसा कि Artaxerxes के लिए अर्दशीर और गैलेनस के लिए जालीनूस, वहाँ मैंने केवल उसी का व्यवहार किया है।

इस भाग में 'टीका' के पश्चात् मैंने उन प्रसिद्ध प्रसिद्ध यूनानी और ईरानी व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त भी जोड़ दिये हैं जिनका उल्लेख पहले भाग और इस भाग में हुआ है। आशा है ये पाठकों की ज्ञान-वृद्धि की सामग्री में सहायक होंगे।

श्रीयुक्त प्रोफ़ेसर स० न० दास गुप्त, एम० ए०, मिशन कालेज, लाहोर, मिस्टर ए० सी० वूलनर साहब, एम० ए०, प्रिंसिपल, ओरियण्टल कालिज, लाहोर तथा रजिस्ट्रार, पंजाब-विश्वविद्यालय, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम, और पण्डित राजारामजी शास्त्री, प्रोफ़ेसर डी० ए० वी० कालेज, लाहोर से मुझे इस अनुवाद में बड़ी सहायता मिली है। इसलिए मैं इन महाशयों का बड़ा कृतज्ञ हूँ।

पुरानी बसी—होशियारपुर। सन्तराम बी० ए०

अलबेरूनी।

मूल पुस्तक के लेखक पण्डितराज अबू रैहाँ अलबेरूनी के विषय में हम इस पुस्तक के पहले भाग में बहुत कुछ लिख चुके हैं। हमारे प्रथम भाग के प्रकाशित हो जाने के उपरान्त हमें श्रीयुत सैयद हसन बरनी बी० ए० की लिखी हुई अलबेरूनी की जीवनी देखने को मिली है। इसमें बरनी महाशय ने बहुत सी अरबी और अँगरेज़ी पुस्तकों के अनुशीलन से अलबेरूनी का जीवन-वृत्तान्त लिखने की चेष्टा की है। परन्तु जिस मनुष्य को हुए नौ सौ से अधिक वर्ष व्यतीत हो गये हों और जिसने अपने विषय में स्वयं कुछ भी न लिखा हो उसका जीवन-चरित्र इस समय लिखना कोई सुगम कार्य नहीं है। चरित्र-लेखक को ऐसी कठिन अवस्था में बहुत कुछ अनुमान पर ही निर्भर करना पड़ता है। इसलिए बरनी महाशय को भी अपनी पुस्तक में बहुत कुछ अनुमिति से ही काम लेना पड़ा है। फिर भी उनकी पुस्तक में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो हमारे प्रथम भाग में नहीं। इसलिए हम अपने नये तथा पुराने, दोनों प्रकार के, पाठकों के लाभार्थ उन बातों को यहाँ लिखते हैं और साथ ही बरनो महाशय को भी धन्यवाद देते हैं क्योंकि इस नवीन जानकारी को, दूसरी पुस्तकों में यत्र तत्र बिखरी पड़ी होने पर भी, हम केवल उन्हीं की कृपा से यहाँ देने में समर्थ हुए हैं। आशा है अलबेरूनी-सम्बन्धी यह जानकारी पाठकों के मनोरञ्जन तथा ज्ञान-वृद्धि की सामग्री सिद्ध होगी।

सन् ४२७ हिजरी का लिखा हुआ अलबेरूनी का एक लम्बा पत्र मिला है। यह पत्र उसने अपने एक मित्र के पत्र के उत्तर में लिखा था। इसमें उसने अपनी उन पुस्तकों की सूची दी थी जिनको कि

वह उस समय तक लिख चुका था। इस सूची के पहले लिखा है कि इस समय मेरी आयु ६५ वर्ष और सौर गणना से ६३ वर्ष की है। इस प्रकार अलबेरूनी के अपने मुख से उसका जन्म-संवत् ३६२ हिजरी मालूम हो जाता है। परन्तु जन्म-संवत् का स्पष्टीकरण तवरेज़-निवासी अबू इसहाक़ इबराहीम बिन मुहम्मद अलग़ज़नफ़र की पुस्तिका المشاطه لرساله الفهرست से होता है। अलग़ज़नफ़र ने लिखा है कि "पुण्यात्मा, गुरुवर, तर्कशिरोमणि अबी अलरैहाँ मुहम्मद बिन अहमद अलबेरूनी ज़ीउलहज मास की तीसरी तारीख़ को बृहस्पतिवार के दिन प्रातःकाल ख़्वारिज़्म में उत्पन्न हुआ।" हिसाब लगाने से अलबेरूनी की जन्म-तिथि ४ सितम्बर ९७३ ईसवी होती है। विद्वानों की जाँच-पड़ताल और स्वयं अलबेरूनी के नाम से जान पड़ता है कि अबू रैहाँ का जन्म-स्थान ख़ास ख़्वारिज़्म न था, प्रत्युत ख़्वारिज़्म का समीपवर्ती 'बेरूँ' नाम का कोई उपनगर था। फिर एक और बात भी है। 'बेरूँ' का अर्थ फ़ारसी भाषा में 'बाहर' है। जैसे आज कल बड़े बड़े नगरों के अधिवासी समीपवर्ती ग्रामों के अधिवासियों को 'बाहरवाले' कह देते हैं वैसे ही अलबेरूनी के समय में भी ख़्वारिज़्म नगर के रहने वाले उन लोगों को 'बाहर वाले' कहते थे जो ख़ास ख़्वारिज़्म नगर के रहनेवाले न होते थे। चुनांचे अलसमआनी ने अपनी पुस्तक किताबुल अनसाब كتاب الانساب में लिखा है कि बेरूनी के अर्थ बाहरवाले के हैं। ख़्वारिज़्मवाले इस नाम का प्रयोग उन लोगों के लिए करते थे जो ख़ास ख़्वारिज़्म के वासी न हो कर उसके समीपवर्ती उपनगर में निवास करते थे।

अलबेरूनी का वंश अजमी (फ़ारसी), अतएव विशुद्ध ख़्वारिज़्मी था। उस के माता-पिता ऐश्वर्य्यवान् और समृद्ध न थे। इससे प्रतीत होता है कि इस होनहार बालक की शिक्षा में उनका प्रत्यक्ष रूप से

बहुत कम भाग था। ऐसा भी सम्भव है कि बाल्यकाल में ही वह पितृ देव की छत्र छाया से वञ्चित हो गया हो। अलबेरूनी एक असाधारण बुद्धिमान और चतुर बालक था। उसने सारी विद्या और योग्यता अपने ही परिश्रम से प्राप्त की थी। अलबेरूनी की लेखनी से हम तक उसके दो अध्यापकों के नाम पहुँचे हैं—एक बन्दादुलसरहसनी بنداد السرحسني और दूसरा अबू नसर मँसूर बिन अली बिन इराक़। ये दोनों ज्योतिषो थे। अबूनसर ने अपने प्रिय शिष्य अलबेरूनी के नाम पर कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं। उनमें से एक पुस्तिका رساله ابونصر ابوريحان في جدول الدقائق बोडलियन लायब्रेरी में विद्यमान है।

ख़्वारिज़्म और अजम के अन्य प्रान्तों की जातीय और राष्ट्रीय भाषा यद्यपि फ़ारसी थी, परन्तु अन्य मुसलमानी देशों के सदृश यहाँ भी मुसलमानों की धार्म्मिक और साहित्यिक भाषा अरबी ही थी। इसलिए विद्या-वृद्धि के लिए इस भाषा पर अधिकार प्राप्त करना अलबेरूनी के लिए परमावश्यक था। परन्तु उसके ग्रन्थों के अध्ययन से जान पड़ता है कि उसकी आयु का बहुत सा भाग नीति, गणित, ज्योतिष, दर्शन, और इतिहास आदि विद्याओं की उपलब्धि में ही अतिवाहित हुआ।

न मालूम विद्याध्ययन के लिए या जीविकोपार्जन के निमित्त अलबेरूनी को युवावस्था में ही स्वदेश-वियोग का दुःख सहना पड़ा। वह दरिद्रता और प्रवास के कष्ट झेलता हुआ रै नगर में पहुँचा। फिर वहाँ से जुर्जानाधीश शम्सुल मुआली के निमन्त्रण पर या आप ही फिरते फिराते वह जुर्जान में जा विराजा। यहाँ इसे अनेक वर्षों तक सुख और शान्ति से रहना नसीब हुआ। जुर्जान वास में जो कुछ भी वह लिखता था वह कृतज्ञता के भाव से अपने प्रतिपालक शम्सुल मुआलो के नाम समर्पण कर देता था। उसने अपनी तजरीदुल शुआआत تجريد الشعاعات और 'प्राचोन जातियों की कालगणना' آثار الباقيه

उसी की सेवा में भेंट की। इस समय उसकी आयु कोई सत्ताईस वर्ष की थी। इस समय वह कई पुस्तकें लिख चुका था। इनमें से दस के नाम 'कालगणना' से मालूम हो सकते हैं।

जुर्जान में कुछ वर्ष निवास करने के उपरान्त वह सन् ४०० हिजरी में स्वदेश लौट आया। इस बार ख़्वारिज़्म के राजा मामूँ के दरबार में उसका ख़ूब आदर-सत्कार हुआ। उस राज-सभा में बू अली सीना, बू अली मसकोया, अबुलख़ैर अलख़मार, अबू सहल मसीही, और बेरूनी का गुरु अबू नसर इराक़ी पहले से ही मौजूद थे। अलबेरूनी भी उसी विद्वन्मण्डली में सम्मिलित हो गया।

बू अली सीना और अलबेरूनी के बीच सदा साहित्य और विज्ञान के विषयों पर शास्त्रार्थ होता रहता था। एक बार अबू रैहाँ बेरूनी ने बू अली सीना के पास कुछ प्रश्न भेजे। सीना ने उन के उत्तर लिखे। बेरूनी ने उनकी कड़ी आलोचना की। बू अली सीना ने अलबेरूनी की प्रतियोगिता से बचना चाहा। उसके शिष्य अबू अब्दुल्ला मासूमी ने अबू रैहाँ के आक्षेपों का उत्तर दिया। उसने साथ ही यह भी लिखा कि हे अबू रैहाँ ! यदि तू एक दार्शनिक के लिए इन शब्दों के सिवा अन्य शब्दों का व्यवहार करता तो विद्या और बुद्धि के लिए यह अधिक उपयुक्त होता। परन्तु ज़हीरुद्दीन अबुल हसन बिन अबी अलक़ासिम बैहक़ी ने लिखा है कि जब इन प्रश्नोत्तरों पर पण्डित अबुल फ़र्ज बग़दादी ने विचार किया तो अलबेरूनी के आक्षेपों को सत्य पाया।

मामूँ की राज-सभा में अलबेरूनी को स्थान पाये अभी बहुत वर्ष न बीते थे कि सन् १०१२ ईसवी में गजनी के राजा महमूद ने ख़्वारिज़्म से इब्न सीना, अलबेरूनी, अबू नसर, अबू सहल और अबुल ख़ैर को अपने दरबार में बुलाया। इब्न सीना और अबू सहल ने गजनी जाने से साफ़ इनकार कर दिया। इसका कारण यह था कि बू

अली सीना अलबेरूनी के सङ्ग से मुक्त होना चाहता था। वह उस की प्रतियोगिता से घबराता और उसके विद्याबल के सामने ठहर न सकता था। डी बोइर नामक एक जर्मन विद्वान् ने 'इसलाम के तत्त्वज्ञान का इतिहास, नामक पुस्तक में लिखा है कि इब्न सीना अपने सहयोगी अलबेरूनी से तत्तज्ञान में कम था। बेरूनी की सी प्रकृति भी उसे न मिली थी। इस पर भी आज जो बू अली सीना का नाम अलबेरूनी से अधिक विख्यात है इसका कारण यह है कि इब्नसीना वैद्यक-शास्त्र में बड़े बडे उपयोगी ग्रन्थ छोड़ गया है। इस विद्या के ग्रन्थों की प्रत्येक समय और प्रत्येक युग में आवश्यकता पड़ती और क़दर होती है। बेरूनी ने भी वैद्यक के कुछ ग्रन्थ लिखे थे परन्तु वे ऐसे न थे कि जिन से साधारण लोगों की दिलचस्पी हो सकती। इसके अतिरिक्त उस की रचना प्रायः ज्योतिष, गणित, इतिहास और पुरातत्त्व जैसे शास्त्रों में ही थी और इन विद्याओं को समझने और उनकी क़दर करनेवाले सदा कम ही हुआ करते हैं।

अलबेरूनी अपने मित्र, अबू नसर और अबुल ख़ैर के साथ गजनी पहुँचा। परन्तु न मालूम क्यों वह शीघ्र ही वहाँ से लौट आया और अली मामूँ की राजसभा में रहने लगा। सन् १०१२ ईसवी में ख़्वारिज़्म में एक भारी क्रान्ति हो गई और घटनाओं ने कुछ ऐसा रूप धारण किया कि मामूँ की हत्या की नौबत पहुँची। गजनी के महमूद ने ख़्वारिज़्म पर अधिकार कर लिया और अन्य राजनैतिक बन्दियों के साथ अलबेरूनी को भी गजनी में आना पड़ा। गजनी में आकर अलबेरूनी की महमूद के दरबार में दाल नहीं गली। वह महमूद का कृपापात्र नहीं बन सका। फिर उसे राज-सेना के साथ भारत की यात्रा का अवसर मिला। यहाँ आकर उसने भारत और भारतवासियों को अपनी आँख से देखा और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली बातों का भली

भाँति अध्ययन किया। महमूद ऐसे बर्बर राजाओं के भारत पर आक्रमण करने और लूट-खसोट मचाने के कारण हिन्दुओं का मुसलमानों के प्रति सद्भाव भङ्ग हो चुका था। वे जाति रूप से एक दूसरे को शत्रु समझने लगे थे। फिर भी अलबेरूनी अपने शिष्टाचार और शान्त स्वभाव से हिन्दुओं के साथ मैत्र्य स्थापित करने में कृतकार्य हुआ था। रशीदुद्दीन लिखता है कि 'भारत के बहुत से बड़े आदमियों और समृद्ध लोगों से बेरूनी की मित्रता थी। इसी कारण उसे भारतवासियों के धर्म्म-शास्त्र और मन्तव्यामन्तव्य का ज्ञान प्राप्त हो सका था'।

महमूद की मृत्यु पर जब उसका उत्तराधिकारी मसऊद राज-सिंहासन पर बैठा तो अलबेरूनी के भी दिन फिरे। मसऊद बड़ा उदार और विद्वानों का प्रतिपालक था। उसकी छत्रछाया में विद्वानों की एक बड़ी संख्या पुस्तक-प्रणयन में लगी रहती थी। मसऊद की बेरूनी पर विशेष कृपा थी। अलबेरूनी ने अपनी ज्योतिष की प्रसिद्ध पुस्तक 'क़ानून मसऊदी' उसीके नाम पर समर्पित की है। अलबेरूनी की प्रेरणा से मसऊद ने राजधानी गजनी में ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों का अध्ययन करने के लिए एक मान-मन्दिर भी बनवाया था।

सन् १०३९ ईसवी में मसऊद निर्दय खड्ग की भेंट होगया और उसके स्थान में मोदूद सिंहासन पर बैठा। अलबेरूनी ने राजा मोदूद के लिए भी الجماهر في الجواهر नाम की एक पुस्तिका लिखी। इसमें मणि-मुक्ता का वर्णन था।

बेरूनी दिन रात साहित्यिक कार्यों में ही लगा रहता था। शहरज़ूरी उसके विद्या-प्रेम और परिश्रम का वर्णन करते हुए लिखता है कि "बेरूनी सदा विद्या और विज्ञान की प्राप्ति में मग्न रहता था और पुस्तकों के रचने पर झुका हुआ था। वह अपने हाथ से

लेखनी को, देखने से आँख को, और चिन्तन से मन को कभी अलग नहीं करता था। वर्ष में केवल दो दिन ही वह छुट्टी लेता था—एक तो नौ रोज़ (नव वर्ष के दिन) को और दूसरे मिहरजान के दिन । इन दिनों में वह अपने खान-पान आदि की सामग्री उपार्जन करता था।" बलवान् से बलवान् मनुष्य का स्वास्थ्य भी ऐसे घोर परिश्रम को चिरकाल तक सहन नहीं कर सकता । निस्सन्देह अलबेरूनी एक हृष्ट-पुष्ट और नीरोग मनुष्य होगा । फिर भी कब तक? अन्त में उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । घातक रोगों ने चारों ओर से उसे घेर लिया । अलबेरूनी चाहता था कि साहित्यिक कार्यों को पूरा करने के लिए मुझे कुछ और आयु मिल जाय परन्तु उसकी मनःकामना पूर्ण न हुई । शुक्रवार ११ सितम्बर सन् १०४८ ईसवी को सरस्वती के अनन्य भक्त अबू रैहाँ को इस असार संसार से कूच करना पड़ा।

अलबेरूनी का विवाहित होना निश्चित नहीं । उसके लेख में एक वाक्य है जिससे जान पड़ता है कि उसके कोई सन्तान न थी। हमें तो ऐसा विश्वास होता है कि वह आजन्म अविवाहित रहा है, क्योंकि साहित्य-क्षेत्र में जितना भारी काम वह कर गया है उतना एक ब्रह्मचारी के बिना दूसरा कोई नहीं कर सकता। उसने लिखा है:—

"जिन पुस्तकों को मैंने प्रारम्भिक आयु में लिखा था और जिनकी रचना के अनन्तर मेरे ज्ञान में वृद्धि हो गई मैंने उनका न तो परित्याग और न तिरस्कार किया है। कारण यह कि वे सब मेरी सन्तान थे और प्रायः लोग अपने पुत्रों पर अनुराग रखते हैं।"

अब हम बेरूनी की रचनाओं की सूची उपस्थित करते हैं। इस के अवलोकन से पाठकों को उस पण्डित-प्रकाण्ड की विद्वत्ता का परिचय

मिल जायगा। पहले उन पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं जो उसने अपनी मृत्यु से तेरह वर्ष पहले लिखी थीं।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
१.	ख़्वारिज़्मी की ज्योतिष-सम्बन्धी रीतियों के विषय में एक पुस्तक लिखी थी। इसमें बहुत से उपयोगी सिद्धान्त और निश्चयात्मक उत्तर दिये गये थे।	
२.	ابطال البهتان بايراد البرهان علي علل الخوارزمي अबू तलहा तबीब ने ख़्वारिज़्मी की ज्योतिष की पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें लिखी थीं जिनका खण्डन और संशोधन आवश्यक था।	३६०
३.	इस विषय में बेरूनी को अबुल हसन अहवाज़ी की एक पुस्तक मिली। इसमें ख़्वारिज़्मी के साथ अन्याय किया गया था। बेरूनी ने एक पुस्तक लिख कर इस झगड़े का न्याय-संगत निर्णय किया।	६०५
४.	تكميل زيج حبش بالعلل وتهذيب اعماله من الزلل प्रसिद्ध ज्योतिषी अहमद बिन अब्दुल्ला हबश के बनाये ज्योतिष-शास्त्र में कुछ और विधियों की वृद्धि की और उसमें जो अशुद्धियाँ थीं उनका संशोधन किया।	७५०
*५.	جوامع الموجود لخواطر الهنود في حساب التنجيم इसमें भारतीय फलित-ज्योतिष का सविस्तर वर्णन और उसकी समालोचना है।	५५०
*६.	अल अरकन्द का नया संस्करण। यह ब्रह्मगुप्त-कृत खण्ड-खाद्यक का प्रचलित अरबी अनुवाद था। पुराना अनुवाद	

* जिन पुस्तकों पर यह चिह्न है वे भारत के सम्बन्ध में थीं।

संख्या | नाम पुस्तक | पृष्ठ-संख्या

अरब लोगों को समझ नहीं पड़ता था। इसलिए उसने मूल संस्कृत के साथ मिला कर उसका परिशोधन किया।

७. كتاب مقاليد علم الهيئة تايحدث في بسيط الكرة इस पुस्तक को असफ़हबज़ जीलजीलान मर्ज़बान बिन रुस्तम के लिए लिखा था। १५५

*८. خيال الكسوفين عند الهند यह पुस्तक सूर्य और चन्द्र के दो संयुक्त और समकक्ष पथों के विषय में थी। भारत में तो इस का बहुत प्रचार था परन्तु मुसलमान ज्योतिषी इससे सर्वथा अनभिज्ञ थे।

९. امر الممتحن و تبصير ابن كيسوم المنقتن इब्न कीसूम ने सत्य से व्यतिक्रम किया था। बेरूनी ने उसकी बुद्धि-हीनता का परदा खोल दिया। १००

१०. اختلاف الاقاويل لاستخراج التحاويل किसी विद्यार्थी ने अलबेरूनी से 'तहवीलों' के विषय में प्रश्न किये थे। बेरूनी ने इस विषय का इस पुस्तिका में सविस्तर समाधान किया है। ३०

११. مقاله في التحليل والتقطيع (للتعديل) यह पुस्तिका एक विद्वान की प्रार्थना पर लिखी गई थी। ७०

१२. उत्पत्ति और वर्षों के निकालने आदि के लिए जो आकाश की स्थिति मालूम करने का प्रयोजन होता है उसके विषय में एक पुस्तिका। ६०

१३. مفتاح علم الهيئة ज्योतिष की चाभी। यह क़ाज़ी अबुल क़ासिम अलआमरी की प्रार्थना पर लिखी गई थी।

१४. तहज़ीब फ़सूलुल फ़र्ग़ानी। यह अबुल हसन मुसाफ़िर के लिए लिखी गई थी। २००

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
१५.	افراد المقال في امر الاظلال क्षेत्र-विद्या में 'ज़ल' नामक सीधी रेखाओं की माप आदि के विषय में जितनी बातें हैं उन सबका विस्तृत वर्णन इसमें है। यह पुस्तक भी अबुल हसन मुसाफ़िर के लिए लिखी गई थी।	२००
१६.	استعمال دوائر السموات لاستخراج مراكز البيوت इसमें तारों के घरों के केन्द्र निकालने का वर्णन है। यह भी उपर्युक्त मुसाफ़िर के लिए ही लिखी गई थी।	१००
१७.	مقالة في طالع قبتة الارض وحالات الثوابت ذوات العروض इस पुस्तक में पृथ्वी के मध्य का और ज़वातुल अरूज़ नामक तारों का वर्णन है। ये तारे भूमध्य रेखा के उत्तर में स्थित हैं। यह पुस्तिका जुर्जान के एक ज्योतिषी के लिए लिखी गई थी।	
१८.	दिन और रात के परिमाण के विषय में एक छोटी सी पुस्तिका। इसमें सरल रीति से सिद्ध किया गया है कि ध्रुव के नीचे एक वर्ष का एक दिन होता है।	

नगरों की द्राघिमाओं और अक्षों तथा स्थानों की दिशाओं और अन्तरों आदि के विषय में अलबेरूनी ने निम्नलिखित पुस्तकें रची थीं।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
१.	تحديد نهايات الاماكن لتصحيح مسافات المساكن विशेष स्थानों की सीमाओं और नगरों की दूरियों के परिशोधन पर।	१००
२.	تهذيب الاقوال في تصحيح العروض والاطوال द्राघिमा और अक्ष के संशोधन के विषय में।	२००

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ संख्या
१५.	'क़िबला की युक्तियाँ' नामक पुस्तक में जो त्रुटियाँ रह गई थीं उनका संशोधन।	

गणित-सम्बन्धी पुस्तकें।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ संख्या
*१.	सिन्ध और भारत में शून्यों के साथ गिनने की शैली और गणित पर एक निबन्ध।	३०
२.	كعاب। और كعاب के अतिरिक्त गणित की दूसरी विधियों का निकालना।	१००
*३.	हिन्दुओं की गणित सीखने की विधि पर।	
*४.	यह बात दर्शाने के लिए एक पुस्तक कि गिनती में दर्जे के विषय में जो अरबी विधि है वह हिन्दुओं की विधि से अधिक शुद्ध है।	१५
*५.	हिन्दुओं के राशिक पर।	
*६.	في سكلت الاعداد सङ्कलित पर। इसका आधा ३० पृष्ठों पर है।	६०
*७.	ब्रह्मसिद्धान्त की गणित-संबन्धिनी विधियों का अनुवाद।	४०
८.	منصوبات الضرب गुणन के विविध चुटकले।	

रश्मियों और उनके मार्गों के विषय में।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ संख्या
१.	تجريد الشعاعات والانوار عن الفصائح المدونه في الاسفار किरणों और ज्योतियों के वर्णन के सम्बन्ध में जो अशुद्धियाँ पुस्तकों में इकट्ठी हो गई थीं उनका संशोधन।	५५
२.	تحصيل الشعاعات بابعد الطرق عن الساعات घड़ियों की अति कठिन विधियों से रश्मियों का हाल मालूम करना।	१०

संख्या | नाम पुस्तक | पृष्ठ-संख्या

३. مقوله في مطرح الشعاع ثابتا علي تغير البقاع

४. تمهيد المستقر لمعني الممر प्रकाश-पथ के स्वरूप की सविस्तर व्याख्या। ६०

यंत्र और उनके प्रयोग की पुस्तकें।

१. नक्षत्र-यंत्र (उस्तरलाब) किस किस प्रकार के बन सकते हैं।

२. नक्षत्र-यंत्र के ठीक करने और उसके उत्तरी तथा दक्षिणी अंशों के प्रयोग की सुगम रीतियाँ। १०

३. تسطيح الصور و تبطيح الكور आकृतियों और गोलों का फैलाना।

४. नक्षत्र-यंत्र के प्रयोग से कौन कौन सी बातें हल हो सकती हैं, अर्थात् नक्षत्र-यंत्र के भिन्न भिन्न प्रयोग क्या क्या हैं। فيما اخرج مافي قوة اصطرلاب الي الفعل ३०

५. اصطرلاب الكري के प्रयोग के विषय में। १०

कालों और समयों के विषय में।

१. تعبير الميزان لتقدير الازمان उस तराज़ू का वर्णन जिससे समय मालूम किये जाते हैं। १५

*२. हिन्दूकाल—निर्णय-विद्या के अनुसार समय का वर्त्तमान मुहूर्त्त मालूम करना। १००

३. 'नसारे' के उपवास और ईद के समयों का वर्णन। २०

४. सिकन्दर के इतिहास में बेरूनी से जो भूल हो गई थी उसका संशोधन। १०

५. अब्दुल मलिक तबीब बुस्ती ने जगत् की उत्पत्ति तथा

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
४.	धातुओं और मणियों के आयतन में क्या संबन्ध है।	३०
५.	नीरोग और स्वस्थ पथिक कितनी यात्रा कर सकता है।	१०
६.	مقاله في نقل خواص الشكل القطاع الي مايغني عنه अलकृता आकृति के विशेष गुणों की॰ पूर्ण व्याख्या।	२०
७.	उन दो रेखाओं के जो किसी एक स्थान पर मिलने के अनन्तर कहीं जाकर न मिलें, अतीव समीप परिमाणों में किस प्रकार टुकड़े हो सकते हैं।	१०
८.	संसार में गरमी किन कारणों से पैदा होती है और फ़सलों तथा ऋतुओं का भेद किस प्रकार उत्पन्न होता है।	४५
९.	किताब असारुल उलविया। كتاب آثار العلويه	४०
१०.	المسائل البلخيه في المعني المتعلقه بانكسارالصناعت	७०
*११.	भारत के ज्योतिषियों के भेजे हुए प्रश्नों के उत्तर।	१२०
*१२.	काश्मीर के विद्वानों ने जो दस प्रश्न भेजे थे उनके उत्तर।	

फालत-ज्योतिष-सम्बन्धी पुस्तकें।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
१.	كتاب التفهيم لاوائل وصناعت التنجيم फलित-ज्योतिष की प्रारम्भिक पुस्तक।	
२.	مقاله في تقسيط القوي والدلالات ابين اخيراء لبيوت الاثني عشر बारह राशियों के बीच शक्तियों और पथ-प्रदर्शन की बाँट।	१५
३.	في سير سهمي السعادت والغيب इसमें मनुष्य के जन्म पर नक्षत्रों के शुभाशुभ प्रभावों का वर्णन था।	
*४.	आयु कितनी लम्बी है—यह निकालने की हिन्दू-विधि।	

हँसी-दिल्लगी की पुस्तकें।

१. वामक़ और अज़रा की कहानी का अनुवाद।

२. क़सीमुल सरूर (قسيم السرور) और ऐनुल हियात की कहानी।

३. उरमज़्द यारावर मिहरयार की कहानी।

४. बामियान की मूर्त्तियों की कहानी।

५. वाज़मा और करामी दख़्त जिहिलुलवादी (كرامي دخت جهلي الوادي) की कहानी।

*६. बीसती और बरभाकर بسيتي اور بربهاكر की कथा नीलूफ़र के मुख से।

७. अबी तम्माम के छन्दों में जितने अ (الف) के श्लोकार्द्ध आये हैं उनका पूरा वर्णन।

८. वृक्षों की लम्बाई चौड़ाई के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुभवों का वर्णन।

९. परिमिति का शुद्ध कार्य पूर्ण सुगमता से किस प्रकार किया जा सकता है।

१०. तुर्कों की ओर से जो आशङ्कायें हैं उनसे लोगों को बचाना।

११. पाँसा जिसमें परिणामों का साफ़ साफ़ हाल मालूम हो जाय।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
१२.	मन की गुप्त बातों के जानने के विषय में बहुमूल्य पाँसा।	
१३.	ऊपर की पुस्तक (नं० १२) की व्याख्या।	
*१४.	कलब यारू (كلب يارو) का अनुवाद जो कि जघन्य रोगों पर एक निबन्ध है।	

विश्वास और धर्म्म पर।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
*१.	हिन्दुओं के सब प्रकार के, क्या उपादेय और क्या हेय, विचारों का एक सत्य वर्णन।	७००
२.	फलित-ज्योतिष की पुस्तकों में राशियों के चिह्नों को वर्ण-माला के अक्षरों के हिसाब (حروف جمل) से क्यों प्रकट किया जाता है।	
*३.	كلام في المستقر و المستودع केन्द्र के विषय में।	
*४.	مقاله في باسديو الهند عند مجيئة الادنى वासुदेव के निम्न योनियों में प्रकट होने के विषय में भारत-वासियों का मत।	१०
*५.	ترجمه كتاب سانك في الموجودات المحسوسه والمعقوله सांख्य का अनुवाद।	
*६.	पतञ्जलि की पुस्तक का अनुवाद ترجمه كتاب باتنجل في الخلاص من الارتباك	

इसके उपरान्त वह अपने पत्र में लिखता है कि मेरी रची हुई बहुत सी पुस्तकें ऐसी भी हैं जिनके हस्तलेख मेरे पास से चले गये हैं—यथा:—

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या
१.	التنبيه على صناعة التمويه मुलम्मासाज़ी के विषय में।	
२.	जन्म-पत्रिकाओं को कैसे देखा जाय।	
३.	सूर्य के भ्रमण की विवेचना। التطبيق	

संख्या   नाम पुस्तक   पृष्ठ-संख्या

४. रसायन की क्रियाओं के विषय में।

५. तारीखों का निश्चय करने के विषय में।

इनके उपरान्त अलबेरूनी ने उन पुस्तकों के नाम दिये हैं जो उसके पास अधूरी पड़ी थीं या जिनके हस्त-लेखों को अभी साफ़ करना बाक़ी था।

उदाहरणार्थ :—

१. क़ानून मसऊदी।

२. प्राचीन जातियों की काल-निर्णय-विद्या

آثار الباقيه عن القرون الخاليه

३. जो दूरियाँ और अन्तर दिखाई तो दें पर उन तक पहुँच न सकें उनको मालूम करने की विधि।

४. मापों और बाटों का वर्णन और डण्डी के दोनों भागों की अवस्थाओं के विषय में।

५. वृत्त के कर्ण मालूम करने की जितनी विधियाँ ज्ञात हैं उन सब का वर्णन।

६. प्रभात और पूर्व तथा पश्चिम में लालिमा के विषय में।

تصور امر الفجر و الشفق في جهت الشرق و الغرب

७. تكميل صناعه التسطيح

८. प्रसिद्ध ज्योतिषी अलबत्तानी की फलित-ज्योतिष की पुस्तक (जन्म-पत्रिका) के विषय में جلاالاذهان في زيج البتاني

९. देशों और नगरों की सीमायें और मान-चित्र में उनके संशोधन के विषय में।

संख्या   नाम पुस्तक   पृष्ठ-संख्या

१०. प्रसिद्ध ज्योतिषी अबू माशर की फलित-ज्योतिष की पुस्तक (जन्म-पत्रिका) के विषय में।

इनके अतिरिक्त भारत की वे सब पुस्तकें जिनका मैं अनुवाद करना चाहता हूँ।

इसके उपरान्त अलबेरूनी ने उन पुस्तकों के नाम दिये हैं जो उसके मित्रों ने भक्ति और प्रेम के भाव से प्रेरित होकर उसके नाम पर लिखी हैं।

अबू नसर मनसूर बिन अली बिन इराक़ मोली अमीरुल मोमनीन ने बेरूनी के नाम पर ये पुस्तकें लिखीं :—

१. दिशाओं के विषय में पुस्तक كتاب في السموت

*२. كتاب في تصنيف التعديل عند اصحاب السند هند

३. كتاب في تصحيح كتاب ابراهيم بن سنان في تصحيح اختلاف الكواكب العلويه

४. كتاب في براهيں اعمال جش بجدول التقويم प्रसिद्ध गणित-शास्त्री हबश ने भौगोलिक रेखायें तैयार की थीं उनकी शुद्धता के विषय में अबूनसर ने युक्तियाँ लिखीं।

५. अलसफ़ाएह की फलित-ज्योतिष की पुस्तक में अबी जाफ़र ख़ाज़न से जो अशुद्धियाँ हो गई थीं उनको दूर करने के उद्देश से यह पुस्तक लिखी गई थी।

६. नक्षत्र-यन्त्र में दिशाओं को दिखलानेवाले वृत्त कहाँ कहाँ हो कर गुज़रते हैं।

७. मुहम्मद बिन सबाह ने सूर्य की जाँच के विषय में जो

संख्या नाम पुस्तक पृष्ठ-संख्या

अपने आविष्कार लिखे थे उनकी युक्तियों में यह निबन्ध लिखा गया था।

८. رسالہ في جدول الدقائق

९. हबश-कृत फलित-ज्योतिष की पुस्तक (زيج) में दिशाओं के निरूपण के विषय में जो कुछ लिखा गया था उस पर युक्तियाँ लिखी गईं।

१०. رسالہ في دوائر التي تحد الساعات الزمانيہ घड़ियों और समयों के विषय में।

११. رسالہ في معرفہ القسي الفلك الطريق غير طريق النسبہ المولفہ इस निबन्ध में आकाश के धनुषों के मालूम करने की नई विधि का वर्णन था।

१२. किताबुल असूल के तेरहवें अध्याय में जो सन्देह उत्पन्न हुआ था उसका समाधान।

अबू सहल मसीही ने बेरूनी के नाम पर ये पुस्तकें लिखीं :—

१. كتاب مبادي الهندسہ

२. इन्द्रियग्राह्य पदार्थों में गति के चिह्न क्या क्या पाये जाते हैं।

३. पृथ्वी चलती है या खड़ी—इस पर विचार।

४. 'आदि शक्ति' (محرك الاول) के विषय में अरस्तू और जालीनूस के विचारों की परीक्षा, और दोनों तत्त्वज्ञानियों के मतों में मध्य मार्ग का पता लगाना।

५. رسالہ في دلالہ اللفظ علي المعني

संख्या नाम पुस्तक पृष्ठ-संख्या

६. शरद ऋतु के अतीव शीतल दिनों की शीतलता का क्या कारण है।

७. رسالة في علة التربيه(؟) التي مستعمل في احكام النجوم

८. राजाओं की सङ्गति के नियम और रीतियाँ।

९. फलित-ज्योतिष के सिद्धान्त।

१०. लिखने की रीति पर।

११. सूर्य में काले धब्बों के कारण पर।

१२. رسالة الزجيه (رسالة نرگسيه)

अबू अली अलहसन बिन अली अलज़ेली ने बेरूनी के नाम पर من و عن नामक एक पुस्तिका लिखी।

अलबेरूनी ने अपने पत्र में जिन पुस्तकों के नाम दिये हैं उनके अतिरिक्त उसकी बनाई और पुस्तकों का भी पता लगता है। आसारुल-बाक़िया में प्रसङ्गवश इन पुस्तकों का उल्लेख मिलता है :—

१. كتاب الاستشها و باختلاف الارصاد

२. كتاب الارقام

३. كتاب فى الاخبار القرامطه و المبيضه

४. यूनानी फलित-ज्योतिषियों के पञ्चाङ्ग के विषय में बेरूनी और इब्न सीना में विवाद।

५. كتاب العجائب الطبيعيه و الغرائب الصناعيه

इसी प्रकार 'अलबेरूनी का भारत' देखने से उसकी निम्नलिखित पुस्तकों का पता चलता है :—

※१. ब्रह्मगुप्त-कृत पौलिस सिद्धान्त का अनुवाद।

※२. ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त।

३. वराहमिहिर के लघुजातकम् का अनुवाद।

संख्या	नाम पुस्तक	पृष्ठ-संख्या

इसके अतिरिक्त 'अलबेरूनी का भारत' की रचना के समय वह निम्नलिखित अरबी पुस्तकों का संस्कृतानुवाद कर रहा था:—

१. उक्लैदस।
२. बतलीमूस की किताब अलमजस्ती।
३. नक्षत्र-यन्त्र बनाने के नियम।
४. ज्योतिष की चाबी।

निम्न लिखित पुस्तकों का पता हाजी ख़लीफ़ा की प्रसिद्ध पुस्तक-सूची كشف الظنون عن الاسامي الكتب و الفنون से लगा है:—

१.	ارشاه في احكام النجوم	१ प्रति	२५८
२.	استيعاب في تسطيح الكره	१ प्रति	२७७
३.	الجماهر في الجواهر	२ प्रतियाँ	६०८
४.	تعليل باحالةالوهم في معاني النظم	२ प्रतियाँ	३२४
५.	شرح ابو تمام	३ प्रतियाँ	२५४
६.	زيج العلائي	४ प्रतियाँ	२६७
७.	كتاب الاحجار	५ प्रतियाँ	३३
८.	كتاب تسطيم الكرة	५ प्रतियाँ	६२
९.	كتاب الصيدله	५ प्रतियाँ	११०
१०.	مختار الاشعار والاثار	५ प्रतियाँ	४३५
११.	خلاصة مجسطي	५ प्रतियाँ	३८६
१२.	زيج المسعودي(قانون المسعودي؟)	३ प्रतियाँ	५६८

इनके अतिरिक्त गुलाम हुसैन जौनपुरी रचित जामए बहादुर ख़ानी से अलबेरूनी की 'लमआत' नामक एक और पुस्तक का पता चलता है। फिर बैहक़ी-कृत 'तारीख़

बैहकी' से मालूम होता है कि अबू रैहाँ ने 'तारीख़ ख़्वारिज़्म' बनाई थी।

इनके अतिरिक्त अलबेरूनी की ये दो पुस्तकें योरुप के पुस्तकालयों में मौजूद हैं:—

१. كتاب الدرر في سطح الاكر
२. كتاب نزهته النفوس والافكار في خواص المواليد الثلاثه المعاون والنبات والاحجار

अब हम अलबेरूनी की उन पुस्तकों के नाम देते हैं जिनके हस्तलेख संसार के भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं:—

१. استيعاب الوجوه الممكنه — २ प्रतियाँ (१) बर्लिन
(२) बोडलियन, आक्सफ़ोर्ड

२. كتاب الدرر — १ प्रति (१) बोडलियन पुस्तकालय, आक्सफ़ोर्ड।

३. مقاله في سهمي السعادت والغيب — १ प्रति (१) बोडलियन।

४. نزهته الافكار — १ प्रति (१) ,,

५. الجماهر في الجواهر — १ प्रति (१) सकोरियल (बेरूत)।

६. त्रैराशिक — १ प्रति (१) इण्डिया-आफ़िस-लायब्रेरी।

७. في تسهيل التسطيح الاصطرلابي والعمل — १ प्रति (१) बर्लिन।

८. प्राचीन जातियों की काल-निर्णय-विद्या آثار الباقيه ३ प्रतियाँ,
(१) ब्रिटिश म्यूज़ियम (१०७६ ई०)
(२) सर हेनरी रालिनसन (१२५४ ई०)
(३) जातीय पुस्तकालय, पैरिस।

९. 'अलबेरूनी का भारत' ३ प्रतियाँ,

(क) मोसियो शैफ़र (Schefer)। यह बहुत पुराना हस्त-लेख है। बेरूनी से १२९ वर्ष पीछे का लिखा हुआ है। मालूम होता है कि यह सीधा बेरूनी के ही हस्तलेख से नक़ल किया गया है।

(ख) जातीय पुस्तकालय, पैरिस।

(ग) कुस्तुन्तुनिया। ये दोनों हस्तलेख शैफ़र के हस्तलेख की प्रतिलिपि जान पड़ते हैं।

१०. صيدله १ प्रति। लिटन पुस्तकालय, मदरिसातुल अलूम, अलीगढ़ (१००८ ई०)।

११. كتاب التفهيم (अरबी) ३ प्रतियाँ। दो बोडलियन में और तीसरी बर्लिन में।

(फ़ारसी) ४ प्रतियाँ। (१) ब्रिटिश म्यूज़ियम (२)मोसियो शैफ़र (३), (४) लिटन-पुस्तकालय, मदरिसातुल अलूम, अली-गढ़।

यह पुस्तिका अलबेरूनी ने रैहाना बिनतुल हसन नामक अपनी एक स्वदेश-भगिनी के लिए लिखी थी।

१२. قانون مسعوي ५ प्रतियाँ (१) बोडिलियन लायब्रेरी, आक्स-फ़ोर्ड (२) बर्लिन लायब्रेरी, (३) ब्रिटिश म्यूज़ियम (४) इम्पीरियल लायब्रेरी, कलकत्ता,(५)लिटन पुस्तकालय, अलीगढ़।

बोडलियन की प्रति सबसे पुरानी है और बेरूनी की मृत्यु के ३५ वर्ष बाद की लिखी हुई है।

ऊपर की सूची से पाठकों को विदित हो गया होगा कि अलबेरूनी ने अपने जीवन में कितना भारी साहित्यिक कार्य किया था। बैहक़ी ने लिखा है कि "मैंने बेरूनी की पुस्तकों में से बहुत सी उस के हाथ की लिखी हुई देखी हैं।.........और उसकी पुस्तकें एक ऊँट के भार से अधिक हैं। इस प्रशंसनीय प्रयत्न के लिए परमात्मा ने उसे सामर्थ्य दी थी।" अलबेरूनी के विद्यानुराग का इससे अनुमान कीजिए कि वह चालीस वर्ष तक बराबर मानी कृत सफ़रुल इसरार नामक पुस्तक की तलाश में लगा रहा और उसे तब तक चैन न आया जब तक वह पुस्तक हस्तगत न हो गई।

अलबेरूनी की जिन पुस्तकों के नाम हमने ऊपर की सूची में दिये हैं उनमें से कुछ एक को छोड़ कर शेष सबके नाम ही नाम बाक़ी रह गये हैं, ख़ुद पुस्तकें काल की चक्की में पिस कर नष्ट हो चुकी हैं। जर्मन विद्वान् डाक्टर एडवर्ड ज़ाख़ो (Dr. Edward C. Sachau) ने इनमें से दो—'अलबेरूनी का भारत' तथा आसारुल बाक़िया—का अनुवाद अँगरेज़ी तथा जर्मन भाषा में प्रकाशित किया है। शेष प्राप्य पुस्तकें भी अभी वैसे ही अन्धकार में पड़ी हैं। अस्तु, प्राचीन मुसलिम विद्वानों में अलबेरूनी का क्या स्थान है इस विषय में दो एक योरोपीय विद्वानों की सम्मतियाँ दे कर हम पण्डित-प्रवर अबू रैहाँ अलबेरूनी का जीवन-वृत्तान्त समाप्त करते हैं।

मालीनो साहब (Mallino) लिखते हैं कि "बेरूनी इसलाम के सारे विद्वानों और विचारकों में सब से अधिक बुद्धिमान्, चतुर, प्रतिभाशाली और सृष्टि-विज्ञान तथा गणित का सब से बड़ा पण्डित था।

रेमण्ड बीजले का मत है कि "मुसलमानों की विद्या और विज्ञान के मार्ग को बेरूनी से बढ़ कर शायद ही किसीके बलवान् और मर्मज्ञ मस्तिष्क ने आलोकित किया हो।"

फिर वही साहब कहते हैं कि "अलबेरूनी का शायद इसलामी इतिहास के प्रत्येक युग और प्रत्येक राष्ट्र में सबसे बड़ा नाम है।"

सी० ए० नेलिङ्ग की राय में "अलबेरूनी गणित और सृष्टि-विज्ञान के क्षेत्र में इसलाम का सबसे बड़ा प्रतिभावान् और सूक्ष्मदर्शी तत्त्व-वेत्ता था।"

बारहवाँ परिच्छेद ।

वेद, पुराण, और उनका अन्य प्रकार का जातीय साहित्य ।

वेद का अर्थ है उस चीज़ का ज्ञान जो कि पहले अज्ञात थी । वेद एक धार्मिक पद्धति है । हिन्दुओं के मतानुसार यह परमेश्वर से निकला है और ब्रह्मा ने अपने मुख से इस का प्रकाश किया है। ब्राह्मण लोग इसका अर्थ समझने के बिना ही इसका पाठ करते हैं । इसी प्रकार ही वे इसे कण्ठस्थ भी कर लेते हैं ; एक से सुन कर दूसरा याद कर लेता है । ब्राह्मणों में वेद का अर्थ जाननेवाले बहुत थोड़े हैं । फिर उन लोगों की संख्या तो और भी कम है जिन का पाण्डित्य इतना बड़ा हो कि वे वेद के विषयों और उसकी व्याख्या पर धार्मिक विवाद कर सकें ।

वेद के विषय में विविध टिप्पणियाँ

ब्राह्मण क्षत्रियों को वेद पढ़ाते हैं । क्षत्रिय वेद को पढ़ते तो हैं, पर उन्हें इसे किसी दूसरे को, यहाँ तक कि ब्राह्मण को भी पढ़ाने का अधिकार नहीं । वैश्यों और शूद्रों को, वेद का उच्चारण और पाठ करना तो दूर रहा, इसके सुनने की भी आज्ञा नहीं । यदि यह प्रमाणित हो जाय कि किसी वैश्य या शूद्र ने वेद का उच्चारण किया है तो ब्राह्मण लोग उसे पकड़ कर न्यायाध्यक्ष के पास ले जाते हैं और उस की जीभ काट दी जाती है ।

वेद में आज्ञायें और निषेध हैं, अर्थात् पुण्य-कर्मों के प्रोत्साहन और

पाप-कर्म्मों के निवारण के उद्देश से पुरस्कार और दण्ड का सविस्तर वर्णन है। परन्तु इसका बड़ा भाग स्तुति के गीतों से भरा है, और इसमें नाना प्रकार के यज्ञों का वर्णन है। ये यज्ञ इतने बहुसंख्यक और कठिन हैं कि आप इन्हें मुश्किल से गिन सकेंगे।

वेद को गुरु से सुन कर शिष्य कण्ठस्थ करता है। ब्राह्मण लोग वेद को लिखने की आज्ञा नहीं देते, क्योंकि इसका उच्चारण विशेष ताल-स्वरों से होता है। वे लेखनी का प्रयोग इसलिए नहीं करते कि कहीं कोई अशुद्धि और लिखित पाठ में कोई अधिकता या न्यूनता न हो जाय। इसका फल यह हुआ है कि वे कई बार वेद को भूल जाने से इसे खो चुके हैं। कारण यह है कि वे मानते हैं कि शौनक ने यह बात शुक्र से सुनी थी कि सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में संभाषण करते हुए परमेश्वर ने ब्रह्मा से कहा था—"जिस समय पृथ्वी जलमग्न हो जायगी, उस समय तुम वेद को भूल जाओगे। तब वह नीचे पृथ्वी की गहराई में चला जायगा, और मछली के सिवा उसको और कोई बाहर न निकाल सकेगा। इसलिए मैं मछली को भेजूँगा और यह वेद को लाकर तुम्हारे हाथों में दे देगी। और मैं शूकर को भेजूँगा। वह पृथ्वी को अपने दाँतों पर उठाकर पानी से बाहर ले आयगा।"

पृष्ठ ६१

इसके अतिरिक्त हिन्दुओं का यह भी विश्वास है कि गत द्वापर-युग में, जिसका उल्लेख हम अन्यत्र करेंगे, वेद और उनके देश तथा धर्म्म की सभी रीतियाँ लोप हो गई थीं। फिर पराशर के पुत्र व्यास ने उनका नये सिरे से प्रचार किया।

विष्णुपुराण कहता है:—"प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में नये सिरे से उस मन्वन्तर का एक अधीश पैदा किया जायगा। उसकी सन्तान सारे भूमण्डल का राज्य करेगी। एक राजा का जन्म होगा

जो सारे जगत् का अधिपति होगा। और देवता पैदा होंगे जिन को लोग यज्ञों में नैवेद्य चढ़ायेंगे। और सप्तर्षि पैदा होंगे जो कि वेद का पुनरुद्धार करेंगे। क्योंकि यह प्रत्येक मन्वन्तर की समाप्ति पर लुप्त हो जाता है।"

इसी कारण, अभी थोड़े ही वर्ष गुज़रे हैं कि, काश्मीर-निवासी वसुक्र नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण ने अपनी ही इच्छा से वेद को लिखने और इसकी व्याख्या करने का काम अपने हाथ में लिया था। यह एक ऐसा काम था जिसे करने से दूसरे सभी लोग सङ्कोच करते थे; परन्तु उसने इसे पूरा करके छोड़ा। कारण यह कि वह डरता था कि वेद कहीं सर्वथा लोप न हो जायँ, क्योंकि वह देखता था कि लोगों के चरित्र दिन पर दिन बिगड़ते जा रहे हैं, और वे धर्म की, बरन पुण्य की भी, अधिक परवा नहीं करते।

वसुक्र ने वेदों को लिपिबद्ध किया।

उनका विश्वास है कि वेदों के कुछ एक वचन ऐसे हैं जिनका घर में उच्चारण करना ठीक नहीं, क्योंकि वे डरते हैं कि उनसे स्त्रियों और गायों या भैंसों के गर्भपात हो जाते हैं। इसलिए उनको पढ़ते समय वे घर से निकल कर बाहर खुले मैदान में चले जाते हैं। वेद का एक भी ऐसा मन्त्र नहीं जिसके साथ इस प्रकार का कोई न कोई भयप्रदर्शक निषेध न लगा हुआ हो।

हम पहले कह आये हैं कि हिन्दुओं की पुस्तकें अरबी की रजज़ कविताओं की तरह पद्यात्मक रचनायें हैं। उनमें से बहुत सी श्लोक नामक छंद में हैं। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। जालीनूस भी पद्यात्मक रचना को ही अच्छा समझता है। वह अपनी 'क़ाता जानस' नामक पुस्तक में कहता है कि—"ओषधियों के तोल को दिखलानेवाले शुद्ध चिह्न नक़ल करने से भ्रष्ट हो जाते हैं; वे किसी

ईर्ष्यालु मनुष्य की मनमानी अपकृति से भी भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए यह सर्वथा ठीक है कि डेमोक्रटीज़ की ओषधियों की पुस्तकें दूसरों से अच्छी समझी जायँ, और उनकी प्रशंसा और ख्याति हो, क्योंकि वे यूनानी छंद में लिखी हुई हैं। यदि सभी पुस्तकें इसी प्रकार लिखी जायँ तो बहुत ही अच्छी बात हो"। बात असल में यह है कि पद्यात्मक रचना से गद्यात्मक रचना के भ्रष्ट हो जाने की अधिक सम्भावना होती है।

परन्तु वेदों की रचना इस साधारण छन्द अर्थात् श्लोक में नहीं प्रत्युत एक और छन्द में हुई है। अनेक हिन्दुओं का मत है कि उस छन्द में कोई मनुष्य रचना नहीं कर सकता। परन्तु उनके विद्वानों की राय है कि यह बात वस्तुतः सम्भव है; किन्तु वे केवल वेद के सम्मान के ख़याल से ही इस छन्द के लिए यत्न नहीं करते।

उनका ऐतिह्य कहता है कि व्यास ने वेद को चार भागों में विभक्त किया। वे चार भाग ये हैं:—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद।

व्यास के चार शिष्य और चार वेद।

व्यास के चार शिष्य थे। उसने एक एक को एक एक वेद पढ़ाया, और उसे कण्ठस्थ करा दिया। उनकी गिनती उसी क्रम से होती है जिससे वेद के चारों भागों की होती है; जैसे, पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु।

इन चारों भागों में से प्रत्येक का एक विशेष प्रकार का पाठ है।

ऋग्वेद पर।

पहला ऋग्वेद है। यह ऋच् नामक पद्यात्मक रचनाओं का बना है। ये ऋचायें एक सी लम्बी नहीं। इस का नाम ऋग्वेद इसलिए है कि इसमें सब ऋचायें ही ऋचायें हैं। इसमें यज्ञों का वर्णन है और इसके उच्चारण की तीन भिन्न भिन्न रीतियाँ हैं। पहली रीति एक रूप पढ़ते जाने की है।

पृष्ठ ६२

जैसे कि और दूसरी पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। दूसरी रीति में प्रत्येक शब्द के बाद ठहरना पड़ता है। तीसरी, वह है जो कि सबसे अधिक श्लाघ्य है, और जिसके लिए स्वर्ग में प्रचुर पुरस्कार का वचन दिया गया है। पहले एक छोटा सा लेखांश पढ़ते हैं जिसका प्रत्येक शब्द साफ़ साफ़ बोला जाता है; फिर इसे उस लेखांश के एक भाग के साथ जिसका पाठ अभी नहीं हुआ दुहराते हैं; तब अकेले साथ मिलाये हुए उस भाग को ही पढ़ते हैं, और फिर उसका उस लेखांश के अगले भाग के साथ पाठ करते हैं जो कि अभी पढ़ा नहीं गया है, इत्यादि, इत्यादि। इस प्रकार अन्त तक करते रहने से सारे पाठ को दो बार पढ़ लेते हैं।

यजुर्वेद पर।

यजुर्वेद काण्डों का बना हुआ है। यह शब्द एक व्युत्पन्न विशेष्य है। इसका अर्थ काण्ड-समष्टि है। इसमें और ऋग्वेद में भेद यह है कि इसको सन्धि के नियमों द्वारा संयुक्त पाठ के तौर पर पढ़ सकते हैं, परन्तु ऋग्वेद में ऐसा करने की आज्ञा नहीं। इन दोनों का विषय यज्ञ और होम है। ऋग्वेद को सन्धि के नियमों द्वारा संयुक्त पाठ के रूप में क्यों नहीं पढ़ सकते इस विषय में मैंने यह कहानी सुनी है:—

याज्ञवल्क्य की कथा।

याज्ञवल्क्य अपने गुरु के यहाँ रहता था। उसके गुरु का एक ब्राह्मण मित्र यात्रा पर जाना चाहता था। इसलिए याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु से कहा कि आप किसी ऐसे मनुष्य को उसके घर भेजिए जो उसकी अनुपस्थिति में अग्नि में होम किया करे और उस आग को बुझने न दे। गुरु उस मित्र के घर अपने शिष्यों को एक एक करके भेजने लगा। इस प्रकार याज्ञवल्क्य की भी बारी आ गई। वह बड़ा रूपवान् और सुन्दर वस्त्र पहने हुए था। जिस स्थान में अनुपस्थित मनुष्य की स्त्री बैठी थी वहाँ जा कर वह होम करने

लगा। उस स्त्री को उसकी पोशाक बुरी मालूम हुई। यद्यपि उसने इस बात को छिपाये रक्खा पर याज्ञवल्क्य को उसके आन्तरिक भाव का पता लग गया। होम की समाप्ति पर उसने स्त्री के सिर पर छिड़कने के लिए जल लिया, क्योंकि मन्त्र पढ़ने के बाद फूँक मारने के स्थान में वे जल छिड़कते हैं। इसका कारण यह है कि वे फूँक मारने को नापसन्द करते हैं और इसे अपवित्र समझते हैं। तब स्त्री ने कहा, "इसको इस स्तम्भ पर छिड़क दो।" उसने ऐसा ही किया और वह स्तम्भ झटपट हरा हो गया। अब वह स्त्री उसके पुण्य-कर्म का प्रसाद खो बैठने पर पश्चात्ताप करने लगी। इसलिए उसने दूसरे दिन गुरु के पास जाकर प्रार्थना की कि मेरे घर आज भी उसी शिष्य को भेजिए जिसे कल भेजा था। पर याज्ञवल्क्य ने अपनी बारी के बिना जाने से इनकार कर दिया। किसी प्रकार की प्रेरणा का भी उस पर कुछ असर न हुआ। उसने अपने गुरु के कोप की भी कुछ परवा न की, और केवल यह कहा कि "जो कुछ आपने मुझे पढ़ाया है वह सब मुझसे ले लीजिए"। इतना कहते ही फ़ौरन उसका सारा पढ़ा पढ़ाया उसे भूल गया। अब वह सूर्य के पास गया और उनसे वेद पढ़ाने की प्रार्थना की। सूर्य ने कहा "यह कैसे सम्भव हो सकता है, क्योंकि मैं तो सदा घूमता फिरता हूँ और तुम ऐसा करने में असमर्थ हो?" परन्तु याज्ञवल्क्य सूर्य के रथ के साथ लटक गया और उससे वेद पढ़ने लगा। परन्तु रथ की विषम गति के कारण उसको कहीं कहीं पाठ को रोकना पड़ता था।

सामवेद और अथर्ववेद।

सामवेद में यज्ञों, आज्ञाओं और निषेधों का वर्णन है। यह गीत के स्वर में पढ़ा जाता है, इसीसे इसका यह नाम है, क्योंकि साम का अर्थ पाठ का माधुर्य है। इस प्रकार गाकर पढ़ने का कारण यह है कि जब नारायण वामन अवतार होकर

राजा बलि के पास गये थे तब उन्होंने ब्राह्मण का रूप धारण किया था। वे मर्मस्पर्शी स्वर में सामवेद का पाठ करते थे। इससे राजा बहुत प्रमुदित हुआ था, जिसके फल से उसके साथ प्रसिद्ध कथा की घटना हुई थी।

अथर्ववेद पाठ रूप से सन्धि के नियमों द्वारा संयुक्त है। इस की छन्द-रचनायें वही नहीं हैं जो ऋग्वेद और यजुर्वेद की हैं, प्रत्युत इसकी भर नामक एक तीसरी रचना है। इसको एक अनुनासिक स्वर के साथ पढ़ा जाता है। हिन्दू लोग इस वेद से दूसरे वेदों के तुल्य प्रेम नहीं करते। इसमें भी अग्नि में होम और मृतकों के संस्कारों का वर्णन है।

पुराणों की सूची।

पुराणों के विषय में पहले हम यह बताते हैं कि पुराण शब्द का अर्थ प्रथम, सनातन है। पुराण अठारह हैं। इनमें से बहुतों के नाम पशुओं, मनुष्यों, और देवताओं के नाम हैं। इसका कारण यह है कि या तो इनमें उनकी कहानियाँ हैं, या पुस्तक के विषय का उनके साथ किसी प्रकार से सम्बन्ध है, या फिर पुस्तक में उन उत्तरों का वर्णन है जो कि उस जन्तु ने जिसके नाम पर पुस्तक का नाम है किसी किसी प्रश्नों के विषय में दिये थे।

पृष्ठ ६३

पुराणों की उत्पत्ति मनुष्यों द्वारा हुई है। वे ऋषि कहलानेवालों की रचनायें हैं। नीचे मैं उनके नामों की सूची देता हूँ। यह मैंने सुन कर लिखी है :—

१. आदि-पुराण, अर्थात् पहला।
२. मत्स्य-पुराण, अर्थात् मछली।
३. कूर्म-पुराण, अर्थात् कछुआ।
४. वराह-पुराण, अर्थात् सूअर।
५. नरसिंह-पुराण, अर्थात् सिंह के सिर वाला मनुष्य।

६. वामन-पुराण, अर्थात् बौना।
७. वायु-पुराण, अर्थात् हवा।
८. नन्द-पुराण, अर्थात् महादेव का एक सेवक।
९. स्कन्द-पुराण, अर्थात् महादेव का एक पुत्र।
१०. आदित्य-पुराण, अर्थात् सूर्य।
११. सोम-पुराण, अर्थात् चन्द्र।
१२. साम्ब-पुराण, अर्थात् विष्णु का पुत्र।
१३. ब्रह्माण्ड-पुराण, अर्थात् आकाश।
१४. मार्कण्डेय-पुराण, अर्थात् एक महर्षि।
१५. तार्क्ष्य-पुराण, अर्थात् गरुड़ पक्षी।
१६. विष्णु-पुराण, अर्थात् नारायण।
१७. ब्रह्म-पुराण, अर्थात् वह प्रकृति जिसका काम जगत् का रक्षण और पालन करना है।
१८. भविष्य-पुराण, अर्थात् भावी चीज़ें।

इन सारे ग्रन्थों में से मैंने केवल मत्स्य, आदित्य, और वायु-पुराण के कुछ भाग देखे हैं।

पुराणों की इससे कुछ भिन्न सूची मुझे विष्णुपुराण से पढ़ कर सुनाई गई है। मैं इसे यहाँ सविस्तर देता हूँ, क्योंकि उन सब विषयों में जिन का आधार ऐतिह्य हो, ग्रन्थकार का यह कर्तव्य है कि वह उन ऐतिह्यों को यथासम्भव पूर्ण-रूप से लिखदे :—

१. ब्रह्म।
२. पद्म, अर्थात् लाल कमल।
३. विष्णु।
४. शिव, अर्थात् महादेव।
५. भागवत, अर्थात् वासुदेव।

६. नारद, अर्थात् ब्रह्मा का पुत्र ।
७. मार्कण्डेय ।
८. अग्नि, अर्थात् आग ।
९. भविष्य, अर्थात् आनेवाला समय ।
१०. ब्रह्मवैवर्त, अर्थात् पवन ।
११. लिङ्ग, अर्थात् महादेव की उपस्थेन्द्रिय की मूर्त्ति ।
१२. वराह ।
१३. स्कन्द ।
१४. वामन ।
१५. कूर्म ।
१६. मत्स्य, अर्थात् मछली ।
१७. गरुड़, अर्थात् विष्णु की सवारी का पक्षी ।
१८. ब्रह्माण्ड ।

पुराणों के ये नाम विष्णुपुराण के अनुसार हैं ।

स्मृतियों की सूची ।

स्मृति नाम की पुस्तक वेद से निकाली गई है । इसमें आज्ञायें और निषेध हैं । इसको ब्रह्मा के निम्नलिखित बीस पुत्रों ने रचा है ।

१. आपस्तम्भ ।
२. पराशर ।
३. शतपथ (शातातप ?)
४. सामवर्त ।
५. दक्ष ।
६. वसिष्ठ ।
७. अङ्गिरस् ।
८. यम ।

९. विष्णु।
१०. मनु।
११. याज्ञवल्क्य।
१२. अत्रि।
१३. हारीत।
१४. लिखित।
१५. शङ्ख।
१६. गौतम।
१७. बृहस्पति।
१८. कात्यायन।
१९. व्यास।
२०. उशनस्।

इनके अतिरिक्त, हिन्दुओं के यहाँ उनके धर्म्मशास्त्र, ब्रह्मविद्या, तपस्या, देवता बनने और संसार से मुक्त हो जाने की विधि पर पुस्तकें हैं; जैसे, गौड़ मुनि की बनाई हुई पुस्तक जो उसीके नाम से प्रसिद्ध है; कपिल-कृत सांख्य जोकि पारमार्थिक विषयों की पुस्तक है; मोक्ष की तलाश और आत्मा के ध्येय के साथ मिलाप के अनुसन्धान पर पतञ्जलि की पुस्तक; वेद और उसकी व्याख्या के विषय में कपिल-रचित न्यायभाषा, जिसमें यह भी दिखाया गया है कि वेद पैदा किया हुआ है, और इसमें वैदिक आज्ञाओं के भेद दिखलाये गये हैं कि कौनसी केवल विशेष अवस्थाओं के लिए ही हैं और कौनसी सामान्य अवस्था के लिए; फिर इसी विषय पर जैमिनि-कृत मीमांसा; वृहस्पति-कृत लौकायत नामक पुस्तक, जिसका विषय है कि सभी निरूपणों में हमें केवल इन्द्रियों की उपलब्धि पर ही भरोसा पृष्ठ ६४ करना चाहिए; अगस्त्य-कृत अगस्त्यमत, जिसका विषय

यह है कि सकल निरूपणों में हमें इन्द्रियों की उपलब्धि और ऐतिह्य दोनों का प्रयोग करना चाहिए; और विष्णु-धर्म्म नामक पुस्तक। धर्म्म शब्द का अर्थ पुरस्कार है परन्तु प्रायः इसका प्रयोग मज़हब के लिए किया जाता है; इस लिए पुस्तक के इस नाम का अर्थ हुआ ईश्वर का मज़हब (धर्म्म), ईश्वर से यहाँ अभिप्राय नारायण से है। फिर व्यास के छः शिष्यों की पुस्तकें हैं। वे शिष्य ये हैं:—देवल, शुक्र, भार्गव, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य, और मनु। विज्ञान की सभी शाखाओं पर हिन्दुओं के यहाँ अनेक पुस्तकें हैं। इन सब के नामों को कौन मनुष्य जान सकता है? विशेषतः जब कि वह हिन्दू नहीं प्रत्युत एक विदेशी हो।

महाभारत। इसके अतिरिक्त, उनकी एक और पुस्तक है। इसका वे इतना सम्मान करते हैं कि वे प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि जो बातें दूसरी पुस्तकों में लिखी हैं वे सबकी सब इसमें भी पाई जाती हैं, परन्तु इस पुस्तक की सारी बातें दूसरी पुस्तकों में नहीं पाई जातीं। इसका नाम भारत है। इसको पराशर के पुत्र व्यास ने उस समय बनाया था जब कि कुरु और पाण्डु के पुत्रों में महायुद्ध हुआ था। इसका स्वयं नाम ही उन समयों का ज्ञापक है। पुस्तक के १,००,००० श्लोक और अठारह भाग हैं। प्रत्येक भाग पर्व कहलाता है। हम यहाँ उनकी सूची देते हैं:—

१. सभा-पर्व, अर्थात् राजा का घर।
२. अरण्य, अर्थात् बाहर खुले मैदान में जाना; इसका तात्पर्य पाण्डु के पुत्रों का प्रस्थान है।
३. विराट, अर्थात् एक राजा का नाम जिस के देश में वे जाकर छिपे थे।
४. उद्योग, अर्थात् युद्ध की तैयारी।

५. भीष्म।

६. द्रोण, ब्राह्मण।

७. कर्ण, सूर्य का पुत्र।

८. शल्य, दुर्योधन का भाई। ये लड़ाई में लड़नेवाले वीरों में शिरोमणि थे। जब एक मर जाता था तब सदा दूसरा आगे उसकी जगह आ जाता था।

९. गदा, अर्थात् मोगरी।

१०. सौप्तिक, अर्थात् सोते हुए मनुष्यों का मारा जाना, जब द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने पाञ्चाल नगर पर रात्रि को आक्रमण किया और वहाँ के निवासियों को मार डाला।

११. जलप्रदानिक, अर्थात् मृतकों को छूने से पैदा होनेवाली अशुचिता को धो चुकने के उपरान्त मृतकों के लिए लगातार पानी निकालना।

१२. स्त्री, अर्थात् स्त्रियों का विलाप।

१३. शान्ति, अर्थात् हृदय से घृणा का उन्मूलन करना। इसके चार भाग हैं और २४००० श्लोक। उन भागों के नाम ये हैं:—

(क) राजधर्म, राजाओं के पुरस्कार पर।

(ख) दानधर्म्म, दान देने के पुरस्कार पर।

(ग) आपद्धर्म्म, दरिद्रों और दुःखियों के पुरस्कार पर।

(घ) मोक्षधर्म्म, उस मनुष्य के पुरस्कार पर जो कि संसार से मुक्त हो चुका है।

१४. अश्वमेध, अर्थात् संसार में घूमने के लिए सेना सहित भेजे हुए घोड़े का बलिदान। तब वे जनता में यह विघोषित करते हैं कि यह घोड़ा सारे संसार के राजा का है, और जो उसे चक्रवर्ती राजा नहीं मानता वह सामने आकर युद्ध करे। घोड़े के पी

पीछे ब्राह्मण जाते हैं और जहाँ जहाँ वह लीद करता है वहाँ वे अग्नि में होम करते हैं ।

१५. मौसल, अर्थात् यादवों का आपस में लड़ना । यादव वासुदेव की जाति का नाम है ।

१६. आश्रमवास, अर्थात् अपने देश को छोड़ना ।

१७. प्रस्थान, अर्थात् मोक्ष की तलाश में राज्य का परित्याग ।

१८. स्वर्गारोहण, अर्थात् स्वर्ग की यात्रा।

इन अठारह भागों के बाद हरिवंश-पर्व नामक एक और प्रकरण है । इसमें वासुदेव-सम्बन्धी ऐतिह्य हैं ।

इस पुस्तक में अनेक ऐसे वचन मिलते हैं, जिनके पहेलियों की तरह अनेक अर्थ निकल सकते हैं । इसका कारण बताने के लिए हिन्दू यह कहानी सुनाते हैं:—व्यास ने ब्रह्मा से कहा कि मुझे कोई ऐसा व्यक्ति दीजिए जो भारत को मेरे मुँह से सुन कर लिखता जाय । उसने यह काम अपने पुत्र विनायक [जिस की मूर्त्ति हाथी के सिरवाली बनाई जाती है] के सिपुर्द किया और उसके लिए यह आवश्यक कर दिया कि वह लिखने से कभी बन्द न हो। साथ ही व्यास ने उसे आज्ञा दी कि केवल वही बातें लिखना जिनको कि तुम समझ लो । इसलिए व्यास ने बोलते समय ऐसे वाक्य बोले जिन पर लेखक को विचार करना पड़ा, और इससे व्यास को आराम करने के लिए थोड़ा सा समय मिल गया ।

पृष्ठ ६५

तेरहवाँ परिच्छेद ।

उनका व्याकरण तथा छन्द-सम्बन्धी साहित्य ।

व्याकरण और छन्दःशास्त्र दूसरे शास्त्रों के सहकारी हैं। इन दोनों में से व्याकरण का स्थान उनके मत में पहला है। व्याकरण उनकी वाणी तथा व्युत्पत्ति-सम्बन्धी नियमों की शुद्धि का आईन है। इसके द्वारा वे लिखने और पढ़ने में श्रेष्ठ और अस्खलित शैली प्राप्त करते हैं। हम मुसलमान लोग इसका कुछ भी अंश नहीं सीख सकते, क्योंकि यह एक ऐसे मूल से निकली हुई शाखा है जो कि हमारी पकड़ के अन्दर नहीं। यह कहने से मेरा तात्पर्य स्वयम् भाषा से है। इस शास्त्र के ग्रन्थों के जो नाम मुझे बताये गये हैं वे ये हैं:—

व्याकरण की पुस्तकों की सूची।

१. ऐन्द्र, इसका सम्बन्ध देवताओं के राजा इन्द्र से बताया जाता है।
२. चान्द्र, यह चन्द्र की रचना है जोकि बौद्ध धर्म्म का एक भिक्षु था।
३. शाकट, इसका नाम इसके रचयिता के नाम पर है। उसकी जाति भी एक ऐसे नाम, अर्थात् शाकटायन, से पुकारी जाती है जिसकी व्युत्पत्ति इसी शब्द से है।
४. पाणिनि, अपने रचयिता के नाम पर इसका यह नाम है।
५. कातन्त्र, इसका रचयिता शर्ववर्मन् है।
६. शशिदेववृत्ति, यह शशिदेव की रचना है।
७. दुर्गविवृत्ति।
८. शिष्यहितावृत्ति, यह उग्रभूति की बनाई हुई है।

मुझे बताया गया है कि उग्रभूति जयपाल के पुत्र शाह आनन्दपाल का शिक्षक और गुरु था । जयपाल वही राजा है जो हमारे समय में शासन करता था । पुस्तक को पूरा कर लेने पर उसने इसे काश्मीर भेज दिया; परन्तु वहाँवालों ने इसे ग्रहण नहीं किया, क्योंकि ऐसी बातों में वे बड़े ही अभिमानी और परिवर्तन-विरोधी थे । अब उसने इस बात की शाह से शिकायत की, और शाह ने, गुरु के प्रति शिष्य-धर्म्म का पालन करते हुए, उसकी मनःकामना पूर्ण करा देने का वचन दिया । उसने आज्ञा दी कि २,००,००० दिर्हम और इतने ही मूल्य के उपहार काश्मीर में भेज कर उन लोगों में बाँट दिये जायँ जो उसके गुरु की पुस्तक का अध्ययन करते हैं । इसका परिणाम यह हुआ कि वे सब इस पुस्तक पर टूट पड़े, और उन्होंने इसके सिवा और दूसरे व्याकरण की प्रतिलिपि करना छोड़ दिया । इससे उनके लोभ की नीचता प्रकट होती है । इस प्रकार पुस्तक का प्रचार और आदर बहुत बढ़ गया ।

राजा आनन्दपाल और उसका गुरु उग्रभूति ।

व्याकरण की उत्पत्ति के विषय में वे यह कथा बताते हैं:—एक दिन समलवाहन, अर्थात् संस्कृत भाषा में सातवाहन, नामक उनका एक राजा एक सरोवर में अपनी स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था । वहाँ उसने उनमें से एक को कहा "मा उदकम् देहि" अर्थात् मुझ पर पानी मत फेंको । परन्तु वह स्त्री इसका अर्थ "मोदकम् देहि" अर्थात् मिठाई दो, समझी । इसलिए वह वहाँ से जाकर मिठाई ले आई । जब राजा ने उसके इस काम को नापसन्द किया तब उसने उसे बड़े क्रोध से उत्तर दिया और उसके प्रति गर्ह्य भाषा का प्रयोग किया । अब राजा इससे बहुत खिझा, और, जैसी कि उनके यहाँ रीति है, उसने सब प्रकार के भोजन का परित्याग कर दिया, और एक कोने में

व्याकरण की उत्पत्ति के विषय में कथा ।

छिपकर बैठ गया। अन्त को एक ऋषि उसके पास आया। उसने उसे समाश्वासन दिया और प्रतिज्ञा की कि मैं लोगों को भाषा के विकार और व्याकरण सिखला दूँगा। इस पर वह ऋषि महादेव के पास गया और उसकी स्तुति, प्रार्थना और भक्ति की। महादेव ने उसे दर्शन दिया और उसे कुछ नियम सिखलाये, जैसे कि अबुल-असवद दुएली (ابوالاسود الدئلي) ने अरबी भाषा के लिए दिये हैं। महादेव ने उसे यह भी वचन दिया कि इस शास्त्र के विकास में मैं तुम्हें सहायता दूँगा। तब ऋषि ने वहाँ से लौट कर यह विद्या राजा को सिखाई। व्याकरण-शास्त्र की उत्पत्ति यहाँ से हुई थी।

पद्यात्मक रचनाओं के लिए हिन्दुओं का पूर्वानुराग।

व्याकरण के बाद एक दूसरा शास्त्र आता है। इसका नाम छन्द है। यह हमारे छन्दों के सदृश है। यह शास्त्र उनके लिए अनिवार्य है क्योंकि उनकी सभी पुस्तकें कविता में हैं। पुस्तकों की छन्दों में रचना करने से उनका उद्देश्य यह है कि इन्हें कण्ठस्थ करने में सुभीता हो, और शास्त्र-सम्बन्धी सर्व प्रश्नों के लिए, परमावश्यकता के बिना, लोगों को बार बार लिखित पुस्तक को न देखना पड़े। क्योंकि उनका ख़याल है कि जिन चीज़ों में आकार-शुद्धता और व्यवस्था है उनके साथ मानव-मन की सहानुभूति और जिनमें व्यवस्था नहीं उनसे विरक्ति होती है। इसलिए प्रायः हिन्दू अपने छन्दों पर बड़े ही अनुरक्त हैं। वे अर्थ न समझते हुए भी सदा उनका पाठ करते रहते हैं और श्रोतागण हर्ष और प्रशंसा प्रकट करने के लिए अपनी अँगुलियाँ चटकाते हैं। वे गद्यात्मक रचनाओं को पसन्द नहीं करते यद्यपि इनका समझना अपेक्षाकृत बहुत सुगम है।

पृष्ठ ६६

उनकी पुस्तकें प्रायः श्लोकों में बनी हुई हैं। मैं भी आज कल श्लोकों का अभ्यास कर रहा हूँ, क्योंकि मैं हिन्दुओं के लिए यूक्लिड

और अलमजस्ट की पुस्तकों का भाषान्तर तैयार करने और उनको अस्तरलाब के निर्माण पर एक निबन्ध के लिखवाने में लगा हुआ हूँ। इसमें मेरा उद्देश विद्या-प्रचार के सिवा और कुछ नहीं। जब हिन्दुओं के हाथ कोई ऐसी पुस्तक लग जाती है जिसका उनमें अभी अभाव हो तो वे फ़ौरन उसे श्लोक-बद्ध करना आरम्भ कर देते हैं। ये श्लोक दुर्बोध्य होते हैं क्योंकि पद्यात्मक रचना के लिए एक कृत्रिम और सङ्कुचित शैली की आवश्यकता होती है। यह बात उस समय स्पष्ट हो जायगी जब हम उनकी संख्या को प्रकट करने की रीति का वर्णन करेंगे। और यदि छन्द पर्याप्त क्लिष्ट न हों तो लोग उनके रचयिताओं पर नाक-भौं चढ़ाते हैं कि उन्होंने गद्य ऐसा लिख डाला है। इससे उनको बहुत दुःख होता है। जो कुछ मैं उनके विषय में कह रहा हूँ उसमें परमात्मा ही मेरे साथ न्याय करेगा।

इस शास्त्र के आविष्कारक पिङ्गल और چلت (?च–ल–त) थे।

छन्द पर पुस्तकें।

इसकी अनेक पुस्तकें हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध पुस्तक गैसित (?गै–स–त) है। इसका यह नाम इसके रचयिता के नाम पर है। यह इतनी प्रसिद्ध है कि सारा छन्दःशास्त्र इसी नाम से पुकारा जाता है। और पुस्तकें मृगलाञ्छन, पिङ्गल, और औलियान्द اولياند (?ऊ–(औ)–ल–या–आ–न–द) की रचनायें हैं। परन्तु मैंने इन पुस्तकों में से एक भी नहीं देखी, न मुझे ब्रह्मसिद्धान्त के छन्द-गणना के अध्याय का कुछ अधिक ज्ञान है, इसलिए उनके छन्दःशास्त्र के नियमों का पूरा पूरा ज्ञान रखने का मैं अभिमानी नहीं। इस पर भी जिस विषय का मुझे अल्प ज्ञान है उसे छोड़ जाना ठीक नहीं, और मैं उस समय तक जब कि मेरा इस पर पूर्ण अधिकार हो जाय, इसका वर्णन करना स्थगित न करूँगा।

अक्षरों (गणछन्दस्) को गिनने में वे उसी प्रकार के चिह्नों का प्रयोग करते हैं जिस प्रकार के चिह्नों का अलख़लील इब्न अहमद और हमारे छन्दःशास्त्रियों ने स्वर-रहित व्यञ्जन और स्वर-सहित व्यञ्जन को प्रकट करने के लिए व्यवहार किया है। वे चिह्न। और < हैं। इनमें से पहला लघु अर्थात् हलका और दूसरा गुरु अर्थात् भारी कहलाता है। नापने (मात्राछन्दस्) में लघु से गुरु दुगुना गिना जाता है, और एक गुरु के स्थान को दो लघु रखते हैं।

लघु और गुरु नामक परिभाषाओं का अर्थ।

इसके अतिरिक्त उनका एक लम्बा (दीर्घ) अक्षर होता है। इस की मात्रा या छन्द गुरु के बराबर गिना जाता है। मैं समझता हूँ यह दीर्घ स्वरवाला अक्षर है (यथा का, की, कू)। परन्तु यहाँ मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूँ कि इस समय तक मैं लघु और गुरु के स्वरूप को पूरी तरह से नहीं समझ सका जिससे मैं अरबी से वैसे ही उदाहरण देकर उन्हें स्पष्ट कर सकूँ। तिस पर भी मेरा ख़याल है कि लघु का अर्थ स्वर-रहित व्यञ्जन नहीं, और न गुरु का अर्थ स्वर-सहित व्यञ्जन है, प्रत्युत, लघु का अर्थ छोटे स्वरवाला व्यञ्जन (यथा क, कि, कु) है और गुरु का अर्थ स्वर-रहित व्यञ्जन से संयुक्त लघु है। जैसा कि (कत्, कित्, कुत्)। अरबी छन्दःशास्त्र में इसके सदृश सबब (अर्थात् — या ◡◡, एक लम्बा अक्षर जिसका स्थान दो छोटे ले सकते हैं।) नामक एक उपक्रम है। लघु के पूर्वलिखित लक्षण में मेरे सन्देह का कारण यह है कि हिन्दू एक दूसरे के बाद लगातार अनेक लघुओं का प्रयोग कर देते हैं। अरबी लोग एक दूसरे के पीछे इकट्ठे दो स्वर-रहित व्यञ्जनों का उच्चारण करने में असमर्थ हैं, परन्तु अन्य भाषाओं में यह बात सम्भव है। उदाहरणार्थ, फ़ारसी छन्दःशास्त्र ऐसे व्यञ्जन को हलके स्वर द्वारा हिलाया हुआ (अर्थात् इब्रानी स्च्व Schwa की तरह

बोला जानेवाला) कहते हैं। परन्तु जिस अवस्था में ऐसे व्यञ्जन तीन से अधिक हों तो उनका उच्चारण करना अति कठिन बरन असम्भव है; और इसके विपरीत, एक व्यञ्जन और एक छोटे स्वर के बने हुए छोटे छोटे अक्षरों के एक अविरत अनुक्रम का उच्चारण करना कुछ भी कठिन नहीं, जैसा जब हम अरबी में कहते हैं, "बदनुक् कमसलि सिफ़तिक् व फ़मुक् बिसअ़ते शफ़तिक्" (अर्थात् तेरा शरीर तेरे वर्णन के सदृश है, और तेरे मुँह का निर्भर तेरे होंठ की चौड़ाई पर है)। फिर, यद्यपि शब्द के आरम्भ में स्वर-रहित व्यञ्जन का बोलना कठिन है तोभी हिन्दुओं के प्रायः विशेष्यों का आरम्भ यदि ठीक स्वर-रहित व्यञ्जनों से नहीं तो कम से कम ऐसे व्यञ्जनों से अवश्य होता है जिनके बाद केवल स्च्व-सदृश स्वर-ध्वनि है। यदि ऐसा व्यञ्जन पद्य के आरम्भ में हो तो वे इसे नहीं गिनते, क्योंकि गुरु का नियम यह चाहता है कि इसमें स्वरहीन व्यञ्जन स्वर के पहले नहीं प्रत्युत इसके पीछे आये (क-त्, कि-त्, कु-त्)।

पृष्ठ ६७

मात्रा का लक्षण।

फिर, जिस प्रकार हमारे लोगों ने चरणों (افاعيل) से विशेष कल्पनायें या रीतियाँ तैयार की हैं जिनके अनुसार पद्य बनाये जाते हैं, और जैसे चरण के भागों अर्थात् स्वरहीन और स्वर-सहित व्यञ्जनों को प्रकट करने के लिए चिह्न बनाये हैं उसी प्रकार हिन्दू भी लघु और गुरु के बने हुए चरणों को दिखलाने के लिए विशेष नामों का प्रयोग करते हैं। इन चरणों में या तो लघु पहले और गुरु पीछे या गुरु पहले और लघु पीछे होता है, पर ये आगे पीछे होते इस रीति से हैं कि अक्षरों की संख्य चाहे बदलती रहे पर मात्रा सदा वही रहेगी। इन नामों से वे एक विशेष रूढ़ छान्दस ऐक्य (अर्थात् विशेष चरणों) को दिखलाते हैं। मात्रा से मेरा तात्पर्य यह है कि लघु एक मात्रा के बराबर गिना जाता है,

और गुरु दो के बराबर। यदि वे चरण को लिख कर प्रकट करते हैं तो वे केवल अक्षरों की मात्रायें ही बताते हैं उनकी संख्या नहीं, जैसा कि (अरबी में) द्विगुण व्यञ्जन (क्क) एक स्वरहीन व्यञ्जन + एक स्वरसहित व्यञ्जन के बराबर गिना जाता है, और एक व्यञ्जन जिसके पीछे तन्वीन (कुन) हो वह एक स्वरयुक्त व्यञ्जन + एक स्वरहीन व्यञ्जन के बराबर गिना जाता है, परन्तु लिखने में दोनों एक से दिखलाये जाते हैं (अर्थात् प्रस्तुत व्यञ्जन के चिह्न से)।

लघु और गुरु का अलग विचार करें तो इनके अनेक नाम हैं। लघु ल, कलि, रूप, चामर, और ग्रह कहलाता है, और गुरु ग, नीव्र, और अर्द्ध अंशक। पिछला नाम यह प्रकट करता है कि पूर्ण अंशक दो गुरुओं के बराबर या उनका प्रतिफल है। ये नाम उन्हों ने केवल इसलिए गढ़े हैं जिससे उनकी पद्यात्मक पुस्तकों को श्लोकबद्ध करने में सुगमता हो। इस कार्य के लिए उन्होंने इतने नाम निकाले हैं कि यदि दूसरे नाम छन्दों के ठीक न भी बैठें तो एक तो अवश्य ठीक बैठ जायगा।

लघु और गुरु के नाम।

लघु और गुरु के संयोग से पैदा होनेवाले चरण ये हैं:—

इकहरे चरण।

संख्या और मात्रा दोनों में द्विगुण चरण है ।।, अर्थात् दो अक्षर और दो मात्रायें।

मात्रा में नहीं, प्रत्युत केवल संख्या में, द्विगुण चरण होते हैं, ।< और <।; मात्रा में वे तीन मात्रा के बराबर हैं ।।। (परन्तु, संख्या में केवल दो अक्षर हैं)।

दूसरा चरण <। कृत्तिका कहलाता है।

चतुःसंख्यक चरणों के प्रत्येक पुस्तक में भिन्न भिन्न नाम हैं:—

< < पक्ष, अर्थात् आधा महीना।

।।< ज्वलन, अर्थात् आग।

।<। मध्य (? मधु)।

<।। पर्वत, अर्थात् पहाड़। इसका नाम हार और रस भी है।

।।।। घन।

पाँच मात्राओं के बने चरणों के अनेक रूप हैं; इनमें से जिन के विशेष नाम हैं वे ये हैं :—

।< < हस्ति, अर्थात् हाथी।

<।<, काम, अर्थात् इच्छा।

< <। (? दीमक चाट गई)।

।।।< कुसुम।

जिस चरण में छः मात्रायें हों वह < < < है।

अनेक लोग इन चरणों के शतरंज के मुहरों के नाम रखते हैं, यथा :—

ज्वलन = हाथी।

मध्य = कोट या क़िला।

पर्वत = पियादा।

घन = घोड़ा।

चरण की व्यवस्था पर हरिभट्ट के प्रमाण।

एक शब्द-कोश में जिसका नाम उसके रचयिता هيرود (? हरिभट्ट) ने अपने ही नाम पर रक्खा है। तीन लघु या गुरु के बने चरणों को शुद्ध व्यञ्जनों के नाम दिये हैं। वे नीचे के कोठे में बाँयी ओर लिखे गये हैं।

कोठा।

म < < < छः गुना (अर्थात् छः मात्रावाला)

य ।< < हस्तिन्।

र <।< काम।

त < <। (? दीमक चाट गई)।

स ॥ <　　ज्वलन।

ज । <।　मध्य।

भ <॥　पर्वत।

न । । । तिगुना (अर्थात् तीन मात्रावाला)।

इन चिह्नों के द्वारा ग्रन्थकार आनुमानिक रीति से (एक प्रकार के बीजगणित-सम्बन्धी परिवर्तन से) इन आठ चरणों के बनाने की विधि सिखाता है। वह कहता है:—

"दोनों प्रकारों (गुरु और लघु) में से एक को पहली पंक्ति में अमिश्रित रक्खो (जो कि, यदि हम गुरु से आरम्भ करें तो, < < < होगा)। तब इसे दूसरे प्रकार के साथ मिला दो, और इसमें से एक को दूसरी पंक्ति के आरंभ में रख दो, बाक़ी के दो तत्त्व पहले प्रकार के हों (।< <)। तब इस संमिश्रण के तत्त्व को तीसरी पंक्ति के मध्य में रक्खो (<।<), और अन्ततः चौथी पंक्ति की समाप्ति पर (< <।)। अब तुम पहला आधा भाग समाप्त कर चुके।

पृष्ठ ६८

"इसके आगे, दूसरे प्रकार को सबसे निचली पंक्ति में अमिश्रित रख दो (।।।), और इसके ऊपर की पंक्ति के साथ एक पहले प्रकार का मिला कर इसको पंक्ति के आरम्भ में रक्खो (<।।), फिर उसके बाद की दूसरी पंक्ति के मध्य में (।<।), और अन्ततः उसके आगे की पंक्ति के अन्त में रक्खो (।।<)। तब दूसरा आधा भाग समाप्त हो गया, और तीन मात्राओं के जितने समवायों का होना सम्भव है वे पूरे हो चुके।"

१. < < <	पहला आधा।	५. ।।<	दूसरा आधा।
२. ।< <		६. ।<।	
३. <।<		७. <।।	
४. < <।		८. ।।।	

रचना या परिवर्तन की यह पद्धति ठीक है, परन्तु इस परिवर्तन-क्रम में शुद्ध चरण का स्थान मालूम करने के लिए उसकी गणना इसके अनुसार नहीं है। क्योंकि वह कहता है :—

"चरण का प्रत्येक तत्त्व (अर्थात् गुरु और लघु दोनों) दिखलाने के लिए २ का अंक, सदा के लिए एक ही बार, रखदो, जिससे प्रत्येक चरण २, २, २ द्वारा प्रकट किया जाय। बायें (अंक) को मध्य से, और उनके फल को दायें अंक से गुणो। यदि यह गुणक (अर्थात् दाईं ओर का यह अंक) लघु हो, तो घात को वैसा का वैसा रहने दो; परन्तु यदि यह गुरु हो तो घात में से एक निकाल दो।"

ग्रन्थकार उसका दृष्टान्त छठे चरण अर्थात् ।<। से देता है। वह २ का २ से गुणा करता है और घात (४) से १ निकाल देता है। बाक़ी ३ का वह तीसरे २ से गुणा करता है, और उसका घात ६ प्राप्त होता है।

पर बहुत से चरणों के लिए यह ठीक नहीं, और मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि हस्तलेख का पाठ भ्रष्ट है।

इसके अनुसार चरणों का यथार्थ क्रम इस प्रकार होगा :—

	क	ख	ग		क	ख	ग
१.	<	<	<	५.	<	<	।
२.	।	<	<	६.	।	<	।
३.	<	।	<	७.	<	।	।
४.	।	।	<	८.	।	।	।

पहली पंक्ति (क) का संमिश्रण ऐसा है कि एक प्रकार के बाद सदा दूसरा प्रकार आता है। दूसरी पंक्ति (ख) में एक प्रकार के दो

के बाद दूसरे प्रकार के दो आते हैं; और तीसरी पंक्ति (ग) में एक प्रकार के चार के बाद दूसरे प्रकार के चार आते हैं।

तब उपर्युक्त गणना का रचयिता कहता है, "यदि चरण का पहला तत्त्व गुरु है तो गुणन से पूर्व उसमें से एक निकाल लो। यदि गुणक गुरु हो तो घात में से एक निकालो। इस प्रकार तुम्हें इस क्रम में चरण का स्थान मालूम हो जायगा।"

पादों पर।

जिस प्रकार अरबी छन्द अरूज़ अर्थात् पहले श्लोकार्ध के अन्तिम चरण, और दर्ब अर्थात् दूसरे श्लोकार्ध के अन्तिम चरण द्वारा दो आधों या श्लोकार्धों में विभक्त है उसी प्रकार हिन्दुओं के श्लोक भी दो आधों में बँटे हुए हैं। इनमें से प्रत्येक को पाद कहते हैं। यूनानी भी उन्हें पाद (:: :: कृमिभुक्त) कहते हैं,—वे शब्द जो इस के, अर्थात् अक्षर के, बने हुए हैं, और स्वरयुक्त या स्वरहीन व्यञ्जन, दीर्घ, लघु, या संदिग्ध स्वरोंवाले व्यञ्जन।

आर्या छन्द पर।

छन्द तीन, या अधिक सामान्य रीति से चार पादों में विभक्त होता है। कई बार वे छन्द के मध्य में एक पाँचवाँ पाद भी जोड़ देते हैं। पादों में मित्राक्षर नहीं होता, पर एक प्रकार का वृत्त होता है जिसमें १ और २ पाद एक ही व्यञ्जन या अक्षर के साथ समाप्त होते हैं, मानों जैसे इस पर तुक मिलाते हों, और ३ और ४ पाद भी उसी व्यञ्जन या अक्षर पर समाप्त होते हैं। इस प्रकार के छन्द को आर्या कहते हैं। पाद के अन्त में लघु का गुरु हो सकता है, पर प्रायः यह छन्द लघु के साथ समाप्त होता है।

पृष्ठ ६९

हिन्दुओं के भिन्न भिन्न काव्य-ग्रन्थों में बहुसंख्यक वृत्त मिलते हैं। ५ पादों के वृत्त में पाँचवाँ पाद ३ और ४ पादों के बीच रक्खा जाता है। वृत्तों के नाम अक्षरों की संख्या, और पीछे आनेवाले श्लोकों के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। क्योंकि वे यह नहीं पसन्द करते कि एक लम्बे काव्य के सभी श्लोक एक ही वृत्त के हों। वे एक ही कविता में अनेक वृत्तों का प्रयोग करते हैं जिससे वह रेशम की एक गुलकारी मालूम हो।

चार पाद के वृत्त में चार पादों की बनावट इस प्रकार होती है :—

<table>
<tr><td>पाद १.</td><td>< <पक्ष = १ अंशक।
<।। पर्वत।
।।< ज्वलन।</td><td>< <पक्ष।
<।। पर्वत।
< <पक्ष।</td><td>पाद ३</td></tr>
<tr><td>पाद २.</td><td>< <पक्ष।
।।< ज्वलन।
।<। मध्य।
<।। पर्वत।
< <पक्ष।</td><td>< <पक्ष।
।।< ज्वलन।
।<। मध्य।
<।। पर्वत।
।।< ज्वलन।</td><td>पाद ४</td></tr>
</table>

यह उनके छन्दों की एक जाति का आलेख्य है। इस वर्ग का नाम स्कन्ध है और इसमें चार पाद होते हैं। इसमें दो श्लोकार्ध और प्रत्येक श्लोकार्ध में आठ अंशक होते हैं।

शुद्ध अंशक का १ला, २रा, और ५वाँ कभी मध्य अर्थात् <। नहीं हो सकता, और ६ठा सदा या तो मध्य या घन होना चाहिए। यदि यह शर्त पूरी हो जाय तो फिर दूसरे अंशक घटना या कवि की अभिरुचि के अनुसार चाहे कुछ ही हों। परन्तु छन्द सदा पूर्ण होना चाहिए, कम या ज़ियादा नहीं। इसलिए, शुद्ध पादों में विशेष अंशकों की बनावट के नियमों का पालन करते हुए, हम चार पादों को निम्नलिखित रीति से दिखलाते हैं :—

पाद १. << <।। ।।<

पाद २. << ।।< ।<। <।। <<

पाद ३. << <। <<

पृष्ठ ७०

पाद ४. << ।<< ।<। <।। ।।<

इस नमूने के अनुसार श्लोक बनाया जाता है।

अरबों और हिन्दुओं का श्लोक का अंकन।

यदि तुम हिन्दुओं के इन चिह्नों से अरबी छन्द का वर्णन करोगे तो देखोगे कि उनका अर्थ अरबी चिह्नों के अर्थ से सर्वथा भिन्न है। अरबी चिह्न छोटे स्वरवाले व्यञ्जन और स्वरहीन व्यञ्जन को दिखलाते हैं। (अरबी चिह्न। का अर्थ स्वरहीन व्यञ्जन है; हिन्दू चिह्न। का अर्थ एक छोटा अक्षर है; अरबी चिह्न ० का अर्थ छोटे स्वर-वाला व्यञ्जन है; हिन्दू चिह्न < का अर्थ लम्बा अक्षर है।) उदाहरणार्थ, हम नियमित पूर्ण ख़फ़ीफ़ छन्द का आलेख्य देते हैं। इसमें प्रत्येक पाद فعل धातु की व्युत्पत्तियों द्वारा दिखलाया गया है।

ख़फ़ीफ़ छन्द ।

(१) فاعلاتن مستفعلن فاعلاتن

فعل धातु की व्युत्पत्तियों द्वारा दिखलाया गया।

(२) | ० | ०० | ० | ०० | ० | ० | ० | ००|०.

अरबी चिह्नों में दिखलाया गया।

(३)   < < | <   < | < <   < < | <

हिन्दू चिह्नों में दिखलाया गया।

पिछले चिह्न हम ने उलटे क्रम से दिये हैं क्योंकि हिन्दू बायें से दायें की ओर पढ़ते हैं।

मैं एक बार पहले भी कह चुका हूँ और अब दुबारा कहता हूँ कि इस शास्त्र का अल्प ज्ञान रखने के कारण मैं पाठकों को इस विषय का पूर्ण परिचय कराने में असमर्थ हूँ। फिर भी मैं यथासम्भव पूरा पूरा यत्न करता हूँ, यद्यपि मैं भली भाँति जानता हूँ कि मैं केवल बहुत थोड़ा परिज्ञान दे सकूँगा।

वृत्त पद्य पर।

वृत्त उस चार पादवाले पद्य का नाम है जिसमें छन्दःशास्त्र के चिह्न और अक्षरों की संख्या, पादों की विशेष पारस्परिक अनुरूपता के अनुसार, एक दूसरे के समान हो, जिससे एक पाद को जान लेने से हम दूसरों को भी जान लेते हैं, क्योंकि वे इसके सदृश ही होते हैं। इसके अतिरिक्त यह नियम है कि एक पाद में चार से कम अक्षर नहीं हो सकते, क्योंकि इनसे कम अक्षरोंवाला पाद वेद में नहीं मिलता। इसी कारण पाद में अक्षरों की संख्या कम से कम चार, और अधिक से अधिक छब्बीस

होती है। फलतः वृत्तपद्य के तेईस प्रकार हैं। उनकी गिनती हम नीचे देते हैं:—

१. पाद में चार गुरु होते हैं, और यहाँ एक गुरु के स्थान में दो लघु नहीं रख सकते।

२. दूसरे प्रकार के पाद का स्वरूप मुझे भली भाँति ज्ञात नहीं, इसलिए मैं इसे छोड़ देता हूँ।

३. यह पाद घन + पक्ष का बनता है।
 ।।।। < <

४. = २ गुरु + २ लघु + ३ गुरु।
 < < ।। < < <

इस को इस प्रकार दिखलाना अच्छा होगा;

पाद = पक्ष + ज्वलन + पक्ष।

५. = २ कृत्तिका + ज्वलन + पक्ष।
 < । < । ।। < < <

६. = घन + मध्य + पक्ष।
 ।।।। ।<। < <

पृष्ठ ७१

७. = घन + पर्वत + ज्वलन।
 ।।।। <।। ।।<

८. = काम, कुसुम, ज्वलन, गुरु।
 <।< ।।।< ।।< <

९. = पक्ष, हस्तिन्, ज्वलन, मध्य, २ गुरु।
 < < ।< < ।।< ।<। < <

१०. = पक्ष, पर्वत, ज्वलन, मध्य, पक्ष।
 < < <।। ।।< ।<। < <

११. = पञ्च, मध्य, २ ज्वलन, हस्तिन् ।

<< ।<। ।।< ।।< ।<<

१२. = घन, ज्वलन, पञ्च, २ हस्तिन् ।

।।।। ।।< << ।<< ।<<

१३. = पर्वत, काम, कुसुम, मध्य, ज्वलन ।

<।। <।< ।।।< ।<। ।।<

१४. = हस्तिन्, पञ्च, पर्वत, कुसुम, पर्वत, लघु, गुरु।

।<< << <।। ।।।< <।। । <

१५. = २ पञ्च, पर्वत, कुसुम, २ काम, गुरु।

<<<< <।। ।।।< <।< <।<। <

१६. = पञ्च, पर्वत, काम, कुसुम, पञ्च, लघु, गुरु।

<< <।। <।< ।।।< << । <

१७. = २ पञ्च, पर्वत, घन, ज्वलन, पञ्च, कुसुम ।

<<<< <।। ।।।। ।।< << ।।।<

१८. = २ पञ्च, पर्वत, घन, ज्वलन, २ काम, गुरु।

<<<< <।। ।।।। ।।< <।<<।< <

१९.= गुरु, २ पञ्च, पर्वत, घन, ज्वलन, २ काम, गुरु।

< <<<< <।। ।।।। ।।< <।<<।< <

२०.= ४ पञ्च, ज्वलन, मध्य, पञ्च, २ मध्य, गुरु।

<<<<<<<< ।।< ।<। << ।<।।<। <

२१.= ४ पञ्च, ३ ज्वलन, २ मध्य, गुरु।

<<<<<<<< ।।< ।।< ।।< ।<।।<। <

२२.= ४ पद्म, कुसुम, मध्य, ज्वलन, २ मध्य, गुरु।

< < < < < < < < |||< |<| ||< |<||<| <

२३.= ८ गुरु, १० लघु, काम, ज्वलन, लघु, गुरु।

< < < < < < < < |||||||||| <|< ||< | |

यद्यपि हमारे इस सुदीर्घ वर्णन में काम की चीज़ बहुत थोड़ी है परन्तु हमने यह इसलिए दे दिया है कि पाठक लघुओं के संग्रह का उदाहरण देख लें। इससे पता लगता है कि लघु का अर्थ स्वरहीन व्यञ्जन नहीं, प्रत्युत एक ऐसा व्यञ्जन है जिसके पीछे एक छोटा स्वर हो। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी मालूम हो जायगा कि वे पद्य का वर्णन और उसकी मात्रा-गणना किस प्रकार करते हैं। अन्ततः उन्हें ज्ञात हो जायगा कि अलख़लील इब्न अहमद ने सर्वथा अपनी ही कल्पना-शक्ति से अरबी छन्दों का आविष्कार किया था। हाँ इतना ज़रूर सम्भव है, जैसा कि अनेक लोगों का मत है कि शायद उसने यह सुना हो कि हिन्दू अपनी कविता में विशेष वृत्तों का उपयोग करते हैं। भारतीय कविता के विषय में इतनी सिरपच्ची करने में हमारा उद्देश यह है कि श्लोक के नियमों का निश्चय किया जाय, क्योंकि उनकी पुस्तकों की रचना प्रायः इसी में हुई है।

श्लोक का सिद्धान्त।

श्लोक का सम्बन्ध चार पादवाले छन्दों से है। प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं, जोकि चारों पादों में भिन्न भिन्न होते हैं। चार पादों में से प्रत्येक का अन्तिम अक्षर एक ही अर्थात् गुरु होना आवश्यक है। फिर प्रत्येक पाद में पाँचवाँ अक्षर सदा लघु, और छठा गुरु होना चाहिए। सातवाँ अक्षर दूसरे और चौथे पाद में लघु, और पहले और तीसरे पाद में गुरु होना चाहिए। बाक़ी अक्षर सर्वथा घटना या कवि की अभिरुचि के अधीन हैं।

यह दिखलाने के लिए कि हिन्दू अपनी कविता में गणित का किस प्रकार प्रयोग करते हैं हम नीचे ब्रह्मगुप्त का एक प्रमाण देते हैं:—

ब्रह्मगुप्त का प्रमाण।

"पहले प्रकार का छन्द गायत्री, अर्थात् दो पादों का बना पद्य है। अब यदि हम यह मान लें कि इस छन्द के अक्षरों की संख्या २४ है, और एक पाद के अक्षरों की कम से कम संख्या ४ है, तो हम दो पादों का वर्णन ४ + ४ से करेंगे। इसमें उनके अक्षरों की संख्या उतनी कम दिखलाई गई है जितनी कम सम्भव हो सकती है। परन्तु उनकी बड़ी से बड़ी संख्या २४ सम्भव हो सकती है इसलिए हम इन ४ + ४ और २४ के अन्तर अर्थात् १६ को दाईं ओर के अंक में मिलाते हैं और हमें ४ + २० प्राप्त होते हैं। यदि छन्द के तीन पाद हों तो यह ४ + ४ + १६ से प्रकट किया जाता है। दायें हाथ का पाद सदा दूसरों से भिन्न होता है और इसका नाम भी अलग होता है। परन्तु पूर्ववर्ती पाद भी जुड़े हुए होते हैं और उनके जुड़ने से एक समष्टि बनती है। इनके नाम भी वैसे ही अलग अलग होते हैं। यदि छन्द के चार पाद हों तो यह ४ + ४ + ४ + १२से प्रकट किया जाता है।

"यदि कवि ४ अर्थात् सबसे कम अक्षरों के पादों का प्रयोग न करे, और यदि हमें दो पादवाले छन्द में आनेवाले २४ अक्षरों के समवायों की संख्या जानने की इच्छा हो तो हमें ४ को बायें हाथ और २० को दायें हाथ की ओर लिखना चाहिए; हमें १ को ४ में, और फिर १ को कुल जोड़ में मिलाना चाहिए इत्यादि; हम १ को २० में से, फिर १ को अवशेष में से निकालें, इत्यादि; और हम तब तक ऐसा ही करते जायँ जब तक कि हमें वे दोनों अंक न मिल जायँ जिनसे हमने आरम्भ किया था, छोटा अंक उस पंक्ति में होगा जिसका आरम्भ बड़े अङ्क के साथ हुआ था, और बड़ा अंक उस पंक्ति

पृष्ठ ७२

में होगा जिसका आरम्भ छोटे अंक से हुआ था। निम्नलिखित कल्पना को देखिए :—

४	२०
५	१९
६	१८
७	१७
८	१६
९	१५
१०	१४
११	१३
१२	१२
१३	११
१४	१०
१५	९
१६	८
१७	७
१८	६
१९	५
२०	४

इन समवायों की संख्या १७ अर्थात् ४ और २० योग १ का अन्तर है।

त्रिपाद छन्द का, जिसमें अक्षरों की पूर्वकल्पित संख्या अर्थात् २४ हो, पहला प्रकार वह है जिसके तीनों ही पादों में अक्षरों की संख्या यथासम्भव नीचतम अर्थात् ४ + ४ + १६ हो।

"दायें हाथ का अंक और मध्य अंक हम उसी तरह लिखते हैं जिस तरह हमने द्विपाद छन्द के पादों में लिखा है, और उनके साथ भी वैसी ही गणना करते हैं जैसी कि हमने ऊपर की है। इसके अलावा, हम दाईं ओर के अङ्क को एक अलग घेरे में जोड़ते हैं पर हम इसमें कोई परिवर्तन नहीं होने देते। नीचे की कल्पना को देखिए :—

४	४	१६
४	५	१५
४	६	१४
४	७	१३
४	८	१२
४	९	११
४	१०	१०
४	११	९
४	१२	८
४	१३	७
४	१४	६
४	१५	५
४	१६	४

"यह १३ विनिमयों की संख्या देता है, परन्तु निम्नलिखित रीति से संख्याओं के स्थानों को आगे और पीछे बदलने से यह संख्या छः गुना अर्थात् ७८ तक बढ़ाई जा सकती है :—

" १. दाईं ओर का अङ्क अपने स्थान पर रहे ; दूसरे दो अङ्क

अपने स्थान बदल लें, जिससे मध्य का अङ्क बाईं ओर आ जावे; बाईं ओर का अङ्क मध्य में चला जाय :—

१.

४	४	१६
५	४	१५
६	४	१४
७	४	१३ इत्यादि

"२—३ दाईं ओर का अङ्क दूसरे दो अङ्कों के बीच मध्य में रक्खा जाता है"। ये दो अङ्क पहले तो अपने मूल स्थानों में ठहरे रहते हैं, फिर एक दूसरे के साथ स्थान-परिवर्तन कर लेते हैं :—

२.

४	१६	४
४	१५	५
४	१४	६
४	१३	७ इत्यादि

३.

४	१६	४
५	१५	४
६	१४	४
७	१३	४ इत्यादि

"४—५. दायें हाथ का अङ्क बाईं ओर रक्खा जाता है, और दूसरे दो अङ्क पहले तो अप ही स्थान पर ठहरे रहते हैं, फिर एक दूसरे के साथ स्थान बदल लेते हैं :—

४.

१६	४	४
१५	४	५
१४	४	६
१३	४	७ इत्यादि

५.

१६	४	४
१५	५	४
१४	६	४
१३	७	४ इत्यादि

"फिर जब पाद के अक्षरों की संख्यायें २ के वर्ग के सदृश बढ़ती हैं, क्योंकि ४ के बाद ८ आते हैं, इसलिए हम तीन पादों के अक्षरों को इस प्रकार दिखला सकते हैं:—८+८+८ (=४+४ +१६)। परन्तु उनकी गणित-सम्बंधी विशेषतायें एक दूसरे नियम के अधीन हैं। चतुष्पाद छन्द की अवस्था त्रिपाद छन्द के ही सदृश है।"

ब्रह्मगुप्त की उपरोक्त पुस्तक का मैंने एक ही पृष्ठ देखा है। निस्सन्देह इसमें गणित के प्रयोजनीय तत्त्व भरे पड़े हैं। जगदीश्वर की दया और कृपा से मुझे एक दिन आशा है कि मैं उन बातों को सीख लूँगा। जहाँ तक मैं यूनानियों के साहित्य के विषय में अनुमान कर सकता हूँ, मेरा ख़याल है कि वे अपनी कविता में हिन्दुओं के ऐसे पादों का प्रयोग किया करते थे; क्योंकि जालीनूस अपनी पुस्तक क़ाता जानस में कहता है:—"मेनेक्रेटीस द्वारा आविष्कृत औषध का वर्णन, जोकि थूक के साथ बनती है, डेमोक्रेटीस ने तीन भागों के बने एक छन्द में किया है।"

पृष्ठ ७३

चौदहवाँ परिच्छेद ।

फलित-ज्योतिष तथा नक्षत्र-विद्या आदि दूसरी विद्याओं पर हिन्दुओं का साहित्य ।

विद्याओं की संख्या बहुत बड़ी है, और यह संख्या और भी बड़ी हो सकती है यदि जनता का मन इनकी ओर ऐसे समयों पर फेरा जाय जब कि इनकी बढ़ती हो रही हो, जब सभी लोग इन्हें अच्छा समझते हों। उस समय जनता न केवल विद्या का ही सम्मान करती है बल्कि इसके प्रतिनिधियों को भी आदर-दान देती है। सबसे पहले, इस काम का करना जनता पर शासन करनेवालों, अर्थात् राजाओं और महाराजाओं का कर्तव्य है। क्योंकि केवल वही विद्वानों के मन को जीवन-संबन्धी आवश्यकताओं की दैनिक चिन्ताओं से मुक्त, और उनकी शक्तियों को अधिक ख्याति और अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उत्तेजित कर सकते हैं, और ख्याति और अनुग्रह की लालसा मानव-प्रकृति का सार और मज्जा है।

विद्या की उन्नति के समय

परन्तु वर्तमान समय इस प्रकार के नहीं। वे इसके सर्वथा विपरीत हैं, इसलिए हमारे समय में किसी नई खोज या नई विद्या का आविष्कार होना सर्वथा असम्भव है। हमारी विद्यायें बीते हुए अच्छे समयों के थोड़े से बचे हुए उच्छिष्ट के सिवा और कुछ नहीं।

यदि कोई विद्या या विचार एक बार सारे संसार को जीत लेता है तो प्रत्येक जाति उसके एक भाग को अपना लेती है। हिन्दू भी ऐसा ही करते हैं। कालों के चक्राकार परिभ्रमण के विषय में उनका विश्वास

कोई लोकोत्तर विश्वास नहीं। वह केवल वैज्ञानिक विवेचना के परिणामों के अनुसार है।

नक्षत्र-विद्या उन लोगों में बहुत प्रसिद्ध है, क्योंकि उनके धर्म्म-कार्यों का इसके साथ कई प्रकार से सम्बन्ध है। यदि मनुष्य ज्योतिषी कहलाना चाहता है तो उसे न केवल वैज्ञानिक या गणित-ज्योतिष को ही बरन फलित-ज्योतिष को भी जानना चाहिए। मुसलमानों में जो पुस्तक सिंधिन्द नाम से प्रसिद्ध है उसे वे सिद्धान्त कहते हैं। सिद्धान्त का अर्थ है सीधा, जो टेढ़ा या बदलनेवाला न हो। वे ज्योतिष की प्रत्येक आदर्श पुस्तक को, यहाँ तक कि ऐसी पुस्तकों को भी जो कि हमारी सम्मति में हमारे कथनमात्र ज़ीज अर्थात् गणित-ज्योतिष के गुटकों के भी बराबर नहीं, इसी नाम से पुकारते हैं। उनके पाँच सिद्धान्त हैं:—

सिद्धान्तों पर।

१—सूर्य-सिद्धान्त अर्थात् सूर्य का सिद्धान्त, लाट का बनाया हुआ।

२—वसिष्ठ-सिद्धान्त, सप्तर्षि नामक तारागण में से एक के नाम पर, विष्णुचन्द्र का रचा हुआ।

३—पुलिश-सिद्धान्त, सैन्त्रा नगर के रहनेवाले पौलिश नामक यूनानी का रचा हुआ उसीके नाम पर। सैन्त्रा नगर मेरा ख़याल है असकन्दरिया का ही नाम है।

४—रोमक-सिद्धान्त, जोकि रूम अर्थात् रोमन राज्य की प्रजाओं के नाम से ऐसा कहलाता है। इसका लेखक श्रीषेण है।

५—ब्रह्म-सिद्धान्त, इसका यह नाम ब्रह्म के नाम पर है। यह जिष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्त की रचना है जोकि भिल्लमाल नगर का रहनेवाला था। यह नगर मुलतान और अन्हिलवाड़ा के बीच, अन्हिलवाड़ा से १६ योजन की दूरी पर था (?)।

इन पुस्तकों के सभी लेखकों ने एक ही स्रोत अर्थात् पितामह

नामक पुस्तक से अपनी जानकारी प्राप्त की है। इस पुस्तक का नाम आदि पिता अर्थात् ब्रह्मा के नाम पर है।

वराहमिहिर ने एक छोटे से विस्तार का ज्योतिष का गुटका बनाया है। इसका नाम पञ्च-सिद्धान्तिका है। इस नाम का यह अर्थ होना चाहिए कि इसमें पहले पाँच सिद्धान्तों का सार भरा है। परन्तु यह बात नहीं, और न यह उनकी अपेक्षा इतनी बहुत अच्छी है कि इसे पाँचों में से शुद्धतम कह सकें। इसलिए इस नाम से सिवा इस बात के और कुछ प्रकट नहीं होता कि सिद्धान्तों की संख्या पाँच है।

ब्रह्मगुप्त कहता है—"सिद्धान्तों में से कई एक सूर्यसम्बन्धी हैं, और दूसरे इन्दु, पौलिश, रोमक, वसिष्ठ, और यवन-सम्बन्धी अर्थात् यूनानी हैं; यद्यपि सिद्धान्त अनेक हैं, पर उनमें भेद शब्दों का है, विषय का नहीं। जो मनुष्य उनका यथार्थ रीति से अध्ययन करेगा उसे मालूम हो जायगा कि उनका आपस में मतभेद नहीं।"

इस समय तक मुझे इन पुस्तकों में से पुलिश और ब्रह्मगुप्त की पुस्तकों के सिवा और कोई पुस्तक नहीं मिली। मैंने उनका भाषान्तर करना आरम्भ कर दिया है, पर अभी मेरा काम समाप्त नहीं हुआ। इस बीच में मैं यहाँ ब्रह्म-सिद्धान्त की विषय-सूची देता हूँ जो किसी प्रकार उपयोगी और ज्ञान को बढ़ानेवाला सिद्ध होगी।

पृष्ठ ७४

ब्रह्म-सिद्धान्त के विषय।

ब्रह्म-सिद्धान्त के चौबीस अध्यायों के विषय ये हैं:—

१. गोले का स्वरूप और पृथ्वी तथा आकाश का आकार।

२. नक्षत्रों के परिभ्रमण; काल की गणना, अर्थात् भिन्न भिन्न रेखांशों और अक्षों के लिए समय मालूम करने की विधि;

नक्षत्रों के मध्यम स्थानों को जानने की रीति ; वृत्तांश की ज्यात्रि कैसे मालूम करनी चाहिए।

३. नक्षत्रों के स्थानों का शोधन ।

४. तीन समस्यायें ; छाया अर्थात् दिन का अतीत भाग और लग्न कैसे मालूम करना चाहिए ; और एक का दूसरे से कैसे अनुमान् करना चाहिए ।

५. सूर्य्य की किरणों को छोड़ने पर नक्षत्रों का दृश्य, और उन में प्रविष्ट होने पर इनका अदृश्य हो जाना ।

६. चन्द्र का प्रथम दर्शन, और उसकी दो इन्दुकोटियाँ ।

७. चन्द्र-ग्रहण ।

८. सूर्य-ग्रहण ।

९. चन्द्र की छाया ।

१०. ग्रह-संयोग और ग्रहयुति ।

११. ग्रहों के अक्ष ।

१२. ज्योतिष की पुस्तकों और गुटकों के पाठों में शुद्ध और भ्रष्ट वचनों का भेद करने के लिए सूक्ष्म निरूपण ।

१३. गणित, सम मान और सजाति विषय ।

१४. ग्रहों के मध्यम स्थानों की वैज्ञानिक गणना ।

१५. ग्रह-स्थानों के शोधन की वैज्ञानिक गणना ।

१६. तीन समस्याओं की वैज्ञानिक गणना । (अध्याय ४ देखो) ।

१७. ग्रहणों का विचलन ।

१८. नवीन चन्द्र और उसकी दो इन्दुकोटियों के प्रादुर्भाव की वैज्ञानिक गणना ।

१९. कुट्टक अर्थात् किसी वस्तु का कूटना । तेल पैदा करनेवाली चीज़ों के कूटने को यहाँ अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तृत अनुसन्धान से

उपमा दी गई है। इस अध्याय में बीजगणित तथा उससे सम्बंध रखनेवाले विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें गणित से थोड़ी-बहुत मिलती-जुलती बहुमूल्य बातें हैं।

२०. छाया।

२१. छन्दःशास्त्र, और छन्दों की मात्राओं की गणना।

२२. चक्र और अवलोकन के साधन।

२३. काल, काल के चार मान, अर्थात् सौर, नागरिक, चान्द्र, और नाक्षत्रिक।

२४. इस प्रकार की पद्यात्मक पुस्तकों में संख्यावाचक अंकन।

उसके निज कथनानुसार ये चौबीस अध्याय हैं, परन्तु एक पच्चीसवाँ अध्याय भी है। इसका नाम ध्यान-ग्रह-अध्याय है। इसमें वह गणित-शास्त्र की रीति से नहीं, प्रत्युत कल्पना से समस्याओं को हल करने का यत्न करता है। मैंने इस अध्याय को इस सूची में नहीं गिना, क्योंकि उसने इसमें जो प्रतिज्ञायें उपस्थित की हैं, गणित-शास्त्र उनका खण्डन करता है। मैं समझता हूँ कि उसका यह लेख एक प्रकार से ज्योतिष की सारी रीतियों का हेतु है, अन्यथा इस शास्त्र का कोई प्रश्न गणित के सिवा और किसी रीति से कैसे हल हो सकता है?

तन्त्रों और करणों का साहित्य।

जो पुस्तकें सिद्धान्त के आदर्श तक नहीं पहुँचतीं वे प्रायः तन्त्र या करण कहलाती हैं। तन्त्र का अर्थ अधिपति के नीचे शासन करता हुआ और करण का अर्थ पीछे चलता हुआ, अर्थात् सिद्धान्तों के पीछे चलता हुआ है। अधिपतियों के अन्तर्गत वे आचार्यों अर्थात् ऋषियों, यतियों, और ब्रह्मा के अनुयायियों को समझते हैं।

भानुयशस् (?) कृत रसायन-तन्त्र के अतिरिक्त आर्यभट्ट और बलभद्र के दो प्रसिद्ध तंत्र हैं। रसायन का क्या अर्थ है, यह हम एक अलग परिच्छेद (परिच्छेद १७) में लिखेंगे।

करणों के विषय में ब्रह्मगुप्त-कृत करण-खण्ड-खाद्यक के अतिरिक्त उसी के नाम पर कहलानेवाला एक (कृमिभुक्त) और है। पिछले शब्द, खण्ड, का अर्थ उनकी एक प्रकार की मिठाई है। उसने अपनी पुस्तक का यह नाम क्यों रक्खा इस विषय में मुझे यह बताया गयाहै :—

सुग्रीव नामक एक बौद्ध ने ज्योतिष का एक गुटका बनाया था। इसका नाम उसने दधि-सागर अर्थात् दही का समुद्र रक्खा था। फिर उसके एक शिष्य ने उसी प्रकार की एक पुस्तक बना कर उसका नाम कूर-बबया (?) अर्थात् चावलों का पहाड़ रक्खा। इसके बाद उसने एक और पुस्तक लिखी और उसका नाम लवण-मुष्टि अर्थात् नमक की मुट्ठी रक्खा। इसलिए ब्रह्मगुप्त ने अपनी पुस्तक का नाम मिठाईखाद्यक रक्खा जिससे इस शास्त्र की पुस्तकों के नामों में सब प्रकार के खाद्य द्रव्य (दही, चावल, नमक, इत्यादि) आ जायँ।

करण-खण्ड-खाद्यक नामक पुस्तक की अनुक्रमणिका आर्यभट्ट के सिद्धान्त को दिखलाती है। इसलिए पीछे से ब्रह्मगुप्त ने एक दूसरी पुस्तक की रचना की, जिसका नाम उसने उत्तर-खण्ड-खाद्यक अर्थात् खण्ड-खाद्यक की व्याख्या रक्खा। इसके बाद खण्ड-खाद्यक-तिप्पा नामक एक और पुस्तक निकली। मैं नहीं जानता यह पुस्तक ब्रह्मगुप्त की रचना है या किसी दूसरे की। इसमें खण्ड-खाद्यक की गणनाओं की विधियों और युक्तियों की व्याख्या है। मैं समझता हूँ यह बलभद्र की रचना है।

पृष्ठ ७५

इसके अतिरिक्त, काशी-नगर-निवासी विजयनन्दिन् नामक टीका-कार का रचा ज्योतिष का एक गुटका है। इसका नाम करण-तिलक अर्थात् करणों के ललाट पर प्रभा है। एक और पुस्तक नागपुर के भदत्त (? मिहदत्त) के पुत्र वित्तेश्वर की रची है। इसका नाम करण-

सार अर्थात् करण से निकाली गई है। भानुयशस् (?) की बनाई करण पर तिलक नामक एक और पुस्तक है। मुझे बताया गया है कि यह इस बात को दिखाती है कि शोधित ग्रह-स्थानों का एक दूसरे से कैसे अनुमान किया जाता है।

काश्मीर के उत्पल की बनाई एक पुस्तक राहुन्राकरण (?) अर्थात् करणों को तोड़ना है; और एक दूसरी पुस्तक करण-पात नामक है, जिसका अर्थ करणों का मार डालना है। इनके अतिरिक्त एक करण-चूड़ामणि नामक पुस्तक है। इसका लेखक मुझे मालूम नहीं।

इसी प्रकार की दूसरे नामोंवाली और भी पुस्तकें हैं, यथा मनुकृत मानस, और उत्पल की टीका; दक्षिण देशीय पञ्चल (?) कृत लघु-मानस, जो कि पहली का सार है; आर्यभट्ट कृत दशगीतिका; उसी की बनाई आर्याष्ट-शत; लोकानन्द, इसका नाम इसके लेखक के नाम पर है; भट्टिला (?), इसके रचयिता, ब्राह्मण भट्टिला के नाम पर इस का यह नाम है। इस प्रकार की पुस्तकें प्रायः संख्यातीत हैं।

निम्नलिखित लेखकों में से प्रत्येक ने फलित-ज्योतिष पर एक एक संहिता लिखी है :—

फलित ज्योतिष की पुस्तकें जिनको संहिता कहते हैं।

माण्डव्य।	बलभद्र।
पराशर।	दिव्यतत्त्व।
गर्ग।	वराहमिहिर।
ब्रह्मा।	

संहिता का अर्थ है इकट्ठा किया हुआ, अर्थात् ऐसी पुस्तकें जिनमें प्रत्येक के विषय पर थोड़ा बहुत लिखा गया है, जैसे, यात्रा के विषय में उल्का-शास्त्र-सम्बन्धिनी घटनाओं से निकाली हुई चेतावनियाँ; वंशों के भाग्य के विषय में भविष्यद्वाणियाँ, शुभाशुभ चीज़ों का ज्ञान; हाथ

की रेखाओं को देख कर भविष्यकथन करना, स्वप्नों के अर्थ निकालना और पक्षियों के उड़ने या बोलने से शकुन लेना। क्योंकि हिन्दू विद्वानों का ऐसी बातों में विश्वास है। उनके ज्योतिषियों की यह रीति है कि वे अपनी अपनी संहिताओं में भी उल्का-शास्त्र तथा विश्वोत्पत्ति-शास्त्र की सारी विद्या का प्रतिपादन कर देते हैं।

जातक अर्थात् जन्म पत्रिकाओं की पुस्तकें।

इन लेखकों में से प्रत्येक ने एक एक जातक अर्थात् जन्मपत्रिकाओं की पुस्तक लिखी है:—

पराशर।	जीवशर्मन्।
सत्य।	मौ, यवन।
मणित्थ।	

वराहमिहिर ने दो जातक बनाये हैं—एक छोटा और दूसरा बड़ा। बृहज्जातक की व्याख्या बलभद्र ने की है। और लघुजातक का मैंने अरबी में अनुवाद कर दिया है। इसके अतिरिक्त जन्मपत्रिकाओं के फलित-ज्योतिष शास्त्र पर हिन्दुओं का एक बृहद् ग्रन्थ है। इसका नाम वज़ीदज (=फ़ारसी गुज़ीदा ?) के सदृश सारावली अर्थात् चुनी हुई है। यह कल्याण वर्म्मन् की रचना है जिसने अपनी वैज्ञानिक पुस्तकों के लिए बड़ा नाम पाया था। परन्तु एक और पुस्तक है जो इससे भी बड़ी है। इसमें फलित-ज्योतिष-सम्बन्धी सभी विद्यायें हैं। इसका नाम यवन, अर्थात् यूनानियों की है।

वराहमिहिर की अनेक छोटी छोटी पुस्तकें हैं, यथा, शतपञ्चाशिका, फलित-ज्योतिष पर छप्पन अध्याय; उसी विषय पर होरा-पञ्चविंशोत्तरी।

तिकनी (?)–यात्रा और योग-यात्रा नामक पुस्तकों में सफ़र का,

विवाह-पटल में विवाह और विवाह करने का, और :: :: (दीमक चाट गई) पुस्तक में वास्तु-विद्या का वर्णन है।

पक्षियों के उड़ने और बोलने से शकुन लेने, और पुस्तक में सुई चुभा कर भविष्य-कथन करने की कला का प्रतिपादन श्रुद्धव (? श्रोतव्य) नामक पुस्तक में है। यह पुस्तक तीन भिन्न भिन्न अनुलिपियों में मिलती है। कहते हैं पहली का रचयिता महादेव, दूसरी का विमलबुद्धि, और तीसरी का बङ्गाल है। लाल वस्त्र पहननेवाले, शमनियों के सम्प्रदाय के प्रवर्तक बुद्ध की बनाई गूढ़मन (?) अर्थात् अज्ञात का ज्ञान नामक पुस्तक, तथा उत्पल कृत प्रश्न-गूढ़मन (?) अर्थात् अज्ञात की विद्या के प्रश्न में भी ऐसे ही विषयों का वर्णन है।

इनके अतिरिक्त, हिन्दुओं में ऐसे भी विद्वान हैं जिनकी बनाई किसी पुस्तक का नाम तो हमें मालूम नहीं, पर स्वयं उनके नाम ज्ञात हैं, यथा :— पृष्ठ ७६

प्रद्युम्न।	सारस्वत।
सङ्गहिल (शृङ्खल ?)।	पीरुवान (?)
दिवाकर।	देवकीर्त्ति।
परेश्वर।	पृथूदक-स्वामिन्।

वैद्यक और ज्योतिष दोनों एक ही श्रेणी की विद्याएँ हैं। इनमें भेद केवल इतना है कि ज्योतिष का हिन्दुओं के धर्म्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनकी एक पुस्तक है जिसका नाम उसके रचयिता के नाम पर चरक है। वे इसे अपने वैद्यक-ग्रन्थों में सर्वोत्तम समझते हैं। उनके विश्वासानुसार चरक द्वापर-युग में एक ऋषि था। उस समय उसका नाम अग्निवेश था, परन्तु पीछे से, जब सूत्र की सन्तान कुछ ऋषियों ने आयुर्वेद के आदि ज्ञान की व्याख्या की तो उसका नाम चरक अर्थात् बुद्धिमान् हो

वैद्यक-ग्रन्थ।

गया। इन ऋषियों ने यह ज्ञान इन्द्र से, इन्द्र ने अश्विन से, जो कि देवताओं के दो वैद्यों में से एक है, और अश्विन ने प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा से प्राप्त किया था। बरमक वंश (Barmecides) के राजाओं के लिए इस पुस्तक का अरबी में अनुवाद हो चुका है।

पञ्चतंत्र।

हिन्दू विज्ञान और साहित्य की और बहुसंख्यक शाखाओं की भी उन्नति करते हैं, और उनका साहित्य प्रायः अनन्त है। परन्तु मैं उसे अपने ज्ञान के साथ समझ नहीं सका। मैं चाहता हूँ कि मैं पञ्चतंत्र नामक पुस्तक का, जो हम लोगों में कलीला और दिमना नाम से प्रसिद्ध है, भाषान्तर कर सकूँ। यह फ़ारसी, हिन्दी, और अरबी-प्रभृति अनेक भाषाओं में दूर दूर तक फैल गई है। परन्तु जिन लोगों ने इसके अनुवाद किये हैं वे इसके पाठ को बदल डालने के सन्देह से ख़ाली नहीं। उदाहरणार्थ, अब्दुल्लाह इब्नु अलमुक़फ़्फ़ा ने अपने अरबी भाषान्तर में बर्ज़ोय (Barzôya) के विषय का अध्याय इसलिए जोड़ दिया है कि इससे क्षीण धार्म्मिक विश्वासवाले लोगों के मन में सन्देह पैदा हो जाय और वे मनीचियों के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए तैयार हो जायँ। जब उस पर इस बात का सन्देह साफ़ है कि उसने उस पाठ में अपनी ओर से कुछ बढ़ा दिया है जिसका कि उसे केवल अनुवाद ही करना था, तब अनुवादक के रूप में वह सन्देह से कैसे ख़ाली हो सकता है?

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

हिन्दुओं की परिमाण-विद्या पर टीका, जिससे तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक में वर्णित सब प्रकार के मानों को समझने में सुविधा हो जाय ।

हिन्दुओं की तौल-प्रणाली ।

गिनना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है । किसी चीज़ का माप उस की उसी जाति की किसी दूसरी चीज़ के साथ, जिसे कि सर्वसम्मति से मान माना गया हो, तुलना करने से मालूम हो जाता है । इससे चीज़ और उस मान का अन्तर मालूम हो जाता है ।

जब काँटे की सुई दिगन्तसम क्षेत्र के समकोन होती है, लोग भारी चीज़ों का वज़न तौल कर मालूम करते हैं । हिन्दुओं को तराज़ू की बहुत कम आवश्यकता होती है, क्योंकि उनके दिर्हमों का निश्चय तौल से नहीं, संख्या से होता है, और उनके अपूर्णांश भी केवल इतने और इतने फ़ुलूओं से गिने जाते हैं । दिर्हम और फ़ुलू का मुद्राङ्कन प्रत्येक नगर और प्रान्त के अनुसार भिन्न भिन्न है । वे सोने को मुद्रा रूप में काँटे में नहीं तौलते, प्रत्युत उसे उस समय ही तौलते हैं जब कि वह अपनी नैसर्गिक दशा में या कमाई हुई सूरत जैसा कि गहनों के रूप में हो । वे सोना तौलने के लिए सुवर्ण (= $1\frac{1}{3}$ तोला) का प्रयोग करते हैं । उनमें तोले का उतना ही अधिक प्रचार है जितना कि हम में मिसकाल का है । जितना कुछ मैं उनसे सीख सका हूँ उसके अनुसार

एक तोला हमारे तीन दिर्हम के बराबर होता है, और ३ दिर्हम ७ मिसकाल के बराबर होते हैं।

इसलिए एक तोला = २ $\frac{१}{१०}$ मिसकाल हुआ।

तोले का सबसे बड़ा अपूर्णांश $\frac{१}{१२}$ है। इसे माष कहते हैं। इसलिए १६ माष = १ सुवर्ण है।

फिर, १ माष = ४ अण्डी (एरण्ड), अर्थात् गौर नामक वृक्ष का बीज।

१ अण्डी = ४ यव।

१ यव = ६ कला।

१ कला = ४ पाद।

१ पाद = ४ मूदरी (?)।

या दूसरे प्रकार से—

१ सुवर्ण = १६ माष = ६४ अण्डी = २५६ यव = १६०० कला = ६४०० पाद = २५६०० मूदरी (?)।

छः माषों को १ द्रंक्षण कहते हैं। यदि आप उनसे इस बात के विषय में पूछें तो वे बतायँगे कि २ द्रंक्षण = १ मिसकाल। परन्तु यह भूल है; क्योंकि १ मिसकाल = ५ $\frac{५}{७}$ माष। द्रंक्षण का मिसकाल से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि २० का २१ से है। इसलिए १ द्रंक्षण = १ $\frac{१}{२०}$ मिसकाल। इसलिए यदि कोई मनुष्य वही उत्तर देता है, जो कि हमने अभी बताया तो ऐसा मालूम होता है कि वह अपने मन में मिसकाल को एक ऐसा बाट समझता है जिसका द्रंक्षण से कुछ अधिक भेद नहीं; परन्तु परिमाण को दुगुना करदेने से, १ द्रंक्षण के स्थान २ द्रंक्षण कहने से, यह तुलना सर्वथा बिगड़ जाती है।

तौल का मान कोई नैसर्गिक मान नहीं; बरन सर्वसम्मति से माना हुआ एक रूढ़ आदर्श है, इसलिए इसका व्यावहारिक और कल्पित दोनों प्रकार का विभाग हो सकता है। एक ही समय में भिन्न भिन्न स्थानों में, और एक ही देश में भिन्न भिन्न कालों में इसके उपभाग या अपूर्णांश भिन्न भिन्न होते हैं। स्थान और काल के अनुसार उनके नाम भी भिन्न भिन्न होते हैं; ये परिवर्तन या तो भाषाओं के ऐन्द्रियिक विकास से या दैवगति से पैदा होते हैं।

पृष्ठ ७७

सोमनाथ के पड़ोस में रहनेवाले एक मनुष्य ने मुझे बताया कि हमारा मिसकाल तुम्हारे मिसकाल के बराबर है; और

१ मिसकाल = ८ रुवु।
१ रुवु = २ पालि।
१ पालि = १६ यव अर्थात् जौ।

तदनुसार १ मिसकाल = ८ रुवु = १६ पालि = २५६ यव।

इस तुलना से स्पष्ट है कि दो मिसकालों का मुक़ाबला करने में उस मनुष्य की भूल थी; जिसको वह मिसकाल कहता था वह वास्तव में तोला है, और माष को वह एक भिन्न नाम अर्थात् रुवु से पुकारता है।

यदि हिन्दू इन बातों में विशेष रूप से परिश्रम करना चाहते हैं तो वे निम्नलिखित अनुक्रम पेश करते हैं। इस अनुक्रम का आधार वे माप हैं जो वराहमिहिर ने मूर्त्तियों के निर्माण के लिए बताये हैं:—

तौल के बाटों पर वराहमिहिर की सम्मति।

१ रेणु या धूल का कण = १ रज।
८ रज = १ बालाग्र अर्थात् बाल का सिरा।
८ बालाग्र = १ लिख्या, अर्थात् जूँ का अण्डा।
८ लिख्या = १ यूका अर्थात् जूँ।
८ यूका = १ यव, अर्थात् जौ।

फिर वराहमिहिर दूरियों के माप गिनने लगता है। उसके तौलके माप वही हैं जो हम ऊपर लिख आये हैं। वह कहता है।

४ यव = १ अण्डी।

४ अण्डी = १ माष।

१६ माष = १ सुवर्ण, अर्थात् सोना।

४ सुवर्ण = १ पल।

सूखी चीज़ों के लिए मान ये हैं:—

४ पल = १ कुड़व।

४ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ आढक।

तरल पदार्थों के माप ये हैं:—

८ पल = १ कुड़व।

८ कुड़व = १ प्रस्थ।

४ प्रस्थ = १ आढक।

४ आढ़क = १ द्रोण

चरक की पुस्तक में निम्नलिखित बाटों का वर्णन है। मैं उन्हें यहाँ अरबी भाषान्तर के अनुसार लिखता हूँ, क्योंकि मैंने उनको हिन्दुओं के मुख से नहीं सुना। अरबी पुस्तक, इस प्रकार की बाक़ी सभी पुस्तकों के सदृश जिनको मैं जानता हूँ, भ्रष्ट मालूम होती हैं। ऐसे अपभ्रंश का हमारे अरबी ग्रन्थों में पाया जाना बहुत आवश्यक है, विशेषतः हमारे ऐसे काल में

चरक नामक पुस्तक के अनुसार तौल के बाट।

जब कि लोग अपनी प्रतिलिपि की शुद्धता पर बहुत कम ध्यान देते हैं। आत्रेय कहता है—

६ रेणु = १ मरीचि।
६ मरीचि = राई का दाना (राजिका)।
८ राई के दाने = १ लाल चावल।
२ लाल चावल = १ मटर।
२ मटर = १ अण्डी।

और उस अनुक्रम के अनुसार जिसमें ७ दानक १ दिर्हम के बराबर होते हैं, १ अण्डी $\frac{१}{६}$ दानक के बराबर है। फिरः—

४ अण्डी = १ माष।
८ माष = १ चण (?)।
२ चण = १ कर्ष या २ दिर्हम भार का सुवर्ण।
४ सुवर्ण = १ पल।
४ पल = १ कुड़व।
४ कुड़व = १ प्रस्थ।
४ प्रस्थ = १ आढक।
४ आढक = १ द्रोण।
२ द्रोण = १ शूर्प।
२ शूर्प = १ जना (?)।"

पल का बाट हिन्दुओं के सारे काम-काज और लेन-देन में बहुत बर्ता जाता है; परन्तु यह भिन्न भिन्न चीज़ों के लिए और भिन्न भिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न हैं। कइयों के मतानुसार १ पल = $\frac{१}{१५}$ मना; फिर कुछ दूसरों के मतानुसार, १ पल = १४ मिसकाल ; परन्तु मना २१० मिसकाल के बराबर नहीं। फिर कुछ एक के कथनानुसार, १ पल = १६ मिसकाल, परन्तु मना २४० मिसकाल के बराबर नहीं। फिर कई

दूसरों के मतानुसार, १ पल = १५ दिर्हम, परन्तु मना २२५ दिर्हम के बराबर नहीं। वास्तव में, पल और मना का संबन्ध भिन्न भिन्न है।

फिर अत्रि (आत्रेय) कहता है; " १ आढक = ६४ पल = १२८ दिर्हम = १ रतल। परन्तु यदि अण्डी $\frac{1}{8}$ दानक के बराबर है, एक सुवर्ण में ६४ अण्डी हैं, और एक दिर्हम में ३२ अण्डी हैं, तो ये ३२ अण्डियाँ, प्रत्येक अण्डी के $\frac{1}{8}$ दानक के बराबर होने के कारण, ४ दानक के बराबर हुईं। इसका दुगना परिमाण $1\frac{1}{3}$ दिर्हम है। " (एतावत्)

पृष्ठ ७८

जब लोग अनुवाद करने के बदले उच्छृङ्खल अनुमान दौड़ाने लगते हैं और गुणदोष-विवेचना के बिना भिन्न भिन्न कल्पनाओं को मिला देते हैं तब ऐसे ही परिणाम निकला करते हैं।

पहली कल्पना के विषय में, जिसका आधार यह प्रमेय है कि एक सुवर्ण हमारे तीन दिर्हम के बराबर होता है, प्रायः लोग इस बात पर सहमत हैं कि—

१ सुवर्ण	= $\frac{1}{4}$ पल।
१ पल	= १२ दिर्हम।
१ पल	= $\frac{1}{15}$ मना।
१ मना	= १८० दिर्हम।

इससे मैं इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि १ सुवर्ण हमारे ३ दिर्हम के नहीं, बरन ३ मिसकाल के बराबर है।

वज़न के बाटों पर विविध लेखकों की सम्मति।

अपनी संहिता में वराहमिहिर किसी दूसरे स्थान पर कहता है:—

" एक गज़ उँचाई और व्यास का एक गोल पात्र बनाकर इसे वर्षा में रक्खो, और जब तक वर्षा होती रहे इसे वहीं पड़ा रहने दो।

२०० दिर्हम वज़न का जो सारा जल उस में इकट्ठा हुआ है, यदि चौगुना किया जाय तो १ आढक के बराबर होगा। ”

परन्तु यह एक आनुमानिक सा वर्णन है, क्योंकि जैसा कि हमने ऊपर उसके निज के शब्दों में कहा है, १ आढक या तो, जैसा कि वे (हिन्दू) कहते हैं, ७६८ दिर्हम या, जैसा कि मैं समझता हूँ, मिसक़ाल के बराबर है।

श्रीपाल वराहमिहिर के प्रमाण से कहता है कि ५० पल=२५६ दिर्हम=१ आढक। परन्तु यह उसकी भूल है, क्योंकि यहाँ २५६ का अङ्क दिर्हमों का नहीं प्रत्युत एक आढक के सुवर्णों की संख्या का सूचक है। और एक आढक के पलों की संख्या ५० नहीं, बरन ६४ है।

मैंने सुना है कि जीवशर्म्मन् ने इन वज़नों की निम्नलिखित सविस्तर गणना दी है:—

४ पल	=१ कुड़व।
४ कुड़व	=१ प्रस्थ।
४ प्रस्थ	=१ आढक।
४ आढक	=१ द्रोण।
२० द्रोण	=१ खारी।

पाठकों को ज्ञात होगा कि १६ माष का १ सुवर्ण होता है परन्तु गेहूँ या जौ तौलने में वे ४ सुवर्ण=१ पल, और पानी और तेल तौलने में ८ सुवर्ण=१ पल गिनते हैं।

हिन्दुओं का तराज़ू।

हिन्दुओं के चीज़ों को तौलने के तराज़ू क़रस्तून हैं। इनमें बाट नहीं हिल सकते, मान-दण्ड ही विशेष चिह्नों और रेखाओं पर आगे पीछे चलते हैं। इसीलिए तराज़ू तुला कहलाता है। पहली रेखायें १ से ५ तक तौल भार के मानों की

हैं, उनके आगे की १० तक, फिर उनके आगे की रेखायें १०, २०, ३० इत्यादि दशमांशों की हैं। इस व्यवस्था के कारण के विषय में वे वासुदेव का निम्नलिखित कथन बयान करते हैं :—

"मैं अपनी फूफी के पुत्र शिशुपाल की, यदि उसने कोई अपराध नहीं किया, हत्या नहीं करूँगा, प्रत्युत दस तक उसे क्षमा कर दूँगा, और इसके उपरान्त उसकी ख़बर लूँगा।"

हम इस कथा का वर्णन किसी और अवसर पर करेंगे।

अलफ़ज़ारी अपने ज्योतिष के गुटके में पल का प्रयोग दिवस-क्षणपादों (अर्थात् एक दिवस के साठवें भागों) के लिए करता है। मैंने हिन्दू-ग्रन्थों में यह प्रयोग कहीं नहीं देखा, परन्तु वे गणित-सम्बन्धी अर्थों में एक शुद्धि को दिखलाने के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

हिन्दुओं का एक भार नामक बाट है। सिन्ध-विजय के विषय में जो पुस्तकें हैं उनमें इसका उल्लेख है। यह २००० पल के बराबर होता है; क्योंकि वे इसकी व्याख्या १००×२० पल से करते हैं, और इसे एक बैल के वज़न के लगभग बताते हैं।

हिन्दुओं के बाँटों के विषय में मैं केवल इतना ही जानता हूँ।

शुष्क मान।

चीज़ के परिमाण और काय का निश्चय लोग (शुष्क मानों के द्वारा) नाप कर करते हैं। एक मान इस तरह नापा हुआ होता है कि उसमें एक चीज़ की इतनी मात्रा पड़ सकती है। चीज़ को नापने के लिए उसे उस मान में भर देते हैं। इसमें यह बात सर्वसम्मत होती है कि मान में चीज़ों को रखने की रीति, उनके उपरितल का निश्चय करने की रीति, और, मान के अन्दर उनके व्यवस्थापन की रीति प्रत्येक दशा में अभिन्न रहती है। यदि दो चीज़ें जिनका वज़न करना है

पृष्ठ ७६

एक ही जाति की हैं तो वे न केवल परिमाण में बरन वज़न में भी समान प्रमाणित होंगी ; परन्तु यदि वे एक ही जाति की नहीं, तो उनका कायिक विस्तार तो समान होगा, पर उनका वज़न बराबर न होगा ।

उन का बीसी (? सिबी) नामक एक मान है । कनौज और सोमनाथ का प्रत्येक मनुष्य इसका ज़िक्र करता है । कनौज-निवासियों के कथनानुसार—

४ बीसी = १ प्रस्थ ।

$\frac{1}{4}$ बीसी = १ कुड़व ।

सोमनाथवालों के अनुसार—

१६ बीसी = १ पन्ती ।

१२ पन्ती = १ मोर ।

एक और कल्पना के अनुसार—

१६ बीसी = १ कलसी ।

$\frac{1}{4}$ बीसी = १ मान ।

इसी सूत्र से मुझे पता लगा है कि गेहूँ का एक मान ५ मना के बराबर होता है । इसलिए १ बीसी (?) २० मना के बराबर है । प्राचीन रीति के अनुसार, बीसी ख़्वारिज़्मी मान सुख़्‌ के और क़लसी ख़्वारिज़्मी मान ग़ूर के सदृश है, क्योंकि १ ग़ूर = १२ सुख़्‌ ।

दूरियों के मान ।

दूरियों को रेखाओं से और उपरितल को समक्षेत्रों से नापने को क्षेत्र-मिति कहते हैं । समक्षेत्र को क्षेत्र के भाग से नापना चाहिए, परन्तु रेखाओं द्वारा की गई क्षेत्र-मिति भी वही काम कर देती है, क्योंकि रेखायें क्षेत्रों की सीमाओं का निश्चय करती हैं । वराहमिहिर का प्रमाण देते हुए हमारा यहाँ तक आगे बढ़ जाना कि एक जौ के वज़न का निश्चय करने लगें

वज़नों की व्याख्या में हमारा व्यतिक्रम था । वहाँ हमने गुरुत्व के विषय में उसके प्रमाण का प्रयोग किया था, परन्तु अब हम अन्तरों के विषय में उसके ग्रन्थों से परामर्श लेंगे । वह कहता है—

८	इकट्ठे रक्खे हुए जौ के दाने	= १ अङ्गुल, अर्थात् उंगली ।
४	अङ्गुल	= १ राम (?), अर्थात् मुट्ठी ।
२४	अङ्गुल	= १ हत्थ (हाथ ?), अर्थात् गज़, जो दस्त भी कहलाता है ।
४	हाथ	= १ धनु, अर्थात् वृत्तांश = एक व्याम ।
४०	धनु	= १ नल्व ।
२५	नल्व	= १ क्रोश ।

इसलिए इससे यह परिणाम निकला कि एक क्रोह = ४००० गज़; और चूंकि हमारे मील में भी ठीक इतने ही गज़ होते हैं, इसलिए १ मील = १क्रोह । पौलिश यूनानी भी अपने सिद्धान्त में कहता है कि १ क्रोह = ४००० गज़ । गज़ २ मिक्यास या २४ उङ्गली के बराबर होता है; क्योंकि हिन्दू शङ्कु अर्थात् मिक्यास का निश्चय मूर्त्ति-उङ्गलियों द्वारा करते हैं । वे हमारी तरह, प्रायः मिक्यास के बारहवें भाग को अङ्गुल नहीं कहते, परन्तु उनका मिक्यास सदा एक वितस्ति (बालिश्त) होता है । अङ्गूठे और छोटी उङ्गली कनीनिका के सिरों के बीच, हाथ को यथासम्भव पूरी तरह फैलाने पर, जितना अन्तर होता है उसे वितस्ति और किष्कु कहते हैं ।

चौथी या अङ्गूठी पहनने की उङ्गली और अङ्गूठे के सिरों के बीच, दोनों को खूब फैलाने पर, जितना अन्तर होता है वह गोकरण कहलाता है । प्रदेशिनी और अङ्गूठे के सिरों के बीच के अन्तर को करभ कहते हैं, और यह वितस्ति के दो-तिहाई के बराबर गिना जाता है ।

मध्यमा और अङ्गूठे के अग्रों के बीच का अन्तर ताल कहलाता है। हिन्दुओं का मत है कि मनुष्य की ऊँचाई, चाहे वह लम्बा हो और चाहे छोटा, उसके ताल से आठ गुना होती है; जैसा कि लोग कहते हैं कि मनुष्य का पाँव उसकी ऊँचाई का सातवाँ भाग होता है।

मूर्त्तियों के निर्माण के विषय में संहिता नामक पुस्तक कहती है:—

"हथेली की चौड़ाई ६, लम्बाई ७; मध्यमा की लम्बाई ५, चौथी उङ्गली की भी वही; प्रदेशिनी की वही ऋण $\frac{१}{६}$ (अर्थात् ४$\frac{१}{६}$); कनीनिका की वही ऋण $\frac{१}{३}$ (अर्थात् ३$\frac{१}{३}$); अङ्गूठे की मध्यमा की लम्बाई का दो तिहाई भाग (अर्थात् ३$\frac{१}{३}$), और दो पिछली उङ्गलियों की लम्बाई एक ही समान स्थिर की गई है।"

इस वचन के अङ्कों और मापों से ग्रन्थकार का तात्पर्य मूर्त्ति-अङ्गुलियों से है।

पृष्ठ ८०

योजन, मील, और फ़र्सख़ का परस्पर सम्बन्ध।

क्रोश का माप स्थिर हो जाने और उसके हमारे मील के बराबर सिद्ध होने के बाद, पाठकों को जानना चाहिए कि उन लोगों में दूरी का एक माप है। इसका नाम योजन है, और यह ८ मील या ३२००० गज़ के बराबर होता है। शायद कोई मनुष्य यह मान बैठे कि १ क्रोह $\frac{१}{४}$ फ़र्सख़ के बराबर है, और वह यह समझ ले कि हिन्दुओं के फ़र्सख़ १६००० गज़ लम्बे होते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं। इसके विपरीत, १ क्रोह = $\frac{१}{२}$ योजन। इस माप के हिसाब से अलफ़ज़ारी ने अपने ज्योतिष के गुटके में पृथ्वी की परिधि स्थिर की है। वह इस को एक वचन में जून और बहुवचन में अजवान कहता है।

वृत्त की परिधि के विषय में हिन्दुओं की गणनाओं के आदि ज्ञान का आधार यह अनुमान है कि यह अपने व्यास से तिगुनी होती है। मत्स्य-पुराण, योजनों में सूर्य और चन्द्र के व्यासों का वर्णन करने के बाद, यही बात कहता है, अर्थात् परिधि व्यास से तिगुनी होती है।

परिधि और व्यास में सम्बन्ध।

आदित्य-पुराण, द्वीपों अर्थात् टापुओं और उनके इर्द-गिर्द के समुद्रों का उल्लेख करने के पश्चात्, कहता है :—"परिधि व्यास से तिगुनी होती है।"

वायु-पुराण में भी यही बात लिखी है। परन्तु पीछे के समयों में हिन्दुओं को तीन पूर्णाङ्कों के साथ के अपूर्णाङ्क का भी पता लग गया है। ब्रह्मगुप्त के अनुसार परिधि व्यास से $३\frac{१}{७}$ गुना होती है; परन्तु इस अङ्क को उसने अपनी ही एक विशेष रीति से मालूम किया है। वह कहता है :—"१० का मूल $३\frac{१}{७}$ के लगभग होता है, इसलिए व्यास और इसकी परिधि के बीच का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसा कि १ के और १० के मूल के बीच का सम्बंध।" तब वह व्यास को उसी के साथ, और घात को १० के साथ गुणता है, और इस घात का मूल निकाल लेता है। तब परिधि, दस के मूल के सदृश, घन अर्थात् पूर्णाङ्कों की बनी होती है। परन्तु इस गणना से अपूर्णाङ्क उस (संख्या) से अधिक बढ़ जाता है जितना कि वह वास्तव में होता है। अर्शमीदस (Archimedes) ने इसको $\frac{१०}{७०}$ और $\frac{११}{७०}$ के बीच बीच बताया है। ब्रह्मगुप्त आर्यभट्ट के विषय में, आलोचना करता हुआ, कहता है कि उसने परिधि को ३३९३ स्थिर किया था; एक स्थान में उसने व्यास को १०८०, और दूसरे में १०५० बताया है। पहले बयान के अनुसार व्यास और परिधि के बीच का सम्बन्ध $१:३\frac{१७७}{१२५०}$ के सदृश होगा। यह ($\frac{१७७}{१२५०}$) अपूर्णाङ्क $\frac{१}{७}$ से $\frac{१}{८७५०}$ कम है। परन्तु दूसरे

बयान में ग्रन्थकार की नहीं, बरन पाठ में भारी अशुद्धि है; क्योंकि पाठ के अनुसार यह सम्बन्ध १:३ $\frac{१}{८}$ के सदृश, और कुछ ऊपर होगा।

पौलिश १:३ $\frac{१७७}{१२५०}$ के प्रमाण में अपनी गणनाओं में इसी सम्बन्ध का प्रयोग करता है।

यहाँ यह अपूर्णाङ्क $\frac{१}{८}$ से उतना ही कम है जितना कि आर्यभट्ट ने बताया है, अर्थात् $\frac{१}{१७}$।

यही सम्बन्ध एक प्राचीन कल्पना से निकाला गया है। इस कल्पना का उल्लेख याकूब इब्न तारिक़ ने एक हिन्दू सूचक के प्रमाण पर अपनी 'गगनमण्डल की रचना' (تركيب الافلاك) नामक पुस्तक में किया है, अर्थात् वह कहता है कि राशि-चक्र की परिधि १,२५,६६,४०,००० योजन और इसका व्यास ४०,००,००,००० योजन है।

ये अङ्क परिधि और व्यास के बीच का सम्बन्ध पहले से ही १:३ $\frac{५६६४०००००}{४०००००००००}$ मान लेते हैं। ये दो अङ्क ३,६०,००० के सामान्य विभाजक द्वारा बाँटे जा सकते हैं। इससे हमें १७७ गुणक के रूप में और १२५० भाजक के रूप में प्राप्त होते हैं। इसी अपूर्णाङ्क $\frac{१७७}{१२५०}$ को पुलिश ने ग्रहण किया है।



सोलहवाँ परिच्छेद ।

हिन्दुओं की लिपियों पर, उनके गणित तथा तत्संबन्धी विषयों पर, और उनके कई एक विचित्र रीति-रिवाजों पर टीका-टिप्पनियाँ ।

पृष्ठ ८१

विविध प्रकार की लिखने की सामग्री ।

जिह्वा बोलनेवाले के विचार को सुननेवाले तक पहुँचाती है। इसलिए इसकी क्रिया का जीवन मानो केवल क्षणिक है, और मौखिक ऐतिह्य के द्वारा अतीतकाल की घटनाओं का वृत्तान्त पीछे की पीढ़ियों तक पहुँचाना असम्भव है, विशेषतः जब कि दोनों के बीच एक बहुत लम्बा कालान्तर हो, परन्तु यह बात मानव-मन के एक नवीन आविष्कार, लेखन-कला, से सम्भव हो गई है। यह समाचारों को देशों में वायु की तरह और काल में प्रेतात्माओं की तरह फैला देती है। इसलिए वह भगवान् धन्य है जिसने सृष्टि को रचा है और प्रत्येक पदार्थ को परम हित के लिए पैदा किया है!

हिन्दुओं में प्राचीनकाल के यूनानियों की तरह खालों पर लिखने की रीति नहीं। सुक़रात से जब पूछा गया कि तुम पुस्तकें क्यों नहीं बनाते तो उसने उत्तर दिया :—"मैं ज्ञान को मनुष्यों के सजीव हृदयों से भेड़ों की निर्जीव खालों पर नहीं ले जाता।" मुसलमान भी, इसलाम के आरम्भिक समयों में खालों पर लिखा करते थे, उदाहरणार्थ पैग़म्बर और ख़ैबर के यहूदियों की सन्धि, और उनका

किसरा के नाम पत्र। क़ुरान की प्रतियाँ अरबी मृगों की खालों पर लिखी जाया करती थीं, जैसा आज कल भी तौरेत की प्रतियाँ लिखी जाती हैं। क़ुरान (सूरा ६, ९१) में यह वचन आता है—"वे इस की करातीस (अर्थात्, काग़ज़) बनाते हैं।" क़िर्तास (या क़र्त) मिस्र देश में बाँस के डण्ठल को काटकर बनाया जाता है। हमारे समय के कुछ ही काल पहले तक ख़लीफ़ाओं की राजाज्ञायें इसी सामग्री पर लिखी हुई सारे संसार में जाया करती थीं। बाँस के काग़ज़ में बछड़े की खाल की बारीक़ झिल्ली से यह फ़ायदा है कि इस पर लिखा हुआ अक्षर फिर मिटाया या बदला नहीं जा सकता क्योंकि ऐसा करने से यह नष्ट हो जाता है। काग़ज़ पहले पहल चीन में बना था। समरक़न्द में चीनी क़ैदी काग़ज़ बनाने की कला लाये थे। इस पर यह वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विविध स्थानों में बनने लगा।

हिन्दुओं के दक्षिण देश में खजूर और नारियल की तरह का एक पतला पेड़ होता है। इसका फल खाया जाता है। इसका पत्ता एक गज़ लम्बा और इतना चौड़ा होता है जितनी एक दूसरे के साथ साथ रक्खी हुई तीन उङ्गलियाँ होती हों। वे इन पत्तों को ताड़ी (ताल, या ताड़) कहते हैं, और इन पर लिखते हैं। वे इन पत्तों को एक तागे से इकट्ठा बाँधकर पुस्तक बना लेते हैं। प्रत्येक पत्ते के मध्य में एक छिद्र किया होता है। उस छिद्र में से वे सब पत्तों को उस तागे में पिरो लेते हैं।

मध्य और उत्तरीय भारत में लोग तूज़ के वृक्ष की छाल का प्रयोग करते हैं। इसकी एक जाति चाप पर लपेटने के काम आती है। इस वृक्ष को भूर्ज कहते हैं। वे एक गज़ लम्बा और इतना चौड़ा जितनी कि हाथ की ख़ूब फैलाई हुई उङ्गलियाँ होती हैं, या कुछ कम,

टुकड़ा लेते हैं, और इसे अनेक रीतियों से तैयार करते हैं। वे इसे चिकनाते और खूब घोटते हैं जिससे यह दृढ़ और स्निग्ध बन जाय। तब वे इस पर लिखते हैं। इकहरे पत्तों के यथार्थ क्रम का निशान अङ्कों द्वारा किया जाता है। सारी पुस्तक कपड़े के एक टुकड़े में लपेटी और उसी आकार की दो तख़्तियों के बीच बाँधी जाती है। ऐसी पुस्तक को पूथी (पोथी) कहते हैं। (पुस्त, पुस्तक देखो।) वे अपने पत्र, तथा और जो कुछ उन्हें लिखना होता है सब तूज़ वृक्ष की छाल पर लिखते हैं।

हिन्दू लिपि पर।

हिन्दुओं की लिपि या वर्णमाला के विषय में हम पहले ही कह आये हैं कि यह एक बार खो गई और भूल गई थी; किसी ने इसकी परवा न की, जिससे लोग अशिक्षित हो गये, घोर अविद्या के गढ़े में गिर पड़े, और विज्ञान से सर्वथा विमुख हो गये। परन्तु फिर पराशर के पुत्र व्यास ने परमेश्वर के प्रत्यादेश से उनकी पचास वर्णों की लिपि का दुबारा प्रकाश किया। वर्ण का नाम अक्षर है।

कई लोग कहते हैं कि पहले उनके अक्षरों की संख्या कम थी। यह केवल शनैः शनैः बढ़ी है। यह सम्भव हो सकता है, बरन मैं कहूँगा कि यह आवश्यक भी है। यूनानी लिपि की बात पूछो तो किसी असीधस नामक व्यक्ति ने विद्या को स्थिर करने के लिए प्रायः उस समय सोलह अक्षर बनाये थे जब कि मिस्र में इसराएलियों का राज्य था। इस पर कीमुश और अगेनोन ने उन का यूनानियों में प्रचार किया। चार नये संकेत मिला कर उन्होंने बीस अक्षरों की वर्णमाला बना ली। इसके उपरान्त, उस समय के क़रीब क़रीब जब कि सुक़रात को विष दिया गया था, सिमोनीडस ने चार चिह्न और मिला दिये जिससे अन्त को एथन्सवालों के पास एक

पृष्ठ ८२

पूरे चौबीस अक्षरों की वर्णमाला हो गई। यह घटना, पश्चिमीय काल-गणकों के अनुसार, अर्दशीर के शासन-काल में हुई थी। यह अर्दशीर (Artaxerxes) दारा (Darius) का, दारा अर्दशीर का, और अर्दशीर काईरस (Cyrus) का पुत्र था।

हिन्दू-वर्णमाला के अक्षरों की संख्या के बहुत अधिक होने का पहला कारण यह है कि वे प्रत्येक अक्षर को, यदि उसके पीछे स्वर हो, या दो संयुक्त स्वर हों, या हमज़ा (विसर्ग) हो, या स्वर की सीमा से कुछ बाहर तक बढ़ी हुई आवाज़ हो, एक अलग चिह्न द्वारा प्रकट करते हैं; दूसरा कारण यह है कि उनके यहाँ ऐसे व्यञ्जन हैं जो किसी दूसरी भाषा में इकट्ठे नहीं मिलते, यद्यपि वे भिन्न भिन्न भाषाओं में बिखरे हुए चाहे मिल जायँ। वे इस प्रकार की आवाज़ें हैं कि हमारी जिह्वायें, उनसे परिचित न होने के कारण, उनका मुश्किल से उच्चारण कर सकती हैं, और हमारे कान उनके अनेक सजाति युगमों में भेद करने में प्रायः असमर्थ हैं।

हिन्दू लोग यूनानियों की तरह बायें से दायें को लिखते हैं। वे रेखा के मूल पर नहीं लिखते। अरबी-लिपि में इस रेखा के ऊपर की ओर अक्षरों के सिर और नीचे की ओर उनकी पूँछें जाती हैं। इस के विपरीत, हिन्दू-अक्षरों की आधार-रेखा ऊपर होती है। प्रत्येक अक्षर के ऊपर एक सीधी लकीर रहती है। इस लकीर से अक्षर लटकता है और इसके नीचे लिखा जाता है। इस लकीर के ऊपर व्याकरण-सम्बन्धी चिह्न के सिवा और कुछ नहीं होता। यह चिह्न अपने नीचे के अक्षर का उच्चारण दिखलाने के लिए होता है।

हिन्दुओं के स्थानीय अक्षर।

सबसे अधिक प्रसिद्ध वर्णमाला का नाम सिद्धमातृका है। कई लोग समझते हैं कि यह काश्मीर में बनी थी, क्योंकि काश्मीर के लोग इसका प्रयोग करते हैं। परन्तु

इसका प्रचार वाराणसी में भी है। यह नगर और काश्मीर हिन्दू-विद्याओं के उच्च विद्यालय हैं। मध्यदेश अर्थात् कनौज के इर्द गिर्द के देश में भी, जिसे आर्यावर्त भी कहते हैं, इसी लिपि का प्रचार है।

मालवे में नागर नामक एक दूसरे प्रकार की लिपि है। इसका पहली से केवल अक्षरों के रूपों में ही भेद है।

इस के बाद अर्धनागरी अर्थात् आधे नागर अक्षर हैं। ये पहली दो लिपियों के संयोग से बने हैं, इसीलिए इनका यह नाम है। इनका प्रचार भातिया और सिंध के कुछ भागों में है।

दूसरी वर्णमालायें ये हैं—मलवारी जिसका प्रचार समुद्र-तट की ओर, दक्षिण-सिन्ध के अन्तर्गत, मलवषौ में है; सैन्धव, जिसका प्रयोग बह्मन्वा या अलमन्सूरा में होता है; कर्नाट, जिसका प्रचार कर्नाट-देश में है जहाँ से कि वे सिपाही आते हैं जिन्हें सेना में कन्नर कहते हैं; अन्ध्री जिसका अन्ध्र-देश में व्यवहार होता है; दिरवरी (द्राविड़ी) जिसका दिरवर देश (द्रविड़-देश) में प्रचार है; लारी, जिसका लार-देश (लाट-देश) में प्रचार है; गौरी (गौड़ी) जिस का पूर्व देश में प्रयोग होता है; भैक्षुकी, जिसका पूर्व-देश के अन्तर्गत उदुणपूर में प्रचार है। यह अन्तिम लिपि बुद्ध की है।

ओम् शब्द पर।

हिन्दू लोग अपनी पुस्तकों का आरम्भ सृष्टि के शब्द, ओम् से करते हैं, जिस प्रकार हम लोग अपनी पुस्तकें "परमात्मा के नाम से" के साथ शुरू करते हैं। ओम् शब्द का रूप यह ॐ है। यह आकार अक्षरों का बना हुआ नहीं; इस शब्द को प्रकट करने के लिए यह केवल एक कल्पना गढ़ी

हुई है। इसका प्रयोग लोग इस विश्वास पर करते हैं कि इससे उन्हें सुख की प्राप्ति होगी। और इसके द्वारा वे परमात्मा के एकत्व को स्वीकार करते हैं। यहूदी लोग भी ठीक इसी रीति से, अर्थात् तीन इब्रानी योदों से परमात्मा का नाम लिखते हैं। तौरेत में यह शब्द **य ह व ह** (יהוה) लिखा है और अदोनै बोला जाता है; कई बार वे **यह** भी कह देते हैं। **अदोनै** शब्द, जिसका वे उच्चारण करते हैं, लिख कर प्रकट नहीं होता।

उन के संख्यावाचक चिह्नों पर।

जिस प्रकार हम अरबी अक्षरों का इब्रानी वर्णमाला के क्रम से संख्यावाचक अङ्कों के लिए प्रयोग करते हैं उसी प्रकार हिन्दू अपने अक्षरों का प्रयोग नहीं करते। जिस प्रकार भारत के भिन्न भिन्न भागों में अक्षरों के रूप भिन्न भिन्न हैं वैसे ही हिन्दसों के रूप भी, जिन्हें अङ्क कहते हैं, भिन्न भिन्न हैं। जिन संख्यावाचक चिह्नों का प्रयोग हम करते हैं वे हिन्दू-चिह्नों के अत्यन्त निर्मल आकारों से निकाले गये हैं। चिह्नों और आकारों से कुछ भी लाभ नहीं यदि लोगों को उनका अर्थ मालूम न हो, परन्तु काश्मीर के लोग अपनी पुस्तकों के इकहरे पृष्ठों पर ऐसे रूपों से निशान लगाते हैं जोकि, चित्र या चीनी अक्षर ऐसे दिखाई देते हैं। इनके अर्थ अत्यन्त दीर्घ अभ्यास से ही मालूम हो सकते हैं। परन्तु रेत में गिनते समय वे इनका प्रयोग नहीं करते।

पृष्ठ ८३

पृष्ठ ८३

सब जातियाँ इस विषय में सहमत हैं कि गणित में संख्याओं के सभी अनुक्रमों (यथा, एक, दस, सौ, सहस्र) का दस के साथ एक विशेष सम्बन्ध होता है, और प्रत्येक अनुक्रम अपने से पिछले का दसवाँ भाग और अपने से पहले से दस गुना होता

है। मैंने सब प्रकार के लोगों से, जिनसे मिलने का मुझे अवसर मिला है, विविध भाषाओं में संख्याओं के अनुक्रमों के नामों का अध्ययन किया है, और देखा है कि कोई भी जाति सहस्र से आगे नहीं जाती। अरबी लोग भी सहस्र पर जा कर ठहर जाते हैं, और यही निस्सन्देह सबसे अधिक शुद्ध और सबसे अधिक नैसर्गिक काम है। मैंने इस विषय पर एक अलग प्रबन्ध लिखा है।

एक हिन्दू ही ऐसे हैं कि जिनके अङ्कों की गिनती, कम से कम गणित-परिभाषाओं में, सहस्र से आगे तक जाती है। ये परिभाषायें या तो उन्होंने स्वतन्त्र रीति से बना ली हैं या विशेष व्युत्पत्तियों के अनुसार निकाली गई हैं, या दोनों रीतियों को इकट्ठा मिलाकर तैयार की गई हैं। वे संख्याओं के अनुक्रमों के नामों को धर्म्म-सम्बन्धी कारणों से १८ वें दर्जे तक ले जाते हैं। इसमें वैयाकरण सब प्रकार की व्युत्पत्तियों के साथ गणितज्ञों को सहायता देते हैं।

१८ वाँ दर्जा परार्द्ध कहलाता है। इसका अर्थ है आकाश का आधा, या और भी यथार्थ रीति से कहें तो, उसका आधा जो कि ऊपर है। क्योंकि जब हिन्दू कल्पों के काल की अवधियाँ बनाते हैं तब इस दर्जे का मान परमेश्वर का एक दिन (अर्थात् आधा अहोरात्र) होता है। चूँकि हमें आकाश से बड़ी और कोई चीज़ मालूम नहीं, इसलिए इसके आधे (परार्द्ध) को, सब से बड़ी चीज़ का आधा होने के कारण, सबसे बड़े दिन के आधे के साथ उपमा दी गई है। इसको दुगना करने से, रात्रि को दिन के साथ मिला देने से, सबसे बड़ा पूरा दिन बन जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि परार्द्ध नाम को इस रीति से बताया गया है, और परः का अर्थ सारा आकाश है।

गिनती के अठारह दर्जे। संख्याओं के अठारह अनुक्रमों के नाम ये हैं:—

१. एकम्।
२. दशम्।
३. शतम्।
४. सहस्रम्।
५. अयुत।
६. लक्ष।
७. प्रयुत।
८. कोटि।
९. न्यर्बुद।
१०. पद्म।
११. खर्व।
१२. निखर्व।
१३. महापद्म।
१४. शङ्कु।
१५. समुद्र।
१६. मध्य।
१७. अन्त्य।
१८. परार्द्ध।

अब मैं इस पद्धति के विषय में उनके कुछ एक मतभेदों का उल्लेख करूँगा।

कुछ एक हिन्दुओं का मत है कि परार्द्ध के आगे भूरि नामक एक और दर्जा है, और वही गिनती की अन्तिम सीमा है। परन्तु

इन अठारह दर्जों में पैदा होनेवाले व्यतिक्रम। वास्तव में गिनती असीम है; यह इसकी सीमा केवल पारिभाषिक है जिसको रूढ़ि रूप से संख्याओं का अन्तिम अनुक्रम मान लिया गया है। ऊपर के वाक्य में गिनती शब्द से उनका तात्पर्य परिभाषा से मालूम होता है, मानों १८ वें दर्जे के आगे की गिनती के लिए भाषा में कोई नाम नहीं। यह मालूम है कि इस दर्जे का मान अर्थात् एक भूरि, सबसे बड़े दिन के पाँचवें भाग के बराबर है; परन्तु इस विषय में उनका कोई ऐतिह्य नहीं। उनके ऐतिह्य में केवल सबसे बड़े दिन के समवायों के चिह्न मिलते हैं, जैसा कि हम आगे चल कर बतायेंगे इसलिए यह १९ वाँ दर्जा कृत्रिम और अत्यन्त सूक्ष्म है। पृष्ठ ८४

फिर कई एक के मतानुसार गिनती की सीमा कोटि है; और कोटि से आरम्भ कर के संख्याओं के दर्जों की परम्परा कोटि, हज़ार,

सैकड़े, दहाई होगी; क्योंकि देवताओं की संख्या कोटियों में प्रकट की जाती है। उनके विश्वासानुसार देवताओं की तेंतीस कोटियाँ हैं, जिनमें से ब्रह्मा, नारायण और महादेव की ग्यारह ग्यारह हैं।

१८ वें दर्जे के आगे के दर्जों के नाम, जैसा कि हम पहले कह आये हैं, वैयाकरणों के गढ़े हुए हैं।

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि ५ वें दर्जे का प्रसिद्ध नाम दश सहस्र, और ७ वें दर्जे का दश लक्ष है; क्योंकि ऊपर की सूची में जो दो नाम (अयुत; प्रयुत) हमने दिये हैं उनका प्रचार बहुत कम है।

कुसुमपुर के आर्यभट्ट की पुस्तक में दस से १० कोटि तक के दर्जों के नाम ये दिये हैं:—

अयुतम् ।
नियुतम् ।
प्रयुतम् ।
कोटिपद्म ।
परपद्म ।

इसके अतिरिक्त, यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनेक लोग भिन्न भिन्न नामों के बीच एक प्रकार का व्युत्पत्ति-सम्बन्ध प्रतिष्ठित करते हैं, इसलिए वे ५ वें दर्जे की उपमिति के अनुसार, जो कि अयुत कहलाता है, ६ ठे दर्जे को नियुत कहते हैं। फिर ९ वें दर्जे की उपमिति के अनुसार, जो कि न्यर्बुद कहलाता है, वे ८ वें को अर्बुद कहते हैं।

निखर्व और खर्व के बीच, जो कि १२ वें और ११ वें दर्जों के नाम हैं, और शङ्कु तथा महाशङ्कु के बीच, जोकि १३ वें और १४ वें दर्जों के नाम हैं, इसी प्रकार का सम्बन्ध है। इस सादृश्य के अनुसार पद्म के बाद शीघ्र ही महापद्म होना चाहिए परन्तु पिछला तो १३ वें का और पहला १० वें दर्जे का नाम है।

उनके इन भेदों के दो विशेष कारण हो सकते हैं; परन्तु इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे भी भेद हैं जिनका कोई कारण नहीं, जिनकी

उत्पत्ति केवल इस प्रकार हुई है कि लोग किसी निश्चित क्रम का ध्यान न रख कर योंही उनके नाम लेते हैं, या वे अपनी अविद्या को साफ़ कह कर कि मैं नहीं जानता स्वीकार करना पसन्द नहीं करते। मैं नहीं जानता एक ऐसा शब्द है जिसका उनके लिए किसी भी सम्बन्ध में उच्चारण करना कठिन है।

पौलिश सिद्धान्त संख्याओं के दर्जों की निम्नलिखित सूची देता है।

४. सहस्रम्।
५. अयुतम्।
६. नियुतम्।
७. प्रयुतम्।
८. कोटि
९. अर्बुदम्।
१०. खर्व।

इनके बाद के दर्जे, ११ वें से १८ वें तक, वही हैं जो कि उपर्युक्त सूची में दिये गये हैं।

संख्यावाचक अङ्क।

हिन्दू लोग गणित में संख्यावाचक चिह्नों का प्रयोग हमारे सदृश ही करते हैं। मैंने एक प्रबन्ध की रचना की है, जिसमें यह दिखलाया है कि इस विषय में, सम्भवतः, हिन्दू हम से कितना आगे हैं। हम पहले कह आये हैं कि हिन्दू अपनी पुस्तकें श्लोकों में बनाते हैं। अच्छा, अब यदि उन्हें, अपने गणित-ज्योतिष के गुटकों में, विविध अनुक्रमों की कुछ संख्याओं को प्रकट करना होता है तो वे उन्हें ऐसे शब्दों के द्वारा प्रकट करते हैं जिनका प्रयोग या तो अकेले एक ही अनुक्रम की या एक ही साथ दो अनुक्रमों की विशेष संख्याओं को (यथा एक ऐसा शब्द जिसका अर्थ या तो केवल २० है या २० और २०० दोनों हैं) दिखलाने के लिए होता है। प्रत्येक संख्या के लिए उन्होंने एक सर्वथा विपुल शब्द-राशि नियत कर रक्खी है। इसलिए यदि छन्द में एक शब्द ठीक न बैठे तो आप इसे बदल कर इसकी जगह आसानी से दूसरा और ठीक

आनेवाला शब्द रख सकते हैं। ब्रह्मगुप्त कहता है "यदि तुम एक लिखना चाहते हो तो इसको पृथ्वी, चन्द्र प्रभृति प्रत्येक अद्वितीय वस्तु से प्रकट करो; दो को प्रत्येक ऐसी चीज़ से जो कि द्विगुण हो, यथा काला और सफ़ेद; तीन को प्रत्येक ऐसी चीज़ से जो कि त्रिगुणित हो; शून्य को आकाश से, और बारह को सूर्य के नामों से प्रकट करो"।

नीचे की सूची में मैंने संख्याओं के वे सब नाम मिला दिये हैं जो कि मैं उनसे सुना करता था; क्योंकि इनका ज्ञान उनकी गणित-ज्योतिष की पुस्तकों को समझने के लिए परमावश्यक है। इन शब्दों के सभी अर्थ मुझे मालूम हो जाने पर, यदि ईश्वर की आज्ञा हुई ! तो मैं उनको यहाँ जोड़ दूँगा। पृष्ठ ८५

० = शून्य और ख, दोनों का अर्थ बिन्दु है।
गगन, अर्थात् आकाश।
वियत्, अर्थात् आकाश।
आकाश।
अम्बर, अर्थात् आकाश।
अभ्र, अर्थात् आकाश।

१ = आदि, अर्थात् शुरू।
शशिम्।
इन्दु।
शीता।
उर्वरा, धरणी।
पितामह, अर्थात् आदि पिता।
चन्द्र, अर्थात् चाँद।
शीतांशु, अर्थात् चाँद।
रूप।

रश्मि।

२ = यम।

अश्विन्।

रविचन्द्र।

लोचन, अर्थात् दो आँखें।

अक्षि।

दस्र।

यमल।

पक्ष अर्थात् मास के दो पखवाड़े।

नेत्र, अर्थात् दो आँखें।

३ = त्रिकाल, अर्थात् समय के तीन भाग।

त्रिजगत्।

त्रयम्।

पावक, वैश्वानर, दहन, तपन, हुताशन, ज्वलन, अग्नि, अर्थात् आग।

[त्रिगुण,] अर्थात् तीन आदि शक्तियाँ।

लोक, अर्थात् ग्रह, पृथ्वी, स्वर्ग और नरक।

त्रिकटु।

४ = वेद, अर्थात् उनकी पवित्र संहिता, क्योंकि उसके चार भाग हैं।

समुद्र, सागर, अर्थात् पयोधि।

अब्धि।

दधि।

दिश्, अर्थात् चार दिग्भाग।

जलाशय।

कृत ।   पृष्ठ ८६

५ = शर ।

अर्थ ।

इन्द्रिय, अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ ।

सायक ।

اخون

वाण ।

भूत ।

इषु ।

पाण्डव, अर्थात् पाण्डु राजा के पाँच पुत्र ।

पत्रिन्, मार्गण ।

६ = रस ।

अङ्ग ।

षट् ।

الرم (?) अर्थात् वर्ष ।

ऋतु (?)

मासार्धम् ।

७ = अग ।

महीधर ।

पर्वत, अर्थात् पहाड़ ।

सप्तन् ।

नग, अर्थात् पहाड़ ।

अद्रि ।

मुनि ।

८ = वसु, अष्ट ।

धी, मङ्गल।
गज, नाग।
दन्तिन्।
९ = गो, छिद्र।
नन्द, पवन।
रन्ध्र; अन्तर।
नवं = ९.

पृष्ठ ८७

१० = दिश्, खेन्दु।
आशा, रावण-शिरस्।
११ = रुद्र, जगत् का विनाशक।
महादेव, अर्थात् फ़रिश्तों का राजा।
ईश्वर।
अक्षौहिणी, अर्थात् जितनी कुरु की सेना थी।
१२ = सूर्य, क्योंकि सूर्यों की संख्या बारह है।
आदित्य।
अर्क, अर्थात् सूर्य।
मास, भानु।
सहस्रांशु।
१३ = विश्व।
१४ = मनु जोकि चौदह मन्वन्तरों के अधिपति हैं।
१५ = तिथि, अर्थात् प्रत्येक पखवाड़े के सौर दिवस।
१६ = अष्टि, नृप, भूप।
१७ = अत्यष्टि।

पृष्ठ ८८

१८ = धृति।
१९ = अतिधृति।

२० = नख, कृति।

२१ = उत्कृति।

२२ =

२३ =

२४ =

२५ = तत्त्व, अर्थात् वे पच्चीस पदार्थ जिनके ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जहाँ तक मैंने हिन्दुओं को देखा है, और जहाँ तक उनके विषय में सुना है वे सामान्यतः इस प्रकार से संख्यावाचक अङ्कों में पच्चीस के आगे नहीं जाते।

हिन्दुओं के विचित्र रीति-रिवाज।

अब हम हिन्दुओं के कुछ एक विचित्र रीति-रिवाजों का उल्लेख करेंगे। किसी चीज़ की विचित्रता का आधार इस बात पर है कि यह बहुत कम उपस्थित होती है, और हमें इसको देखने का अवसर बहुत कम मिलता है। यदि यह विचित्रता बहुत बढ़ जाय तो फिर वह चीज़ एक अपूर्व बरन एक अलौकिक वस्तु बन जाती है। यह फिर प्रकृति के साधारण नियमों के अधीन नहीं रहती, और जब तक इसको साक्षात् देख नहीं लिया जाता यह खपुष्प-सदृश मालूम होती है। हिन्दुओं के अनेक रीति-रिवाज हमारे देश और हमारे समय के रिवाजों से इतने भिन्न हैं कि वे हमें सर्वथा विकट दीख पड़ते हैं। मनुष्य प्रायः यह समझने लगता है कि उन्होंने जान बूझ कर इनको हमारे विपरीत बनाया है, क्योंकि हमारी रीतियाँ उनकी रीतियों से बिलकुल नहीं मिलतीं बरन उनकी ठीक उलटी हैं; यदि उनकी कोई रीति कभी हमारी किसी रीति से मिलती भी है तो निश्चय ही इसके सर्वथा विपरीत अर्थ होते हैं।

पृष्ठ ८६

वे शरीर के कोई भी बाल नहीं काटते। पहले-पहल वे गरमी के कारण नङ्गे फिरा करते थे, और सिर के केश न काटने से उनका उद्देश रौद्राघात से बचना था।

मूँछों की रक्षा के लिए वे उनके इकहरे पेच बनाते हैं। जननेन्द्रिय के बाल न काटने के विषय में वे लोगों को यह समझाने का यत्न करते हैं कि वहाँ के बाल काटने से कामानल भड़कती और विषय-वासना बढ़ती है। इसलिए उनमें से वे लोग जो अपने अन्दर स्त्री-समागम के लिए प्रबल रुचि देखते हैं वे जननेन्द्रिय के बाल कभी नहीं काटते।

वे अपने नाख़ून बहुत लम्बे बढ़ा लेते हैं और अपने आलस्य पर गर्व करते हैं। क्योंकि वे इनसे सिर को खरोचने और केशों में जूएँ टटोलने के सिवा अपने मधुर आलस्य के जीवन में और कोई काम नहीं लेते।

हिन्दू गोबर के चौके में अकेले एक के बाद एक बैठकर भोजन करते हैं। वे भोजनावशेष को नहीं खाते, और जिन थालियों में उन्होंने खाया हो यदि वे मिट्टी की हों तो वे उन्हें भी फेंक देते हैं।

पान और चूने के साथ सुपारी चबाने के कारण उनके दाँत लाल होते हैं।

वे मदिरा ख़ाली पेट पीते हैं, फिर इसके बाद खाना खाते हैं। वे गायों का मूत्र तो पी लेते हैं पर उनका मांस नहीं खाते।

वे झाँझों को छड़ी से बजाते हैं।

पायजामों की जगह वे पगड़ियाँ बाँधते हैं। जो लोग थोड़ी पोशाक रखना चाहते हैं वे एक दो अंगुल चौड़ा एक चीथड़ा लेकर उसे दो रस्सियों के साथ अपने कटिदेश पर बाँध लेते हैं, और इतने पर ही सन्तुष्ट रहते हैं। परन्तु जो ज़ियादा कपड़े पसन्द करते हैं वे इतनी

अधिक रुई से भरे हुए पायजामे पहनते हैं कि उससे कई दुलाइयाँ और ज़ीन के नमदे बन जायँ। इन पायजामों में कोई (दृश्य) राह नहीं होती और वे इतने बड़े होते हैं कि पैर दिखाई नहीं देते। जिस रस्सी से पायजामा बाँधा जाता है वह पीछे की ओर होती है।

उनका सिदार भी (एक वस्त्र जिससे सिर और छाती तथा गर्दन का उपरिभाग ढँका रहता है) पायजामे के सदृश पीछे की तरफ़ बोतामों से बाँधा जाता है।

कुर्तकों के (बाँहों वाली छोटी कमीज़ें जोकि कन्धों से शरीर के मध्य तक होती हैं; यह स्त्रियों के पहनने का वस्त्र है) अंचलों का काट दायें और बायें दोनों ओर होता है।

जब तक वे जूतों को पहनने नहीं लगते तब तक उन्हें कस कर रखते हैं। चलने के पहले वे पिण्डली से नीचे की ओर उलटा दिये जाते हैं (?)।

स्नान के समय वे पहले पैरों को धोते हैं और उसके बाद मुँह को। अपनी स्त्रियों के साथ समागम करने के पहले वे स्नान करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

त्योहार के दिन वे सुगंधियों के स्थान अपने शरीरों पर गोबर मलते हैं।

पुरुष स्त्रियों के परिच्छद की चीज़ें पहनते हैं; वे उबटना मलते हैं, कानों में बालियाँ, हाथों में चूड़ियाँ, और हाथ और पाँव की उङ्गलियों में सोने के छाप-छल्ले पहनते हैं।

तेहि द्राक्षावल्लिस्तम्भवदुञ्चिताः सन्तो यभन्ते, योषितस्तु अधस्त ऊर्ध्वं निधुवनव्यग्राः सीरसञ्चालनतत्परा इव लक्ष्यन्ते, तासां धवाः सर्वथाऽचलास्तिष्ठन्ति।

ते च पायुभञ्जनकारिषु मुण्डकेषु, क्लीबेषु मुखधृतपुंध्वजचूषणरेतोद्रावकेषु 'पुंषण्ढिल' इत्याख्येषु पुरुषेषु च दयामाचरन्ति।

ते कुड्यमभिमुखीभूय हदन्ति येन तेषां सक्थीनि पार्श्वतो यातां दृष्टिगोचरा भवन्ति ।

ते उपस्थेन्द्रियार्चायै मन्दिराणि निर्मान्ति, तत्र स्थापितं 'लिङ्गं' महादेवलिङ्गमित्याचक्षते ।

वे ज़ीन के बिना सवारी करते हैं, परन्तु यदि वे ज़ीन लगाते हैं तो घोड़े पर उसकी दाईं ओर से चढ़ते हैं । सफ़र में वे यह पसन्द करते हैं कि कोई व्यक्ति घोड़े पर चढ़ा हुआ उनके पीछे आवे ।

वे कुठार को दाईं ओर कमर पर बाँधते हैं ।

वे यज्ञोपवीत नामक एक पट्टी पहनते हैं जो कि बाँयें कन्धे से होकर कमर की दाईं ओर जाती है ।

सभी सम्मन्त्रणाओं और सङ्कटों में वे स्त्रियों से परामर्श लेते हैं । जब बच्चा पैदा होता है तब लोग लड़की की अपेक्षा लड़के की अधिक परवा करते हैं । पृष्ठ ९०

दो बालकों में से छोटे बालक का अधिक आदर किया जाता है, और यह बात देश के पूर्वीय भागों में विशेष रूप से देखी जाती है ; क्योंकि उनका मत है कि बड़े का जन्म प्रबल काम-लालसा के कारण होता है ; परन्तु छोटे की उत्पत्ति परिपक्व चिन्तन और शान्त क्रिया का फल होती है ।

हाथ मिलाते समय वे मनुष्य के हाथ को उसकी बाहरी गुलाई की अर्थात् उलटी तरफ़ से पकड़ लेते हैं ।

वे घर में प्रवेश करते समय नहीं बरन वहाँ से जाते समय आज्ञा माँगते हैं ।

अपनी सभाओं में वे पलथी मार कर बैठते हैं ।

उन्हें पास बैठे हुए अपने पूजनीय बड़ों के सामने थूकने और नाक साफ़ करने में कुछ भी सङ्कोच नहीं होता, और वे उनके सामने

ही चट से जूएँ मार देते हैं । वे छींकने को बुरा और पादने को अच्छा शकुन समझते हैं ।

वे जुलाहे को अपवित्र, परन्तु सिङ्गी लगाने और खाल उधेड़नेवाले को, जो पैसे लेकर मरणासन्न पशुओं को डुबा कर या जला कर मार डालता है, पवित्र समझते हैं ।

पाठशालाओं में उनके बच्चों के पास काली तख़्तियाँ होती हैं । इन पर वे सफ़ेद चीज़ के साथ, चौड़ी ओर नहीं, लम्बी ओर बायें से दायें लिखते हैं । ऐसा मालूम होता है मानो नीचे के पद्य लेखक ने हिन्दुओं के लिए ही लिखे थे:—

"कितने ही लेखक कोयले जैसे काले काग़ज़ का उपयोग करते हैं,
उनकी लेखनी इस पर सफ़ेद रंग से लिखती है ।
लिखने से वे अँधेरी रात में उज्ज्वल दिन रख देते हैं,
वे जुलाहे की तरह बुनते हैं, परन्तु बाना नहीं लगाते ।"

वे पुस्तक का नाम उसके आरम्भ में नहीं, बरन अन्त में लिखते हैं ।

वे अपनी भाषा के विशेष्यों को स्त्रीलिङ्ग देकर बढ़ाते हैं, जैसे अरबी लोग उन्हें लघु रूप देकर बढ़ाते हैं ।

यदि उनमें से एक मनुष्य दूसरे को कोई वस्तु देता है तो वह यह आशा करता है कि वह चीज़ उसकी ओर फेंक दी जाय, जैसे हम कुत्ते को कोई चीज़ फेंकते हैं ।

यदि दो मनुष्य नर्द खेलते हैं तो एक तीसरा उनके बीच पाँसे फेंकता है । वे मस्त हाथी के गालों में से निकलनेवाले रस को, जो वास्तव में घोर दुर्गन्धयुक्त होता है, पसन्द करते हैं ।

शतरञ्ज में वे हाथी को पयादे की तरह एक घर सीधा चलाते हैं, दूसरी दिशाओं में नहीं । चार कोनों में भी वे

भारतीय शतरञ्ज ।

इसे रानी (फ़िर्ज़ीन) की तरह एक बार एक घर ही चलाते हैं। वे कहते हैं कि ये पाँच घर (अर्थात् एक तो सीधा आगे और शेष कोनों पर) हाथी की सूँड़ और चार पैरों के स्थान हैं।

शतरञ्ज में वे दो पाँसों के साथ—एक बार चार मनुष्य—खेलते हैं। शतरञ्ज के तख़ते पर उनके मुहरों का क्रम इस प्रकार होता है:—

रुख़	घोड़ा	हाथी	बादशाह			पयादा	रुख़
पयादा	पयादा	पयादा	पयादा			पयादा	घोड़ा
						पयादा	हाथी
						पयादा	बादशाह
बादशाह	पयादा						
हाथी	पयादा						
घोड़ा	पयादा			पयादा	पयादा	पयादा	पयादा
रुख़	पयादा			बादशाह	हाथी	घोड़ा	रुख़

क्योंकि इस प्रकार के शतरञ्ज का हमारे लोगों को ज्ञान नहीं, इस लिए इस विषय में जो कुछ मुझे मालूम है वह यहाँ लिखता हूँ।

इकट्ठा खेलनेवाले चार व्यक्ति इस प्रकार बैठते हैं जिससे शतरञ्ज की बिसात (शारिपट्ट) के गिर्द एक चौकोर बन जाय, और वे बारी बारी से पाँसे फेंकते हैं। पाँसों की पाँच और छः संख्यायें ख़ाली होती हैं (अर्थात् वे गिनी नहीं जातीं)। ऐसी अवस्था में, यदि पाँसे पाँच या छः दिखलायें तो खिलाड़ी पाँच के स्थान में एक, और छः के स्थान में चार ले लेता है, क्योंकि इन दोनों अङ्कों के आकार इस प्रकार बनाये हुए हैं:—

पृष्ठ ९१

६ ५

४ ३ २ १

जिससे यह (भारतीय चिह्नों में) ४ और १ के आकार के सदृश मालूम होने लगता है।

शाह अर्थात् राजा यहाँ रानी (फ़िर्ज़ान) का नाम है।

पाँसों को प्रत्येक अङ्क से एक न एक मुहरा अपने स्थान से दूसरे स्थान में चला जाता है।

१ से या तो पयादा या बादशाह अपनी जगह से चलता है। उन की चालें वैसी ही हैं जैसी कि साधारण शतरञ्ज में होती हैं। बादशाह लिया जा सकता है, परन्तु वह अपने स्थान को नहीं छोड़ सकता।

२ से रुख़ चलता है। हमारे शतरञ्ज में हाथी की चाल की तरह यह कर्ण की ओर तीसरे घर में चला जाता है।

३ घोड़े को चलाता है। इसकी चाल साधारणतः तिरछी दिशा में तीसरे घर तक होती है।

४ हाथी को चलाता है। यदि इसे रोका न जाय तो यह हमारे शतरञ्ज में रुख़ के सदृश, सीधा चलता है। यदि ऐसी अवस्था हो, जैसा कि अनेक बार हो जाता है, तो एक पाँसा इस रुकावट को दूर कर देता है और इसे आगे चलने में समर्थ कर देता है। इसकी सबसे छोटी चाल एक घर, और सबसे बड़ी पन्द्रह है, क्योंकि पाँसे अनेक बार दो ४, या दो ६, या एक ४ और एक ६ दिखलाते हैं। इन अङ्कों में से एक के फल से, हाथी शारिपट्ट पर किनारे के साथ साथ सबमें घूमता है; दूसरे अङ्क के फल से, यह पट्ट के दूसरे किनारे की दूसरी तरफ़ के साथ साथ चलता है, पर शर्त यह है कि मार्ग में कोई रुकावट न हो। इन दो संख्याओं के परिणाम से, हाथी चलते चलते कर्ण-रेखा के दोनों सिरों पर जा बैठता है।

पाँसों के विशेष मूल्य होते हैं जिनके अनुसार खिलाड़ी को बाज़ी का हिस्सा मिलता है, क्योंकि पाँसे लेकर खिलाड़ी के हाथों में दिये जाते हैं। बादशाह का मूल्य ५, हाथी का ४, घोड़े का ३, रुख़ का २ और पयादे का १ है। जो बादशाह को ले लेता है उसे ५ मिल जाते हैं। यदि जीतनेवाले के पास अपना बादशाह न रहा हो तो दो बादशाहों के लिए उसे १०, और तीन बादशाहों के लिए १५ मिल जाते हैं। परन्तु यदि उसके पास अब तक भी अपना बादशाह हो और वह बाक़ी तीन बादशाहों को ले ले तो उसे ५४ मिल जाते हैं। यह संख्या एक ऐसी वृद्धि को दिखलाती है जिसका आधार कोई बीज-गणित-सम्बन्धी नियम नहीं, बरन सार्वजानिक सम्मति है।

यदि हिन्दू हमसे भेद रखने, और हमारी अपेक्षा कुछ उत्तम होने का दावा करते हैं, जैसा कि हम भी अपने पक्ष में इसके विपरीत करते हैं, तो इस प्रश्न का निर्णय उनके लड़कों पर किये गये एक प्रयोग के द्वारा हो सकता है। मैंने कोई भी

हिन्दू-चरित्र की सहज प्रतीपता।

ऐसा हिन्दू लड़का नहीं देखा जो मुसलमानी प्रदेश में हाल ही में आया हो और जो लोगों के रीति-रिवाजों से पूर्णतया अभिज्ञ न हो, परन्तु इसके साथ ही वह अपने स्वामी के सामने जूतों को विपरीत क्रम से रक्खेगा, अर्थात् दायाँ बायें पैर के आगे और बायाँ दायें पैर के आगे; अपने स्वामी की पोशाक को तह करते समय उसके भीतर को बाहर कर देगा, और ग़ालीचे को इसी प्रकार बिछायगा जिससे उसका निचला भाग सबसे ऊपर रहे, और इस प्रकार की दूसरी बातें करेगा। यह सब हिन्दू-स्वभाव की सहज प्रतीयता का परिणाम है।

मूर्त्ति-पूजक अरबियों के रीति-रिवाज।

मैं हिन्दुओं को ही उनकी असभ्य रीतियों के लिए बुरा न कहूँगा, क्योंकि प्रतिमा-पूजक अरबी लोग भी अपराध और अश्लीलतायें किया करते थे। वे रजस्वला और गर्भवती स्त्रियों के साथ समागम करते थे; रजोदर्शन की एक ही अवधि में एक ही स्त्री के साथ समागम करने के लिए अनेक पुरुष सहमत हो जाते थे; वे दूसरे लोगों, आगन्तुकों, और अपनी पुत्री के प्रेमी की सन्तानों को अपनी दत्तक सन्तान बना लेते थे; इसके अतिरिक्त वे अपनी विशेष प्रकार की पूजाओं में अपनी उङ्गलियों के साथ सीटी बजाते, और अपने हाथों से ताली पीटते, और अपवित्र और मृत पशु का मांस खाते थे। इसलाम ने अरबियों में से और भारत के उन भागों में से जहाँ के लोग मुसलमान हो गये हैं इन सब बातों को दूर कर दिया है। जगदीश्वर का धन्यवाद है!

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

लोगों की अविद्या से उत्पन्न होनेवाले हिन्दू-शास्त्रों पर ।

हिन्दू जन साधारण में रस-विद्या ।

अभिचार का मतलब हम यह समझते हैं कि किसी प्रकार के प्रपञ्च के द्वारा किसी वस्तु को इन्द्रियों के सामने ऐसा प्रकट करना जैसी वह वास्तव में नहीं है। इन अर्थों में, यह लोगों में बहुत फैला हुआ है । परन्तु, उन अर्थों में जिनमें इसे साधारण लोग समझते हैं, अर्थात् किसी असम्भव वस्तु के पैदा कर देने में, यह वास्तविकता की सीमाओं के अन्दर नहीं । क्योंकि जो असम्भव है वह कभी पैदा नहीं किया जा सकता; सारी बात एक निबिड़ इन्द्रजाल के सिवा और कुछ नहीं। इसलिए इन अर्थों में अभिचार का शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं ।

पृष्ठ ९२

इन्द्रजाल की एक जाति रस-विद्या है, यद्यपि इसको सामान्यतः इस नाम से नहीं पुकारा जाता। परन्तु यदि कोई मनुष्य रुई का एक टुकड़ा ले कर उसे ऐसा बना दे कि वह सोने का एक टुकड़ा मालूम हो तो आप इसे इन्द्रजाल के सिवा और क्या कहेंगे ? यदि वह चाँदी के टुकड़े को सोने का रूप धारण करा देता है तो भी बिलकुल वही बात है। भेद केवल इतना है कि पिछली क्रिया अर्थात् चाँदी को सुनहला करना तो प्रायः प्रसिद्ध है पर पहली क्रिया अर्थात् रुई को सोना बनाना प्रसिद्ध नहीं ।

हिन्दू लोग रस-विद्या पर विशेष ध्यान नहीं देते; परन्तु कोई जाति इससे पूर्णतया ख़ाली नहीं। किसी जाति में इसके लिए अधिक प्रवृत्ति है और किसी में कम। पर इससे उनकी बुद्धिमत्ता या अविद्या का कोई सम्बन्ध नहीं। क्योंकि हम देखते हैं कि कई बुद्धिमान् मनुष्य तो रस-विद्या के अनुरागी हैं, और कई मूर्ख इस विद्या और इसके पारदर्शियों की हँसी उड़ाते हैं। वे बुद्धिमान् लोग, यद्यपि अपनी विश्वास दिलानेवाली विद्या पर बड़े ज़ोर-शोर से ख़ुशी मनाते हैं, पर वे रस-विद्या में लीन रहने के लिए दोषी नहीं ठहराये जा सकते, क्योंकि उनका प्रयोजन विपत्ति को दूर और सम्पत्ति को प्राप्त करने की अत्यन्त लालसा के सिवा और कुछ नहीं। एक बार किसी ने एक महात्मा से पूछा कि इसका क्या कारण है कि विद्वान् तो सदा धनाढ्यों के द्वार पर दौड़े जाते हैं परन्तु धनाढ्य विद्वानों के यहाँ जाने की इच्छा नहीं प्रकट करते। महात्मा ने उत्तर दिया कि "विद्वानों को तो धन का सदुपयोग भली भाँति ज्ञात है परन्तु धनाढ्यों को विद्या की श्रेष्ठता का पता नहीं"। इसके विपरीत, यद्यपि मूर्खों की वृत्ति सर्वथा शान्त होती है तोभी केवल रस-विद्या से उनकी निवृत्ति होने के कारण ही वे प्रशंसा के पात्र नहीं हो सकते, क्योंकि उनके प्रयोजन आपत्तिजनक, बरन किसी और चीज़ के बदले सहज अविद्या और मूढ़ता के व्यावहारिक परिणाम होते हैं।

इस विद्या के पारदर्शी पण्डित इसे गुप्त रखने का यत्न करते हैं और उन लोगों के साथ मिलने जुलने से सङ्कोच करते हैं जिनका उनके साथ सम्बन्ध नहीं। इसलिए मैं हिन्दुओं से वे रीतियाँ नहीं सीख सका जिनका वे इस विद्या में प्रयोग करते हैं। मैं यह भी नहीं जान सका कि जिस मूल पदार्थ का वे मुख्यतः प्रयोग करते हैं

कोई धातु है या जीव है या वनस्पति है। मैंने उन्हें हड़ताल को, जिसे वे अपनी भाषा में तालक कहते हैं, शोधने, मारने, विश्लिष्ट करने, और मोम करने की बातें करते सुना है, इससे मैं समझता हूँ कि उनकी प्रवृत्ति रस-विद्या की खनिज-विद्या-सम्बन्धी रीति की ओर है।

रसायन-शास्त्र

रस-विद्या से मिलती-जुलती उनकी एक और विद्या है, जो कि विशेषतः उन्हीं की सम्पत्ति है। वे इसे रसायन कहते हैं। रसायन शब्द रस के संयोग से बना है जिसका अर्थ सुवर्ण है। इसका अभिप्राय एक ऐसी कला से है जो कि विशेष क्रियाओं, जड़ी-बूटियों, और मिश्रित ओषधियों तक, जिनमें से प्रायः वनस्पतियों से ली जाती हैं, परिमित है। इसके मूलतत्त्व उन रोगियों को रोग-मुक्त कर देते हैं जिनके बचने की कोई आशा नहीं थी, वे जराजीर्ण व्यक्तियों को पुनः नवयुवक बना देते हैं। वे श्वेत केशों को फिर काला कर देते हैं। उनसे इन्द्रियों में पुनः बल आता है, स्त्री के साथ समागम करने की शक्ति बढ़ती है, और मन में बालकोचित उत्साह की तरङ्गें उठने लगती हैं, यहाँ तक कि इस लोक में मनुष्यों का जीवन बहुत लम्बा हो जाता है। क्यों न हो? क्या हम पहले ही पतञ्जलि के प्रमाण से नहीं कह आये कि मोक्ष-प्राप्ति का एक मार्ग रसायन है? कौन ऐसा मनुष्य है जिसमें इसको सत्य मानने की प्रवृत्ति हो, और वह इसको सुन कर मूढ़ हर्ष से छलाँगें न मारने लगे और ऐसी अद्भुत विद्या जाननेवाले के मुँह में अपना सर्वोत्कृष्ट भोजन डाल कर उसकी प्रतिष्ठा न करने लगे?

रसायन की एक पुस्तक का रचयिता, नागार्जुन।

इस कला का एक प्रसिद्ध प्रतिनिधि नागार्जुन था। यह सोमनाथ के समीपवर्ती दैहक कोट का रहनेवाला था। उसने इस कला में निपुणता प्राप्त की थी और एक पुस्तक रची थी, जिसमें कि इस विषय के सारे ग्रन्थों का सार है। यह

पुस्तक बहुत दुर्लभ है। वह हमारे समय से कोई एक सौ वर्ष पूर्व हुआ है।

पृष्ठ ६१

महाराज विक्रमादित्य के समय में व्याडि नामक रसज्ञ।

राजा विक्रमादित्य के समय में, जिसके शक का उल्लेख हम आगे चल कर करेंगे, उज्जैन नगर में व्याडि नामक एक मनुष्य रहता था। उसने इस विद्या पर पूरा ध्यान दिया था और इसके कारण अपना जीवन और सम्पत्ति दोनों नष्ट कर डाले थे। परन्तु उसके सारे परिश्रम से उसे इतना लाभ भी न हुआ कि वह ऐसी चीज़ें ले सके जिनका लेना साधारण अवस्थाओं में भी बहुत सुगम होता है। हाथ के तङ्ग हो जाने के कारण उसे उस विषय से घृणा होगई जो कि इतने समय तक उसके सारे उद्यम का उद्देश बना रहा था, और वह एक नदी के तट पर बैठ कर शोक और निराशा से निश्वास छोड़ने लगा। उसने अपने हाथ में अपना वह भेषज-संस्कार ग्रन्थ पकड़ लिया जिस में से वह अपनी ओषधियों के लिए व्यवस्थापत्र लिया करता था, और उसमें से एक एक पत्र फाड़ कर जल में फेंकने लगा। उसी नदी के किनारे नीचे की तरफ़ कुछ अन्तर पर एक वेश्या बैठी थी। उसने पत्रों को बहते देख कर पकड़ लिया, और रसायन-सम्बन्धी कुछ एक पत्रों को बाहर निकाल लिया। व्याडि की दृष्टि उस पर उस समय पड़ी जब कि पुस्तक के सारे पत्रे उसके पास जा चुके थे। तब वह स्त्री उसके पास आई और पुस्तक को फाड़ डालने का कारण पूछा। इस पर उसने उत्तर दिया, "क्योंकि मुझे इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। मुझे वह चीज़ नहीं मिली जो कि मुझे मिलनी चाहिए थी। मेरे पास प्रचुर धन था पर इसके कारण मेरा दिवाला निकल गया। इतनी देर तक सुख-प्राप्ति की आशा में रहने के अनन्तर अब मैं दुखी हूँ।" वेश्या बोली, "उस व्यापार को मत छोड़ो जिसमें तुमने अपना जीवन

व्यतीत किया है; उस बात के सम्भव होने में सन्देह मत करो जिसको तुम्हारे पूर्ववर्ती ऋषियों ने सत्य बताया है। तुम्हारी कल्पनाओं की सिद्धि में जो बाधा है शायद वह नैमित्तिक है जो शायद अकस्मात् ही दूर हो जायगी। मेरे पास बहुत सा नक़द रुपया है। आप इसे ले लीजिए और अपनी कल्पना-सिद्धि में लगाइए"। इस पर व्याडि ने फिर अपना काम शुरू कर दिया।

परन्तु इस प्रकार की पुस्तकें पहेलियों के रूप में लिखी हुई हैं। इसलिए उससे एक ओषधि के व्यवस्थापत्र का एक शब्द समझने में भूल हो गई। उस शब्द का अर्थ यह था कि तेल और नर-रक्त दोनों की इसके लिए आवश्यकता है। यह रक्तामल लिखा था जिसका अर्थ उसने लाल आमलक समझा। जब उसने ओषधि का प्रयोग किया तो उसका कुछ भी असर न हुआ। अब वह विविध ओषधियाँ पकाने लगा, परन्तु अग्नि-शिखा उसके सिर से छू गई और उसका मस्तिष्क जल गया। इसलिए उसने अपनी खोपड़ी पर बहुत सा तेल डाल कर मला। एक दिन वह किसी काम के लिए भट्टी के पास से उठकर बाहर जाने लगा। ठीक उसके सिर के ऊपर छत में एक मेख़ बाहर को निकली हुई थी। उसका सिर उसमें लगा और रक्त बहने लगा। पीड़ा होने के कारण वह नीचे की ओर देखने लगा। इससे तेल के साथ मिले हुए रक्त के कुछ बिन्दु उसकी खोपड़ी के उपरिभाग से देगची में गिर पड़े, पर उसने इन्हें गिरते नहीं देखा। फिर जब देगची पक चुकी तो उसने और उसकी स्त्री ने क्वाथ की परीक्षा करने के लिए इसे अपने शरीरों पर मल लिया। इसके मलते ही वे दोनों वायु में उड़ने लगे। विक्रमादित्य इस घटना को सुनकर अपने प्रासाद से बाहर निकला, और अपनी आँखों से उन्हें देखने के लिए चौक में गया। तब उस मनुष्य ने उसे आवाज़ दी, "मुँह खोल ताकि मैं उसमें

थूकूँ।" राजा को इससे घृणा आई और उसने मुँह न खोला। इसलिए थूक दरवाज़े के पास गिरा। इसके गिरते ही डेवढ़ी सोने से भर गई। व्याडि और उसकी स्त्री जहाँ चाहते थे उड़ कर वहाँ चले जाते थे। उसने इस विद्या पर प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं। लोग कहते हैं कि वे दम्पती अभी तक भी जीवित हैं।

धार के राज-भवन के द्वार में चाँदी के टुकड़े की कहानी।

इसी प्रकार की एक दूसरी कथा यह है:—मालवे की राजधानी धार नगर में, जहाँ का राजा हमारे समय में भोज-देव है, राज-भवन के द्वार में शुद्ध चाँदी का एक ऐसा आयत टुकड़ा पड़ा है, जिसमें मनुष्य के अवयवों की बाह्यरेखा दिखाई देती है। इसकी उत्पत्ति के विषय में निम्न कहानी बताई जाती है:—प्राचीनकाल में एक बार एक मनुष्य उनके एक राजा के पास एक ऐसा रसायन लेकर गया जिसका प्रयोग उसे अमर, विजयी, अजेय और प्रत्येक मनोवाञ्छित कार्य को करने में समर्थ बना सकता था। उसने राजा से कहा कि मेरे पास अकेले आना, और राजा ने आज्ञा देदी कि उस मनुष्य को जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता है वे सब तैयार कर दी जायँ।

पृष्ठ

वह मनुष्य कई दिन तक तेल को उबालता रहा यहाँ तक कि अन्त को वह गाढ़ा हो गया। तब उसने राजा को कहा:—"इसमें छलाँग मारो और मैं क्रिया को समाप्त कर दूँगा"। राजा उस दृश्य को देख कर बहुत डर गया था, इसलिए उसे छलाँग मारने का साहस न पड़ा। उस मनुष्य ने उसकी कायरता को देख कर उससे कहा:—"यदि आप में यथेष्ट साहस नहीं, और आप इसे अपने लिए करना नहीं चाहते तो क्या आप मुझे अपने लिए इसे करने की आज्ञा देते हैं?" राजा ने उत्तर दिया, "जैसा तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो।" अब उसने ओषधियों की अनेक पुड़ियाँ निकालीं, और राजा को समझा दिया

कि जब ऐसे ऐसे चिह्न प्रकट हों तब अमुक अमुक पुड़िया मुझ पर डाल देना। तब वह मनुष्य देग के पास जाकर उसमें कूद पड़ा, और चण भर में घुल कर उसकी लेवी सी बन गई। अब राजा वैसा ही करने लगा जैसा कि उस मनुष्य ने उसे समझाया था। परन्तु जब वह प्रायः सारी क्रिया समाप्त कर चुका, और उस क्वाथ में डालने के लिए केवल एक ही पुड़िया बाक़ी रह गई, तब उसे चिन्ता उत्पन्न हुई और वह सोचने लगा कि यदि यह मनुष्य, जैसा कि ऊपर कह आये हैं, अमर, विजयी, और अजेय बन कर जीवित हो गया तो मेरे राज्य की क्या दशा होगी। इसलिए उसने यही उचित समझा कि अन्तिम पुड़िया क्वाथ में न डाली जाय। इसका फल यह हुआ कि देग ठण्डी हो गई और घुला हुआ मनुष्य चाँदी के उक्त टुकड़े के रूप में जम गया।

वल्लभी नगरी के राजा वल्लभ के विषय में, जिसके संवत् का हमने किसी दूसरे परिच्छेद में वर्णन किया है, हिन्दू एक कथा सुनाते हैं।

राजा वल्लभ और रङ्कु नामक एक फल-विक्रेता की कथा।

एक सिद्ध पुरुष ने एक चरवाहे से पूछा कि क्या तुमने कभी कोई ऐसी थोहर (एक पौधा जिसको तोड़ने पर उस में से दूध निकलता है) देखी है जिसमें से दूध के स्थान लहू निकलता हो। जब चरवाहे ने कहा कि हाँ मैंने देखी है तब उसने उसको हुक्का-तम्बाकू के लिए कुछ पैसे दिये और कहा कि मुझे वह थोहर दिखलाओ। चरवाहे ने उसे दिखला दिया। जब सिद्ध ने वह पौधा देखा तब उसने उसमें आग लगादी और जलती ज्वाला में चरवाहे के कुत्ते को फेंक दिया। इस पर चरवाहे को क्रोध आया। उसने सिद्ध को पकड़ कर उसके साथ वही बर्ताव किया जो कि उसने कुत्ते के साथ किया था।

जब तक आग न बुझ गई वह वहाँ ठहरा रहा। आग के ठण्डे हो जाने पर उसने देखा कि कुत्ता और मनुष्य दोनों सोने के बने हुए हैं। वह कुत्ते को तो अपने साथ उठा लाया, परन्तु मनुष्य को वहीं पड़ा रहने दिया।

अब किसी किसान को वह मिल गया। वह उसकी एक उङ्गली काट कर एक फल बेचनेवाले के पास ले गया जिसका नाम कि रङ्क अर्थात् निर्धन था, क्योंकि वह बिलकुल कङ्गाल था और उसकी अवस्था प्रायः दिवाले निकलने तक पहुँची हुई थी। उसे जो कुछ ख़रीदने की ज़रूरत थी वह ख़रीद लेने के अनन्तर किसान फिर सोने के मनुष्य के पास आया, और उसने देखा कि काटी हुई उङ्गली के स्थान में एक और नई उङ्गली उगी हुई है। उसने इसे दुबारा काट लिया और फिर उसी फल-विक्रेता से अपनी आवश्यक चीज़ें ख़रीद ले गया। परन्तु जब फल-विक्रेता ने उससे पूछा कि तुमने यह उङ्गली कहाँ से ली है तो उसने अपनी मूर्खता के कारण उसे बता दिया। तब रङ्क सिद्ध के शरीर के पास गया और उसे गाड़ी पर रख कर अपने घर ले आया। वह रहने को तो अपने पुराने ही घर में रहा, परन्तु उसने शनैः शनैः सारा नगर मोल ले लिया। राजा वल्लभ उसी नगर को लेना चाहता था। उसने उससे कहा कि रुपया लेकर मुझे यह देदो, परन्तु रङ्क ने इनकार कर दिया। इस पर वह राजा के प्रकोप के डर से अलमनसूरा के स्वामी के पास भाग गया। उसे उसने बहुत सा धन भेंट किया और अपनी सहायता के लिए उससे सागर-सेना माँगी। अलमनसूरा के स्वामी ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार करके उसे सहायता दी। इस प्रकार उसने राजा वल्लभ पर रात्रि-आक्रमण किया, और उसे और उसकी प्रजा को मार डाला, और उसके नगर को नष्ट कर दिया। लोग कहते हैं कि

अभी तक हमारे समय में भी उस देश में ऐसे निशान बाक़ी हैं जो कि उन स्थानों में मिलते हैं जो कि अचिन्तित रात्रि-आक्रमण द्वारा नष्ट कर दिये गये थे।

सोना बनाने के लिए मूर्ख हिन्दू राजाओं के लोभ की कोई सीमा नहीं। यदि उनमें से किसी एक को सोना बनाने की इच्छा हो, और लोग उसे यह परामर्श दें कि इसके लिए कुछ छोटे छोटे सुन्दर बालकों का वध करना आवश्यक है तो वह राक्षस यह पाप करने से भी नहीं रुकेगा; वह उन्हें जलती आग में फेंक देगा। क्या ही अच्छा हो यदि इस बहुमूल्य रसायन-विद्या को पृथ्वी की सबसे अन्तिम सीमाओं में निर्वासित कर दिया जाय जहाँ कि इसे कोई प्राप्त न कर सके।

एक ईरानी ऐतिह्य — पृष्ठ ९५

ईरानी ऐतिह्य के अनुसार, कहते हैं कि इस्फ़न्दियाद ने मरते समय ये शब्द कहे थे।—जिस शक्ति और जिन अलौकिक वस्तुओं का उल्लेख धर्म्म-पुस्तक में है वे क़ाऊस को दी गई थीं। अन्ततः वह जराजीर्ण अवस्था में क़ाफ़ पर्वत को गया। उस समय बुढ़ापे से उसकी पीठ कुबड़ी हो रही थी। परन्तु वहाँ से वह एक सुडौल और बलवान् शरीर-वाला युवक बन कर, परमेश्वर के आदेश से मेघों की गाड़ी में बैठ कर वापस आया।

गरुड़ पक्षी पर।

मंत्र-जंत्र और जादू-टोने में हिन्दुओं का दृढ़ विश्वास है। और साधारणतः उनका झुकाव इनकी ओर बहुत है। जिस पुस्तक में ऐसी चीज़ों का वर्णन है वह गरुड़ की, जोकि नारायण की सवारी का पक्षी है, बनाई हुई समझी जाती है। कई लोग इसका वर्णन करते हुए इसे सिफ़रिद पक्षी और उसके कामों से मिला देते हैं। यह मछलियों का शत्रु है, उनको

पकड़ लेता है। साधारणतः, पशु स्वभाव से ही अपने शत्रुओं से द्वेष रखते हैं; परन्तु यहाँ इस नियम का अपवाद है। जब यह पक्षी पानी के ऊपर फड़फड़ाता और तैरता है तब मछलियाँ पानी की गहराई से ऊपर सतह पर आजाती हैं, जिससे वह उन्हें आसानी से पकड़ ले, मानों उसने उन्हें अपने जादू से बाँध लिया हो। कई दूसरे लोग उसमें ऐसे लक्षण बताते हैं जिनसे वह सारस मालूम होता है। वायुपुराण उसका रङ्ग पीला बताता है। सर्वतोभावेन गरुड़ सिफ़रिद की अपेक्षा सारस से अधिक मिलता है, क्योंकि सारस भी, गरुड़ की तरह, स्वभाव से ही सर्पनाशक है।

उनके बहुत से मन्त्र-जन्त्र साँप के डँसे लोगों के लिए हैं। इनमें उनके अत्यन्त विश्वास का पता उस बात से लगता है जो कि मैंने एक मनुष्य के मुँह से सुनी थी। वह कहता था कि मैंने एक मृत व्यक्ति को देखा जो साँप के काटने से मरगया था। जब उस पर मन्त्र-जन्त्र का प्रयोग किया गया तब वह पुनः जी उठा, और दूसरे लोगों की तरह जीवित और चलता फिरता रहा।

साँप के काटे पर मन्त्र-जन्त्र का असर।

एक और मनुष्य से मैंने यह कहानी सुनी थी।—उसने एक मनुष्य को देखा था जो साँप के काटने से मरा था। उस पर एक मन्त्र का प्रयोग किया गया, जिसके असर से वह जी उठा, उसने बात-चीत की, मृतपत्र (वसीयत) लिखा, अपना दबाया हुआ ख़ज़ाना दिखलाया, और उसके विषय में सारी आवश्यक जानकारी दी। परन्तु जब उसे भोजन की गन्ध आई तब वह मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ा, जीवन उसके अन्दर से सर्वथा जाता रहा।

हिन्दुओं की यह रीति है कि जब किसी व्यक्ति को कोई विषधर साँप काट खाये और वहाँ पास कोई जादूगर न हो, तब वे उस काटे

हुए व्यक्ति को किलकों के एक गट्टे के साथ बाँध कर उस पर एक पत्र रख देते हैं। पत्र पर उस व्यक्ति के लिए आशीर्वाद लिखा होता है जो उसके पास अकस्मात् आकर अपने जादू-टोने से उसके प्राणों की रक्षा करेगा।

मैं स्वयं इन चीज़ों के विषय में कुछ नहीं कह सकता क्योंकि मेरा इनमें विश्वास नहीं। एक दफ़े एक मनुष्य ने, जिसका यथार्थता में बहुत कम, और मदारियों की लीला में उससे भी कम विश्वास था, मुझे बताया कि मुझ को विष दिया गया था और लोगों ने जादू-टोना करनेवाले हिन्दुओं को मेरे पास भेजा था। वे मेरे सामने अपने मन्त्र पढ़ते थे, जिससे मुझको शान्ति प्राप्त होती थी, और जल्दी ही मैं अनुभव करने लगा कि मैं चङ्गा होता जा रहा हूँ, हिन्दू इस बीच में अपने हाथों और छड़ियों के साथ वायु में लकीरें खींचते जाते थे।

मैंने स्वयं देखा है कि मृगों के शिकार में वे उन्हें हाथ से पकड़ लेते हैं। एक हिन्दू ने तो यहाँ तक कहा कि मैं मृग को पकड़ने के बिना ही उसे अपने आगे ला कर सीधा रसोई-घर में भेज सकता हूँ। परन्तु यह बात, जैसा कि मेरा विश्वास है और मैंने मालूम कर लिया है, पशुओं को शनैः शनैः और अविरत रूप से एक ही स्वर-संयोग का अभ्यासी बनाने के उपायमात्र पर अवलम्बित है। हमारे लोग भी बारहसिंगे का शिकार करते समय, जो कि मृग से भी अधिक उच्छृङ्खल होता है, यही उपाय करते हैं। जब वे इन पशुओं को कहीं विश्राम करते पाते हैं तब वे एक घेरा बना कर उनके गिर्द घूमने लगते हैं, और साथ साथ एक ही स्वर में इतनी देर तक गाते रहते हैं कि वे जन्तु उस स्वर के अभ्यासी हो जाते हैं। तब वे अपने घेरे को सङ्कीर्ण और सङ्कीर्णतर करते जाते हैं यहाँ तक कि वे अन्त को

शिकार के अभ्यास।

पूर्ण विश्राम में लेटे हुए उन जन्तुओं के इतने निकट आ पहुँचते हैं कि वहाँ से उन पर गोली चलाई जा सकती है ।

क़ता नामक पक्षियों को मारनेवालों की यह रीति है कि वे सारी रात एक ही स्वर से ताँबे के बर्तनों को बजाते रहते हैं, फिर वे उन पक्षियों को हाथ से पकड़ लेते हैं। परन्तु स्वर के बदल जाने पर वे सब इधर-उधर उड़ जाते हैं। ये सब बातें विशेष रीतियाँ हैं, इनका जादू से कोई सम्बन्ध नहीं । कई दफ़े हिन्दुओं को इसलिए भी ऐन्द्रजालिक समझा जाता है कि वे ऊँचे बाँसों पर, या कसे हुए रस्सों पर चढ़ कर गोलियों से खेलते हैं, परन्तु इस प्रकार के खेल सभी जातियों में सामान्य हैं ।

पृष्ठ ९६

अठारहवाँ परिच्छेद ।

उनके देश, उनके नदी-नालों, और उनके महासागर पर—और उनके भिन्न भिन्न प्रान्तों तथा उनके देश की सीमाओं के बीच की दूरियों पर विविध टिप्पणियाँ ।

वासयोग्य जगत् और सागर ।

पाठक कल्पना करें कि बसने लायक़ जगत् पृथ्वी के उत्तरी अर्द्ध में है, और यदि अधिक यथार्थ रीति से कहा जाय तो वह इस अर्द्ध के भी आधे में—अर्थात् पृथ्वी के एक चौथाई भाग में स्थित है। यह चारों ओर से एक समुद्र से घिरा हुआ है, जिसको पूर्व और पश्चिम दोनों में व्यापक कहते हैं; यूनानी लोग अपने देश के निकटस्थ इसके पश्चिमीय भाग को ओक़ियानूस (اوقيانوس) कहते हैं। यह समुद्र वासयोग्य जगत् को उन महाद्वीपों या वासयोग्य द्वीपों से जुदा करता है जो कि पूर्व और पश्चिम की ओर इसके परे होंगे; क्योंकि ये वायु के अन्धकार और जल की गाढ़ता के कारण, किसी और दूसरे रास्ते के न मालूम होने से, और जोखिम ज़ियादा तथा लाभ शून्यमात्र होने के कारण जहाज़ चलाने के योग्य नहीं। इसीलिए प्राचीन लोगों ने समुद्र तथा इसके किनारों पर निशान लगा दिये हैं जिससे कोई इसमें प्रवेश न करे।

शीत के कारण वासयोग्य जगत् उत्तर तक नहीं पहुँचता। जिन कुछ एक स्थानों में यह उत्तर में घुसा भी है वहाँ इसका आकार जीभों और खाड़ियों का सा है। दक्षिण में यह सागर-तट तक पहुँच गया है। यह सागर पश्चिम और पूर्व में व्यापक सागर के साथ मिला हुआ है। यह दक्षिण सागर जहाज़ चलाने के लायक़ है। वासयोग्य जगत् की यह दक्षिणी चरम सीमा नहीं। इसके विपरीत बसने लायक़ जगत् छोटे और बड़े द्वीपों के रूप में, जिनसे सागर भरा हुआ है, और भी आगे दक्षिण की ओर निकल गया है। इस दक्षिण प्रदेश में जल और स्थल का अपनी स्थिति के लिए आपस में झगड़ा चल रहा है, जिससे कहीं तो स्थल जल के अन्दर, और कहीं जल स्थल के अन्दर घुसता चला गया है।

पृथ्वी के पश्चिमी अर्धभाग में महाद्वीप समुद्र में दूर तक घुस गया है, और दक्षिण में इसके किनारे दूर तक फैल रहे हैं। इस महाद्वीप के मैदानों में पाश्चात्य हबशी लोग रहते हैं। यहाँ से ही ग़ुलाम लाये जाते हैं। और चन्द्रमा के पर्वत हैं जिन पर नील नदी के स्रोत हैं। इसके किनारे पर, और किनारे के सामने के द्वीपों पर ज़न्ज की विविध जातियाँ रहती हैं। अनेक खाड़ियाँ हैं जो पृथ्वी के इस पश्चिमी अर्द्धांश में महाद्वीप के अन्दर घुसी हुई हैं—यथा बर्बरा की खाड़ी, कलाईसमा (लाल समुद्र) की खाड़ी, और फ़ारस की खाड़ी; और इन खाड़ियों के बीच में पश्चिमी महाद्वीप थोड़ा बहुत महासागर में घुसा हुआ है।

पृथ्वी के पूर्वीय अर्धांश में समुद्र महाद्वीप के भीतर उतना ही गहरा घुस गया है जितना कि पश्चिमी अर्धांश में महाद्वीप दक्षिणी समुद्र में घुसा हुआ है, और अनेक स्थानों में इसने खाड़ियाँ और मुहाने बनाये हैं—खाड़ियाँ समुद्र के भाग होते हैं और मुहाने समुद्र

की ओर नदियों के निर्गम । यह समुद्र प्रायः अपने किसी टापू या अपने इर्द-गिर्द के किनारे के नाम पर कहलाता है। परन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध समुद्र के केवल उसी भाग से है जिसके किनारे पर भारतवर्ष स्थित है, और इसीसे इसका नाम भारतीय सागर है।

एशिया और योरुप की शैल-प्रणाली।

वासयोग्य जगत् के पर्वतों के आकार के विषय में आप कल्पना कीजिए कि देवदारु की रीढ़ के जोड़ों के सदृश एक अत्युच्च पर्वत-माला पृथ्वी के मध्यवर्ती अक्ष में से, और रेखांश में पूर्व से पश्चिम तक, चीन, तिब्बत, तुर्कों के देश, काबुल, बदख़शान, तोख़ारिस्तान, बामियान, अलग़ोर, ख़ुरासान, मीडिया, अज़रबायजान, आर्मेनिया, रोमन साम्राज्य, फ़ाङ्क लोगों के देश, और जलालिक़ा जाति (गलीशियन) के देश में से होती हुई फैल रही है। इस सुदीर्घ गिरिमाला की चौड़ाई भी काफ़ी है। इसके अतिरिक्त इसकी कई मोड़ें भी हैं जिनके अन्दर आबाद मैदान हैं। इन मैदानों को इन पर्वतों से उत्तर और दक्षिण दोनों ओर बहनेवाली नदियों का जल मिलता है। इन मैदानों में से एक भारतवर्ष है। इसकी दक्षिण-सीमा पर पूर्वोक्त भारतीय सागर है और शेष तीन ओर ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं जिनका जल बहकर इसमें जाता है। परन्तु यदि आप भारत की भूमि को अपनी आँखों से देखें और

पृष्ठ ९७

भारत, एक नूतन पुलिनमय रचना।

उसके स्वरूप पर विचार करें—यदि आप उन गोल हुए पत्थरों पर ध्यान दें जो पृथ्वी के अन्दर उसको बहुत गहरा खोदने पर भी मिलते हैं, जो पर्वतों के समीप और वहाँ बहुत बड़े हैं जहाँ नदियों का प्रवाह बहुत प्रबल है; जो पर्वतों से अधिक दूरी पर और वहाँ छोटे हैं जहाँ नदियों की गति मन्द है; जो नदियों के मुहानों और समुद्र के समीप जहाँ नदियों का पानी स्थिर होने लगता है रेत के रूप में चूरा चूरा हुए मालूम

होते हैं—यदि आप इन सब बातों पर विचार करें तो आप इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि भारत किसी समय समुद्र था जो कि नदियों की लाई हुई मिट्टी से शनैः शनैः भर गया है।

मध्यदेश, कनौज, माहूर और थानेश्वर के विषय में प्रथम कल्पना।

भारत का मध्य कनोज (कनौज) के इर्द गिर्द का देश है जिसे कि वे मध्य देश अर्थात् राज्य का मध्यभाग कहते हैं। भूगोल-विद्या की दृष्टि से यह मध्य या केन्द्र है क्योंकि यह पर्वतों और समुद्र के ठीक मध्य में, शीत और उष्ण प्रान्तों के बीच में, और भारत के पूर्वीय और पश्चिमीय सीमान्त प्रदेशों के मध्य में स्थित है। परन्तु यह राजनैतिक केन्द्र भी है क्योंकि पूर्व समयों में उनके बहुत प्रसिद्ध शूरवीर और राजागण यहाँ ही निवास करते थे।

सिन्ध देश कनौज के पश्चिम में है। स्वदेश से सिन्ध में जाने के लिए हम नीमरोज़ अर्थात् सिजिस्तान के देश से चलते हैं, परन्तु हिन्द अर्थात् विशेष भारत में जाने के लिए हमें काबुल की ओर से जाना पड़ता है। किन्तु एक यही सम्भव मार्ग नहीं। यदि यह मान लिया जाय कि आप रास्ते में पड़नेवाली बाधाओं को दूर कर सकते हैं तो फिर आप भारत में सब तरफ़ों से प्रवेश कर सकते हैं। भारत के पश्चिमीय सीमाप्रदेश में जो पर्वत हैं उनमें हिन्दुओं की, या उनसे निकट सम्बन्ध रखनेवाले लोगों की जातियाँ—द्रोही असभ्य जातियाँ—हैं जो कि हिन्दू जाति के दूरतम सीमा-प्रदेशों तक फैली हुई हैं।

कनौज गङ्गा के पश्चिम में एक बहुत बड़ा शहर है, परन्तु राजधानी के यहाँ से उठकर बारी नगर में चले जाने से, जो कि गङ्गा के पूर्व में है, अब इसका एक बहुत बड़ा भाग खँडहर पड़ा है। इन दो शहरों के बीच तीन या चार दिन का रास्ता है।

जिस प्रकार कनौज (कान्यकुब्ज) पाण्डु-पुत्रों के कारण प्रसिद्ध हो गया है उसी प्रकार माहूर (मथुरा) नगरी वासुदेव के कारण विख्यात है। यह जौन (यमुना) नदी के पूर्व में स्थित है। माहूर और कनौज के बीच २८ फ़र्सख़ का अन्तर है।

तानेशर (थानेश्वर) दो नदियों के बीच, कनौज और माहूर दोनों के उत्तर में, कनौज से कोई ८० फ़र्सख़, और मथुरा से कोई ५० फ़र्सख़ के अन्तर पर स्थित है।

गङ्गा नदी का स्रोत उन पर्वतों में है जिन का उल्लेख पहले हो चुका है। इसका स्रोत गङ्गाद्वार कहलाता है। इस देश की अन्य बहुत सी नदियों के स्रोत भी उन्हीं पर्वतों में हैं जिनका उल्लेख हम उचित स्थल पर पहले कर आये हैं।

भारतवर्ष के विविध स्थानों के बीच की दूरियों के विषय में, जिन लोगों ने उनको आप साक्षात् नहीं देखा उन्हें ऐतिह्य के भरोसे रहना ज़रूरी है। परन्तु दुर्भाग्य से ऐतिह्य का स्वरूप ऐसा है कि बतलीमूस पहले ही इसका प्रचार करने-वालों और क़िस्सा-गोई की ओर उनकी प्रवृत्ति की अनवरत रूप से शिकायत करता है। सौभाग्य से मैंने उनकी झूठी बातों को रोकने के लिए एक निश्चित नियम पा लिया है। हिन्दू प्रायः गिनते हैं कि एक बैल २००० और ३००० मना बोझ उठा सकता है (जो कि उस बोझ से अनन्त गुना अधिक है जिसको एक बैल एक दफ़े उठा सकता है।) इस-लिए वे इस बात पर बाध्य हैं कि क़ाफ़िले को आगे और पीछे अनेक दिन तक—वास्तव में, उतनी देर तक जब तक कि बैल उस बोझ को जो कि उसके लिए नियत किया गया है मार्ग के एक सिरे से दूसरे सिरे तक न ले जाय, एक ही सफ़र करने देते हैं, और तब वे उन दो स्थानों के बीच के अन्तर को उतने दिनों का कूच गिनते हैं जितने कि

दूरियाँ मालूम करने की हिन्दू-विधि।

क़ाफ़िले ने आगे और पीछे जाने में सब मिलाकर लगाये हैं। बड़े उद्यम और जागरूकता के साथ ही हम हिन्दुओं के बयानों को किसी हद तक शुद्ध कर सकते हैं। फिर भी, जो कुछ हम नहीं जानते उसके कारण जो कुछ हम जानते हैं उसको दबाने का संकल्प नहीं कर सकते। जहाँ कहीं हमारी भूल हो उसके लिए हम पाठकों से क्षमा माँगते हुए अब आगे चलते हैं।

कनौज से प्रयाग के वृत्त तक और पूर्वीय तीर तक।

कनौज से चलकर जौन और गङ्गा नामक दो नदियों के बीचों बीच दक्षिण की ओर जानेवाला मनुष्य निम्नलिखित प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में से गुज़रेगा:— जज्जमौ, जो कि कनौज से १२ फ़र्सख़ है, एक फ़र्सख़ चार मील या एक कुरोह के बराबर होता है; अभापुरी, ८ फ़र्सख़; कुरह, ८ फ़र्सख़; बर्हमशिल, ८ फ़र्सख़; प्रयाग का वृक्ष, १२ फ़र्सख़ अर्थात् वह स्थान जहाँ जौन और गङ्गा का संगम है, जहाँ कि हिन्दू उन विविध प्रकार की यातनाओं से अपने आप को व्यथित करते हैं जिनका वर्णन धार्मिक सम्प्रदायों की पुस्तकों में है। प्रयाग से उस स्थान का अन्तर जहाँ कि गङ्गा समुद्र में गिरती है १२ फ़र्सख़ है।

पृष्ठ ९८

देश के दूसरे प्रान्त प्रयाग के वृक्ष से दक्षिणतः समुद्र-तट की ओर फैले हुए हैं। अर्कु-तीर्थ प्रयाग से १२ फ़र्सख़; ऊवर्यहार राज्य, ४० फ़र्सख़; समुद्र तट पर ऊर्दबीशौ ५० फ़र्सख़।

वहाँ से समुद्र-तट के साथ साथ पूर्व की ओर वे देश हैं जो कि इस समय जौर के अधीन हैं; पहले दगौर, ऊर्दबीशौ से ४० फ़र्सख़; काञ्जी ३० फ़र्सख़; मलय, ४० फ़र्सख़; कुङ्क, ३० फ़र्सख़, जो कि इस दिशा में जौर के अधीन अन्तिम स्थान है।

बारी से गङ्गा के मुहाने तक।

बारी से गङ्गा के पूर्वीय किनारे के साथ साथ चलते हुए तुम्हें रास्ते में ये स्थान मिलेंगे:—अजोदहा (अयोध्या), बारी से २५ फ़र्सख़; प्रसिद्ध बनारसी, २५ फ़र्सख़। फिर वहाँ से रुख़ बदल कर, और दक्षिण के स्थान पूर्व की ओर चलने से तुम्हें ये स्थान मिलेंगे:—शरवार, बनारसी से ३५ फ़र्सख़; पाटलिपुत्र, २० फ़र्सख़; मुङ्गीरी, १५ फ़र्सख़; जंपा, ३० फ़र्सख़; दुगुमपूर, ५० फ़र्सख़; गङ्गासायर, ३० फ़र्सख़, जहाँ कि गङ्गा समुद्र में गिरी है।

कनौज से नीपाल में से होते हुए भोटेश्वर तक।

कनौज से पूर्व की ओर चलते हुए तुम इन इन स्थानों में आते हो;—बारी, १० फ़र्सख़; दूगुम, ४५ फ़र्सख़; शिलहट राज्य, १० फ़र्सख़; बिहत नगर, १२ फ़र्सख़। आगे चल कर दाईं ओर का देश तिलवत, और वहाँ के लोग तरू कहलाते हैं। ये लोग बहुत काले और तुर्कों के सदृश चपटी नाकवाले होते हैं। वहाँ से तुम कामरू के पर्वतों पर जा पहुँचते हो जो कि समुद्र तक फैले हुए हैं।

तिलवत के सम्मुख दाईं ओर का देश नैपाल-राज्य है। एक मनुष्य ने, जो उन देशों में घूम चुका था, मुझे निम्नलिखित वृत्तान्त सुनाया था:—"तन्वत में पहुँचकर, उसने पूर्वीय दिशा को छोड़ दिया और बाईं ओर को मुड़ पड़ा। उसने नैपाल को कूच किया जो कि ४० फ़र्सख़ का मार्ग है, और जिसके बहुत से भाग में चढ़ाई है। नैपाल से वह तीस दिन में भोटेश्वर पहुँचा। यह कोई ८० फ़र्सख़ का रास्ता है। इसमें उतराई की अपेक्षा चढ़ाई अधिक है। फिर एक पानी आता है जिसको अनेक बार पुलों द्वारा पार करना पड़ता है। ये पुल तख़्तों को रस्सों से दो लाठियों के साथ बाँधकर बनाये जाते हैं। ये लाठियाँ एक चट्टान से दूसरी चट्टान तक गई हुई होती हैं और

इनको दोनों ओर बनाये हुए मीनारों के साथ बाँधते हैं। लोग ऐसे पुल पर से कन्धों पर बोझ रख कर पार ले जाते हैं, जब कि पुल के नीचे, १०० गज़ की गहराई पर, पानी हिम-सदृश श्वेत झाग उछालता हुआ चट्टानों को टुकड़े टुकड़े कर डालने की धमकी देता रहता है। पुलों की दूसरी ओर जाकर बोझ को बकरियों की पीठ पर लाद दिया जाता है। मेरा संवाददाता सुनाता था कि मैंने वहाँ चार नेत्रोंवाले मृग देखे थे, और यह कोई प्रकृति की आकस्मिक दुर्घटना न थी, किन्तु मृगों की सारी जाति ही इसी प्रकार की थी।

"भोटेशर तिब्बत का पहला सीमान्त प्रदेश है। वहाँ लोगों की भाषा, वेश, और देहाकार बदल जाते हैं। वहाँ से उच्चतम गिरिशिखर की दूरी २० फ़र्सख़ है। इस पर्वत की चोटी से भारत कुहरे के नीचे एक काला विस्तार, चोटी के नीचे के पर्वत छोटी छोटी पहाड़ियाँ, और तिब्बत और चीन लाल मालूम होते हैं। तिब्बत और चीन की तरफ़ का उतार एक फ़र्सख़ से कम है।"

कनौज से दक्षिण-पूर्व की ओर, गङ्गा के पशिचमी किनारे के साथ साथ चलते हुए, तुम जजाहूती राज्य में पहुँच जाते हो जो कि कनौज से ३० फ़र्सख़ है।

कनौज से बनवास तक। पृष्ठ ९९

इस नगर और कनौज के बीच भारत के दो परम प्रसिद्ध क़िले अर्थात् ग्वालियर और कालञ्जर हैं। दहाल [—फ़र्सख़], एक देश है जिसकी राजधानी तिऔरी, और जिसका वर्तमान राजा गङ्गेय है।

कन्नकर-राज्य, २० फ़र्सख़ है। अपसूर, बनवास, समुद्र-तट पर हैं।

कनौज से दक्षिण-पश्चिम की ओर चलकर तुम इन स्थानों में पहुँचते हो :—आसी, कनौज से १८ फ़र्सख़; सहन्या, १७ फ़र्सख़; जन्दरा, १८ फ़र्सख़; राजौरी, १५ फ़र्सख़; गुजरात-राजधानी बज़ान, २० फ़र्सख़। इस नगर को हमारे लोग

कनौज से बज़ान।

नारायण कहते हैं। इसके ह्रास के अनन्तर यहाँ के निवासी उजड़ कर जदूर (?) नामक एक दूसरे स्थान में जा बसे थे।

माहूर से धार तक।

माहूर और कनौज के बीच उतना ही अन्तर है जितना कि कनौज और बज़ान के बीच है, अर्थात् २८ फ़र्सख़। यदि कोई मनुष्य माहूर से उजैन को जाय तो उसे रास्ते में ऐसे ग्राम मिलेंगे जिनका आपस में पाँच फ़र्सख़ और इससे कम अन्तर है। पैंतीस फ़र्सख़ चलने के बाद वह दूदही नामक एक बड़े गाँव में पहुँचेगा; वहाँ से बामहूर, दूदही से १७ फ़र्सख़; भैलसा, ५ फ़र्सख़ जो कि हिन्दुओं का एक परम प्रसिद्ध स्थान है। इस स्थान का नाम और वहाँ की देव-मूर्त्ति का नाम एक ही है। वहाँ से अर्दीन, ९ फ़र्सख़। जिस देव-मूर्त्ति का वहाँ पूजन होता है, उसका नाम महाकाल है। धार, ७ फ़र्सख़।

बज़ान से मन्दगिर।

बज़ान से दक्षिण की ओर चलकर तुम मैवाड़ में आते हो, जो कि बज़ान से २५ फ़र्सख़ है। यह एक राज्य है जिसकी राजधानी जन्त्रौर है। इस नगर से मालवे, और उसकी राजधानी धार का अन्तर २० फ़र्सख़ है। उजैन नगर ७ फ़र्सख़ धार के पूर्व में है।

उजैन से भैलसाँ तक, जो कि मालवे में ही है, १० फ़र्सख़ का अन्तर है।

धार से दक्षिण की ओर चलने से ये स्थान आते हैं:—भूमिहर, धार से २० फ़र्सख़; कण्ड, २० फ़र्सख़; नमावुर, नर्मदा के तट पर, १० फ़र्सख़; अलीसपुर, २० फ़र्सख़; मन्दगिर, गोदावरी के तट पर, ६० फ़र्सख़।

फिर धार से दक्षिण दिशा में चलने पर तुम्हें ये स्थान मिलेंगे:—

धार से तान तक। नमिय्य की घाटी, धार से ७ फ़र्सख़; महरट्टा देश, १८ फ़र्सख़; कुङ्कन प्रान्त और समुद्र तट पर इसकी राजधानी तान, २५ फ़र्सख़।

भारत के विविध जन्तु। लोग कहते हैं कि कुङ्कन के मैदानों में जो कि दानक कहलाता है, शरव (संस्कृत शरभ) नाम का एक जन्तु रहता है। इसके चार पैर होते हैं, परन्तु इसकी पीठ पर भी चार पैरों के सदृश कोई चीज़ ऊपर की ओर उठी हुई रहती है। इसकी एक छोटी सी सूण्ड और दो बड़े सींग होते हैं जिनसे यह हाथी पर आक्रमण करता और उसको चीर कर दो कर देता है। इसका आकार भैंस का सा होता है पर यह गैंडे से बड़ा होता है। लोगों में प्रसिद्ध है कि कभी कभी यह किसी एक जन्तु को अपने सींगों में फँसाकर इसे या इसके एक अंश को अपनी पीठ पर ऊपर की टाँगों के बल रख लेता है। वहाँ उसके सड़ने से कीड़े पड़ जाते हैं और वे इसकी पीठ में घुस जाते हैं। इसलिए यह वृक्षों के साथ अपने शरीर को लगातार रगड़ता रहता है, और अन्त को यह मर जाता है। इसी जन्तु के विषय में कहते हैं कि जब बादल गरजता है तो यह समझता है कि कोई जन्तु बोल रहा है। तब यह झट इस कल्पित शत्रु पर आक्रमण करने के लिए भागता है; उसके पीछे भागते हुए यह पर्वतों की चोटियों पर चढ़ जाता है और वहाँ से उसकी ओर छलाँग मारता है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि यह गहरे गढ़ों में गिर कर चकनाचूर हो जाता है।

भारत में, विशेषतः गङ्गा के आस पास, गैंडा एक बड़ी संख्या में पाया जाता है। इस की बनावट भैंस को सी, खाल काली छिलके-दार और ठोड़ी के नीचे लटकती हुई चद्दर होती है। इसके प्रत्येक

पैर पर तीन पीले सुम होते हैं, इनमें से सबसे बड़ा आगे की ओर, और बाक़ी दो दोनों ओर होते हैं। पूँछ लम्बी नहीं होती; दूसरे जन्तुओं की अपेक्षा इसकी आँखें गालों के बहुत नीचे धँसी हुई होती हैं। नाक की चोटी पर एक सींग होता है जो कि ऊपर की ओर झुका रहता है। ब्राह्मणों को गैण्डे का मांस खाने का विशेष अधिकार है। एक तरुण गैण्डे को सामने आनेवाले हाथी पर आक्रमण करते मैंने स्वयं देखा है। गैण्डे ने अपने सींग के द्वारा हाथी के एक अगले पाँव को आहत करके उसे मुँह के बल गिरा दिया।

पृष्ठ १००

मैं समझता था कि गैंडे को ही कर्कदन्न कहते हैं; परन्तु एक मनुष्य ने, जो हबशियों के देश के अन्तर्गत सुफ़ाला नामक स्थान को देख आया था, मुझे बताया कि कर्कदन्न की अपेक्षा कर्क जिसको हबशी लोग इम्पीला कहते हैं और जिसके सींग के हमारे चाकुओं के दस्ते बनते हैं गैण्डे से अधिक मिलता है। इसके अनेक रङ्ग होते हैं। इसकी खोपड़ी पर गाजर की शकल का एक सींग होता है। यह जड़ पर चौड़ा होता है और बहुत ऊँचा नहीं होता। सींग का डण्डा (तीर) अन्दर से काला और बाक़ी सब जगह सफ़ेद होता है। माथे पर इसी प्रकार का एक दूसरा और अधिक लम्बा सींग होता है। ज्योंही यह जन्तु सींग से किसी को मारना चाहता है त्योंही यह सीधा हो जाता है। यह इस सींग को चट्टानों से रगड़ कर काटने और चुभाने के लिए तेज़ कर लेता है। इसके सुम होते हैं और एक गधे की सी बालोंवाली पूँछ होती है।

नील नदी के सदृश भारत की नदियों में भी घड़ियाल होते हैं। इसीसे अल्प-बुद्धि अलजाहिज़ ने, नदियों के मार्गों और सागर के आकार को न जानने के कारण, यह समझ लिया था कि मुहरान

की नदी (सिन्धु नदी) नील की एक शाखा है। इसके अतिरिक्त भारत की नदियों में मगर की जाति के कई दूसरे अद्भुत जीव होते हैं। ये विचित्र प्रकार की मछलियाँ होती हैं। और एक चर्म के थैले जैसा जन्तु होता है जो कि जहाज़ में से दिखाई देता है और तैर तैर कर खेलता है। इसको वुलूं (सूसमार ?) कहते हैं। मैं समझता हूँ कि यह डोलफिन या डोलफिन की कोई जाति है। लोग कहते हैं कि इसके सर में डोलफिन की तरह साँस लेने के लिए एक छिद्र होता है।

दक्षिणीय भारत की नदियों में एक जन्तु रहता है जिसके ग्रह जलतन्तु, और तन्दुआ आदि अनेक नाम हैं। यह पतला परन्तु बहुत लम्बा होता है। लोग कहते हैं कि यह छिप कर घात में पड़ा रहता है, ज्योंही कोई मनुष्य या जन्तु जल में घुसकर खड़ा होता है, यह एकदम उस पर आक्रमण कर देता है। पहले यह कुछ दूरी से ही अपने शिकार के गिर्द चक्कर डालता रहता है यहाँ तक कि इसकी लम्बाई समाप्त हो जाती है। तब यह अपने आप को इकट्ठा करता, और शिकार के पाँव के गिर्द गाँठ की तरह लिपट जाता है, जिससे वह गिर कर मर जाता है। एक मनुष्य ने, जिसने इस जन्तु को देखा था, मुझे बताया कि इसका सिर कुत्ते का होता है, और एक पूँछ होती है जिसके साथ अनेक लम्बी लम्बी आकर्षणियाँ लगी रहती हैं। जिस अवस्था में शिकार काफ़ी थका नहीं रहता यह अपनी इन आकर्षणियों से उसे जकड़ लेता है। इन तारों से यह शिकार को अपनी पूँछ के पास खींच लाता है। जब वह जन्तु एक बार पूँछ की दृढ़ लपेट में आजाता है तब फिर वह बच नहीं सकता।

इस अप्रस्तुत विषय को छोड़कर अब हम प्रस्तुत विषय की ओर आते हैं।

बज़ाना से दक्षिण-पश्चिम की ओर कूच करने पर तुम अनहिलवाड़ा में, जो बज़ाना से ६० फ़र्सख़ है, और समुद्र-तट पर सोमनाथ में, जो कि ५० फ़र्सख़ है, पहुँच जाते हो।

बज़ाना से सोमनाथ तक।

अनहिलवाड़ा से दक्षिण दिशा में चलने पर ये स्थान मिलते हैं:— लारदेश, इस देश की बिहरोज और रिहञ्जूर नामक दो राजधानियाँ, जो कि अनहिलवाड़ा से ४२ फ़र्सख़ हैं। ये दोनों तान से पूर्व की ओर सागर-तट पर हैं।

अनहिलवाड़ा से लोहरानी तक।

बज़ाना से पश्चिम की ओर चलने से ये स्थान मिलते हैं:—मूलतान, बज़ाना से ५० फ़र्सख़; भाती, १५ फ़र्सख़।

भाती से दक्षिण-पश्चिम की ओर सफ़र करने से ये स्थान मिलते हैं:—अरोर, भाती से १५ फ़र्सख़, जो कि सिन्धु नदी की दो शाखाओं के बीच एक पोत-सदृश नगर है; बमहनवा अलमनसूरा, २० फ़र्सख़; लोहरानी, सिन्धु नदी के मुहाने पर, ३० फ़र्सख़।

कनौज से उत्तर-उत्तर-पश्चिम दिशा में जाने पर ये स्थान रास्ते में आते हैं:—शिरशारह, कनौज से ५० फ़र्सख़; पिञ्जौर, १८ फ़र्सख़, पर्वतों पर स्थित है, इसके सामने मैदान में तानेशर (थानेश्वर) नगर है; दहमाल, जालन्धर की राजधानी, पर्वतों के तल में, १८ फ़र्सख़; बल्लावर, १० फ़र्सख़; यहाँ से पश्चिम की ओर चलने पर लद्द, १३ फ़र्सख़; राजगिरि का क़िला, ८ फ़र्सख़; वहाँ से उत्तर की ओर कूच करने पर काश्मीर, २५ फ़र्सख़।

कनौज से काश्मीर।

कनौज से पश्चिम की ओर सफ़र करने से ये स्थान मिलते हैं:— दियामौ, कनौज से १० फ़र्सख़; कुती, १० फ़र्सख़; आनार, १० फ़र्सख़; मीरत,

कनौज से ग़ज़नी।

पृष्ठ १०१

१० फ़र्सख़; पानीपत, १० फ़र्सख़। पिछले दो स्थानों के मध्य में जौन (यमुना) नदी बहती है; कवीतल, १० फ़र्सख़; सुन्नाम, १० फ़र्सख़।

वहाँ से उत्तर-पश्चिम की ओर चलने से ये स्थान आते हैं:— आदित्तहौर, ९ फ़र्सख़; जज्जनीर, ६ फ़र्सख़; मन्दहूक्कूर, जो कि इराव नदी के पूर्व लौहावुर की राजधानी है, ८ फ़र्सख़; चन्द्राह नदी, १२ फ़र्सख़; जैलम नदी, जो कि बियत्त नदी के पश्चिम में है, ८ फ़र्सख़; कन्धार की राजधानी वैहिन्द, जो सिन्धु नदी के पश्चिम में है, २० फ़र्सख़; पुरशावर, १४ फ़र्सख़; दुनपूर, १५ फ़र्सख़; काबुल, १२ फ़र्सख़; ग़ज़न (गजनी) १७ फ़र्सख़।

काश्मीर का वृत्तान्त।

कशमीर एक ऐसी समस्थली पर स्थित है जिसको चारों ओर से अगम्य पर्वत घेरे हुए हैं। इस देश का दक्षिण और पूर्व हिन्दुओं के पास है, पश्चिम बोलर शाह और शुगनान शाह आदि विविध राजाओं के पास, और उससे भी परे के भाग बदख़शान की सीमान्त-रेखा तक बखान शाह के पास हैं। इस देश का उत्तर और कुछ पूर्वीय भाग खुतन और तिब्बत के तुर्कों के पास है। भोटेशर-शिखर से कशमीर तक की दूरी, तिब्बत के रास्ते, कोई ३०० फ़र्सख़ है।

कशमीरी लोग पयादे हैं, उनके पास न कोई सवारी का जानवर और न कोई हाथी है। उनमें से जो धनी हैं वे कत्त नामक पालकियों में चढ़ते हैं, जिनको मनुष्य कन्धों पर उठाते हैं। उन्हें अपने देश की प्राकृतिक शक्ति की विशेष चिन्ता रहती है, इसलिए वे अपने देश के प्रवेश-द्वारों और सड़कों पर सदा कड़ा पहरा रखते हैं, जिससे उनके साथ किसी प्रकार का व्यापार करना बड़ा ही कठिन है। प्राचीन समयों में वे एक दो विदेशियों, विशेषतः यहूदियों को अपने देश में प्रवेश करने की आज्ञा दे दिया करते थे, परन्तु अब वे, विदे-

शियों का तो कहना ही क्या, उस हिन्दू को भी नहीं जाने देते जिसका उनसे व्यक्तिगत परिचय न हो।

कशमीर में प्रवेश करने का सबसे प्रसिद्ध मार्ग बब्रहान नगर से है। यह नगर सिन्धु और जैलम नामक नदियों के ठीक मध्य में है। वहाँ से नदी पर के उस पुल को जाते हैं जहाँ कि कुसनारी के पानी में महवी का पानी आ कर मिला है। ये दोनों शमीलान के पर्वतों से निकल कर जैलम (झेलम) में मिलती हैं। यह दूरी ८ फ़र्सख़ है।

वहाँ से तुम पाँच दिन में उस कन्दरा में पहुँच जाते हो जहाँ से कि जैलम नदी निकलती है। इस दरी के दूसरे सिरे पर, जैलम नदी के दोनों तरफ़ द्वार की चौकी है। वहाँ से, कन्दरा को छोड़ कर, तुम मैदान में आते हो, और दो और दिनों में, कशमीर की राजधानी अद्दिष्टान में पहुँच जाते हो। रास्ते में ऊशकारा नामक गाँव आता है। यह बारामूला की तरह उपत्यका के दोनों ओर स्थित है।

कशमीर का नगर ४ फ़र्सख़ भूमि में जैलम नदी के दोनों किनारों के साथ साथ बना हुआ है। ये दोनों किनारे पुलों और नावों द्वारा आपस में मिले हुए हैं। जैलम का स्रोत हरमकोट के पहाड़ों में है। गङ्गा भी इन्हीं पर्वतों से निकलती है। ये अत्यन्त शीतल, अभेद्य प्रदेश हैं जहाँ हिम सदा जमी रहती है। इनके पीछे महाचीन है। पर्वतों को छोड़ने के बाद दो दिन के मार्ग पर जैलम अद्दिष्टान में पहुँच जाती है। चार फ़र्सख़ आगे जाकर यह एक वर्ग फ़र्सख़ दलदल में जा गिरती है। इस दलदल के किनारों पर और इसके ऐसे भागों पर जिनको वे दुरुस्त कर सके हैं लोगों ने आबादी बसाई है। इस दलदल को छोड़ कर जैलम ऊशकारा नगर के पास से गुज़रती है; और फिर उपर्युक्त दरी में जा घुसती है।

सिन्धु नदी की उपरि धारा और भारत के उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश।

सिन्धुनदी तुर्कों के प्रदेश के अन्तर्गत युनङ्ग पर्वतों से निकलती है। वहाँ तुम इस रीति से पहुँच सकते हो:—जिस दर्रो से तुम ने कशमीर में प्रवेश किया है उसे छोड़ने के बाद समस्थली में आइए। अब तुम्हारे बायें हाथ और दो दिन के रास्ते पर बोलोर और शमिलान नामक दो तुर्क जातियों के पहाड़ हैं। ये जातियाँ भत्तवयनि कहलाती हैं। इनके राजा की उपाधि भत्त शाह है। गिलगित, असविरा और शिलतास उनके नगर हैं और तुर्की उनकी बोली है। उनके आक्रमणों से कशमीर की बहुत हानि होती है। नदी की बाईं ओर के साथ साथ चलने से तुम सदा बनी हुई भूमि में से गुज़र कर राजधानी में पहुँच जाते हो; दाईं ओर चलने से तुम ग्रामों में से गुज़रते हो जोकि राजधानी के दक्षिण में एक दूसरे के पास पास हैं, और वहाँ से तुम कुलार्जक पर्वत पर पहुँच जाते हो जो कि दुम्बावन्द पर्वत की तरह एक गुम्बज़ के सदृश है। वहाँ हिम कभी नहीं पिघलता। ताकेशर और लौहावर के प्रदेश से यह सदा दिखाई देता है। इस शिखर और कशमीर की समस्थली के बीच दो फ़र्सख़ का अन्तर है। राजगिरि का क़िला इसके दक्षिण में और लहूर का क़िला इसके पश्चिम में है। मैंने इन ऐसी मज़बूत जगहें कभी नहीं देखीं। राजावाड़ी का शहर इस चोटी से तीन फ़र्सख़ है। यही दूरतम स्थान है जहाँ तक कि हमारे व्यापारी व्यापार करते हैं। इसके परे वे कभी नहीं जाते।

पृष्ठ १०२

उत्तर में भारत का सीमान्त प्रदेश यही है।

भारत के पश्चिमी सीमान्त पर्वतों में अफ़ग़ानों की विविध जातियाँ रहती हैं, और वे सिन्धु की उपत्यका के पड़ोस तक फैली हुई हैं।

भारत की दक्षिणीय सीमा पर समुद्र है। भारत का समुद्र-तट मकरान की राजधानी तीज़ से आरम्भ होता है, और वहाँ से दक्षिण-पूर्व दिशा में, अलदैबल-प्रदेश की ओर ४० फ़र्सख़ से अधिक दूरी तक फैला हुआ है। इन दोनों स्थानों के बीच तूरान की खाड़ी है। खाड़ी पानी के एक कोने या टेढ़ी मेढ़ी रेखा के सदृश सागर से भूखण्ड में घुसी होती है, और विशेषतः ज्वारभाटे के कारण जहाज़ों के आने जाने के लिए भयानक होती है। कोल या मुहाना भी कुछ कुछ खाड़ी के ही सदृश होता है परन्तु यह सागर के भूखण्ड में घुसने से नहीं बनता। यह बहते पानी के फैलाव से बनता है, जो कि वहाँ जाकर खड़े पानी में परिवर्तित और समुद्र के साथ संयुक्त होजाता है। ये कोल भी जहाज़ों के लिए भयानक हैं क्योंकि उनका पानी मीठा होता है और भारी वस्तुओं को वैसी अच्छी तरह नहीं उठा सकता जैसी अच्छी तरह से खारी पानी उठाता है।

भारत के पश्चिमीय और दक्षिणीय सीमान्त प्रदेश।

उपरोक्त खाड़ी के बाद छोटा मुँह, बड़ा मुँह, फिर बवारिज अर्थात् कच्छ और सोमनाथ के समुद्री लुटेरे आते हैं। उनका यह नाम इसलिए है कि वे बीर नामक जहाजों में बैठ कर समुद्र में लूट और डकैती करते हैं। सागर-तट पर ये स्थान हैं:—तवलशेश्वर, दैबल से ५० फ़र्सख़; लोहरानी, १२ फ़र्सख़; बग, १२ फ़र्सख़; कच्छ, जहाँ कि मुक्ल वृक्ष होता है, और बारोई, ६ फ़र्सख़; सोमनाथ, १४ फ़र्सख़; कम्बायत, ३० फ़र्सख़; असविल, दो दिन; बिहरोज, ३० फ़र्सख़ (?); सन्दान, ५० फ़र्सख़; सूबार, ६ फ़र्सख़; तान, ५ फ़र्सख़।

वहाँ से तीर-रेखा लारान देश की ओर आती है जिसमें कि जीमूर शहर है, और वहाँ से वल्लभ, कान्जी, दर्वद को जाती है। इसके उप-

रान्त एक बड़ी खाड़ी है जिसमें कि सिङ्गलदीब अर्थात् सरानदीब का टापू (लङ्का) है । खाड़ी के गिर्द पञ्जयावर नगर स्थित है । जब यह नगर उजड़ गया था तो जौर राजा ने, इसके स्थान, पश्चिम की ओर सागर-तट पर पदनार नामक एक नवीन नगर बसाया था ।

समुद्र-तट पर अगला स्थान उम्मलनार है, फिर रामशेर (रामेश्वर ?) लङ्का के सामने ; इन दोनों में समुद्र की दूरी १२ फ़र्सख़ है । पञ्जयार से रामशेर का अन्तर ४० फ़र्सख़, और रामशेर और सेतुबंध का अन्तर २ फ़र्सख़ है । सेतुबंध का अर्थ समुद्र का पुल है । यह दशरथ के पुत्र राम का बाँधा है जोकि उन्होंने भूखण्ड से लेकर लङ्का के क़िले तक बनाया था । इस समय इसमें अलग अलग पहाड़ ही रह गये हैं जिनमें से समुद्र बहता है । सेतुबंध से सोलह फ़र्सख़ पूर्व की ओर वानरों के किहकिन्द नामक पर्वत हैं । वानरों का राजा प्रतिदिन अपनी सेना के साथ जङ्गल से निकलता है और वे उनके लिए बने हुए विशेष स्थानों पर बैठ जाते हैं । उस प्रदेश के लोग उनके लिए चावल पकाते और पत्तों पर रख कर उनके पास लाते हैं । चावल खाने के बाद वे फिर जङ्गल में लौट जाते हैं । यदि उन्हें चावल न मिलें तो सारे देश का सर्वनाश हो जाता है क्योंकि वे न केवल संख्या में ही बहुत हैं बरन वे हिंस्र और अत्याचारी भी हैं । लोगों का विश्वास है कि वे मनुष्यों की ही एक जाति है जोकि बदल कर बन्दर बन गई है; राक्षसों के साथ युद्ध में राम की सहायता करने के कारण उन्होंने उनको ये ग्राम दान दिये हुए हैं । जब कोई मनुष्य उन्हें मिल जाता है तब वह उन्हें रामायण की कविता सुनाता और राम के मन्त्र बोलता है । वे उन्हें शान्तिपूर्वक सुनते हैं ; बरन यदि वह रास्ते से भटक गया हो तो वे उसे सीधे मार्ग पर डाल देते हैं, और उसे खान पान के द्रव्य देते हैं । ये बातें लोकविश्वास के अनुसार हैं ।

यदि इसमें सत्य का कुछ अंश है तो यह ज़रूर स्वरसंयोग का प्रभाव होगा, जैसा कि हम पहले मृगों के शिकार के सम्बन्ध में कह आये हैं।

पृष्ठ १०२

भारतीय और चीनी समुद्रों के द्वीप।

इस सागर के पूर्वीय द्वीप जो भारत की अपेक्षा चीन के अधिक निकट हैं वे ज़ाबज के टापू हैं जिनको हिन्दू सुवर्ण-द्वीप अर्थात् सोने के टापू कहते हैं। इस सागर के पश्चिम में ज़ञ्ज (हबशियों) के टापू हैं, और मध्य में रम्म और दीव द्वीप (मालेदीव और लकादीव) हैं जिनके साथ कि कुमैर द्वीप भी हैं। दीव नामक टापुओं का यह विशेष गुण है कि वे हौले हौले समुद्र से बाहर निकलते हैं; पहले पहल समुद्र-तल के ऊपर एक रेतीला देश प्रकट होता है; यह अधिक और अधिकतर उठता जाता है और सब दिशाओं में फैलता है यहाँ तक कि यह एक कठिन भूमि बन जाता है। इसके साथ ही एक दूसरे द्वीप का ह्रास होने लगता है। और वह गल कर समुद्र में विलीन हो जाता है। वहाँ के निवासियों को ज्योंही इस ह्रास-क्रिया का पता लगता है त्योंही वे किसी दूसरे अधिक उपजाऊ द्वीप की तलाश करते हैं; अपने नारियल और खजूर के पेड़ों, अनाजों, और घर के सामान को उठा कर वहाँ ले जाते हैं। ये द्वीप अपनी उपज के अनुसार दो श्रेणियों में विभक्त हैं। एक तो दीव-कूढ अर्थात् कौड़ियों के द्वीप, क्योंकि वहाँ वे अपने समुद्र में बोये हुए नारियल के वृक्षों की शाखाओं से कौड़ियाँ इकट्ठी करते हैं। दूसरे दीव कँबार, अर्थात् नारियल की छाल के रस्सों के द्वीप। ये रस्से जहाज़ों के तख़्तों को बाँधने के काम आते हैं।

अलवाक़्वाक़ का टापू कुमैर द्वीपों में है। कुमैर जैसा कि साधारण लोग समझते हैं, किसी ऐसे पेड़ का नाम नहीं जिसमें फल के स्थान

में मनुष्यों के चिल्लाते हुए सिर लगते हैं, बरन एक गोरे रङ्ग की जाति का नाम है जिसके लोगों का क़द छोटा और बनावट तुर्कों की सी होती है। वे हिन्दू-धर्म्मानुयायी हैं और उनमें कानों को छेदने की रीति है। वाक़वाक़ द्वीप के कुछ अधिवासी काले रङ्ग के हैं। हमारे देश में दासों के रूप में उनकी बड़ी माँग है। लोग वहाँ से आबनूस की काली लकड़ी लाते हैं; यह एक पेड़ का गूदा होता है जिसके दूसरे भाग फेंक दिये जाते हैं। मुलम्मा, शौहत, और पीला सन्दल नामक लकड़ियाँ ज़ञ्ज (हबशियों) के देश से लाई जाती हैं।

पहले समयों में सराँदीब (लङ्का) की खाड़ी में मोतियों के तट होते थे, परन्तु इस समय वे उजड़े हुए हैं। जब से सराँदीब के मोतियों का लोप हुआ तब से ज़ञ्ज देश के अन्तर्गत सुफ़ाला में दूसरे मोती मिलने लगे हैं, इसलिए लोग कहते हैं कि सराँदीब के मोती यहाँ से उजड़ कर सुफ़ाला में चले गये हैं।

भारत में जल-वृष्टि।

भारत में बड़ी वर्षायें ग्रीष्म में, जिसे कि वर्षाकाल कहते हैं, होती हैं। भारत का कोई प्रान्त जितना अधिक उत्तर की ओर होता है और जितना कम उसको गिरि-मालायें काटती हैं वहाँ ये मेंह उतने ही विपुल होते और उतनी ही ज़ियादा देर तक रहते हैं। मुलतान के लोग मुझे बताया करते थे कि हमारे यहाँ वर्षाकाल नहीं होता, परन्तु पर्वतों के निकटतर अधिक उत्तरीय प्रान्तों में वर्षाकाल होता है। भातल और इन्द्रवेदी में इसका आरम्भ आषाढ़ मास में होता है, और चार मास तक लगातार इस प्रकार वर्षा होती है मानों पानी के डोल भर भर कर गिराये जा रहे हों। और अधिक उत्तरीय प्रान्तों में, दुनपूर और बर्शावर के बीच कशमीर के पर्वतों के इर्द गिर्द जूदरी की चोटी तक श्रावण मास से आरम्भ होकर ढाई मास पर्यन्त विपुल जल-वृष्टि होती है। परन्तु इस चोटी के

दूसरी ओर मेंह बिलकुल नहीं बरसता, क्योंकि उत्तर में मेघ बहुत भारी होते हैं और उपरितल से बहुत ज़ियादा ऊपर नहीं उठते। फिर जब वे पर्वतों के पास पहुँचते हैं तब उनके साथ टकरा कर अङ्गूर या ज़ैतून की तरह दब जाते हैं। इससे वर्षा रूपी रस नीचे गिरता है और वे पर्वतों के पार कभी नहीं जाते। इस लिए कशमीर में वर्षाकाल नहीं होता, परन्तु माघ मास से शुरू होकर ढाई महीनों तक बराबर तुषार-पात होता है। फिर चैत्र के मध्य के शीघ्र ही पश्चात् कुछ दिन तक निरन्तर जलवृष्टि होती है जिससे तुषार गल जाता है और पृथ्वी साफ़ हो जाती है। इस नियम का अपवाद बहुत कम होता है; परन्तु भारत के प्रत्येक प्रान्त में कुछ एक ऐसी असाधारण ऋतु-सम्बन्धी घटनायें पाई जाती हैं जो दूसरे प्रान्तों में नहीं होतीं।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

ग्रहों, राशि-चक्र की राशियों, चन्द्रस्थानों और तत्सम्बन्धी चीज़ों के नामों पर।

हम पुस्तक के आरम्भ के निकट ही कह आये हैं कि हिन्दुओं की भाषा में मौलिक और व्युत्पन्न दोनों प्रकार के शब्दों का बहुत बड़ा भाण्डार है, यहाँ तक कि एक दृष्टान्त में वे एक चीज़ को अनेक भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। मैंने उन्हें कहते सुना है कि हमारी भाषा में एक सूर्य के लिए एक सहस्र नाम हैं; और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि प्रत्येक ग्रह के भी इतने या इतने के क़रीब ही नाम हैं, क्योंकि (छन्द-रचना के लिए) इनसे कममें उनका काम नहीं चल सकता।

पृष्ठ १०४

सप्ताह के दिनों के नाम।

जिस प्रकार फ़ारसी में शम्बिह शब्द सप्ताह-दिवस की संख्या (दूशम्बिह, सिहशम्बिह, इत्यादि) के पश्चात् आता है, उसी प्रकार सप्ताह के दिनों के नाम नक्षत्रों के परम प्रसिद्ध नामों के बाद वार शब्द जोड़ कर बनाये हुए हैं। वे इस प्रकार कहते हैं—

आदित्य वार, अर्थात् सूर्य का दिन या यकशम्बिह।
सोम वार, अर्थात् चन्द्र का दिन या दूशम्बिह।
मङ्गल वार, अर्थात् मङ्गल का दिन या सिहशम्बिह।
बुध वार, अर्थात् बुध का दिन या चहारशम्बिह।
वृहस्पति वार, अर्थात् वृहस्पति का दिन या पञ्चशम्बिह।
शुक्र वार, अर्थात् शुक्र का दिन या जुमा।
शनैश्चर वार, अर्थात् शम्बिह।

और इस प्रकार वे नये सिरे से फिर आदित्य वार, सोम वार, इत्यादि से आरम्भ करके गिनते जाते हैं ।

दिनों के स्वामी ।

मुसलमान ज्योतिषी ग्रहों को दिनों के स्वामी कहते हैं, और दिन के घण्टों को गिनते समय वे दिन के स्वामी से आरम्भ करते हैं, फिर ग्रहों को ऊपर से नीचे की ओर क्रम से गिनते हैं । उदाहरणार्थ, सूर्य पहले दिन का स्वामी है, और साथ ही पहले घण्टे का भी स्वामी है । दूसरे घण्टे का शासक आकाश-मण्डल का वह नक्षत्र है जो सूर्य-मण्डल के नीचे दूसरे दर्जे पर है अर्थात् शुक्र । तीसरे घण्टे का स्वामी बृहस्पति और चौथे का चन्द्रमा है । इसके साथ सूर्य से ईथर अर्थात् पृथ्वी के वायुमण्डल तक उतरना समाप्त होता है, और गिनती में वे फिर शनैश्चर पर आ जाते हैं । इस प्रणाली के अनुसार पचीसवें घण्टे का स्वामी चन्द्रमा है, और यह सोमवार का पहला घण्टा है । इसलिए चन्द्रमा न केवल सोम वार के पहले घण्टे का ही स्वामी है बरन सारे दिन का भी स्वामी है ।

वक्र होरा और विषुवीय होरा (सायन) ।

इन सबमें, हमारी पद्धति और हिन्दुओं की पद्धति में केवल एक भेद है, और वह यह कि हम वक्र होरा का प्रयोग करते हैं जिससे तेरहवाँ ग्रह, दिन के स्वामी से गिन कर, अगली रात का स्वामी होता है । यदि तुम इसे उलटी तरफ़ अर्थात् निचले ग्रह-मण्डलों से उच्चतर की ओर चढ़ते हुए गिनो तो यह तीसरा ग्रह है । इसके विपरीत हिन्दू दिन के स्वामी को सारे अहोरात्र का स्वामी बनाते हैं, जिससे दिन और रात अपना अपना एक अलग स्वामी रखने के बिना ही एक दूसरे के बाद आते रहते हैं । प्रायः सर्वसाधारण में इसी रीति का प्रचार है ।

अनेक बार उनकी कालनिर्णय की रीतियों को देख कर मुझे ख़याल आता है कि वक्र होरा उनको सर्वथा ही अज्ञात न थे। वे घण्टे को होरा कहते हैं, और नीमबहर की गणना में राशि के आधे अङ्ग को भी इसी नाम से पुकारते हैं। घण्टे के स्वामी की निम्न-लिखित गणना उनकी एक ज्योतिष की पुस्तक से ली गई है:—

"समान अंशों द्वारा मापी हुई लग्न की कला और सूर्य के बीच के अन्तर को १५ पर बाँटो, और यदि कोई अपूर्णाङ्क हो तो उसे छोड़ कर; भागफल में १ जोड़ो। यह संख्या, ऊपर से नीचे तक ग्रहों के अनुवर्तन के अनुसार दिन के स्वामी से गिनी गई है।" (अन्त में तुम जिस ग्रह पर पहुँचते हो वह प्रस्तुत घंटे का स्वामी है।) इस गणना को देख कर हमें ख़याल होता है कि वक्र होरा का नहीं, प्रत्युत विषुवीय होरा (सायन) का प्रयोग किया गया है।

ग्रहों का क्रम और उनका निशान।

हिन्दुओं की यह रीति है कि वे ग्रहों की गिनती सप्ताह के दिनों के क्रम से करते हैं। वे अपने ज्योतिष के गुटकों और दूसरी पुस्तकों में आग्रहपूर्वक इसी का प्रयोग करते हैं। कोई दूसरा क्रम इससे चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो वे उसका प्रयोग करने से इनकार करते हैं।

यूनानी लोग आसानी से समझ में आ जानेवाली रीति से अस्तरलाब नक्षत्र-यन्त्र पर ग्रहों की सीमायें स्थिर करने के लिए उनके निशान आकृतियों से लगाते हैं। ये आकार वर्णमाला के अक्षर नहीं होते। हिन्दू भी संक्षेप की एक इसी प्रकार की प्रणाली का प्रयोग करते हैं; परन्तु उनके आकार इस मतलब के लिए बनाई हुई मूर्तियाँ नहीं, बरन ग्रहों के नामों के प्रथम अक्षर हैं, जैसा कि आ = आदित्य, या सूर्य; च = चन्द्र, या चाँद; ब = बुध।

नीचे की तालिका में सात ग्रहों के बहुत ही प्रसिद्ध नाम दिये गये हैं:—

ग्रह	भारतीय भाषा में उनके नाम। पृष्ठ १०५
सूर्य	आदित्य, सूर्य, भानु, अर्क, दिवाकर, रवि, बिबता (?), हेलि।
चाँद	सोम, चन्द्र, इन्दु, हिमगु, शीतरश्मि, हिमरश्मि, शीतांशु, शीतादीधिति, हिममयूख।
मङ्गल	मङ्गल, भौम्य, कुज, आर, वक्र, आवनेय, माहेय, क्रूराचि (?), रक्त।
बुध	बुध, सौम्य, चान्द्र, ज्ञ, बोधन, वित्त (?), हेम।
वृहस्पति	वृहस्पति, गुरु, जीव, देवेज्य, देवपुरोहित, देवमन्त्रिन्, अङ्गिरस्, सूरि, देवपिता।
शुक्र	शुक्र, भृगु, सित, भार्गव, आवति (?), दानवगुरु, भृगुपुत्र, आस्फुजित (?)।
शनि	शनैश्चर, मन्द, असित, कोन, आदित्यपुत्र, सौर, आर्कि, सूर्यपुत्र।

सूर्य के बहुत से नाम होने के कारण ही धर्म-पण्डितों ने अनेक सूर्य मान लिये हैं। उनके मतानुसार बारह सूर्य हैं, जिनमें से प्रत्येक एक विशेष मास में चढ़ता है।

बारह सूर्य।

विष्णु-धर्म नामक पुस्तक कहती है—"विष्णु अर्थात् नारायण ने, जो कि अनादि और अनन्त है, अपने आप को देवताओं के लिए बारह भागों में विभक्त किया, जोकि कश्यप के पुत्र बन गये। एक एक मास में चढ़नेवाले सूर्य यही हैं।" परन्तु जो लोग यह नहीं मानते

कि नामों की बहुतायत के कारण ही सूर्यों की बहुतायत की यह कल्पना हुई है, वे कहते हैं कि दूसरे ग्रहों के भी अनेक नाम हैं परन्तु प्रत्येक का शरीर केवल एक ही है, और इसके अतिरिक्त सूर्य के बारह ही नाम नहीं, प्रत्युत इससे बहुत ज़ियादा हैं। ये नाम व्यापक अर्थोंवाले शब्दों से व्युत्पन्न हुए हैं; यथा आदित्य अर्थात् आदि; क्योंकि सूर्य सबका आदि मूल है। सवितृ का अर्थ है सन्तति रखनेवाली चीज़, क्योंकि संसार में सारी सन्तति सूर्य के साथ पैदा होती है इसलिए वह सवितृ कहलाता है। फिर सूर्य का नाम रवि इसलिए है क्योंकि वह गीली वस्तुओं को सुखा देता है। पेड़ों के अन्दर का द्रव रस कहलाता है, और जो इसको उनमें से निकालता है वह रवि है।

चन्द्रमा के नाम।

सूर्य के साथी चाँद के भी अनेक नाम हैं, यथा सोम, पृष्ठ १०६ क्योंकि वह शुभ है। और प्रत्येक शुभ वस्तु सोमग्रह, प्रत्येक अशुभ वस्तु पापग्रह कहलाती है। फिर इसके नाम निशेश, अर्थात् रात का स्वामी, नक्षत्रनाथ, अर्थात् नक्षत्रों का स्वामी, द्विजेश्वर, अर्थात् ब्राह्मणों का स्वामी, शीतांशु, अर्थात् ठण्डी किरणवाला है, क्योंकि चाँद का गोला जलीय है, जो कि पृथ्वी के लिए एक अनुग्रह है। जब सूर्य की किरण चाँद पर पड़ती है तो वह चाँद के सदृश ही ठंडी हो जाती है, तब वहाँ से प्रतिफलित होकर यह अंधकार को आलोकित करती, रात को ठण्डा करती, और सूर्य के उत्पन्न किये सब तरह के हानिकारक दाह को शान्त करती है। इसी प्रकार चाँद का नाम चन्द्र भी है जिस का अर्थ नारायण की बाईं आँख है, क्योंकि सूर्य उसकी दाईं आँख है।

महीनों के नाम।

नीचे की तालिका महीनों के नामों को दिखलाती है। इन नामों की सूचियों में भिन्नताओं और संक्षोभों के कारणों का उल्लेख हम भिन्न भिन्न लोकों का वर्णन करते समय करेंगे।

मास	विष्णु-धर्म के अनुसार उनके सूर्य	विष्णु-धर्म के अनुसार इन नामों के अर्थ।	आदित्य-पुराण के अनुसार सूर्य।	देसी नाम।
चैत्र	विष्णु	आकाश में इधर उधर घूमनेवाला, अस्थिर।	अंशुमन्त	रवि।
वैशाख	अर्यमन्	विद्रोहियों को दण्ड देने और पीटनेवाला। इसलिए वे डर से उसका विरोध नहीं करते।	सवितृ	विष्णु।
ज्येष्ठ	विवस्वन्त	वह सब पर प्रायः ध्यान देता है, विस्तार से नहीं।	भानु	धातृ।
आषाढ़	अंशु	किरणोंवाला।	विवस्वन्त	विधातृ।
श्रावण	पर्जन्य	वर्षा के सदृश सहायता करनेवाला।	विष्णु	अर्यमन्।
भाद्रपद	वरुण	वह सबको तैयार करता है।	इन्द्र	भग।
आश्वयुज	इन्द्र	साथी और स्वामी।	धातृ	सवितृ।
कार्त्तिक	धातृ	वह मनुष्यों पर उपकार और शासन करता है।	भग	पूषन्।
मार्गशीर्ष	मित्र	जगत् का प्रिय।	पूषन्	त्वष्टृ।
पौष	पूषन्	पोषण, क्योंकि वह मनुष्य का पालन-पोषण करता है। ...	मित्र	अर्क।
माघ	भग	प्यारा, संसार का इच्छित।	वरुण	दिवाकर।
फाल्गुन	त्वष्टृ	वह सबका मङ्गलदाता है।	अर्यमन्	अंशु।

पृष्ठ १०७

विष्णु-धर्म में दिये हुए सूर्यों के नामों के क्रम के विषय में लोगों का विचार है कि यह ठीक और सुव्यवस्थित है ; क्योंकि प्रत्येक मास में वासुदेव का अलग अलग नाम होता है; और उसके उपासक महीनों को मार्गशीर्ष से आरम्भ करते हैं। इस मास में उसका नाम केशव होता है। यदि तुम उसके नामों को एक दूसरे के बाद गिनते जाओ तो तुम उसका वह नाम मालूम कर लोगे जोकि, विष्णु-धर्म के ऐतिह्य के अनुसार, चैत्र मास में होता है। यह नाम विष्णु है।

नक्षत्रों के नामों से निकाले हुए मासों के नाम।

वासुदेव ने गीता में फिर कहा है कि वर्ष की छः ऋतुओं में मैं वसन्त हूँ।

महीनों के नामों का नक्षत्रों के नामों से सम्बन्ध है। क्योंकि प्रत्येक मास का दो या तीन नक्षत्रों से सम्बन्ध होता है इसलिए महीने का नाम उनमें से किसी एक से लिया जाता है। नीचे की तालिका में हमने ये विशेष नक्षत्र लाल स्याही के साथ (इस अनुवाद में + चिह्न के साथ) लिखे हैं जिससे महीनों के नामों के साथ उनका सम्बन्ध प्रकट हो जाय।

जब किसी नक्षत्र में वृहस्पति चमकता है तब जिस मास के साथ उस नक्षत्र का सम्बन्ध होता है वह मास वर्ष का अधिष्ठाता समझा जाता है, और सारा वर्ष उसी मास के नाम से पुकारा जाता है।

यदि इस तालिका में दिये मास के नामों में उन नामों से, जिनका इसके पहले व्यवहार होता रहा है, किसी प्रकार का भेद हो तो पाठकों को जानना चाहिए कि जिन नामों का हम अब तक प्रयोग करते रहे हैं वे देशीय या ग्राम्य हैं; परन्तु इस तालिका में दिये नाम संस्कृत या श्रेष्ठ हैं।

मास		नक्षत्र	मास		नक्षत्र
कार्त्तिक	३	कृत्तिका ।+	वैशाख	१६	विशाखा ।+
	४	रोहिणी ।		१७	अनुराधा ।
मार्गशीर्ष	५	मृगशीर्ष ।+	ज्यैष्ठ	१८	ज्येष्ठा ।+
	६	आर्द्रा ।		१९	मूल ।
पौष	७	पुनर्वसु ।	आषाढ़	२०	पूर्वाषाढा ।+
	८	पुष्य ।+		२१	उत्तराषाढा ।
माघ	९	आश्लेषा ।	श्रावण	२२	श्रवण ।+
	१०	मघा ।+		२३	धनिष्ठा ।
फाल्गुन	११	पूर्वफाल्गुनी। +	भाद्रपद	२४	शतभिषज ।
	१२	उत्तरफाल्गुनी ।		२५	पूर्वभाद्रपदा ।+
	१३	हस्त ।		२६	उत्तरभाद्रपदा ।
				२७	रेवती ।
चैत्र	१४	चित्रा ।+	आश्वयुजी	१	अश्विनी ।+
	१५	स्वाती ।		२	भरणी ।

राशियों के नाम उन मूर्त्तियों के नामों के अनुरूप हैं जिनको वें

राशियों के नाम । दिखलाती हैं । ये मूर्त्तियाँ हिन्दुओं और अन्य जातियों में एक सी मिलती हैं । तीसरी राशि को मिथुन

पृष्ठ १०८

कहते हैं, जिसका अर्थ एक लड़के और एक लड़की का जोड़ा है; वास्तव में, यह इस राशि की परम प्रसिद्ध मूर्त्ति है ।

जन्मपत्रिकाओं की बड़ी पुस्तक में वराहमिहिर कहता है कि

इस शब्द का प्रयोग हाथ में गदा और वीणा लिये हुए मनुष्य के लिए होता है। इससे मेरा ख़याल है कि उसने मिथुन को मृगशिरस् (अलजब्बार) के साथ मिला दिया है। और प्राय: सर्वसाधारण की यह सम्मति यहाँ तक है कि इस नक्षत्र को (मिथुन के स्थान में) अलजौज़ा समझा जाता है, यद्यपि अलजौज़ा का सम्बन्ध इस राशि की मूर्त्ति के साथ नहीं।

वही लेखक छठी राशि की मूर्त्ति को एक जहाज़ और उसके हाथ में अनाज की एक बाल बताता है। मैं समझता हूँ इस स्थान में हमारी हस्तलिखित प्रति में किसी शब्द को दीमक चाट गई है, क्योंकि जहाज़ का कोई हाथ नहीं होता। हिन्दू इस राशि को कन्या अर्थात् कुँवारी लड़की कहते हैं; और शायद प्रस्तुत वाक्य वास्तव में इस प्रकार था :—"जहाज़ में एक कन्या हाथ में अनाज की बाल लिये हुए।" यह अलसिमाकुलअज़ल नामक चान्द्र स्थान है। जहाज़ शब्द से ऐसा ख़याल होता है कि लेखक का तात्पर्य अलअव्वा (Spica कन्याराशि) नामक चान्द्र स्थान से है, क्योंकि अलअव्वा के तारे एक पंक्ति बनाते हैं जिसका सिरा (जहाज़ के पेंदे की बीचवाली लकड़ी के सदृश) एक टेढ़ी लकीर है।

सातवीं राशि की मूर्त्ति वह आग बताता है। इसको तुला = तराज़ू कहते हैं। दसवीं राशि के विषय में वराहमिहिर कहता है कि इसका मुख बकरी का और शेष भाग मकर है। परन्तु इस राशि का मकर के साथ मुक़ाबला करने के बाद, वह इसके साथ बकरी का मुँह लगाने की तकलीफ़ से बच गया होगा। केवल यूनानियों को ही पिछले वर्णन की आवश्यकता है क्योंकि वे इस राशि को दो जन्तुओं का बना समझते हैं; अर्थात् छाती से ऊपर का भाग बकरी का और उससे निचला भाग मछली का। परन्तु मकर नामक जल-जन्तु को,

जैसा कि लोग इसे बताते हैं, दो जन्तुओं का बना हुआ कहकर वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

ग्यारहवीं राशि की मूर्त्ति वह डोल की बताता है और कुम्भ नाम इस वर्णन के अनुरूप है। परन्तु यदि वे कभी इस राशि की या इसके किसी अंश की मानव आकारों में गिनती करते हैं, तो इससे यह प्रमाणित होता है कि वे, यूनानियों के दृष्टान्त का अनुकरण करते हुए, इसमें कुम्भराशि को देखते हैं।

राशियों के प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त, वराहमिहिर कुछ ऐसे भारतीय नामों का भी उल्लेख करता है जिनको लोग प्रायः कम जानते हैं। नीचे की तालिका में हमने दोनों को मिला दिया है :—

राशियाँ।	उनके प्रसिद्ध नाम।	उनके अप्रचलित नाम।	राशियाँ।	उनके प्रसिद्ध नाम।	उनके अप्रचलित नाम।
०	मेष।	क्रिय।	६	तुला।	जूग।
१	वृषन्।	ताम्बिरु।	७	वृश्चिक।	कौर्व।
२	मिथुन।	जितुम।	८	धनु।	तौक्षिक।
३	कर्कट।	कुलीर।	९	मकर।	अगोकीरु।
४	सिंह।	लियय।	१०	कुम्भ।	उद्रुवग।
५	कन्या।	पार्तीन।	११	मीन।	अन्त, साथ ही जीतु भी।

हिन्दुओं की यह रीति है कि वे राशियों को गिनते समय मेष के लिए ० और वृषभ के लिए १ के साथ आरम्भ न करके मेष के लिए १ और वृषभ के लिए २, इत्यादि के साथ शुरू करते हैं, जिससे मीनराशि के लिए १२ की संख्या आ जाती है।

बीसवाँ परिच्छेद।

ब्रह्माण्ड पर।

ब्रह्माण्ड का अर्थ है ब्रह्मा का अण्डा। इसका प्रयोग सारे आकाश के लिए, उसकी गोलाई और उसकी विशेष प्रकार की गति के कारण, होता है। इस शब्द का प्रयोग सारे जगत् के लिए भी होता है, क्योंकि यह ऊपर के भाग और नीचे के भाग में बँटा हुआ है। जब वे आकाशों की गिनती करते हैं तो वे उनके जोड़फल को ब्रह्माण्ड कहते हैं। परन्तु हिन्दू लोग ज्योतिष की शिक्षा से शून्य हैं, और उनमें ज्योतिष-सम्बन्धी शुद्ध भावनायें बिलकुल नहीं। इसलिए उनका मत है कि पृथ्वी खड़ी है, विशेषतः जब वे, स्वर्ग के आनन्द को सांसारिक सुख के सदृश कोई चीज़ बताते हुए, पृथ्वी को नाना प्रकार के देवताओं, देवदूतों, इत्यादि का निवास-स्थान बनाते हैं। इन देवताओं में वे गमन-शक्ति का आरोप करते हैं और उनकी गति ऊपर के लोकों से नीचे के लोकों की ओर मानते हैं।

ब्रह्मा का अण्डा, और उसका जल से बाहर निकलना।

पृष्ठ १०९

उनके पुराण के गूढ़ार्थ-वर्णनों के अनुसार, सब पदार्थों के पहले जल था और सारे संसार का शून्य इसीसे भरा हुआ था। मैं उनका मतलब यह समझता हूँ कि यह बात आत्मा के दिन (पुरुषाहोरात्र) के आरम्भ में और संयोग और रचना के आदि में थी। फिर, वे कहते हैं कि पानी झाग उछालता और लहरें मार रहा था। तब पानी से कोई सफ़ेद सी चीज़ निकली, जिससे स्रष्टा ने ब्रह्मा का अण्डा बना दिया। अब कई एक का मत है कि वह अण्डा टूट

गया; उससे ब्रह्मा निकला। अण्डे का आधा भाग आकाश बन गया और दूसरा आधा पृथ्वी, और दोनों आधों के बीच के टूटे हुए टुकड़े मेंह बन गये। यदि वे मेंह के स्थान में पहाड़ कह देते तो बात अधिक सत्याभासी हो जाती। दूसरों के मतानुसार, परमेश्वर ने ब्रह्मा से कहा— "मैं एक अण्डा पैदा करता हूँ जिसको मैं तेरा वास बनाता हूँ।" उसने इसको उपर्युक्त जल की झाग से बनाया था परन्तु जब जल नीचे उतर गया तब अण्डे के टूट कर दो आधे आधे टुकड़े हो गये।

यूनानी तुल्यता; अस्क्लीपियस।

वैद्यक के आविष्कारक अस्क्लीपियस के विषय में प्राचीन यूनानियों की भी ऐसी ही सम्मतियाँ थीं; क्योंकि, जालीनूस के अनुसार, वे उसको हाथ में एक अण्डा पकड़े हुए बयान करते हैं, जिससे उनका उद्देश यह दिखलाने का है कि पृथ्वी गोल है, अण्डा ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्त्ति है, और समग्र जगत् को चिकित्सा-शास्त्र का प्रयोजन है। यूनानियों में अस्क्लीपियस की पदवी हिन्दुओं में ब्रह्मा की पदवी से निम्नतर नहीं, क्योंकि वे कहते हैं कि वह एक दिव्य शक्ति है, और उसका नाम उसके कर्म से अर्थात् शुष्कता से बचाने से निकला है, जिसका अर्थ मृत्यु है; क्योंकि जब शुष्कता और शीत का प्रचार होता है तब मृत्यु हो जाती है। उसके जन्म के विषय में वे कहते हैं कि वह अपोलो का पुत्र, अपोलो फ्लेग्यास (?) का पुत्र, और फ्लेग्यास क्रोनोस अर्थात् शनि का पुत्र है। सख्यसम्बन्ध की इस रीति से उनका उद्देश उसमें एक तिगुने देवता की शक्ति ठहराना है।

सृष्टि का आदि तत्त्व जल है। ब्रह्मा के अण्डे का टूट कर दो आधे बन जाना।

हिन्दुओं के इस सिद्धान्त का आधार कि सकल सृष्टि के पूर्व जल था इस बात पर है कि जल प्रत्येक वस्तु के परमाणुओं की संहति, प्रत्येक वस्तु की वृद्धि, और प्रत्येक सजीव वस्तु में जीवन की संस्थिति का कारण

है। इस प्रकार जब स्रष्टा प्रकृति से किसी चीज़ की सृष्टि करना चाहता है तब यह जल उसके हाथ में एक साधन होता है। इसी प्रकार की एक कल्पना का प्रतिपादन क़ुरान, ११, ६, में किया गया है—" और उस (परमेश्वर) का सिंहासन जल पर था।" चाहे आप इसका वर्णन इस नाम से पुकारी जानेवाली एक व्यक्तिगत वस्तु के रूप में बाह्य रीति से करें, जिसकी पूजा की आज्ञा हमें परमेश्वर देता है, या चाहे आप इसका अर्थ राज्य अर्थात् ईश्वरीय राज्य निकालें या इसी प्रकार का कोई और अर्थ बतावें; पर प्रत्येक अवस्था में, इसका तात्पर्य यह है कि उस समय परमेश्वर के अतिरिक्त जल और उसके सिंहासन के सिवा और कुछ न था। यदि हमारी यह पुस्तक एक ही जाति की कल्पनाओं तक परिमित न होती तो हम प्राचीन काल में बेबल में और उसके इर्द गिर्द निवास करनेवाली जातियों के विश्वास से ब्रह्मा के अण्डे के सदृश बरन उससे भी अधिक मूढ़ और निरर्थक कल्पनायें उपस्थित करते।

अण्डे के दो आधों में विभाग का सिद्धान्त यह प्रमाणित करता है कि इसका बनानेवाला वैज्ञानिक पुरुष न था, वह यह नहीं जानता था कि जिस प्रकार ब्रह्मा के अण्डे के अन्दर उसकी ज़र्दी भी शामिल है उसी प्रकार आकाश के अन्दर पृथ्वी भी आ जाती है। उसने पृथ्वी की कल्पना नीचे, और आकाश की पृथ्वी से छः दिशाओं में से केवल एक में अर्थात् पृथ्वी के ऊपर की है। यदि उसे सत्य का ज्ञान होता तो वह अण्डे के टूटने का सिद्धान्त न गढ़ता। परन्तु वह इस सिद्धान्त से अण्डे के एक आधे को पृथ्वी के रूप में बिछा हुआ और दूसरे आधे को उस पर शिखर-मण्डल की तरह रक्खा हुआ बताना पृष्ठ ११०
चाहता है। इसमें वह गोले के सम-मण्डलाकार निरूपण में टोलमी से बढ़ने का निष्फल यत्न करता है।

इस प्रकार की भावनायें सदा ही प्रचलित रही हैं, जिनका अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म्म और तत्त्वज्ञान के अनुकूल निकालता है। प्लेटो अपनी टिम्युस नामक पुस्तक में ब्रह्माण्ड के सदृश ही कुछ कहता है—"सृष्टि के स्रष्टा ने एक सीधे तागे को दो आधों में काट दिया। इनमें से प्रत्येक के साथ उसने एक चक्र बनाया, जिससे दो चक्र दो स्थानों में मिले, और उनमें से एक को उसने सात भागों में विभक्त किया।" इन शब्दों में, जैसा कि उसकी रीति है, वह जगत् की मौलिक दो गतियों (दैनिक भ्रमण में पूर्व से पश्चिम को, और विषुवों के अयनचलन में पश्चिम से पूर्व को) और लोकों के गोलों की ओर सङ्केत करता है।

अफलातूं (प्लेटो) के टिम्युस नामक ग्रन्थ के प्रमाण।

ब्रह्मसिद्धान्त के पहले अध्याय में, जहाँ ब्रह्मगुप्त आकाशों की गणना करता हुआ चाँद को निकटतम आकाश में, दूसरे लोकों को उसके अगले आकाशों में, और शनि को सातवें आकाश में स्थान देता है, वहाँ वह कहता है "—स्थिर तारकायें आठवें आकाश में हैं, और यह गोल इसलिए बनाया गया है कि यह चिरस्थायी रहे, और इसमें धर्मात्माओं को पुरस्कार और पापात्माओं को दण्ड मिले, क्योंकि इसके पीछे और कुछ नहीं।" इस अध्याय में वह यह दिखलाता है कि आकाश और गोले दोनों एक ही चीज़ हैं, और जिस क्रम से वह उनको लिखता है वह क्रम उनके धर्म्म के पौराणिक साहित्य में वर्णित क्रम से भिन्न है, जैसा कि हम इसके बाद किसी उचित स्थान पर दिखलायेंगे। वह यह भी बताता है कि गोल चीज़ों पर बाहर से केवल धीरे धीरे ही असर हो सकता है। वह गोल आकृति और चक्राकार गति के विषय में और इस विषय में कि गोलों के पीछे किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं, अरस्तू (अरिस्टोटल) के विचारों का ज्ञान प्रकट करता है।

ब्रह्मगुप्त के प्रमाण।

यदि ब्रह्माण्ड का वर्णन इसी प्रकार का है तो यह प्रत्यक्ष है कि ब्रह्माण्ड मण्डलों की समष्टि अर्थात् ईथर (आकाश), वास्तव में, जगत् ही है, क्योंकि, हिन्दुओं के मतानुसार, दूसरे जन्म में प्रतिफल इसी के अन्दर मिलता है।

पौलिश सिद्धान्त से अवतरण।

पुलिश अपने सिद्धान्त में कहता है :—"सकल संसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश का ही समाहार है। आकाश अन्धकार के पीछे बनाया गया था। यह आँखों को नीला इसलिए दीखता है कि वहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँचतीं, और वह जलीय अनाग्नेय गोलों अर्थात् पृथ्वी और चन्द्र के पिण्डों के सदृश उनके द्वारा आलोकित नहीं होता। जब सूर्य की किरणें इन पर पड़ती हैं और पृथ्वी की छाया उन तक नहीं पहुँचती, तब उनका अन्धकार दूर हो जाता है और रात्रि के समय उनके आकार दिखाई देने लगते हैं। प्रकाश-दाता केवल सूर्य ही है, शेष सब उसीसे प्रकाश पाते हैं।" इस अध्याय में पुलिश उस चरम सीमा का वर्णन करता है जहाँ तक पहुँचा जा सकता है, और इसको आकाश के नाम से पुकारता है। वह इसका स्थान अन्धकार में बताता है क्योंकि वह कहता है कि यह एक ऐसे स्थान में है जहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँच सकतीं। आँखों को आकाश के नीला-भूरा दिखाई देने का प्रश्न इतना विशाल है कि उसका यहाँ वर्णन नहीं हो सकता।

ब्रह्मगुप्त, वसिष्ठ, बलभद्र, और आर्यभट्ट के अवतरण।

ब्रह्मगुप्त उपर्युक्त अध्याय में कहता है :—"चाँद के चक्रों अर्थात् ५७,७५,३३,००,००० को उसके मण्डल के योजनों की संख्या अर्थात् ३२,४००० से गुणो तो इसका गुणनफल १८७१२०६९२०० ००० ००० होगा अर्थात् इससे राशि-चक्र के मण्डल के योजनों की संख्या मालूम हो

जायगी।" योजन का वर्णन दूरी के माप के रूप में हमने पहले ही परिमाण-विद्या वाले परिच्छेद में कर दिया है। ब्रह्मगुप्त की जिस गणना का उल्लेख अभी हुआ है उसे हमने अपने ऊपर कोई उत्तर-दायिता न लेते हुए, उसीके शब्दों में दे दिया है, क्योंकि उसने यह नहीं बताया कि इसका आधारभूत कारण क्या है। वसिष्ठ कहता है कि ब्रह्माण्ड के अन्दर नक्षत्र हैं, और ऊपर की संख्यायें ब्रह्माण्ड का माप हैं, क्योंकि राशि-मण्डल इसके साथ संयुक्त है। टीकाकार बलभद्र कहता है—"हम इन संख्याओं को आकाश का मान नहीं मानते, क्योंकि हम उसकी विशालता को सीमाबद्ध नहीं कर सकते, परन्तु हम इनको वह दूरतम सीमा समझते हैं जहाँ तक मनुष्य की दृष्टि पहुँच सकती है। इसके ऊपर मानव-उपलब्धि के जाने की कोई सम्भावना नहीं; परन्तु दूसरे लोक छुटाई और बड़ाई के कारण एक दूसरे से भिन्न हैं जिससे वे विविध अंशों में दिखाई देते हैं।"

आर्यभट्टके अनुयायी कहते हैं—"हमारे लिए उस शून्य देश को ही जान लेना पर्याप्त है जिसमें सूर्य की किरणें जाती हैं। पृष्ठ १११ हमें उस शून्य देश की आवश्यकता नहीं जिसमें सूर्य की किरणें नहीं पहुँचतीं, चाहे उसका विस्तार बहुत बड़ा ही क्यों न हो। जहाँ रश्मियाँ नहीं पहुँचतीं, वहाँ इन्द्रियों की उपलब्धि भी नहीं पहुँचती, और जहाँ उपलब्धि नहीं पहुँचती वह अज्ञेय है।"

भिन्न भिन्न सिद्धान्तों का गुण-दोष-विवेचन। नवम मण्डल का प्रश्न।

आओ, अब हम इन लेखकों के शब्दों की परीक्षा करें। वसिष्ठ के शब्द यह प्रमाणित करते हैं कि ब्रह्माण्ड एक गोला है जिसके अन्तर्गत आठवाँ या इस नाम का राशि-मण्डल है, और स्थिर तारकायें स्थापित की गई हैं। वे यह भी सिद्ध करते हैं कि दो मण्डल एक दूसरे को स्पर्श करते हैं। अब जो हमारी बात पूछो तो हम पहले ही एक आठवाँ मण्डल ग्रहण

करने पर बाध्य थे, परन्तु नवाँ मण्डल मानने के लिए हमारे पास कोई युक्ति नहीं ।

इस विषय पर लोगों का मत-भेद है । कई लोग नवम ग्रह के अस्तित्व को, पूर्व से पश्चिम की ओर घूमने के कारण, जहाँ तक यह इस दिशा में चलता है और अपने अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु को उसी दिशा में चलने के लिए बाध्य करता है, एक आवश्यकता समझते हैं। कई दूसरे लोग नवें ग्रह को इसी गति के कारण मानते हैं, परन्तु वे इसे अपने आप में गतिहीन समझते हैं ।

पहली कल्पना के प्रतिनिधियों की प्रवृत्ति पूर्णतया स्पष्ट है । परन्तु अरस्तू ने यह प्रमाणित किया है कि प्रत्येक घूमनेवाली वस्तु को कोई दूसरी घूमनेवाली वस्तु, जो स्वयम् उसके अन्दर नहीं है, गति देती है । इसलिए इस नवें गोले का भाव पहले इसके बाहर इसके संचालक के अस्तित्व की कल्पना कर लेता है । परन्तु इस संचालक को कौन सी चीज़ नवें मण्डल की मध्यवर्तिता के बिना आठ मण्डलों को गति देने से रोक सकती है ?

दूसरे मत के प्रतिनिधियों के विषय में ऐसा समझ पड़ता है कि उन्हें अरस्तू के उन शब्दों का ज्ञान था जिनको हम ने उद्धृत किया है, और वे यह भी जानते थे कि पहला संचालक निश्चल है ; क्योंकि वे नवें मण्डल को निश्चल और पूर्व से पश्चिम घूमने का आदिकारण प्रकट करते हैं । परन्तु अरस्तू ने भी यह बात प्रमाणित की है कि पहला संचालक कोई वस्तु नहीं, पर यदि वे उसे एक गोला, एक मण्डल, और अपने अन्दर किसी दूसरी चीज़ को शामिल रखनेवाला तथा निश्चल बताते हैं तो उसका एक वस्तु होना अत्यावश्यक है ।

अरस्तू, टोलमी, वैयाकरण जोहनीज़ ।

इस प्रकार नवें मण्डल की कल्पना असम्भाव्य सिद्ध होती है। अपनी अलमजस्ट नामक पुस्तक की भूमिका में टोलमी के ये शब्द भी इसी आशय को लिये हुए हैं—"विश्व की पहली गति का पहला कारण, यदि हम स्वयं गति पर ही विचार करें, हमारी सम्मति के अनुसार एक अदृश्य और निश्चल देवता है, और इस विषय के अध्ययन को हम एक दिव्य अध्ययन कहते हैं। हम उसकी क्रिया को जगत् की उच्चतम ऊँचाइयों में देखते हैं, पर वह क्रिया उन वस्तुओं की क्रिया से सर्वथा भिन्न है जिनकी उपलब्धि इन्द्रियों द्वारा हो सकती है।"

ये शब्द नवम मण्डल के किसी लक्षण से रहित, आदि संचालक के विषय में टोलमी के कहे हुए हैं। परन्तु नवम मण्डल का उल्लेख वैयाकरण जोहनीज़ ने अपने प्रोक्लस के खण्डन में किया है। वह कहता है—"अफलातूँ को नवें तारारहित मण्डल का ज्ञान न था"। और, जोहनीज़ के अनुसार, टोलमी का अभिप्राय इसीसे अर्थात् नवम मण्डल के निषेध से ही था।

अन्ततः कई दूसरे लोग ऐसे भी हैं जिनका मत यह है कि गति की अन्तिम सीमा के पीछे एक अनन्त निश्चल वस्तु, या अनन्त शून्य, या कोई ऐसी चीज़ है जिसके विषय में वे कहते हैं कि वह न शून्य ही है और न परिपूर्ण ही। परन्तु हमारे विषय के साथ इन वादों का कोई सम्बन्ध नहीं।

बलभद्र की बातों से यह जान पड़ता है कि वह उन लोगों से सहमत है जो यह समझते हैं कि एक व्योम या अनेक व्योम एक दृढ़ वस्तु है जो कि सारे भारी पिण्डों को समता में रखती और उन्हें उठा कर ले जाती है, और मण्डलों से ऊपर है। बलभद्र के लिए

ऐतिह्य को चक्षु-दृष्टि से अच्छा समझना उतना ही सुगम है जितना कि हमारे लिए सन्देह को स्पष्ट प्रमाण से अच्छा समझना कठिन है ।

सचाई सर्वथा आर्यभट्ट के अनुयायियों के साथ है जो हमें वस्तुतः विज्ञान के बड़े पण्डित जान पड़ते हैं । यह पूर्णतया स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड का अर्थ आकाश (ईथर) और उसके अन्तर्गत सृष्टि की सारी उपज है ।

इक्कीसवाँ परिच्छेद ।

हिन्दुओं के धार्म्मिक विचारानुसार आकाश और पृथ्वी का वर्णन, जिसका आधार उनका पौराणिक साहित्य है ।

जिन लोगों का उल्लेख हमने पिछले परिच्छेद में किया है उनका मत है कि सात ढकनों की तरह एक दूसरे के ऊपर सात पृथ्वियाँ हैं। सबसे ऊपर की पृथ्वी को वे सात भागों में विभक्त करते हैं। इस बात में फ़ारसी और हमारे ज्योतिषियों से उनका भेद है। क्योंकि फ़ारस के ज्योतिषी उसको किशवर में और हमारे उसे देशों में विभक्त करते हैं। हम इसके अनन्तर उनके धार्म्मिक नियम के प्रधान प्रमाणों से निकाली हुई कल्पनाओं का एक स्पष्ट विवरण उपस्थित करेंगे जिससे इस विषय की निर्व्याज आलोचना हो सके। यदि इसमें कोई बात हमें विचित्र मालूम हो कि जिसके लिए व्याख्या का प्रयोजन हो, या यदि हम दूसरों के साथ कोई अनुरूपता देखें, अथवा यदि दोनों दल भी निशाने से चूक गये हों, तो हम केवल विषय को पाठक के सामने रख देंगे, हिन्दुओं पर आक्षेप करने या उनकी निन्दा करने के उद्देश से नहीं, बरन केवल उन लोगों के मनों को तीक्ष्ण करने के लिए जो कि इन वादों का अध्ययन करते हैं।

सात पृथ्वियों पर ।

पृष्ठ ११२

पृथ्वियों की संख्या तथा ऊपर की पृथ्वी के भागों की संख्या के विषय में उनका आपस में कोई मत-भेद नहीं, परन्तु उनके नामों और इन नामों के अनुक्रम के विषय में उनका मत-भेद है। मैं समझता हूँ इस भेद का कारण उनकी भाषा का महा वाग्प्रपञ्च है, क्योंकि वे एक ही वस्तु को बहुत से नामों से पुकारते हैं। उदाहरणार्थ, उनके अपने ही कथन के अनुसार, वे सूर्य को एक सहस्र भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं, जिस प्रकार अरबियों में सिंह के लिए प्राय: उतने ही नाम हैं। इनमें से कुछ नाम तो मौलिक हैं, और कुछ उसके जीवन या उसके कामों और कार्यशक्तियों की बदलती रहनेवाली अवस्थाओं से लिये गये हैं। हिन्दू और उनके सदृश दूसरे लोग इस विपुलता पर गर्व करते हैं परन्तु वास्तव में भाषा का यह एक भारी दोष है। क्योंकि भाषा का यह काम है कि वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु और उसके कार्यों का एक नाम रक्खे। यह नाम सर्वसम्मति से रक्खा जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति इसको दूसरे के मुख से सुन कर,बोलनेवाले के आशय को समझ जाय। इसलिए यदि एक ही नाम या शब्द का अर्थ विविध प्रकार की वस्तुयें हों तो इससे भाषा का दोष प्रकट होता है और सुनने-वाले को मजबूर होकर बोलनेवाले से पूछना पड़ता है कि तुम्हारे शब्द का मतलब क्या है। और इस प्रकार प्रस्तुत शब्द को निकाल कर उसके स्थान में उसके सदृश किसी दूसरे पर्याप्त स्पष्ट अर्थवाले शब्द को, या वास्तविक अर्थों को बयान करने वाले किसी विशेषण को रखने का प्रयोजन होता है। यदि एक ही चीज़ को अनेक नामों से पुकारा जाता हो, और इसका कारण यह न हो कि मनुष्यों की प्रत्येक जाति या श्रेणी अलग अलग शब्द का व्यवहार करती है, और, वास्तव में, एक ही शब्द पर्याप्त हो, तो इस एक शब्द को छोड़कर शेष

पृथ्वियों के अनुक्रम में भेद जिसका कारण भाषा की विपुलता है।

सब शब्द केवल निरर्थक, लोगों को अन्धकार में रखने के साधन, और विषय को रहस्यमय बनाने की चेष्टा के सिवा और कुछ नहीं। चाहे कुछ हो हर हालत में यह विपुलता उन लोगों के मार्ग में दुःखदायक कठिनतायें उपस्थित करती है जो कि सारी भाषा को सीखना चाहते हैं, क्योंकि यह सर्वथा निष्प्रयोजन है, और इसका परिणाम केवल समय का नाश है।

मेरे मन में अनेक बार यह विचार उत्पन्न होता है कि ग्रन्थों के रचयिताओं और ऐतिह्य के संचालकों को एक निश्चित परिपाटी में पृथ्वियों का उल्लेख करना पसन्द नहीं; वे उनके नामों का उल्लेख करके ही बस करदेते हैं या पुस्तकों की नक़ल करने वालों ने ही स्वेच्छया पाठ को बदल दिया है। क्योंकि जिन लोगों ने मेरे लिए पाठ का अनुवाद किया था और मुझे उसकी व्याख्या समझाई थी वे भाषा के पूर्ण ज्ञाता थे, और वे ऐसे व्यक्ति न थे जो स्वेच्छया कपट करने के लिए प्रसिद्ध हों।

आदित्यपुराण के अनुसार पृथ्वियाँ।

नीचे की तालिका में पृथ्वियों के नाम, जहाँ तक वे मुझे मालूम हैं, दिये जाते हैं। हमारा बड़ा भरोसा उस सूची पर है जो कि आदित्यपुराण से ली गई है, क्योंकि यह प्रत्येक अलग पृथ्वी और आकाश को सूर्य के अवयवों के एक अलग अवयव के साथ मिलाती हुई एक निश्चित नियम का अनुसरण करती है। आकाशों को खोपड़ी से लेकर गर्भाशय तक के अवयवों के साथ, और पृथ्वियों को नाभि से लेकर पैर तक के भागों के साथ जोड़ा गया है। मिलान की यह रीति उनके अनुक्रम को प्रकाशित करती है, और इसे गड़बड़ से बचाती है :—

पृथ्वियों की संख्या ।		१	२	३	४	५	६	७
आदित्य-पुराण ।	सूर्य के किन अङ्गों को वे दिखलाती हैं	नाभि	ऊरु	घुटने	घुटनों के नीचे	पिण्डलियाँ	टखने	पैर
	उनके नाम ।	ताल	सुताल	पाताल	आशाल (?)	विशाल (?)	मृत्ताल	रसातल
विष्णुपुराण ।		अतल	वितल	नितल	गभस्तिमत्	महाख्य (?)	सुतल	जागर (?)
वायुपुराण ।	उनके नाम ।	आभास्तल	इला (?)	नितल	गभस्तल	महातल	सुतल	पाताल
	उनके विशेषण ।	कृष्ण-भूमि अर्थात् गहरे रंग की पृथ्वी ।	शुक्ल-भूमि अर्थात् उज्ज्वल पृथ्वी ।	रक्त-भूमि अर्थात् लाल पृथ्वी ।	पीत-भूमि अर्थात् पीली पृथ्वी ।	पाषाण-भूमि अर्थात् पत्थरों की पृथ्वी ।	शिला-तल अर्थात् ईंट की पृथ्वी ।	सुवर्ण-वर्ण, या सोने के रंग की पृथ्वी ।
देशी नाम ।		अंशु (?)	अम्बरताल	शर्कर (?) (सक्करु)	गभस्तिमत्	महातल	सुताल	रसातल

वायु-पुराण के अनुसार सात पृथ्वियों पर रहने वाले आध्यात्मिक प्राणी।

पृष्ठ ११४

दानवों में से—नमुचि, शङ्कुकर्ण, कबंध (?), निष्कुकाद (?) शूलदन्त, लोहित, कलिङ्ग, श्वापद; और सर्पों का स्वामी—धनञ्जय, कालिया दैत्यों में से-सुरक्षस्, महाजम्भ, हयग्रीव, कृष्ण, जनर्त (?) शाङ्खाखष, गोमुख ; और राक्षसों में से—नील, मेघ, क्रथनक, महोष्णीष, कम्बल, अश्वतर, तक्षक।

दानवों में से—रद (?) अनुह्लाद, अग्निमुख, तारकाक्ष, त्रिशिरा, शिशुमार; और राक्षसों में से—च्यवन, नन्द, विशाल और इस लोक में अनेक नगर हैं।

दैत्यों में से—कालनेमि, गजकर्ण, उञ्जर (?); और राक्षसों में से-सुमालि, मुञ्ज, वृकवक्त्र, और गरुड नामक बड़े बड़े पक्षी। दैत्यों में से—विरोचन, जयन्त (?) , अग्निजिह्व, हिरण्याक्ष ; और राक्षसों में से—विद्युज्जिह्व, महामेघ, कर्मार साँप, स्वस्तिकजय।

दैत्योंमें से—कसरि ; और राक्षसों में से—ऊर्ध्वकुज (?), शतशीर्ष, अर्थात् सौ सिर वाला, जो कि इन्द्र का मित्र है; वासुकि साँप।

राजा बलि ; और दैत्यों में से मुचुकुन्द। इस लोक में राक्षसों के लिए अनेक घर हैं, और विष्णु वहाँ रहता है, और साँपों का स्वामी शेष।

सात आकाशों पर। वैयाकरण जोहनीज़, प्लेटो, और अरिस्टाटल के प्रमाण।

पृथ्वियों के बाद आकाश हैं। ये एक दूसरे के ऊपर सात मंज़िलों के सदृश स्थित हैं। इनको लोक कहते हैं जिसका अर्थ "एकत्र होने का स्थान" है। इसी प्रकार यूनानी लोग भी आकाशों को एकत्र होने के स्थान समझा करते थे। वैयाकरण जोहनीज़ प्रोक्लस के खण्डन में कहता है; " कई तत्त्ववेत्ता यह समझते थे कि ग़लक़सयास अर्थात् दूध नामक व्योम,

जिससे उनका तात्पर्य आकाश-गङ्गा से होता था, सज्ञान आत्माओं का निवास-स्थान है ।" कवि होमर कहता है । "तू ने निर्मल आकाश को देवताओं का सनातन वास-स्थान बनाया है । हवायें उसे हिलाती नहीं, मेंह उसे भिगोते नहीं, और बर्फ़ उसे नष्ट नहीं करती । क्योंकि उसमें ढकने वाले मेघ से रहित एक समुज्ज्वल प्रकाश है ।"

अफ़लातूँ कहता है : "परमेश्वर ने सात ग्रहों से कहा, तुम देवों के देव हो और मैं कर्म्मों का जनक हूँ ; मैं वह हूँ जिसने तुम्हें ऐसा बनाया कि कोई प्रलय सम्भव नहीं ; क्योंकि बाँधी हुई पृष्ठ ११५ वस्तु यद्यपि खुल सकती है पर जब तक इसकी व्यवस्था उत्तम बनी रहती है इसका नाश नहीं हो सकता है ।"

अरिस्टाटल (अरस्तू) सिकन्दर के नाम अपनी एक चिट्ठी में कहता है : "जगत् सारी सृष्टि की व्यवस्था है । जो जगत् के ऊपर है और जो उसके पार्श्वों को घेरे हुए है, वह देवताओं का वास-स्थान है । आकाश देवताओं से परिपूर्ण है । इन देवताओं को हम तारागण कहते हैं ।" उसी पुस्तक के किसी दूसरे स्थल में वह कहता है : "पृथ्वी को जल, जल को वायु, वायु को अग्नि, और अग्नि को आकाश (ईथर) घेरे हुए है । इसलिए सबसे ऊँचा स्थान देवताओं का वास-स्थान है, और सबसे नीचा जल-जन्तुओं का घर है" ।

वायु-पुराण में भी इसी प्रकार का एक वाक्य है कि पृथ्वी को जल, जल को शुद्ध अग्नि, अग्नि को वायु, वायु को आकाश, और आकाश को उसका स्वामी थामे हुए हैं ।

पृथ्वियों के नामों के सदृश लोकों के नामों में भेद नहीं है । केवल उनके क्रम के विषय में ही मतभेद है । हम इन लोकों के नामों को पहली के सदृश एक तालिका में प्रकट करते हैं ।

आकाशों की संख्या ।	आदित्य-पुराण के अनुसार वे सूर्य के किन अङ्गों को दिखलाते हैं।	आदित्य, वायु और विष्णु-पुराण के अनुसार उनके नाम ।
१	आमाशय	भूर्लोक
२	छाती	भुवर्लोक
३	मुँह	स्वर्लोक
४	भौंएँ	महर्लोक
५	माथा	जनलोक
६	(माथे के ऊपर)	तपोलोक
७	खोपड़ी	सत्यलोक

एक पतञ्जलि की पुस्तक के टीकाकार को छोड़ कर बाक़ी सब हिन्दुओं की पृथ्वियों के विषय में यही कल्पना है।

पतञ्जलि के टीकाकार की आलोचना ।

उसने सुना था कि पितरों या बापों के एकत्र होने का स्थान चन्द्रमा के मण्डल में है। यह ऐतिह्य ज्योतिषियों के सिद्धान्तों पर बना है। फलतः उसने चन्द्र-मण्डल को पहला आकाश बनाया जब कि उसे चाहिए था कि इसको भूर्लोक से अभिन्न समझता। क्योंकि इस रीति से एक ही आकाश बहुत ज़ियादा हो जाते थे, इसलिए उसने फल के स्थान, स्वर्लोक, को छोड़ दिया।

पृष्ठ ११६

इसके अतिरिक्त यही लेखक एक और बात में भी मतभेद रखता है। उसने ब्रह्मलोक को सत्यलोक के ऊपर रक्खा है क्योंकि सातवें लोक अर्थात् सत्यलोक को पुराणों में ब्रह्मलोक भी कहा गया है, जब कि यह समझना बहुत अधिक युक्तिसङ्गत होता कि इस सम्बन्ध में एक ही चीज़ को दो भिन्न भिन्न नामों से पुकारा गया है । पितृलोक

को भूर्लोक से अभिन्न दिखलाने के लिए उसे चाहिए था कि स्वर्लोक के स्थान में ब्रह्मलोक को छोड़ देता।

यह तो सात पृथ्वियों और सात आकाशों की बात हुई। अब हम सबसे ऊपर की पृथ्वी के विभाग और तत्सम्बन्धी विषयों का वर्णन करेंगे।

द्वीपों और समुद्रों की पद्धति।

दीप (द्वीप) टापू का भारतीय नाम है। सङ्गल दीप (सिंहल द्वीप) जिसको हम सरान्दीब कहते हैं, और दीबजात (मालदीब और लकादीब) इसी प्रकार के शब्द हैं। दीबजात बहुसंख्यक टापू हैं, ये जीर्ण हो जाते हैं, घुल जाते और चपटे हो जाते हैं, और अन्त को जल के नीचे अन्तर्द्धान हो जाते हैं, इसके साथ ही उसी प्रकार की दूसरी रचनायें रेत की धारी के सदृश पानी के ऊपर प्रकट होने लगती हैं। यह धारी निरन्तर बढ़ती, उठती, और फैलती रहती है। पहले टापू के अधिवासी अपने घरों को छोड़ कर नये टापू पर जा बसते और उसे आबाद कर देते हैं।

हिन्दुओं के धार्म्मिक ऐतिह्यों के अनुसार, जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह गोल और समुद्र से घिरी हुई है। इस समुद्र पर कालर के सदृश एक पृथ्वा स्थित है, और इस पृथ्वा पर फिर एक गोल समुद्र कालर की तरह है। शुष्क कालरों की संख्या, जिनको द्वीप कहा जाता है, सात है, और इसी प्रकार समुद्रों की संख्या है। द्वीपों और समुद्रों का परिमाण ऐसी श्रेढीसे बढ़ता है कि प्रत्येक द्वीप अपने पूर्ववर्ती द्वीप से दुगना, और प्रत्येक समुद्र अपने पूर्ववर्ती समुद्र से दुगना है अर्थात् दोनों की शक्तियों की श्रेढी में है। यदि मध्यवर्ती पृथिवी को एक गिना जाय तो सारी सात पृथ्वियों का परिमाण कालरों के तौर पर प्रकट करते हुए १२७ है। यदि मध्यवर्ती पृथ्वी को घेरने वाले समुद्र को एक गिना जाय तो सारे सात समुद्र का परिमाण कालरों के रूप में प्रकट करते हुए १२७ है। पृथ्वियों और समुद्रों दोनों का सम्पूर्ण परिमाण २५४ है।

पतञ्जलि की पुस्तक के टीकाकार ने मध्यवर्ती पृथ्वी का परिमाण १०००८० योजन लिया है। इसके अनुसार सारी पृथ्वियों का परिमाण १२७००००० योजन होगा। इसके अतिरिक्त वह मध्यवर्ती पृथ्वी को घेरने वाले समुद्र का परिमाण २००००० योजन लेता है। तदनुसार सारे समुद्रों का परिमाण २५४००००० योजन और सारी पृथ्वियों और सारे समुद्रों का सम्पूर्ण परिमाण ३८१००००० योजन होगा। परन्तु खुद ग्रन्थकार ने ये सङ्कलन नहीं किये। इसलिए हम उसके अङ्कों का अपने अङ्कों के साथ मिलान नहीं कर सकते। परन्तु वायु-पुराण कहता है कि सम्पूर्ण पृथ्वियों और समुद्रों का व्यास ३७६००००० योजन है। यह संख्या उपर्युक्त ३८१००००० योजनों के साथ नहीं मिलती। जब तक हम यह न मान लें कि पृथ्वियों की संख्या केवल छः है और श्रेढी २ के स्थान में ४ से आरम्भ होती है तब तक इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता। समुद्रों की ऐसी संख्या सम्भवतः इस प्रकार बताई जा सकती है कि सातवाँ समुद्र छोड़ दिया गया है, क्योंकि ग्रन्थकार केवल भूखण्डों के परिमाण को ही जानना चाहता था, इसीने उसको घेरने वाले अन्तिम समुद्र को गिनती में से छोड़ देने के लिए प्रवृत्त किया। परन्तु यदि उसने एक बार भूखण्डों का उल्लेख किया है तो उसे उनको घेरने वाले सारे समुद्रों का भी ज़िक्र करना चाहिए था। उसने २ के स्थान में श्रेढी को ४ से क्यों आरम्भ किया है इसका कारण मैं परिगणना के प्रतिपादित नियमों से कुछ नहीं बता सकता।

वायुपुराण और पतञ्जलि के टीकाकार के अनुसार द्वीपों और समुद्रों का परिमाण।

प्रत्येक द्वीप और समुद्र का जुदा जुदा नाम है। जहाँ तक हमें मालूम है हम उनको पाठकों के सन्मुख नीचे की तालिका में रखते हैं, और आशा करते हैं कि पाठक हमें इसके लिए क्षमा करेंगे।

पृष्ठ ११७

द्वीपों और समुद्रों की संख्या ।	मत्स्य-पुराण ।		पतञ्जलि का टीकाकार— विष्णु-पुराण ।		देशी नाम	
	द्वीप	समुद्र	ीप	समुद्र	द्वीप	समुद्र
१	जम्बु-द्वीप ।	लवण अर्थात् नमक ।	जम्बु, एक वृक्ष का नाम ।	क्षार, अर्थात् खारी ।	जम्बुः	लवण समुद्र ।
२	शाक-द्वीप ।	क्षीरोदक अर्थात् दूध ।	पलाक्ष, एक वृक्ष का नाम ।	इक्षु, अर्थात् ईख ।	शाकः	इक्षु ।
३	कुश-द्वीप ।	घृतमण्ड अर्थात् मक्खन	शाल्मलि, एक वृक्ष का नाम ।	सुरा अर्थात् शराब ।	कुश ।	सुरा ।
४	क्रौञ्च-द्वीप	दधिमण्ड अर्थात् दही ।	कुश, एक पौधे का नाम ।	सर्पिस, अर्थात् मक्खन ।	क्रौञ्च	सर्पिस् ।
५	शाल्मलि-द्वीप	सुरा अर्थात् चावल की शराब ।	क्रौंच, संख ।	दधि अर्थात् दही ।	शाल्मलि	दधिसागर ।
६	गोमेद-द्वीप ।	इक्षुरसोद अर्थात् ईख का रस ।	शाक, एक वृक्ष का नाम ।	क्षीर अर्थात् दूध ।	गोमेद ।	क्षीर ।
७	पुष्कर-द्वीप ।	स्वादूदक अर्थात् मीठा पानी ।	पुष्कर, एक वृक्ष का नाम ।	स्वादूदक अर्थात् मीठा पानी ।	पुष्कर ।	पानीय ।

इस तालिका में जो भेद दिखाई देते हैं उनका कोई भी युक्ति-सङ्गत कारण नहीं बताया जा सकता। परिगणना के स्वच्छन्द, नैमित्तिक परिवर्तनों के सिवा इनकी उत्पत्ति और किसी दूसरे स्रोत से नहीं हो सकती। इन ऐतिह्यों में से सब से अधिक योग्य मत्स्य-पुराण का ऐतिह्य है, क्योंकि यह द्वीपों और समुद्रों की गिनती एक दूसरे के बाद एक नियत क्रम से करता है, अर्थात् द्वीप के इर्द गिर्द समुद्र और समुद्र के इर्द गिर्द द्वीप, और परिगणना केन्द्र से चलकर परिधि की ओर जाती है।

पृष्ठ ११८

अब हम यहाँ कुछ सजाति विषयों का उल्लेख करेंगे, यद्यपि पुस्तक के किसी दूसरे स्थल में उनका वर्णन करना शायद अधिक दुरुस्त होता।

पतञ्जलि के टीकाकार के प्रमाण।

पतञ्जलि की पुस्तक का टीकाकार, जगत् के परिमाण को निश्चय करने की इच्छा से, (अपनी गणना) नीचे से आरम्भ करता है और कहता है: "अन्धकार का परिमाण एक कोटि और ८५ लक्ष योजन, अर्थात् १८०००००० योजन है।

"इसके बाद नरक हैं जिनका परिमाण १३ कोटि और १२ लक्ष अर्थात् १३१२०००००० योजन है।

"इसके बाद एक लक्ष, अर्थात् १००००० योजन का अन्धकार है।

"इसके ऊपर ३४००० योजन की वज्रभूमि है। इसका यह नाम इसकी कठिनता के कारण है। क्योंकि वज्र शब्द का अर्थ हीरा है।

"इसके ऊपर ६०००० योजन की गर्भ नामक मध्यवर्ती पृथ्वी है।

"इसके ऊपर ३०००० योजन की स्वर्ण-भूमि नामक पृथ्वी है।

"इसके ऊपर सात पृथ्वियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक १०००० योजन की है, जिससे सम्पूर्ण संख्या ७०००० योजन बनती है। इनमें से ऊपर की पृथ्वी वह है जिसमें द्वीप और समुद्र हैं।

"मीठे पानी के समुद्र के पीछे लोकालोक है जिसका अर्थ है न इकट्ठे होने का स्थान, अर्थात् सभ्यता और अधिवासियों से शून्य जगह।"

"इसके बाद एक कोटि अर्थात् १००००००० की सोने की भूमि है; इसके ऊपर ६१३४००० योजन का पितृलोक है।

"इन सात लोकों के साकल्य जिसे ब्रह्माण्ड कहते हैं, का परिमाण १५ कोटि अर्थात् १५०००००००० योजन है। और इसके ऊपर सबसे नीचे के अन्धकार के सदृश १८५०००००० योजन का तमस् अर्थात् अन्धकार है।"

हमें तो सातों समुद्रों सहित सातों पृथ्वियों को गिनना पहले ही से कठिन मालूम होता था, और अब यह ग्रन्थकार समझता है कि हमारी पहले ही की गिनाई हुई पृथ्वियों के नीचे कुछ और नई पृथ्वियाँ निकाल कर वह इस विषय को हमारे लिए अधिक सुगम और रुचिकर बना सकता है!

सदृश विषयों का वर्णन करते हुए विष्णु-पुराण कहता है:—"सब से निचली सातवीं पृथ्वी के नीचे एक सर्प है। इसका नाम शेषाख्य है, जो आध्यात्मिक प्राणियों में पूज्य है। इसे अनन्त भी कहते हैं। इसके एक सहस्र सिर हैं और यह पृथ्वियों को उठाये हुए है, परन्तु उनके भारी वज़न इसको व्यथित नहीं करते। ये पृथ्वियाँ, जो एक दूसरे के ऊपर ढेर की तरह रक्खी हुई हैं, सुख और उत्तम पदार्थों से सम्पन्न, मणि-मुक्ताओं से अलङ्कृत, और सूर्य तथा चन्द्र की रश्मियों से नहीं बल्कि अपनी ही रश्मियों से आलोकित हैं। ये सूर्य और चन्द्र

उनमें नहीं उदय होते। इसलिए उनका ताप सदा समान रहता है, उनमें चिरस्थायी सुगन्धित फूल, पेड़ों के कुसुम और फल हैं; उनके अधिवासियों में समय की कोई कल्पना नहीं, क्योंकि गतियों को गिनने से उन्हें इनका ज्ञान नहीं होता। उनका परिमाण ७०००० योजन, और उनमें से प्रत्येक का १०००० योजन है। नारद ऋषि इनको देखने और इनमें बसने वाले दो प्रकार के प्राणियों, दैत्यों और दानवों, से परिचय लाभ करने के लिए नीचे आया। जब उसने यहाँ आकर स्वर्ग के आनन्द को इन पृथ्वियों के आनन्द के सामने तुच्छ पाया तो उसने देवताओं के पास जाकर अपना वृत्तान्त सुनाया, और अपने वर्णन से उनकी प्रशंसा को जागृत किया।"

इसके आगे यह वाक्य है:—"मीठे पानी के समुद्र के पीछे स्वर्ण भूमि है। यह सारे द्वीपों और समुद्रों से दुगनी है, पर इसमें न मानव ही रहते हैं और न दानव ही। इसके पीछे लोकालोक नामक १०००० योजन ऊँचा और उतना ही चौड़ा पर्वत है। इसका सारा परिमाण ५० कोटि अर्थात् ५००००००००० योजन है।" इस समस्ति को हिन्दुओं की भाषा में कई दफ़े धातृ अर्थात् सब वस्तुओं को धारण किये हुए, और कई दफ़े विधातृ, अर्थात् सब वस्तुओं को छोड़े हुए कहा गया है। यह प्रत्येक सजीव प्राणी का निवास-स्थान भी कहलाता है। इनके अतिरिक्त इसके और भी विविध नाम हैं। ये नाम भी उसी तरह भिन्न हैं जैसे शून्य के विषय में लोगों की राय एक दूसरे से भिन्न है। जिन लोगों का शून्य में विश्वास है वे इसको वस्तुओं के इसकी ओर खिंच आने का कारण बनाते हैं, और जो शून्य से इन्कार करते हैं वे कहते हैं कि यह आकर्षण का कारण नहीं है।

पृष्ठ ११९

इसके बाद विष्णु-पुराण का रचयिता लोकों की ओर आता है

और कहता है :—"प्रत्येक वस्तु, जिस पर पैर रक्खा जा सकता है और जिसमें जहाज़ तैर सकता है, भूर्लोक है ।" यह सबसे ऊपर की पृथ्वी के उपरितल का आकार मालूम होता है। वह वायु, जो कि सूर्य और पृथ्वी के बीच है, जिस में सिद्ध, मुनि, और गाने वाले गन्धर्व इधर उधर विचरते हैं, भुवर्लोक है। ये सारी तीन भूमियाँ तीन पृथ्वियाँ कहलाती हैं। जो इनके ऊपर है वह व्यास-मण्डल अर्थात् व्यास का राज्य है। पृथ्वी और सूर्य के बीच का अन्तर १००००० योजन है और सूर्य तथा चन्द्र के बीच की दूरी भी इतनी ही है। चन्द्र और बुध के बीच का अन्तर दो लक्ष अर्थात् २००००० योजन है, और बुध और शुक्र के बीच भी इतना ही अन्तर है। शुक्र और मङ्गल के बीच, मङ्गल और वृहस्पति के बीच, वृहस्पति और शनैश्चर के बीच के अन्तर बराबर बराबर हैं। इनमें से प्रत्येक २००००० योजन है। शनैश्चर और सप्तर्षि के बीच १००००० योजन का, और सप्तर्षि और ध्रुव के बीच १००० योजन का अन्तर है। इसके ऊपर २ करोड़ योजन की दूरी पर महर्लोक है; उसके ऊपर ८ करोड़ की दूरी पर जनःलोक है; उसके ऊपर ४८ करोड़ के अन्तर पर पितृ-लोक है; उसके ऊपर सत्यलोक है।"

परन्तु यह संख्या पतञ्जलि की पुस्तक के टीकाकार के प्रमाण से बताई हुई हमारी पहली संख्या, अर्थात् १५०००० योजन से तिगुनी से भी अधिक है। परन्तु प्रत्येक जाति के लिपिकारों और लेखकों की ऐसी ही रीति है, और मैं पुराणों के अध्येताओं को इस दोष से रहित नहीं कह सकता क्योंकि उनका पाण्डित्य शुद्ध नहीं।

बाईसवाँ परिच्छेद ।

ध्रुव-प्रदेश के विषय में ऐतिह्य ।

हिन्दुओं की भाषा में कुत्बको ध्रुव और धुरी को शलाक कहते हैं। हिन्दुओं में, उनके ज्योतिषियों को छोड़ कर बाक़ी सभी लोग सदा एक ही ध्रुव कहते हैं। इसका कारण, जैसा कि हम पहले बता आये हैं, उनका आकाश के गुम्बज़ में विश्वास है। वायु-पुराण के अनुसार आकाश ध्रुव के गिर्द कुम्हार के चक्के की तरह घूमता है, और ध्रुव, अपने स्थान को बिना बदले, अपने इर्द गिर्द घूमता है। यह परिभ्रमण ३० मुहूर्त्त अर्थात् एक दिन रात में समाप्त होता है।

दक्षिण ध्रुव की उत्पत्ति और सोमदत्त की कथा।

दक्षिणध्रुव के विषय में मैंने उन से एक ही कथा या ऐतिह्य सुना है और वह यह है। एक समय सोमदत्त नामक उनका एक राजा था। अपने पुण्य-कर्म्मों के कारण वह स्वर्ग का अधिकारी बन गया था; परन्तु वह यह पसन्द नहीं करता था कि दूसरे लोक में जाते समय उसके शरीर को उसकी आत्मा से चीर कर अलग कर दिया जाय। अब उसने वसिष्ठ ऋषि को बुलाकर कहा कि मुझे अपने शरीर से बहुत मोह है और मैं इससे अलग होना नहीं चाहता। परन्तु ऋषि ने उसे उत्तर दिया कि मनुष्य के लिए अपने भौतिक शरीर के साथ स्वर्ग में प्रविष्ट होना असम्भव है। इस पर उसने अपनी इच्छा को वसिष्ठ के पुत्रों के सामने प्रकट किया; परन्तु इन्होंने उसके मुँह पर थूक दिया, उसका तिरस्कार किया, और उसे चाण्डाल

के रूप में बदल दिया जिसके कानों में बालियाँ और तन पर कुर्तक (अर्थात् एक छोटी क़मीज़ जिसको स्त्रियाँ कन्धों के गिर्द पहनती हैं और जो शरीर के मध्य भाग तक आती है) था। जब इस दशा में वह विश्वामित्र ऋषि के पास आया तो ऋषि ने उसे एक घृणोत्पादक दृश्य पाया और पूछा कि इस रूप का कारण क्या है? इस पर सोमदत्त ने उसे सारी कथा कह सुनाई। यह वृत्तान्त सुनकर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध आया। उसने एक भारी यज्ञ करने के लिए ब्राह्मणों को अपने पास बुलाया। उनमें वसिष्ठ के पुत्र भी थे। वह उनसे बोला "मैं इस धर्म्मात्मा राजा के लिए एक नया जगत्, एक नया स्वर्ग बनाना चाहता हूँ, जिससे इसकी मनःकामना पूर्ण हो जाय।"

पृष्ठ १२०

इस पर उसने दक्षिण में ध्रुव और सप्तर्षि बनाना आरम्भ कर दिया, परन्तु राजा इन्द्र और देवता लोग उससे डरने लगे। वे उसके पास गये, और उससे विनयपूर्वक प्रार्थना की कि आप इस काम को जाने दीजिए, हम सोमदत्त को उसके इसी शरीर में स्वर्ग में ले जाते हैं। वे उसे उसी तरह ही स्वर्ग में ले गये जिस से ऋषि ने दूसरा लोक बनाना छोड़ दिया, परन्तु जितना वह उस समय तक बना चुका था वह वैसा का वैसा बना रहा।

यह बात सब कोई जानता है कि हम उत्तर ध्रुव को सप्तर्षि और दक्षिण ध्रुव को सुहैल (Canopus) कहते हैं। परन्तु हमारे लोगों (मुसलिम) में से कुछ लोग, जो अशिक्षित जनसमुदाय से ऊपर नहीं उठते, यह समझते हैं कि आकाश के दक्षिण में भी उत्तरीय सप्तर्षि के आकार का एक सप्तर्षि है जो कि दक्षिणी ध्रुव के गिर्द घूमता है।

ऐसी बात असम्भव, बल्कि विचित्र भी न होती यदि इसका

संवाद कोई ऐसा विश्वस्त मनुष्य लाता जिसने कि लम्बी लम्बी सागर-यात्राएँ की होतीं। निश्चय ही दक्षिणी प्रदेशों में ऐसे ऐसे तारे देखे जाते हैं जिनको हम अपने अक्षों में नहीं देखते। श्रीपाल कहता है कि मुलतान के लोगों को ग्रीष्म ऋतु में सुहैल (Canopus) की ऊर्ध्वसीमा के कुछ नीचे एक लाल तारा दिखाई देता है। इसको वे शूल अर्थात् सूली का शहतीर कहते हैं और हिन्दू इसे अशुभ समझते हैं। इसलिए जब चन्द्रमा पूर्वभाद्रपद में होता है तो हिन्दू दक्षिण की ओर सफ़र नहीं करते, क्योंकि यह तारा रास्ते में होता है।

शूल तारे पर श्रीपाल की राय। ज्वर-तारे पर अलजैहानी की राय। शिशुमार पर ब्रह्मगुप्त की राय।

अलजैहानी अपनी 'रास्तों की पुस्तक' में कहता है कि लङ्गबालूस टापू पर एक बड़ा तारा दिखाई देता है जिसको कि ज्वर तारा कहते हैं। यह शरद ऋतु में प्रातः उषा-काल के क़रीब पूर्व दिशा में खजूर के पेड़ जैसा ऊँचा दिखाई देता है। इसका आकार छोटे रीछ (Small Bear) की पूँछ और उसकी पीठ का, और वहाँ स्थित कई छोटे छोटे तारों का बना हुआ आयत होता है। यह चक्की का बसूला कहलाता है। ब्रह्मगुप्त मीन के सम्बन्ध में इसका उल्लेख करता है। हिन्दू लोग उस रूप का वर्णन करते समय जिसमें कि वे तारकाओं के इस चक्र को प्रकट करते हैं, असङ्गत कहानियाँ सुनाते हैं। इस तारा-समूह का रूप एक चतुष्पाद जल-जन्तु के सदृश बताया जाता है, और वे इस शक्वर और शिशुमार कहते हैं। मैं समझता हूँ यह जन्तु बड़ी छिपकली है, क्योंकि फ़ारस देश में इसे सूसमार कहते हैं, जिसकी आवाज़ कि भारतीय शब्द शिशुमार के सदृश है। इस प्रकार के जन्तुओं की घड़ियाल और मगर के सदृश एक जलज जाति भी है। उन कहानियों में से एक यह है।

जब ब्रह्मा को मानव जाति के उत्पन्न करने की इच्छा हुई तो उसने अपने आप को दो अर्धभागों में विभक्त कर दिया। इनमें से दायाँ भाग विरज और बायाँ मनु कहलाया। मनु वह व्यक्ति है जिससे कालावधि-विशेष का नाम मन्वन्तर कहलाता है। मनु के दो पुत्र थे, प्रियव्रत और उत्तान-पाद, अर्थात् धनुष के सदृश टाँगों वाला राजा। उत्तानपाद के ध्रुव नामक एक पुत्र था। वह अपनी सौतेली माता से अनादृत हुआ था। इस कारण उसे सब तारकाओं को अपनी इच्छा के अनुसार घुमाने की शक्ति मिली थी। वह सब से पहले मन्वन्तर, स्वायम्भव के मन्व-न्तर, में प्रकट हुआ था, और सदा अपने ही स्थान में स्थित रहा है।

ध्रुव की कथा।

वायु-पुराण कहता है:—"वायु तारकाओं को ध्रुव के गिर्द दौड़ाती है। ये तारकाएँ ध्रुव के साथ मनुष्य को न दिखाई देने वाले बंधनों से बँधी हुई हैं। वे कोल्हू के लट्ठे के सदृश गिर्दागिर्द घूमती हैं, क्योंकि इस लट्ठे का पेंदा, एक प्रकार से, निश्चल खड़ा है, पर इसका सिरा गिर्दागिर्द घूमता रहता है।

वायुपुराण और विष्णु धर्म के प्रमाण।

विष्णु-धर्म्म कहता है:—"नारायण के भाई बलभद्र के पुत्र वज्र ने मार्कण्डेय ऋषि से ध्रुव का हाल पूछा, तो उसने उत्तर में कहा:—जब परमेश्वर ने जगत् को उत्पन्न किया तो यह तमोमय और निर्जल था। इस पर उसने सूर्य के गोले को प्रकाशमान और नक्षत्रों के गोलों को जलमय बनाया। ये नक्षत्र सूर्य के उस पार्श्व से प्रकाश लेते हैं जिसको कि वह उनकी ओर फेरता है। इन ताराओं में से चौदह को उसने शिशुमार के रूप में ध्रुव के इर्द गिर्द रख दिया। ये शिशुमार दूसरे नक्षत्रों को ध्रुव के गिर्दागिर्द घुमाते हैं। उनमें से एक, ध्रुव के उत्तर में, उच्चतम ठोड़ी पर, उत्तानपाद है, नीचतम

पृष्ठ १२१

ठोड़ी पर यज्ञ, सिर पर धर्म्म, छाती पर नारायण, दोनों हाथों पर पूर्व की ओर दो तारे अर्थात् अश्विनी वैद्य, दोनों पैरों पर वरुण, और पश्चिम की ओर अर्यमन्, लिङ्ग पर संवत्सर, पीठ पर मित्र, पूँछ पर अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, और कश्यप हैं।"

स्वयम् ध्रुव स्वर्ग के अधिवासियों का राजा विष्णु है; इसके अतिरिक्त वह समय पर प्रकट होने वाला, बढ़ने वाला, बूढ़ा होने वाला और लोप होजाने वाला है।

विष्णु-धर्म्म और कहता है:—"यदि मनुष्य इसे पढ़े और यथार्थ-रूप में जान ले तो परमेश्वर उसके उस दिन के पाप क्षमा कर देता है, और उसकी आयु में जिसकी लम्बाई पहले से नियत होती है चौदह वर्ष और बढ़ा दिये जाते हैं।"

वे लोग कितने भोले हैं! हम लोगों में ऐसे विद्वान् हैं जो १०२० और १०३० के अन्दर अन्दर तारों को जानते हैं। क्या वे लोग केवल अपने तारों के ज्ञान के कारण ही परमेश्वर से प्राण और जीवन पायेंगे?

सभी तारे घूमते हैं, चाहे उनके सम्बन्ध में ध्रुव की स्थिति कुछ ही हो।

यदि मुझे कोई ऐसा हिन्दू मिल जाता जो उङ्गली के साथ मुझे इकहरे तारों को दिखला सकता तो मैं उन्हें यूनानियों और अरबियों में प्रसिद्ध नक्षत्र-आकारों के साथ, या यदि वे उन आकारों में से न होते तो भी पड़ोस के तारों के साथ मिलाने में समर्थ हो जाता।

तेईसवाँ परिच्छेद।



पुराण-कर्त्ताओं और दूसरे लोगों के विश्वासानुसार मेरु पर्वत का वर्णन।

हम इस पर्वत के वर्णन से आरम्भ करते हैं, क्योंकि यह द्वीपों और समुद्रों का, और, साथ ही, जम्बू-द्वीप का केन्द्र है। ब्रह्मगुप्त कहता है : "पृथ्वी और मेरु पर्वत के वर्णन के विषय में लोगों की, विशेषतः जो लोग पुराणों और धार्म्मिक साहित्य का अध्ययन करते हैं, अनेक सम्मतियाँ हैं। कई लोग इस पर्वत को पृथ्वी से बहुत ऊँचा उठा हुआ बताते हैं। यह ध्रुव के नीचे स्थित है और तारे इसके पाँव के गिर्द घूमते हैं, जिससे उदय और अस्त होना मेरु पर अवलम्बित है। यह मेरु इसलिए कहलाता है क्योंकि इसमें यह करने की शक्ति है, और क्योंकि सूर्य और चन्द्र का दिखाई देना केवल इसकी चोटी के प्रभाव पर आश्रित है। मेरु पर निवास करने वाले देवताओं का दिन छः मासों का और रात भी छः मासों की होती है।"

पृथ्वी और मेरु पर्वत पर ब्रह्मगुप्त की राय।

ब्रह्मगुप्त जिन अर्थात् बुद्ध की पुस्तक से यह वाक्य उद्‌धृत करता है: "मेरु पर्वत चतुर्भुज है, गोल नहीं।"

टीकाकार बलभद्र कहता है: "कई लोग कहते हैं कि पृथ्वी चिपटी है, और मेरु पर्वत एक प्रकाशमान तथा आलोक देने वाला पिण्ड है। परन्तु यदि ऐसी अवस्था होती तो ग्रह मेरु के अधिवासियों के दिङ्मण्डल के गिर्द न घूमते,

उसी विषय पर बलभद्र की राय।

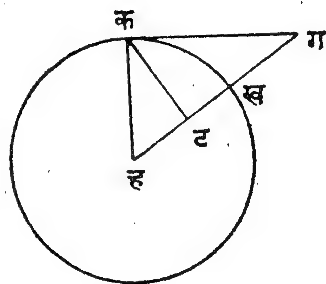
और यदि यह प्रकाशमान होता तो यह अपनी उँचाई के कारण दिखाई देता, जिस प्रकार कि इसके ऊपर ध्रुव दिखाई देता है। कुछ लोग मेरु को सुवर्ण का और अन्य दूसरे इसे मणियों का बना बताते हैं। आर्यभट्ट समझता है कि इसकी कोई असीम उँचाई नहीं, प्रत्युत यह केवल एक योजन ऊँचा है, यह चतुर्भुज नहीं बल्कि गोल है, यह देवताओं का देश है; प्रकाशमान होते हुए भी यह अदृश्य है क्योंकि यह आबादी से बहुत दूर, सर्वथा उत्तर के शीतल-मण्डल में, और नन्दन वन नामक जङ्गल में स्थित है। परन्तु यदि इसकी उँचाई बहुत होती, तो ६६ वें अक्षांश पर सारे कर्कवृत्त का दिखाई देना, और कभी लुप्त हुए बिना सदा दृष्टिगोचर होने के कारण सूर्य का उसके गिर्द घूमना कभी सम्भव ही न होता।"

पृष्ठ १२२

बलभद्र का सारा लेख, विषय और शब्द दोनों में, निःसार है, और मुझे पता नहीं लगता कि जब उसके पास लिखने के लिए कोई उत्तम बात ही न थी तो उसे टीका लिखने का शौक़ ही क्यों हुआ।

ग्रन्थकार बलभद्र की आलोचना करता है।

यदि वह पृथ्वी के चिपटी होने की कल्पना का मेरु के दिङ्-मण्डल के गिर्द नक्षत्रों के घूमने से खण्डन करने का यत्न करता है तो उसकी यह युक्ति इस कल्पना के खण्डन करने के स्थान में उलटा इसीको प्रमाणित करती है। क्योंकि यदि पृथ्वी एक सम विस्तार हो और पृथ्वी पर की प्रत्येक ऊँची वस्तु मेरु की लम्बरूप उच्चता के समान हो तो दिङ्मण्डल में कोई परिवर्तन न होगा, और एक ही दिङ्ण्डल पृथ्वी पर के सभी स्थानों के लिए विषुव होगा।



बलभद्र द्वारा उद्धृत आर्यभट्ट के शब्दों पर हम निम्नलिखित टिप्पणी करते हैं। क ख को केन्द्र ह के गिर्द एक चक्र मान लीजिए। इसके अतिरिक्त क पृथ्वी पर ६६ वें अक्षांश में एक स्थान है। हम इस चक्र में से सब से बड़े झुकाव के बराबर क ख वृत्तांश काट लेते हैं। तब ख वह स्थान है जिसके खमध्य में कि ध्रुव स्थित है।

ग्रन्थकर्ता आर्य्यभट्ट के बयानों की पड़ताल करता है।

फिर, हम क बिन्दु पर गोले को स्पर्श करती हुई क ग रेखा खींचते हैं। यह रेखा, जहाँ तक मनुष्य की आँख पृथ्वी के गिर्द पहुँचती है, दिङ्मण्डल के समक्षेत्र में है।

हम क और ह बिन्दुओं को एक दूसरे से मिलाते हैं, और ह ख ग रेखा खींचते हैं जिससे ग पर इसके साथ क ग रेखा आ मिलती है। फिर हम ह ग पर क ट लम्बक गिराते हैं। अब यह स्पष्ट है कि—

क ट सब से बड़े झुकाव की ज्या है;

ट ख सब से बड़े झुकाव की निचली ज्या है;

ट ह सब से बड़े झुकाव के पूरक की ज्या है।

और क्योंकि हम यहाँ पर आर्यभट्ट से सहमत हैं, इसलिए हम, उसकी पद्धति के अनुसार, ज्याओं को कर्दजात में बदल देंगे। उसके अनुसार—

क ट = १३९७.

ट ह = ३१४०.

ख ट = २९८.

क्योंकि ह क ग समकोण है इसलिए समीकरण यह है—

ह ट : ट क = ट क : ट ग.

और क ट का वर्ग १९५१६०९ है। यदि हम इसे ट ह पर बाँटें तो भागफल ६२२ निकलता है।

इस संख्या और ट ख में ३२४ का भेद है जोकि ख ग है। और ख ग का ख ह के साथ वही अनुपात है जैसा कि ख ग के योजनों की संख्या का ख ह के योजनों के साथ है। ख ह पूरी ज्या (sinus totus) होने से ३४३८ के बराबर है। ख ह के योजनों की संख्या, आर्यभट्ट के अनुसार, ८०० है। यदि इसको ऊपर कहे ३२४ के भेद से गुणें तो गुणाकार २५९२०० होता है। अब यदि इस संख्या को पूर्ण ज्या पर बाँटें तो भागफल ७५ निकलता है, जोकि ख ग के योजनों की संख्या है। यह ६०० मील या २०० फ़र्सख़ के बराबर है।

यदि किसी पर्वत का लम्बक २०० फ़र्सख है तो उसकी चढ़ाई इससे कोई दुगनी होगी। चाहे मेरु पर्वत की ऐसी ऊँचाई हो चाहे न हो, ६६ वें अक्षांश से इसका कुछ भी दिखाई नहीं दे सकता, और कर्कवृत्त में इसका कोई भी अंश नहीं हो सकता (जिससे सूर्य के प्रकाश को इसके पास पहुँचने में रुकावट हो)। और यदि उन अक्षों (६६° और २३°) के लिये मेरु दिङ्मण्डल के नीचे है तो यह उनसे कम अक्ष के सभी स्थानों के लिए भी दिङ्मण्डल के नीचे है। यदि तुम मेरु को सूर्य जैसे प्रकाशमान पिण्ड से तुलना दो, तो तुम जानते हो कि सूर्य पृथ्वी के नीचे अस्त और अन्तर्धान हो जाता है। वास्तव में मेरु को पृथ्वी से तुलना दी जा सकती है। इसके हमें दिखाई न देने का कारण यह नहीं कि यह सुदूर शीतल प्रदेश में स्थित है बल्कि यह दिङ्मण्डल के नीचे है, और पृथ्वी एक गोला है, जिस के केन्द्र की ओर प्रत्येक गुरु पदार्थ खिंच जाता है।

पृष्ठ १२३

इसके अतिरिक्त, आर्यभट्ट इस बात से कि कर्कवृत्त उन स्थानों में दिखाई देता है जिनका अक्ष कि सबसे बड़े झुकाव के पूरक (Complement) के बराबर है, यह प्रमाणित करने का यत्न करता है कि मेरु पर्वत की ऊँचाई केवल मध्यम है। हमें यह कहना पड़ता है कि

यह युक्ति सयुक्तिक नहीं, क्योंकि उन देशों में अक्ष और अन्य वृत्तों की अवस्थाओं को हम केवल वितर्कण द्वारा ही जानते हैं, प्रत्यक्ष दर्शन या ऐतिह्य द्वारा नहीं, क्योंकि वहाँ कोई रहता नहीं, और उनके मार्ग अगम्य हैं।

यदि उन देशों से कोई मनुष्य आर्यभट्ट के पास आया होता और उससे आकर कहता कि उस अक्ष में कर्क-रेखा दिखाई देती है, तो हम उसके मुक़ाबले में यह कह सकते थे कि हमारे पास भी उसी प्रदेश से एक मनुष्य आया है जो कहता है कि वहाँ उसका एक भाग दिखाई नहीं देता। कर्क-वृत्त को ढँकने वाली एक मात्र वस्तु यह मेरु पर्वत है। यदि मेरु न होता तो सारी अयनसीमा दिखाई देती। कौन ऐसा मनुष्य है जो यह बता सके कि इन दो समाचारों में से कौनसा सबसे अधिक विश्वास के योग्य है ?

कुसुमपुर के आर्यभट्ट की पुस्तक में लिखा है कि मेरु पर्वत हिमवन्त अर्थात् ठण्डे प्रदेश में है और एक योजन से अधिक ऊँचा नहीं। परन्तु अनुवाद में यह इस प्रकार बदल दिया गया है कि उसका मतलब यह निकलता है कि यह हिमवन्त से एक योजन से अधिक ऊँचा नहीं।

यह ग्रन्थकर्त्ता बड़े आर्यभट्ट से भिन्न है और उसके अनुयायियों में से एक है, क्योंकि वह उसके प्रमाण देता और उसके उदाहरण का अनुकरण करता है। मैं नहीं जानता कि इन दो समनामधारियों में से बलभद्र का तात्पर्य किससे है।

सामान्यतः, इस पर्वत के स्थान की अवस्थाओं के विषय में हम जो कुछ भी जानते हैं वह केवल वितर्क द्वारा ही जानते हैं। स्वयम् पर्वत के विषय में उनके यहाँ अनेक ऐतिह्य हैं। कई उसे एक योजन ऊँचा बताते हैं और कई इससे अधिक; कुछ लोग उसे चतुर्भुज समझते

हैं और कुछ अष्टकोण। अब हम इस पर्वत के विषय में ऋषियों की शिक्षा पाठकों के सम्मुख रखते हैं।

मेरु पर्वत और पृथ्वी के अन्य पर्वतों पर मत्स्य-पुराण का कथन।

मत्स्य-पुराण कहता है: "यह सोने का है और उस आग की तरह चमक रहा है जो धुँवें से तेजोहीन नहीं। इसके चारों पार्श्वों पर इसके चार भिन्न भिन्न रङ्ग हैं। पूर्वी पार्श्व का रङ्ग ब्राह्मणों के रङ्ग के सदृश सफ़ेद है, उत्तरी पार्श्व का क्षत्रियों के रङ्ग के सदृश लाल है, दक्षिणी पार्श्व का वैश्यों के सदृश पीला है, और पश्चिमी पार्श्व का शूद्रों के सदृश काला है। यह ८६००० योजन ऊँचा है, और इन योजनों में से १६००० पृथ्वी के भीतर हैं। इस के चार पार्श्वों में से प्रत्येक ३४००० योजन है। इसमें मीठे पानी की नदियाँ बहती हैं, और सोने के सुन्दर घर बने हुये हैं जिनमें देवगण, उनके गवैये गन्धर्व, और उनकी वाराङ्गना अप्सराएँ प्रभृति आध्यात्मिक प्राणी निवास करते हैं। यहाँ असुर, दैत्य और राक्षस भी रहते हैं। इस पर्वत के गिर्द मानस सरोवर है, और उसके चारों ओर लोकपाल अर्थात् जगत् और उस के अधिवासियों के रक्षक हैं। मेरु पर्वत की सात ग्रन्थियाँ अर्थात् बड़े बड़े पहाड़ हैं। उनके नाम ये हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिबाम् (?), ऋक्षबाम् (?), विन्ध्य, पारियात्र। छोटे छोटे पहाड़ प्रायः असंख्य हैं; ये वे पहाड़ हैं जिन पर मानव जाति निवास करती है।

"मेरु के गिर्द बड़े पहाड़ ये हैं: हिमवन्त, जो सदा हिम से ढँका रहता है, और जिस पर राक्षस, पिशाच, और यक्ष निवास करते हैं। हेमकूट, जो सोनहला है और जिस पर गन्धर्व और अप्सरायें रहती हैं। निषाध, जिस पर नाग अर्थात् साँप रहते हैं। इन नागों के ये सात राजे हैं: अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, महापद्म, कम्बल, और अश्वतर। नील, जो मोर के सदृश अनेक रङ्गों का है,

जिस पर सिद्ध और ब्रह्मर्षि रहते हैं। श्वेत पर्वत, जिस पर दैत्य और दानव रहते हैं। शृङ्गवन्त पर्वत, जिस पर पितर अर्थात् देवों के पिता और पितामह निवास करते हैं। इस पर्वत के समीप ही उत्तर की ओर रत्नों और कल्प पर्यन्त रहने वाले वृक्षों से भरी हुई पहाड़ी दरियाँ हैं। और इन पर्वतों के मध्य में सबसे ऊँचा इलावृत है। यह सारा पुरुषपर्वत कहलाता है। हिमवन्त और शृङ्गवन्त के बीच का प्रदेश कैलास कहलाता है, और यह राक्षसों और अप्सराओं का क्रीडा-स्थल है।"

पृष्ठ १२४

विष्णु-पुराण कहता है: "मध्य पृथ्वी के बड़े बड़े पहाड़ ये हैं, मलय पर्वत, माल्यवन्त, विन्ध्य, त्रिकूट, त्रिपुरान्तिक, और कैलास। उनके अधिवासी नदियों का जल पीते हैं और नित्य आनन्द में रहते हैं।"

विष्णु, वायु और आदित्य-पुराण के अवतरण।

वायु-पुराण में भी मेरु की उँचाई और उसके चार पार्श्वों के विषय में ऐसे ही वर्णन हैं जैसे कि उन पुराणों में हैं जिनके अवतरण अभी दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त, यह पुराण कहता है कि इसके प्रत्येक पार्श्व पर एक चतुर्भुज पर्वत है, पूर्व में माल्यवन्त, उत्तरमें आनील, पश्चिम में गन्धमादन, और दक्षिण में निषाध। आदित्य-पुराण इसके चार पार्श्वों में से प्रत्येक के विषय में वैसा ही वर्णन देता है जैसा कि हमने मत्स्य-पुराण से उद्धृत किया है, पर मैंने इसमें मेरु की उँचाई के विषय का कोई वर्णन नहीं देखा। इस पुराण के अनुसार इसका पूर्वीय पार्श्व सुवर्ण का, पश्चिमी चाँदी का, दक्षिणी पद्मराग का, और उत्तरी भिन्न भिन्न मणियों का है।

मेरु के परिमाणों की अतिमात्र कल्पनायें असम्भव थीं, यदि पृथ्वी के विषय में भी उनकी वैसी ही अतिमात्र कल्पनायें न होतीं, और यदि अनुमान को सीमा के भीतर न

इसी विषय पर पतञ्जलि का टीकाकार।

रक्खा जाय तो यह अनुमान बिना किसी रोक के बढ़कर झूठ का रूप धारण कर सकता है। उदाहरणार्थ पतञ्जलि की पुस्तक का टीका-कार मेरु को न केवल चतुर्भुज ही, प्रत्युत आयत भी बनाता है। वह एक पार्श्व की लम्बाई १५ कोटि अर्थात् १५०००००० योजन स्थिर करता है, पर वह बाकी तीन पार्श्वों की लम्बाई केवल इसका तीसरा भाग अर्थात् ५ कोटि निश्चित करता है। मेरु की चार दिशाओं के विषय में वह कहता है कि पूर्व में मालव पर्वत और सागर है, और उनके बीच भद्राश्व नामक राज्य। उत्तर में नील, सीता, शृङ्गा-दरि, और समुद्र, और उनके बीच रम्यक, हिरण्यमय, और कुरु के राज्य। पश्चिम में गन्धमादन पर्वत और सागर, और उनके बीच केतुमाल राज्य। दक्षिण में आवर्त (?), निषाध, हेमकूट, हिमगिरि, और सागर, और उनके बीच भारतवर्ष, किम्पुरुष, और हरिवर्ष।

बौद्धों का मत

मेरु के विषय में मैं हिन्दुओं का केवल इतना ही ऐतिह्य पा सका हूँ। मुझे कभा कोई बौद्ध ग्रन्थ नहीं मिला, और न मुझे कोई ऐसा बौद्ध ही मालूम था जिससे मैं इस विषय पर उनकी कल्पनाओं को सीख लेता, इसलिए उनके विषय में जो कुछ मैं वर्णन करता हूँ वह केवल अलेरान शहरी के प्रमाण से ही कर सकता हूँ, यद्यपि मेरा हृदय कहता है कि उसके वृत्तान्त में वैज्ञानिक यथार्थता नहीं, और न वह एक ऐसे व्यक्ति ही का संवाद है कि जिसको इस विषय का शास्त्रीय ज्ञान हो। उसके अनुसार, बौद्ध मानते हैं कि मेरु चार प्रधान दिशाओं में चार लोकों के बीच स्थित है; यह जड़ पर वर्ग और चोटी पर गोल है; इसकी लम्बाई ८०००० योजन है, जिसमें से आधी आकाश में और आधी पृथ्वी के भीतर चली गई है। इसका जो पार्श्व हमारे लोक के साथ मिलता है वह नीले नीलकान्तों का बना है। इसीसे आकाश हमें नीला

दिखाई देता है । बाक़ी पार्श्व पद्मराग, पीली और सफ़ेद मणियों के बने हैं । इस प्रकार मेरु पृथ्वी का केन्द्र है ।

जिस पर्वत को हमारे सर्वसाधारण क़ाफ़ कहते हैं हिन्दुओं में उसका नाम लोकालोक है । उनका मत है कि सूर्य लोकालोक से मेरु की ओर घूमता है और उसके केवल अभ्यन्तरीय उत्तरी पार्श्व को आलोकित करता है ।

पृष्ठ १२५

सोगदियाना के ज़र्दुश्तियों के भी ऐसे ही विचार हैं, अर्थात् वे समझते हैं कि अर्दिया जगत् के गिर्दागिर्द है; कि इस के बाहर खेम है, जोकि आँख की पुतली के सदृश है, जिसमें प्रत्येक चीज़ का कुछ न कुछ है, और इसके पीछे शून्य है । जगत् के मध्य में गिरनगर पर्वत है, हमारे देश (अक़लीम) और छः दूसरे देशों के बीच, आकाश का सिंहासन है । प्रत्येक दो के बीच जलती हुई रेत है, जिस पर पैर नहीं ठहर सकता । देशों (अक़ालीम) में आकाश (फ़लक) चक्कियों की तरह घूमते हैं, परन्तु हमारे देश में उनका परिभ्रमण-पथ झुका हुआ है, क्योंकि हमारा देश जिस पर मनुष्य बसते हैं, सबसे ऊपर है ।

सोगदियाना के ज़र्दुश्तियों का ऐतिह्य ।

———

चौबीसवाँ परिच्छेद ।

सात द्वीपों में से प्रत्येक के विषय में पौराणिक ऐतिह्य ।

हमारा पाठकों से निवेदन है कि यदि उन्हें प्रस्तुत परिच्छेद के सभी शब्द और अर्थ उनके सदृश अरबी शब्दों और अर्थों से सर्वथा भिन्न देख पड़ें तो वे बुरा न मानें। शब्दों की भिन्नता का कारण तो आसानी से प्रायः भाषाओं की भिन्नता बताया जा सकता है; बाकी रही अर्थों की भिन्नता, सो उसका उल्लेख हम केवल या तो एक ऐसी कल्पना की ओर ध्यान दिलाने के लिए करते हैं जो कि एक मुसलिम को भी रुचिर मालूम हो, या एक ऐसी वस्तु के युक्तिविरुद्ध स्वरूप को दिखलाने के लिए, जिसका कि अपने अन्दर कुछ भी आधार नहीं।

मत्स्य और विष्णु-पुराण के अनुसार द्वीपों का वर्णन।

पर्वत के मध्य में उसके उपान्तों का वर्णन करते हुए हम पहले ही मध्यवर्ती द्वीप का ज़िक्र कर आये हैं। इसमें उगे हुए एक वृक्ष के कारण यह जम्बू-द्वीप कहलाता है। इस वृक्ष की शाखायें १०० योजन में फैली हुई हैं। किसी अगले परिच्छेद में जिसमें वासयोग्य जगत् और उसके विभाग का वर्णन है, हम जम्बू-द्वीप का वर्णन समाप्त करेंगे। परन्तु आगे हम इसके इर्द गिर्द के दूसरे द्वीपों का वर्णन करेंगे, और उनके नामों के क्रम के विषय में, उपर्युक्त कारण से (देखो परिच्छेद २१), मत्स्य-पुराण के प्रमाण का अनुकरण करेंगे। परन्तु इस विषय

१. जम्बू-द्वीप।

में प्रवेश करने के पहले हम यहाँ मध्यवर्ती द्वीप (जम्बू-द्वीप) के विषय में वायु-पुराण का ऐतिह्य देते हैं।

वायु-पुराण के अनुसार मध्य देश के अधिवासी ।

इस पुराण के अनुसार, "मध्यदेश में दो प्रकार के अधिवासी हैं। पहले किंपुरुष। उनके पुरुष सुनहले रङ्ग के और स्त्रियाँ सुरेणु होती हैं। वे कभी बीमार नहीं होते और लम्बी आयु भोगते हैं। वे कभी पाप नहीं करते और ईर्ष्या को नहीं जानते। उनका आहार एक रस है जो कि वे खजूरों से निकालते हैं। इसका नाम मद्य है। दूसरे लोग हरिपुरुष हैं। इनका रङ्ग चाँदी का सा है। वे ११००० वर्ष जीते हैं, उनके दाढ़ी नहीं होती, और उनका आहार ईख है।" चूँकि उनको चाँदी के रङ्ग के और दाढ़ी-रहित बयान किया गया है इसलिए ख़याल होता है कि वे कहीं तुर्क ही न हों; पर उनका खजूर और ईख खाना हमें उनको कोई और अधिक दक्षिणी जाति मानने पर बाध्य करता है। पर सोने और चाँदी के रङ्ग के लोग हैं कहाँ? हम केवल जली हुई चाँदी के रङ्ग को ही जानते हैं, जो कि, उदाहरणार्थ, ज़ञ्ज लोगों में पाया जाता है। ये लोग शोक और ईर्ष्या से रहित जीवन व्यतीत करते हैं, क्योंकि उनके पास इन मनोविकारों को पैदा करने वाली कोई चीज़ नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी आयु हमसे लम्बी होती है, पर वह थोड़ी ही अधिक लम्बी होती है, और किसी प्रकार भी हमारी आयु से दुगनी नहीं होती। ज़ञ्ज लोग ऐसे असभ्य हैं कि उन्हे स्वाभाविक मृत्यु की कुछ भी कल्पना नहीं। यदि मनुष्य स्वाभाविक मृत्यु से मर जाय तो वे समझते हैं कि उसे विष दिया गया है। मनुष्य के शस्त्र से मारे जाने को छोड़ कर वे शेष प्रत्येक मृत्यु पर सन्देह करते हैं। इसी तरह वे मनुष्य के क्षय के रोगी के श्वास को स्पर्श करने पर भी सन्देह करते हैं।

अब हम शाक-द्वीप का वर्णन करेंगे। मत्स्य-पुराण के अनुसार, इसमें सात बड़ी नदियाँ हैं; जिनमें से एक पवित्रता में गङ्गा के समान है। पहले समुद्र में मणियों से सुशोभित सात पर्वत हैं। उनमें से कुछ पर देव, और कुछ पर दानव रहते हैं। उन में से एक सोने का ऊँचा पहाड़ है जहाँ से कि हमारे पास वर्षा लाने वाले मेघ उठते हैं। दूसरा ओषधियों का भाण्डार है। राजा इन्द्र इससे वर्षा लेता है। एक और का नाम सोम है। इस के सम्बन्ध में वे यह कथा सुनाते हैं:—

२. शाक-द्वीप।

पृष्ठ १२६

कश्यप के दो स्त्रियाँ थीं, एक साँपों की माँ कद्रू और दूसरी पक्षियों की माँ विनता। दोनों एक मैदान में रहती थीं जहाँ कि एक धूसर घोड़ा था। परन्तु साँपों की माँ समझती थी कि घोड़ा बादामी है। अब उन्होंने शर्त बाँधी कि जिसकी बात झूठ निकले वह दूसरी की दासी बनकर रहे, परन्तु उन्होंने निर्णय अगले दिन पर छोड़ दिया। रात को साँपों की माता ने अपने काले बच्चों को घोड़े के पास भेजा ताकि वे उस पर लिपटकर उसके रँग को छिपा दें। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ काल के लिए पक्षियों की माँ उसकी दासी बन गई।

कद्रू और विनता की कथा। गरुड़ अपनी माता को अमृत द्वारा मुक्त करता है।

विनता के दो पुत्र थे। एक अनूरु, (अरुण ?) जो कि सूर्य के प्रासाद-शिखर का, जिसको कि घोड़े खींचते हैं, संरक्षक है, और दूसरा गरुड़। गरुड़ ने अपनी माँ से कहा: "अपनी छाती के दूध से पाले हुए पुत्रों से वह चीज़ माँग जो कि तुझे स्वतन्त्र कर सके।" उसने ऐसा ही किया। लोगों ने उसे यह भी बताया कि देवों के पास अमृत है। इस पर गरुड़ उड़कर देवों के पास गया और उनसे अमृत माँगा। उन्होंने उसकी इच्छा को पूर्ण कर दिया। क्योंकि अमृत ऐसी चीज़ है जो कि केवल देवों के ही पास है, और यदि यह

किसी और मनुष्य को मिल जाय तो वह भी देवों के समान चिरकाल तक जीता रहता है। उसने अमृत की प्राप्ति के लिए उनसे विनती की ताकि वह उसके साथ अपनी माँ को मुक्त कर सके, साथ ही उसने बाद को उसे लौटा देने का भी वचन दिया। उन्होंने उस पर दया की और उसे अमृत दे दिया। फिर गरुड़ सोम पर्वत पर गया जहाँ देवता रहते थे। गरुड़ ने देवों को अमृत दे दिया और अपनी माँ को छुड़ा लिया। तब वह उनसे बोला : "जब तक तुम गङ्गा में स्नान न करलो अमृत के निकट न आना।" उन्होंने स्नान कर लिया, और अमृत को वहीं का वहीं पड़ा रहने दिया। इसी बीच में गरुड़ इसे देवों के पास वापस ले आया, जिससे उसकी पवित्रता की पदवी बहुत ऊँची हो गई, और वह सब पक्षियों का राजा, और विष्णु का वाहन बन गया।

शाक-द्वीप के अधिवासी धर्मात्मा और चिरजीवी प्राणी हैं। वे राजाओं के नियम को छोड़ सकते हैं क्योंकि उनमें ईर्ष्या और महत्त्वाकांक्षा का नाम-निशान भी नहीं। उनका जीवन-काल अपरिवर्तनीय और त्रेतायुग के समान लम्बा है। उनमें चार वर्ण अर्थात् भिन्न भिन्न जातियाँ हैं जो न आपस में मिलतीं और न रोटी-बेटी का व्यवहार करती हैं। वे कभी शोकाकुल नहीं होते और सदा आनन्द में रहते हैं। विष्णु-पुराण के अनुसार उनकी जातियों के नाम आर्यक, कुरुर, विविंश (विवंश), और भाविन् (?), हैं। वे वासुदेव का पूजन करते हैं।

३. कुश-द्वीप।

तीसरा द्वीप कुश-द्वीप है। मत्स्य-पुराण के अनुसार इसमें रत्नों, फलों, फूलों, सुगन्धित पौधों, और अनाजों से परिपूर्ण सात पर्वत हैं। उनमें से एक में, जिसका नाम द्रोण है, प्रसिद्ध ओषधियाँ या जड़ी-बूटियाँ

हैं, विशेषत: विशल्यकरण, जो कि प्रत्येक घाव को तत्काल ही चङ्गा कर देती है, और मृतसञ्जीवन जो मृत को सजीव कर देती है। एक और पर्वत, जिसका नाम हरि है, काले बादल के सदृश है। इस पर्वत पर महिष नामक एक अग्नि है जोकि जल से पैदा हुई है और प्रलय काल तक बनी रहेगी; यही वह अग्नि है जो सारे संसार को जला देगी। कुश-द्वीप में सात राज्य और संख्यातीत नदियाँ हैं जो कि समुद्र में गिरती हैं और जिनको वहाँ इन्द्र वर्षा के रूप में बदल डालता है। सब से बड़ी नदियों में से एक जौन (यमुना) है जो सब पापों को धो डालती है। इस द्वीप के अधिवासियों के विषय में मत्स्य-पुराण कुछ भी जानकारी नहीं देता। विष्णु-पुराण के अनुसार, वहाँ के लोग धर्म्मशील, और पाप-रहित हैं, और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति १०००० वर्ष जीता है। वे जनार्दन की पूजा करते हैं और उनके वर्णों के नाम दमिन, शुष्मिन, स्नेह, और मन्देह हैं।

४. क्रौञ्च द्वीप।

मत्स्य-पुराण के अनुसार, चौथे या क्रौञ्च-द्वीप में रत्नों वाले पर्वत, नदियाँ, जो गङ्गा की शाखायें हैं, और ऐसे राज्य हैं जहाँ की प्रजा श्वेत-वर्ण, धार्म्मिक, और पवित्र है। विष्णु-पुराण के अनुसार वहाँ के लोग, समाज के सदस्यों में किसी भेदभाव के बिना, सब एक ही स्थान में रहते हैं, परन्तु पीछे से वही कहता है कि उनके वर्णों के नाम पुष्कर, पुष्कल, धन्य, और तिष्य (?), हैं। वे जनार्दन की पूजा करते हैं।

पृष्ठ १२७

५. शाल्मल-द्वीप।

पाँचवें या शाल्मल-द्वीप में, मत्स्य-पुराण के अनुसार, पर्वत और नदियाँ हैं। यहाँ के अधिवासी पवित्र, चिरजीवी, सौम्य, और सदा प्रसन्न रहने वाले

हैं । वे कभी अकाल या अभाव से कष्ट नहीं पाते, क्योंकि उनका आहार उनको, बिना बोने और बिना परिश्रम करने के, केवल इच्छा करने पर ही प्राप्त हो जाता है। वे माता के गर्भ से पैदा नहीं होते; वे कभी रोगी और शोकाकुल नहीं होते । उन्हें राजाओं के शासन का प्रयोजन नहीं, क्योंकि उनमें सम्पत्ति के लिए कामना का नामोनिशान नहीं । वे सन्तुष्ट और सुरक्षित रहते हैं; वे सदा भलाई को पसन्द और पुण्य से प्रेम करते हैं । इस द्वीप का जल-वायु सरदी और गरमी में कभी नहीं बदलता, इसलिए उनको इनमें से किसी एक से भी अपनी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती । वहाँ वर्षा नहीं होती, परन्तु पृथ्वी में से उनके लिए पानी फूट फूट कर बाहर निकलता और पर्वतों से नीचे गिरता है। यह बात इसके अगले द्वीपों में भी पाई जाती है । यहाँके अधिवासियों में कोई वर्ण-भेद नहीं, वे सब एक ही प्रकार के हैं। उनमें से प्रत्येक ३००० वर्ष जीता है।

विष्णु-पुराण के अनुसार, उनके मुख सुन्दर हैं और वे भगवत् की पूजा करते हैं। वे अग्नि में नैवेद्य डालते हैं, और उनमें से प्रत्येक १०००० वर्ष जीता है। उनके वर्णों के नाम कपिल, अरुण, पीत, और कृष्ण हैं ।

६. गोमेद-द्वीप ।

छठे या गोमेद-द्वीप में, मत्स्य-पुराण के अनुसार, दो बड़े पर्वत हैं; गाढ़े काले रङ्ग का सुमनस्, जो कि द्वीप के सब से बड़े भाग को घेरे हुए है, और सुनहले रङ्ग का और बहुत ऊँचा कुमुद। पिछले पर्वत में सब ओषधियाँ हैं। इस द्वीप में दो राज्य हैं ।

विष्णु-पुराण के अनुसार वहाँ के अधिवासी धर्म्मपरायण और

पापशून्य हैं, और विष्णु का पूजन करते हैं। उनके वर्णों के नाम मृग, मागध, मानस, और मन्दग हैं। इस द्वीप का जल-वायु ऐसा आरोग्यदायक और रम्य है कि स्वर्ग के रहने वाले भी यहाँ, इसके वायु की सुगन्ध के कारण, कभी कभी आया करते हैं।

सातवें, या पुष्कर-द्वीप के पूर्वी भाग में, मत्स्य-पुराण के अनुसार चित्रशाला (अर्थात् जिसकी चित्रविचित्र छत्त में रत्नों के सींग लगे हैं) नामक पर्वत है। इसकी उँचाई ३४००० योजन और इस की परिधि २५००० योजन है। पश्चिम में पूर्ण चन्द्रमा के सदृश चमकता हुआ मानस पर्वत है, इसकी उँचाई ३५००० योजन है। इस पर्वत का एक पुत्र है जो पिता की पश्चिम से रक्षा करता है। इस द्वीप के पूर्व में दो राज्य हैं जहाँ का प्रत्येक अधिवासी १०००० वर्ष जीता है। उनके लिए पृथ्वी में से उछल उछलकर पानी निकलता है, और पर्वतों पर से नीचे गिरता है। उनके यहाँ न वर्षा होती है और न बहती हुई नदियाँ ही हैं; वे न कभी ग्रीष्म देखते हैं और न कभी हेमन्त। वर्णभेद से रहित वे सब एक ही प्रकार के हैं। उन्हें कभी दुर्भिक्ष से कष्ट नहीं उठाना पड़ता, और न वे कभी बूढ़े होते हैं। जिस वस्तु की वे कामना करते हैं वह उन्हें मिल जाती है, और पुण्य के सिवा और किसी दूसरी चीज़ को न जानते हुए वे सुख और शान्ति से रहते हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों वे स्वर्ग के उपान्त में रहते हैं। उनको पूर्णानन्द प्राप्त है; वे चिरकाल तक जीते और महत्वाकांक्षा से रहित हैं। इस लिए वहाँ न कोई सेवा है, न शासन है, न पाप है, न ईर्ष्या है, न विरोध है, न विवाद है, न कृषि का परिश्रम और न व्यापार का उद्योग है।

७. पुष्कर द्वीप।

विष्णु-पुराण के अनुसार, पुष्कर-द्वीप का यह नाम एक बड़े वृक्ष के कारण है जो कि न्यग्रोध भी कहलाता है। इस वृक्ष के नीचे

ब्रह्म-रूप अर्थात् ब्रह्मा की मूर्त्ति है, जिसकी देव और दानव पूजा करते हैं। यहाँ के अधिवासी आपस में बराबर हैं, कोई किसीसे श्रेष्ठ नहीं, चाहे वे मनुष्य हों या चाहे वे देवों से सम्बन्ध रखने वाले कोई प्राणी हों। इस द्वीप में मानसोत्तम नामक एक ही पहाड़ है, जो कि गोल द्वीप पर गोलाकार खड़ा है। इसकी चोटी से दूसरे सभी द्वीप दिखाई देते हैं, क्योंकि इसकी ऊँचाई ५०००० योजन है, और इसकी चौड़ाई भी उतनी ही है।

पच्चीसवाँ परिच्छेद ।

भारत की नदियों, उनके उद्गम-स्थानों और मार्गों पर ।

वायुपुराण परम प्रसिद्ध बड़े बड़े पर्वतों में से, जिनका हमने मेरु पर्वत की ग्रन्थियों के रूप में उल्लेख किया है, निकलने वाली नदियों की गिनती करता है। उनके अध्ययन को सुगम करने के लिए हम उनको नीचे की तालिका में दिखलाते हैं :—

पृष्ठ १२८. वायुपुराण के प्रमाण ।

बड़ी ग्रन्थियाँ।	उन नदियों के नाम जो नगर सम्वृत्त में इनसे निकलती हैं।
महेन्द्र	त्रिसागा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिपवा (?), आयना (?), लाङ्गूलिनी, वंशवर ।
मलय	कृतमाला, ताम्रवर्णा, पुष्पजाति, उत्पलवती (!) ।
सह्य	गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वैण्या, सवञ्जुला, तुङ्ग-भद्रा, सुप्रयोगा, पाजय (?), कावेरी ।
शुक्ति	ऋषीक, बालूक (!), कुमारी, मन्दवाहिनी, किर्प (!), पलाशिनी ।

बड़ी ग्रन्थियाँ।	उन नदियों के नाम जो नगर सम्वृत्त में इनसे निकलती हैं।
ऋच	शोन, महानद, नर्मदा, सुरस, किर्व (?), मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पल, श्रोणी, करमोद (?), पिशाविक (?), चित्रपल, महावेगा, बञ्जुला, बालुवाहिणी, शुक्तिमती, षक्रुणा, (?), त्रिदिवा।
विन्ध्य	तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, सिर्वा (?), निषधा, वेन्वा, वैतरनी, सिनि, हाहु (!), कुमुद्वती, तोबा, महा-गौरी, दुर्गा, अन्तशिला।
पारियात्र	वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी (?), पर्नाशा, नन्दना, सदाना (?), रामदी, (?), परा, चर्मण्वती, लूप (?), विदिशा।

हिमालय और इस के पूर्व और पश्चिम में विस्तार से निकलने वाली योरुप और एशिया की नदियाँ।

मत्स्य-पुराण और वायु-पुराण जम्बू-द्वीप में बहने वाली नदियों का उल्लेख करते हैं और कहते हैं कि वे हिमवन्त के पर्वतों में से निकलती हैं। नीचे की तालिका में, व्यवस्था के किसी विशेष नियम का अनुसरण न करके, हम उन्हें केवल गिनते ही हैं। पाठकों को यह कल्पना कर लेनी चाहिए कि भारत की सीमाओं पर पहाड़ हैं। उत्तरी पर्वत हिममय हिमवन्त हैं। उन के मध्य में काश्मीर स्थित है और वे तुर्कों के देश से मिले हुए हैं। यह गिरि-माला वास-योग्य

पृथ्वी और मेरु पर्वत तक ठण्डी और ज़ियादा ठण्डी होती चली गई है। क्योंकि इस पर्वत का मुख्य विस्तार लम्बाई में है, इस लिए इसके उत्तर पार्श्व से निकलने वाली नदियाँ तुर्कों, तिब्बतियों, खज़रों, और स्लेवोनियों के देशों में से बहती हुई जुर्जान समुद्र (कस्पियन समुद्र) में, या ख्वारिज़्म के समुद्र (अरल समुद्र) में, या पोंटस समुद्र (कृष्ण सागर) में, या स्लेवोनियों के उत्तरी समुद्र (बाल्टिक) में गिरती हैं; और दक्षिणी ढलानों से निकलने वाली नदियाँ भारत में बहती हुई महासागर में गिरती हैं। कई तो सागर तक अकेली ही पहुँच जाती हैं और कई दूसरी नदियों के साथ मिल-कर पहुँचती हैं।

पृष्ठ १२९

भारत की नदियाँ।

भारत की नदियाँ या तो उत्तर के ठण्डे पहाड़ों से निकलती हैं या पूर्वी पर्वतों से। ये दोनों पर्वत वास्तव में एक ही लम्बी शृङ्खला बनाते हैं। ये पूर्व की ओर फैलते हैं, फिर दक्षिण की ओर मुड़कर महासागर तक पहुँच गये हैं। वहाँ इस पर्वत-शृङ्खला का कुछ अंश राम का बाँध नामक स्थान पर समुद्र में घुस जाता है। निस्सन्देह इन पर्वतों में गरमी और सरदी में भारी भेद है।

हम इन नदियों के नामों को नीचे की तालिका में दिखाते हैं:—

सिन्ध या वैहन्द की नदी ।	बियत्त या जैलम ।	चन्द्रभाग या चन्द्राह ।	बियाह, लाहौर के पश्चिम में ।	इरावती, लाहौर के पूर्व में ।	शतरुद्र या शतलदर ।
सर्सत देश में से बहने वाली सर्सत ।	जौन ।	गङ्गा ।	सरयू या सर्व ।	देविका ।	कुहू ।
गोमती ।	धुतपापा ।	विशाला ।	बाहुदास (!)	कौशिकी ।	निश्चीरा ।
गण्डकी ।	लोहिता ।	दृषद्वती ।	ताम्रा अरुणा ।	पर्नाशा ।	वेदस्मृति ।
विदासिनी ।	चन्दना ।	कावना ।	परा ।	चर्मण्वती ।	विदिशा ।
वेणुमती ।	सिप्रा, जो परियात्रा से निकलती और उज्जैन से गुज़रती है ।	करतोया ।	ष्माहिन ।		

कायबिष अर्थात् काबुल राज्य की सीमा के पर्वतों से एक नदी निकलती है, जिसका नाम उसकी अनेक शाखाओं के कारण गोरवन्द है। इसमें कई उपनदियाँ मिलती हैं :—

सिन्धु नदी। पृष्ठ १२०

१. गुज़क पथ की नदी।

२. पर्वान नगर के नीचे, पञ्चीर घाटी की नदी।

३, ४. शर्वत नदी और साव नदी। साव नदी लंबगा अर्थात् लमग़ान नगर में से गुज़रती है। ये दोनों दूत के क़िले पर गोर्वन्द में जा मिलती हैं।

५, ६. नूर और क़ीरा नदी।

इन उपनदियों के जल से उमड़ी हुई गोर्वन्द पुर्शावर नगर के सामने एक बड़ी नदी बन गई है। वहाँ इसके पूर्वी किनारों पर महनार नामक एक ग्राम है। महनार के समीप एक नाला है। इसी नाले के कारण यहाँ गोर्वन्द को भी नाला ही कहते हैं। यह राजधानी अलक़न्दहार (गन्धार) अर्थात् वैहन्द के नीचे, बितूर के क़िले के निकट सिन्धु नदी में जा मिली है।

बियत्त नदी, जोकि इसके पश्चिमी किनारों पर बसे हुए एक नगर के नाम पर जैलम कहलाती है, और चन्दराह नदी जहरावर के कोई पचास मील ऊपर एक दूसरे से मिलती हैं और मुलतान के पश्चिम के साथ साथ गुज़रती हैं।

पञ्जाब की नदियाँ।

बियाह नदी मुलतान के पूर्व में बहती है, और पीछे से बियत्त और चन्दराह में मिल जाती है।

इराव नदी में कज नदी मिलती है जोकि भातुल के पहाड़ों में नगरकोट से निकलती है। इसके बाद पाँचवीं शतलदर (सतलज) नदी आती है।

ये पाँच नदियाँ मुलतान के नीचे पञ्चनद स्थान (अर्थात् पाँच नदियों के मिलने का स्थान) में मिलकर एक बृहत् जल-प्रवाह बन जाती हैं। बाढ़ के दिनों में यह नद कई बार कोई दस दस फ़र्सख़ में फैल जाता है और मैदान के वृक्षों के ऊपर तक चढ़ जाता है जिससे बाद को बाढ़ों का कूड़ा-कर्कट पक्षियों के घोंसलों के सदृश उनकी उच्चतम शाखाओं में मिलता है।

मुसलमान लोग इस नदी को, इसकी संयुक्त धारा के रूप में सिन्धी नगर अरोर से गुज़र जाने के बाद, मिहरान की नदी कहते हैं। इस प्रकार यह सीधी बहती हुई, ज़ियादा चौड़ी होती हुई, अपने जल की पवित्रता को बढ़ाती हुई, अपने मार्ग में स्थानों को टापुओं की तरह घेरती हुई आगे बढ़ती है, और अन्त को यह अलमन्सूरा में पहुँचती है जोकि इसकी अनेक शाखाओं के बीच स्थित है, और दो स्थानों पर, लोहरानी नगर के समीप, और अधिक पूर्व की ओर कच्छ प्रान्त में सिन्धु-सागर नामक स्थान पर, समुद्र में जा गिरती है।

जिस प्रकार पाँच नदियों के मिलाप का नाम संसार के इस भाग (पञ्जाब) में मिलता है, वैसे ही हम देखते हैं कि उपर्युक्त गिरि-मालाओं के उत्तर में भी इसी प्रकार का एक नाम उन नदियों के लिए व्यवहृत होता है जो वहाँ से निकलकर उत्तर की ओर बहती हैं। ये नदियाँ तिर्मिज़ के समीप मिलने और बल्ख़ की नदी बनाने के बाद सात नदियों का मिलाप कहलाती हैं। सोगदियाना के ज़र्दुश्तियों ने इन दो चीज़ों की गड़बड़ कर दी है; क्योंकि वे कहते हैं कि सारी सात नदियाँ सिन्धु हैं, और उसका ऊपर का पथ बरीदीश है। इस पर नीचे की ओर उतरता हुआ मनुष्य यदि अपना मुख पश्चिम की ओर मोड़े, तो वह सूर्य को

ईरानी ऐतिह्य

अपनी दाईं ओर डूबता देखेगा, जैसा कि हम यहाँ इसे अपने बाईं ओर डूबता देखते हैं।

भारत की विविध नदियाँ।

सर्सती (सरस्वती) नदी सोमनाथ के पूर्व में एक तीर की मार के अन्तर पर समुद्र में गिरती है।

जौन नदी कनौज के नीचे, जोकि इसके पश्चिम में है, गङ्गा से मिलती है। फिर यह संयुक्त धारा गङ्गा-सागर के समीप महासागर में जा गिरती है।

सरस्वती और गङ्गा के मुहानों के बीच नर्मदा नदी का मुहाना है। यह नदी पूर्वी पर्वतों से निकलकर दक्षिण-पश्चिमी दिशा में बहती है, और सोमनाथ के कोई साठ योजन पूर्व में, बहरोज नगर के समीप सागर में जा मिलती है।

गङ्गा के पीछे रहब और कवीनी नदियाँ बहती हैं। ये बारी नगर के समीप सर्व नदी में जा मिलती हैं।

हिन्दुओं का विश्वास है कि प्राचीन काल में गङ्गा स्वर्ग में बहती थी, और हम आगे चलकर किसी अवसर पर बतायेंगे कि यह वहाँ से पृथ्वी पर कैसे आई।

मत्स्य-पुराण के प्रमाण।

मत्स्य-पुराण कहता है—"गङ्गा के पृथ्वी पर आ जाने के बाद इसने अपने तईं सात शाखाओं में विभक्त कर लिया। इनमें से मध्यवर्ती ही मुख्य धारा है और इसीका नाम गङ्गा है। तीन शाखाएँ, नलिनी, ह्रादिनी, और पावनी पूर्व की ओर, और तीन, सीता, चक्षु, और सिन्धु पश्चिम की ओर बहने लगीं।

पृष्ठ १३१

सीता नदी हिमवन्त से निकलकर इन देशों में से बहती है:— सलिल, कस्तुंबा, चीन, बर्बर, यवस (?), बह, पुष्कर, कुलत,

माङ्गल, कवर और साङ्गवन्त (?); फिर यह पश्चिमी सागर में जा गिरती है।

सीता के दक्षिण में चक्षुश नदी बहती है। यह इन देशों को अपने जल से सींचती है—चीन, मरु, कालिक (?), धूलिक (?), तुखार, बर्बर, काच (?) पह्लव, और बार्वञ्चत।

सिन्धु नदी इन देशों में से बहती है—सिन्धु, दरद, ज़िन्दुतुन्द (?), गान्धार, रूरस (?), क्रूर (?), शिवपौर, इन्द्रमरु, सबाती (?), सैन्धव, कुबत, बहीमर्वर, मर, मरून, और, सुकूर्द।

गङ्गा नदी, जो कि मध्यवर्ती और मुख्य धारा है, इनमें से बहती है—गन्धर्व अर्थात् गवैये, किन्नर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, उर्ग अर्थात् जो अपनी छातियों पर रेंगते हैं, यथा साँप, कलापग्रम, अर्थात् अतीव पुण्यात्माओं का नगर, किम्पुरुष, खस (?), पर्वत-निवासी, किरात, पुलिन्द, मैदानों के शिकारी, लुटेरे, कुरु, भरत, पञ्चाल, कौषक (?), मात्स्य, मगध, ब्रह्मोत्तर, और तामलिप्त। ये अच्छे और बुरे प्राणी हैं जिनके देशों में से कि गङ्गा बहती है। पीछे से यह विन्ध्य पर्वत की शाखाओं में घुस जाती है जहाँ कि हाथी रहते हैं, और फिर यह दक्षिणी समुद्र में जा गिरती है।

गङ्गा की पूर्वी शाखाओं में से ह्लादिनी इन देशों में से बहती है—निषब, ऊपकान, धीवर, प्रिषक, नीलमुख, कीकर, उष्ट्र-करण, अर्थात् वे लोग जिनके होंठ उनके कानों की तरह मुड़े हुए हैं, किरात, कलीदर, विवर्ण, अर्थात् बे-रङ्ग लोग, इनका यह नाम उनके अतीव काले होने के कारण है, कुषिकान, और स्वर्गभूमि अर्थात् स्वर्ग-सदृश देश। अन्त को यह पूर्वी सागर में जा गिरती है।

पावनी नदी कुपथ (?) को जो कि पाप-रहित हैं, इन्द्रद्युम्न-सरों अर्थात् राजा इन्द्रद्युम्न के कुण्डों को, खर-पथ, बीत्र, और सङ्कु-पथ को जल देती है। यह उद्यान-मरूर के मैदान में से, कुशप्रावर्ण देश में से, और इन्द्रद्वीप में से बहती हुई अन्त को खारी समुद्र में जा गिरती है।

नलिनी नदी तामर, हंसमार्ग, समूहुक, और पूर्ण में से बहती है। ये सब धर्मपरायण जातियाँ हैं जो पाप से बचती हैं। तब यह पर्वतों के बीच से बहती हुई कर्ण-प्रावरण, अर्थात् वे लोग जिनके कान उनके कन्धों पर गिरते हैं, अश्व-मुख, अर्थात् घोड़े के मुख वाले लोग, पर्वतमरु अर्थात् पहाड़ी मैदान, और रूमी-मण्डल के पास से गुज़रती है। अन्त को यह सागर में जा गिरती है।

विष्णु पुराण कहता है कि मध्य पृथ्वी की बड़ी बड़ी नदियाँ जो सागर में गिरती हैं ये हैं—अनुतपत, शिखि, दिपाप, त्रिदिवा, कर्म, अमृत और सुकृत।

विष्णु-पुराण।

छब्बीसवाँ परिच्छेद।

हिन्दू ज्योतिषियों के मतानुसार आकाश और पृथ्वी के आकार पर।

पृष्ठ १३२

इस और इसके सदृश अन्य विषयों का जो वर्णन और समाधान हिन्दुओं ने दिया है वह हम मुसलमानों के समाधान और वर्णन से सर्वथा भिन्न है।

कुरान, सारी खोज का एक निश्चित और स्पष्ट आधार है।

इन और दूसरे विषयों पर जिनका जानना मनुष्य के लिए आवश्यक है, कुरान के निर्णय ऐसे नहीं कि जिनको श्रोताओं के मन में सुनिश्चित निश्चय बनने के लिए किसी खेंच-तान की व्याख्या का प्रयोजन हो। मनुष्य के लिए जिन विषयों का जानना आवश्यक है उन पर कुरान के निर्णय दूसरी धर्म्म-स्मृतियों के पूर्ण अनुरूप हैं, और साथ ही वे बिना किसी संदिग्धार्थता के पूर्णतया स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त कुरान में ऐसे प्रश्न नहीं जो सदा से विवाद का विषय बने रहे हों, न उसमें ऐसे प्रश्न ही हैं जिनको हल करने में सदा निराशा होती रही हो, यथा काल-निर्णय विद्या की विशेष पहेलियों के सदृश प्रश्न।

इसलाम का खण्डन १. दम्भी लोगों द्वारा।

इसलाम अपने प्राथमिक समयों में पहले ही ऐसे लोगों के कपट-प्रबन्धों में फँसा हुआ था जो हृदय में इसके विरोधी थे, जो साम्प्रदायिक प्रवृत्ति से इसलाम का प्रचार करते थे, जो भोले भाले श्रोताओं को अपनी कुरान की प्रतियों में से वे वाक्य पढ़कर सुनाते थे जिनका

एक भी शब्द ईश्वर का पैदा किया (अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान) न था। परन्तु जनता ने उनके दम्भ से धोखा खा कर उन पर विश्वास कर लिया और उनके प्रमाण से ये बातें नक़ल कर लीं, बल्कि उन्होंने पुस्तक के शुद्ध रूप का, जोकि उस समय तक उनके पास था, परित्याग कर दिया, क्योंकि अशिक्षितों की प्रवृत्ति सदा प्रपञ्च की ओर रहती है। इस प्रकार इसलाम के विशुद्ध ऐतिह्य में इन दम्भियों ने गड़बड़ कर दी है।

२. द्वैत-वादियों-द्वारा।

इसलाम को इब्नुल मुक़फ्फ़ा, अब्दुल क़रीम इब्न अबीउल औजा प्रभृति मानी के अनुयायी ज़िन्दीकों के हाथों दूसरी विपद् का सामना करना पड़ा। ये लोग समालोचना के पिता थे। इन्होंने किसी बात को यथार्थ और किसी को उपदेय, इत्यादि, बताकर निर्बल मन वाले लोगों में एक और आदि अर्थात् अद्वितीय तथा सनातन परमेश्वर के विषय में सन्देह पैदा कर दिया और उनकी सहानुभूतियों को द्वैत-वाद की ओर फेर दिया था। साथ ही उन्होंने मानी का जीवन-चरित्र ऐसे सुचारु रूप में जनता के सम्मुख उपस्थित किया कि वे सब उसके पक्ष में हो गये। अब इस मनुष्य ने अपने आपको अपनी साम्प्रदायिक धर्म्म-विद्या की घास-फूस तक ही परिमित नहीं रक्खा, प्रत्युत उसने जगत् के आकार के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये हैं, जैसा कि उसकी पुस्तकों से देखा जा सकता है। ये पुस्तकें जान बूझकर धोखा देने के लिए लिखी गई थीं। उसके विचार दूर दूर तक फैल गये थे। उपर्युक्त दम्भी दल की कूट-रचनाओं को साथ मिलाकर उन्होंने एक मत तैयार किया और उसका नाम विशेष इसलाम रक्खा, पर इस मत का परमेश्वर के साथ कोई सम्बन्ध न था। जो कोई इस मत का विरोध करता है और क़ुरान-प्रतिपादित आस्तिक धर्म्म को नहीं छोड़ता, उसे वे नास्तिक और

धर्म्म-भ्रष्ट कहकर कलङ्कित करते और मृत्यु-दण्ड देते हैं, और उसे कुरान का पाठ सुनने की आज्ञा नहीं देते। उनके ये सारे कर्म फ़िरऔन के इन शब्दों से भी अधिक अधर्म-युक्त हैं, "मैं तुम्हारा सबसे बड़ा प्रभु हूँ" (सूरा, ७९, २४,) और "मैं तुम्हारे लिए सिवा अपने आप के और कोई आराध्य देव नहीं जानता"(सूर, २८, ३८)। यदि इस प्रकार के पक्षपात का भाव बना रहा और चिरकाल तक शासन करता रहा तो हम आसानी से ही कर्तव्य और प्रतिष्ठा के सीधे मार्ग से गिर पड़ेंगे। परन्तु हम उस भगवान् की शरण लेते हैं जो उसकी तलाश करने वाले और उसके विषय में सचाई की खोज करने वाले प्रत्येक मनुष्य के पाँव को दृढ़ करता है।

हिन्दुओं का अपने ज्योतिषियों के प्रति पूजा-भाव।

हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकों और उनके ऐतिह्यों की संहिताओं, अर्थात् पुराणों, में जगत् के आकार के विषय में ऐसे वचन मिलते हैं जो कि उनके ज्योतिषियों को ज्ञात वैज्ञानिक सत्य के सर्वथा विपरीत हैं। इन पुस्तकों से लोगों को धार्मिक क्रियाओं के करने की विधि मालूम होती है, और इन्हींके द्वारा फुसलाकर जाति के लोक-समूह में ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं और फलित-ज्योतिषि-सम्बन्धी भविष्य-कथनों और चेतावनियों के लिए पूर्वानुराग पैदा किया जाता है। यह इसीका परिणाम है कि वे अपने ज्योतिषियों से बहुत प्रेम प्रकट करते हैं, और उन्हें उत्कृष्ट मनुष्य मानते हैं। उनसे मिलने को वे शुभ शकुन समझते हैं और दृढ़ विश्वास रखते हैं कि सबके सब ज्योतिषी स्वर्ग में जाते हैं, उनमें से एक भी नरक में नहीं जाता। इसके बदले में ज्योतिषी लोग अपने आपको उनकी लोक-प्रिय कल्पनाओं के सदृश बनाकर उन कल्पनाओं को सत्य के रूप में ग्रहण करते हैं, चाहे उनमें से

ज्योतिषी लोग लौकिक कल्पनाओं को अपने सिद्धान्तों में सम्मिलित कर लेते हैं।

बहुत सी सचाई से कितनी ही दूर क्यों न हों, और उन लोगों को ऐसी आध्यात्मिक सामग्री देते हैं जिसकी कि उनको आवश्यकता है। यही कारण है कि जिससे दो कल्पनायें, अशिष्ट और वैज्ञानिक, कालक्रम से एक-दूसरे में मिल गई हैं, जिससे ज्योतिषियों के सिद्धान्त, विशेषतः उन ग्रन्थकर्ताओं के सिद्धान्त—और उन्हींकी संख्या अधिक है—जो अपने अग्रगामियों की केवल नक़ल करते हैं, जो अपने विज्ञान का आधार ऐतिह्य को बनाते हैं और उस आधार को स्वतन्त्र वैज्ञानिक खोज का विषय नहीं बनाते, गड़बड़ और विश्रृङ्खलित हो गये हैं।

पृथ्वी की गोलाई, मेरु, और वडवामुख की व्यापक विवेचना।

अब हम प्रस्तुत विषय पर अर्थात् आकाश और पृथ्वी के आकार पर हिन्दू-ज्योतिषियों का मत वर्णन करेंगे। उनके अनुसार, आकाश और सारी पृथ्वी गोल है, और पृथ्वी मण्डलाकार है। इसका उत्तरी अर्द्धभाग सूखी भूमि है और दक्षिणी अर्धांश जल से ढँका हुआ है। पृथ्वी का जो परिमाण आधुनिक विवेचन और यूनानी मानते हैं उससे उनके मतानुसार उसका परिमाण बड़ा है। इस परिमाण को मालूम करते हुए अपनी गणनाओं में उन्होंने अपने पौराणिक समुद्रों और द्वीपों, और उनमें से प्रत्येक के साथ लगाई हुई योजनों की बड़ी बड़ी संख्याओं का ज़िक्र तक नहीं किया। ज्योतिषी लोग प्रत्येक ऐसी बात में जो उनकी विद्या पर आक्रमण नहीं करती, धर्म-पण्डितों का अनुकरण करते हैं। उदाहरणार्थ, वे उत्तर ध्रुव के नीचे मेरु पर्वत और दक्षिण ध्रुव के नीचे, वडवामुख टापू के होने की कल्पना को स्वीकार करते हैं। अब मेरु का वहाँ होना या न होना सर्वथा अप्रासङ्गिक है, क्योंकि इसका प्रयोजन केवल चक्कीके सदृश एक विशेष भ्रमण की व्याख्या के लिए है। इसकी आवश्यकता

पृष्ठ १३३

इस बात से है कि पृथ्वी के क्षेत्र पर के प्रत्येक स्थान के सदृश उसके खस्वस्तिक के रूप में आकाश में एक स्थान है। दक्षिणी टापू वडवा-मुख की कहानी भी उनकी विद्या को कोई हानि नहीं पहुँचाती। यद्यपि यह संभव, प्रत्युत संभाव्य है कि पृथ्वी के प्रदेशों का प्रत्येक जोड़ा एक सङ्गत और अव्यवच्छिन्न एकता बनाता है, एक तो भूखण्ड के रूप में और दूसरा सागर के रूप में (और वास्तव में दक्षिण ध्रुव के नीचे ऐसा कोई टापू नहीं)। पृथ्वी के ऐसे विधान का कारण गुरुत्वाकर्षण का नियम है, क्योंकि उनके अनुसार पृथ्वी ब्रह्माण्ड का मध्य है और प्रत्येक गुरु पदार्थ इसकी ओर आकृष्ट होता है। यह बात स्पष्ट है कि गुरुत्वाकर्षण के इस नियम के कारण ही वे आकाश को भी मण्डलाकार समझते हैं।

अब हम इस विषय पर हिन्दू-ज्योतिषियों के मत, हमारे किये हुए उनके ग्रन्थों के अनुवादों के अनुसार, दिखलायेंगे। यदि हमारे अनुवाद में किसी शब्द का प्रयोग ऐसे अर्थों में हुआ हो जोकि हमारी विद्याओं में उसके प्रचलित अर्थों से भिन्न है तो पाठकों को चाहिए कि शब्द के मौलिक अर्थ (पारिभाषिक अर्थों को नहीं) को समझें क्योंकि यहाँ वही अर्थ लिया गया है।

पुलिश के सिद्धान्त का अवतरण।

पुलिश अपने सिद्धान्त में कहता है—"पौलिश यूनानी एक स्थान पर कहता है कि पृथ्वी वर्तुलाकार है, और दूसरी जगह वह कहता है कि इसका आकार ढक्कन (अर्थात् चपटे समक्षेत्र) का सा है। और उसके दोनों वचन सत्य हैं; क्योंकि पृथ्वी का उपरितल या समक्षेत्र गोल है, और इसका व्यास एक सीधी रेखा है। परन्तु वह पृथ्वी को केवल मण्डलाकार ही मानता था यह बात उसके ग्रन्थ के अनेक वाक्यों से प्रमाणित हो सकती है। इसके अतिरिक्त, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, देव, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र,

और ब्रह्मा प्रभृति सभी विद्वान् इस विषय पर सहमत हैं। यदि पृथ्वी गोल न होती, तो यह पृथ्वी पर के भिन्न भिन्न स्थानों के अक्षों के साथ लपेटी हुई न होती, ग्रीष्म और हेमन्त में दिन और रात भिन्न भिन्न न होते, और नक्षत्रों तथा उनके परिभ्रमणों की अवस्थायें उनकी वर्तमान अवस्थाओं से सर्वथा भिन्न होतीं।

"पृथ्वी की स्थिति मध्य में है। यह आधी गारा और आधी पानी है। मेरु पर्वत इसके सूखे अर्धभाग में है। यह देवों का घर है; और इस के ऊपर ध्रुव है। दूसरे अर्द्धभाग में, जो पानी से ढँका हुआ है, दक्षिण ध्रुव के नीचे टापू के सदृश वडवामुख भूखण्ड है। यहाँ मेरु पर बसने वाले देवों के नातेदार नाग और दैत्य रहते हैं। इसलिए इसको दैत्यान्तर भी कहते हैं।

"पृथ्वी के दो आधों, सूखे और गीले को एक-दूसरे से जुदा करने वाली रेखा निरक्ष अर्थात् अक्ष-रहित कहलाती है, क्योंकि यह हमारी विषुवतरेखा से अभिन्न है। इस रेखा के सम्बन्ध से चार मुख्य दिशाओं में चार बड़े नगर हैं:—

यमकोटि, पूर्व में।	रोमक, पश्चिम में।
लङ्का, दक्षिण में।	सिद्धपुर, उत्तर में।

"पृथ्वी दोनों ध्रुवों पर बँधी हुई है और मेरुदण्ड उसको थाँभे हुए है। जब सूर्य उस रेखा पर जाता है जो मेरु और लङ्का के बीच में से गुज़रती है तो उस समय यमकोटि के लिए दोपहर, यूनानियों के लिए आधी रात, और सिद्धपुर में साँझ होती है।"

इसी प्रकार आर्यभट्ट ने इन बातों का वर्णन किया है।

भिल्लमाल-निवासी, जिष्णु का पुत्र ब्रह्मगुप्त अपने ब्रह्मसिद्धान्त में कहता है:—"पृथ्वी के आकार के विषय में लोग, विशेषतः पुराणों और धर्म्म-पुस्तकों को पढ़ने वाले,

ब्रह्मगुप्त के ब्रह्म-सिद्धान्त का प्रमाण।

अनेक प्रकार की बातें कहते हैं। कई कहते हैं कि यह दर्पण के सदृश एक समान है, और कई कहते हैं कि यह प्याले की तरह खोखली है। कई दूसरे कहते हैं कि यह शीशे की तरह एक समान और समुद्र से घिरी हुई है। यह समुद्र एक पृथ्वी से, और यह पृथ्वी एक समुद्र से घिरी हुई है, इत्यादि। ये सब कालरों की तरह गोल हैं। प्रत्येक समुद्र या पृथ्वी जिसको वह घेरती है उससे दुगनी है। सब से बाहर की पृथ्वी मध्यवर्ती पृथ्वी से चौंसठ गुनी बड़ी है, और बाहर की पृथ्वी को घेरने वाला समुद्र मध्यवर्ती पृथ्वी को घेरने वाले समुद्र से चौंसठ गुना बड़ा है। परन्तु अनेक ऐसे व्यापार हैं जिनसे हमें पृथ्वी और आकाश को मण्डलाकार मानना पड़ता है, उदाहरणार्थ तारों का भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न समय पर उदय और अस्त होना, जिससे, जैसा कि, यमकोटि में एक मनुष्य एक तारे को पश्चिमी दिङ्मण्डल के ऊपर उदय होते देखता है, और रूम में वही तारा उसी समय पूर्वी दिङ्मण्डल पर उदय होता दिखाई देता है। इसीके लिए एक और युक्ति यह है कि मेरु पर खड़ा हुआ मनुष्य एक अभिन्न तारे को राक्षसों के देश लङ्का के खस्वस्तिक में दिङ्मण्डल के ऊपर देखता है, और लङ्का में खड़ा मनुष्य उसी समय उस तारे को अपने सिर पर देखता है। इस के अतिरिक्त, जब तक पृथ्वी और आकाश को मण्डलाकार न माना जाय सभी ज्योतिष-सम्बन्धी गणनायें ठीक नहीं ठहरतीं। इसलिए हमें कहना पड़ता है कि आकाश एक मण्डल है क्योंकि इसमें हमें मण्डल के सभी विशेष गुण दिखाई पड़ते हैं, और जगत् के इन विशेष गुणों का निरीक्षण शुद्ध न होगा यदि वास्तव में ही यह परिमण्डल न हो। अब यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि जगत् के विषय में शेष सब कल्पनायें निःसार हैं।"

पृष्ठ ११७

आर्यभट्ट जगत् के स्वरूप का अन्वेषण करते हुए कहता है कि यह पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायु का बना है और इन में से प्रत्येक तत्त्व गोल है।

विविध ज्योतिषियों के प्रमाण।

इसी प्रकार वसिष्ठ और लाट कहते हैं कि पाँच तत्त्व अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश गोल हैं।

वराहमिहिर कहता है कि जिन वस्तुओं की उपलब्धि इन्द्रियों द्वारा होती है वे सब पृथ्वी के मण्डलाकार होने के पक्ष में प्रमाण हैं, और इसके कोई दूसरा आकार रखने की सम्भावना का खण्डन करती हैं।

आर्यभट्ट, पुलिश, वसिष्ठ और लाट सब इस बात में सहमत हैं कि जब यमकोटि में मध्याह्न होता है तो रूम में आधी रात, लङ्का में दिन का आरम्भ, और सिद्धपुर में रात का आरम्भ होता है, और जब तक पृथ्वी गोल न हो ऐसा होना सम्भव नहीं। इसी प्रकार ग्रहणों की नियतकालिकता भी पृथ्वी के गोल होने से ही सिद्ध हो सकती है।

लाट कहता है—"पृथ्वी के प्रत्येक स्थान से केवल आधा ही आकाश-मण्डल दिखाई देता है। जितना अधिक हमारा उत्तरी अक्ष होता है उतना ही अधिक मेरु और ध्रुव दिङ्मण्डल के ऊपर चढ़ जाते हैं; क्योंकि जितना अधिक हमारा दक्षिणी अक्ष होता है उतना ही अधिक वे दिङ्मण्डल के नीचे डूब जाते हैं। उत्तर और दक्षिण दोनों में स्थानों का अक्ष जितना अधिक होता है उतना ही अधिक उनके खस्वस्तिकों से विषुवतरेखा नीची हो जाती है। जो मनुष्य विषुवतरेखा के उत्तर में है वह केवल उत्तर ध्रुव को ही देखता है, दक्षिण ध्रुव उसे दिखाई नहीं देता, और यही बात दक्षिण ध्रुव वाले मनुष्य की है।"

आकाश और पृथ्वी के वर्तुलाकार, और जो कुछ उनके बीच है उसके विषय में, और इस बात के विषय में कि पृथ्वी का परिमाण, जोकि परिमण्डल के मध्य में स्थित है, आकाश के दृश्य भाग के सामने केवल छोटा सा है, हिन्दू-ज्योतिषियों के ये शब्द हैं। ये

पृथ्वी की गोलाई, उत्तरी और दक्षिणी आधों के बीच गुरुता के तुला रहने और गुरुत्वाकर्षण पर विचार।

विचार टोलमी कृत अलमस्ट के प्रथम अध्याय और वैसी ही दूसरी पुस्तकों में वर्णित ज्योतिष का आदि ज्ञान हैं, यद्यपि ये उस वैज्ञानिक रूप में नहीं निकाले गये जिसमें कि हम इनको निकालने के आदी हैं,

\+ + + (दीमक चाट गई) + +

क्योंकि पृथ्वी पानी से अधिक भारी, और पानी वायु के सदृश तरल है। जब तक पृथ्वी, परमेश्वर की आज्ञा से, कोई दूसरा रूप धारण नहीं करती, इसके लिए मण्डलाकार एक भौतिक आवश्यकता है। इसलिए, जब तक हम यह न मान लें कि पृथ्वी का सूखी भूमि वाला अर्ध भाग खोखला है, पृथ्वी उत्तर की ओर चल नहीं सकती, वह पानी दक्षिण ही की ओर चल सकता है, जिससे एक सारा अर्ध भाग दृढ़ भूमि नहीं होता और न दूसरा ही आधा पानी। जहाँ तक, अनुमान के आधार पर स्थित, हमारा विवेचन जाता है, शुष्क भूमि का दो उत्तरी चतुर्थांशों में से एकमें होना आवश्यक है, इसलिए हम अनुमान करते हैं कि साथ के भाग की भी यही दशा है। हम मानते हैं कि वडवामुख द्वीप का होना असम्भव नहीं, पर हम इसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते क्योंकि इसके और मेरु के विषय में जो कुछ भी हम जानते हैं उसका एक मात्र आधार पुराण है।

पृष्ठ १३५

पृथ्वी का जो भाग हमें ज्ञात है उसमें विषुवत् रेखा कठिन भूमि

और सागर के बीच की सीमा को नहीं दिखलाती। क्योंकि कई कई स्थानों में महाद्वीप समुद्र में बहुत दूर तक घुसता चला गया है यहाँ तक कि वह विषुवत्-रेखा को भी लाँघ गया है, उदाहरणार्थ पश्चिम में हबशियों के मैदान, जो कि दक्षिण में दूर तक, चन्द्रमा के पर्वतों और नील नदी के स्रोत से भी परे तक, वास्तव में ऐसे प्रदेशों में जिनको कि हम ठीक तौर पर नहीं जानते, आगे को बढ़ते चले गये हैं। क्योंकि वह महाद्वीप निर्जल और अगम्य है, और इसी प्रकार ज़न्ज के सुफ़ाला के पीछे का समुद्र भी जहाज़ों के चलने के योग्य नहीं है। जिस जहाज़ ने उसमें प्रवेश करने का साहस किया है वह कभी वहाँ देखी बातों को सुनाने के लिए लौटकर नहीं आया।

इसके अतिरिक्त सिन्ध-प्रान्त के ऊपर भारत का एक बड़ा भाग दक्षिण की ओर बहुत गहरा आगे को बढ़ा हुआ है, और विषुवतरेखा को भी लाँघता हुआ मालूम होता है।

दोनों के बीच अरब और यमन स्थित हैं परन्तु वे दक्षिण की ओर इतने नहीं बढ़े कि विषुव-रेखा को लाँघ जायँ।

फिर, जैसे सूखी मिट्टी दूर तक समुद्र में घुस गई है उसी प्रकार समुद्र भी सूखी भूमि में घुसा हुआ है, और इसे कई स्थानों में से तोड़कर खाड़ियाँ और उपसागर बना रहा है। उदाहरणार्थ, समुद्र अरब के पश्चिमी किनारे के साथ साथ मध्य सिरिया तक जीभ की तरह बढ़ा हुआ है। कुलज़म के समीप यह सब से ज़ियादा तंग है, और इससे इसका नाम कुलज़म-सागर भी पड़ गया है।

समुद्र की एक दूसरी और इससे भी बड़ी शाखा अरब के पूर्व में है। इसका नाम फ़ारस का सागर है। भारत और चीन के बीच भी समुद्र उत्तर की ओर एक बड़ी टेढ़ाई बनाता है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि इन देशों के सागर-तट की रेखा विषुव-रेखा के अनुरूप नहीं, और न यह ही उससे अपरिवर्तनीय अन्तर पर रहती है,

\+ \+ (कृमिभुक्त) \+ \+

और चार नगरों का वर्णन अपने उचित स्थान में किया जायगा।

समयों की जिस भिन्नता का उल्लेख हुआ है वह पृथ्वी के गोल और परिमण्डल के मध्यवर्ती होने का एक परिणाम है। और यदि वे पृथ्वी पर, इसके गोल होते हुए भी, अधिवासी मानते हैं—क्योंकि अधिवासियों के बिना नगरों की कल्पना हो ही नहीं सकती—तो पृथ्वी पर मनुष्यों के अस्तित्व का कारण प्रत्येक भारी वस्तु का उसके केन्द्र अर्थात् पृथ्वी के मध्य की ओर खिंच जाना ठहरता है।

वायु और मत्स्य-पुराण के प्रमाण।

वायु-पुराण की बहुत सी बातें भी इसी विषय की हैं, अर्थात् जब अमरावती में मध्याह्न होता है तो वैवस्वत में सूर्योदय, सुखा में मध्यरात्रि, और विभा में सूर्यास्त होता है।

मत्स्य-पुराण की बातें भी इसी प्रकार की हैं, क्योंकि यह पुस्तक बताती है कि मेरु के पूर्व में राजा इन्द्र और उसकी स्त्री का वास-स्थान अमरावतीपुर है; मेरु के दक्षिण में सूर्य के पुत्र यम का निवास-स्थान संयमनीपुर है जहाँ कि वह मनुष्यों को दण्ड और फल देता है; मेरु के पश्चिम में वरुण अर्थात् पानी का निवास-स्थान सुखापुर है; और मेरु के उत्तर में चन्द्रमा की नगरी विभावरीपुर है। और जब संयमनीपुर में सूर्य की स्थिति मध्याह्न की होती है, तो वह सुखापुर में उदय और अमरावतीपुर में अस्त होता है, और विभावरीपुर में उसकी स्थिति आधी रात की होती है।

पृष्ठ १३६

यदि मत्स्य-पुराण का रचयिता कहता है कि सूर्य मेरु के गिर्द घूमता है तो उसका तात्पर्य मेरु-निवासियों के गिर्द चक्की के ऐसे परिभ्रमण से है। मेरु-निवासियों को, इस परिभ्रमण के इस स्वरूप के कारण, न पूर्व का और न पश्चिम ही का पता लगता है। मेरु के अधिवासियों के लिए सूर्य एक विशेष स्थान में ही नहीं, प्रत्युत विविध स्थानों में चढ़ता है। पूर्व शब्द से रचयिता का तात्पर्य एक नगर के खस्वस्तिक से, और पश्चिम से उसका अभिप्राय दूसरे नगर के खस्वस्तिक से है। सम्भवतः मत्स्यपुराण के वे चार नगर ज्योतिषियों के बताये नगरों से अभिन्न हैं। परन्तु लेखक ने यह नहीं बताया कि वे मेरु से कितनी दूर हैं। इसके अतिरिक्त जो कुछ हमने हिन्दुओं की कल्पनाओं के तौर पर बयान किया है वह बिलकुल ठीक और वैज्ञानिक रीतियों के अनुसार है; परन्तु उनका यह स्वभाव है कि वे जब कभी ध्रुव का ज़िक्र करते हैं तो उसके साथ ही लगते दम मेरु पर्वत का भी ज़िक्र कर देते हैं।

मत्स्य-पुराण के एक वचन पर ग्रन्थकर्त्ता की टीका।

नीची चीज़ के लक्षण पर हिन्दू हमारे साथ सहमत हैं, अर्थात् कि यह जगत् का मध्य है, परन्तु इस विषय पर उनके वाक्य सूक्ष्म हैं, विशेषतः इसलिए कि यह उन महा प्रश्नों में से एक है जिन पर कि उनके केवल बहुत बड़े विद्वान् ही विचार करते हैं।

गुरुत्वाकर्षण के नियम पर ब्रह्मगुप्त और वराह-मिहिर।

ब्रह्मगुप्त कहता है—"विद्वानों ने यह विघोषित किया है कि पृथ्वी-मण्डल आकाश के मध्य में है, और देवों का घर मेरु पर्वत, और उनके विरोधियों का घर वडवामुख जिससे दैत्यों और दानवों का सम्बन्ध है, नीचे है। परन्तु उनके मतानुसार यह नीचे सापेक्ष है। इसका ख़याल न करके, हम कहते हैं कि पृथ्वी अपने सभी पार्श्वों

में एक सी है ; पृथ्वी के सभी लोग सीधे खड़े होते हैं, और सभी भारी चीज़ें प्रकृति के एक नियम से पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं क्योंकि चीज़ों को आकृष्ट करना और उनको रखना पृथ्वी का स्वभाव है, जिस प्रकार बहना जल का, जलना अग्नि का, और हिलाना हवा का स्वभाव है । यदि कोई चीज़ पृथ्वी से भी ज़ियादा नीचे गहरा जाना चाहती है तो इसे यत्न करके देख लेने दो । पृथ्वी ही एक मात्र नीची चीज़ है ; बीजों को चाहे किसी ओर फेंको वे सदा इसके पास ही वापस आ जायँगे, और पृथ्वी से ऊपर की ओर कभी न चढ़ेंगे ।"

वराहमिहिर कहता है—" पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष, नगर, मनुष्य, और देवगण सब पृथ्वी-मण्डल के इर्द-गिर्द हैं । यदि यमकोटि और रूम एक दूसरे के अभिमुख हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से एक दूसरे की अपेक्षा नीचा है, क्योंकि नीचा का अभाव है । मनुष्य पृथ्वी के एक स्थान के विषय में किस तरह कह सकता है कि यह नीचा है, क्योंकि यह प्रत्येक बात में पृथ्वी के प्रत्येक दूसरे स्थान से अभिन्न है, और एक स्थान उतना ही थोड़ा गिर सकता है जितना कि दूसरा । प्रत्येक मनुष्य अपनी ही अपेक्षा से अपने आपको कहता है, ' मैं ऊपर हूँ और दूसरे नीचे ' परन्तु वे सब लोग पृथ्वी-मण्डल के गिर्द कदम्ब-वृक्ष की शाखाओं पर उगने वाले पुष्पों के सदृश हैं । वे इसको सब ओर से घेरे हुए हैं, परन्तु प्रत्येक पुष्प की स्थिति दूसरे की स्थिति के ही सदृश है, न एक नीचे को लटक रहा है और न दूसरा सीधा ऊपर को खड़ा है । कारण यह कि पृथ्वी अपने ऊपर की प्रत्येक वस्तु को आकर्षित करती है, क्योंकि यह सब तरफ़ों से नीचे, और आकाश सब ओर ऊपर है "।

पाठक देखेंगे कि हिन्दुओं के ये सिद्धान्त प्राकृतिक नियमों के

यथार्थ ज्ञान पर अवलम्बित हैं, परन्तु साथ ही वे अपने धर्म्म-पण्डितों और ऐतिह्य-वादियों के साथ थोड़ा सा छल भी करते हैं। इसलिए टीकाकार बलभद्र कहता है—"लोगों की सम्मतियाँ अनेक और भिन्न भिन्न हैं, और उनमें से सब से अधिक यथार्थ सम्मति यह है कि पृथ्वी, मेरु और ज्योतिश्चक्र गोल हैं। और आप्त (?) पुराणकार, अर्थात् पुराण के दृढ़ अनुयायी कहते हैं—'पृथ्वी कछुवे की पीठ के सदृश है; यह नीचे से गोल नहीं।' उनका यह कथन सर्वथा सत्य है क्योंकि पृथ्वी जल के बीच है, और जो कुछ जल के ऊपर दिखाई देती है उसका आकार कछुवे की पीठ के सदृश है; और पृथ्वी के गिर्द का समुद्र जहाजों के चलने के लायक़ नहीं। पृथ्वी का गोल होना दृष्टि से प्रमाणित होता है।

बलभद्र के अवतरण और ग्रन्थकार की उन पर आलोचना।

पृष्ठ १३७

देखिए यहाँ बलभद्र पीठ की गुलाई के विषय में धर्म्म-पण्डितों की कल्पना को किस प्रकार सत्य प्रकट करता है। वह अपने आपको इस प्रकार प्रकट करता है मानों उसे यह मालूम नहीं कि वे इस बात से इन्कार करते हैं कि गर्भाशय, अर्थात् पृथ्वी-मण्डल का दूसरा आधा, गोल है, और वह अपने आपको पौराणिक तत्त्व (पृथ्वी के कछुवे की पीठ के सदृश होने) में ही निमग्न रखता है, जिसका कि, वास्तव में, विषय से कोई सम्बन्ध नहीं।

बलभद्र फिर और कहता है—"मानव-दृष्टि पृथ्वी और इसकी गुलाई से दूर एक बिन्दु पर ५००० योजन का ९६ वाँ भाग अर्थात् ५२ योजन (ठीक ५२ $\frac{१}{१२}$) पहुँचती है। अतएव मनुष्य उसकी गुलाई को नहीं देखता, और इसीसे इस विषय पर सम्मतियों की असङ्गति है।"

वे धर्मपरायण मनुष्य (आप्त (?) पुराणकार) पृथ्वी की

पीठ की गुलाई से इन्कार नहीं करते ; बल्कि, वे पृथ्वी को कछुवे की पीठ से तुलना देकर गुलाई को मानते हैं । केवल बलभद्र ही ("पृथ्वी नीचे से गोल नहीं," इन शब्दों से) उनसे इन्कार कराता है, क्योंकि उसने उनके शब्दों का अर्थ यह समझा है कि पृथ्वी पानी से घिरी हुई है । जो पानी से ऊपर निकली हुई है वह या तो मण्डलाकार है या उलटे हुए ढोल के सदृश अर्थात गोल चौकोने खम्भे के वृत्तांश के सदृश पानी से बाहर निकला हुआ मैदान है ।

इसके अतिरिक्त बलभद्र का यह कहना कि मनुष्य, क़द छोटा होने के कारण, पृथ्वी की गुलाई को नहीं देख सकता, सत्य नहीं; क्योंकि यदि मनुष्य का क़द उच्चतम पर्वत के लम्ब-सूत्र के बराबर भी लम्बा होता, और यदि वह दूसरे स्थानों में जाने और भिन्न भिन्न स्थानों में किए हुए अवलोकनों के विषय में बुद्धि दौड़ाने के बिना केवल एक ही बिन्दु से अवलोकन करता तो भी इतनी ऊँचाई उसके किसी काम न आती और वह पृथ्वी की गुलाई और इसके स्वरूप का अनुभव करने में असमर्थ होता ।

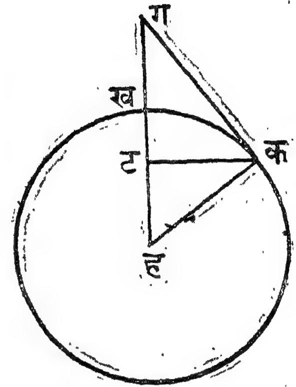
परन्तु इस टिप्पणी का सर्वप्रिय-कल्पना के साथ क्या सम्बन्ध है ? यदि उसने सादृश्य से यह परिणाम निकाला था कि पृथ्वी का वह पार्श्व जो गोल पार्श्व के—मेरा तात्पर्य निचले आधे से है—सामने है वह भी गोल है, और फिर यदि उसने मानव-दृष्टि की शक्ति के विस्तार के विषय में अपना सिद्धान्त इन्द्रियों की उपलब्धि के फल के तौर पर नहीं, बल्कि चिन्तन के फल के रूप में उपस्थित किया था, तो उसके सिद्धान्त में कुछ सार अवश्य मालूम होगा ।

बलभद्र ने जो मानव-चक्षु के पहुँच सकने की सीमा का लक्षण किया है उसके विषय में हम यह गणना पेश करते हैं :—

पृथ्वी पर मानव-दृष्टि के विस्तार पर गणना ।

ह केन्द्र के गिर्द क ख पृथ्वी-मण्डल है। ख देखने वाले के खड़े होने का स्थान है; उसका क़द ख ग है। इसके अतिरिक्त, हम पृथ्वी को स्पर्श करती हुई ग क रेखा खींचते हैं।

अब यह बात स्पष्ट है कि दृष्टि का क्षेत्र ख क है, जिसको हमने वृत्त का $\frac{1}{१६}$ वाँ अंश, अर्थात्, यदि हम वृत्त को ३६० अंशों में विभक्त करें तो, ३$\frac{३}{४}$ अंश माना है।



मेरु-पर्वत की गणना में जिस रीति का उपयोग किया गया था उसके अनुसार हम ट क के वर्ग अर्थात् ५०६२५ को ह ट अर्थात् ३४३१′ पर बाँटते हैं। इस तरह भागफल ट ग = ०° १४′ ४५″; और देखने वाले का क़द, ख ग, ०° ७′ ४५″ है।

हमारी गणना का आधार यह है कि पूर्ण ज्या, ह ख, ३४३८′ है। परन्तु पृथ्वी की त्रिज्या, हमारे पूर्वोक्त मण्डल के अनुसार, ७९५° २७′ १६″ (योजन) है। यदि हम ख ग को इसी माप से मापें तो यह १ योजन, ६ क्रोश, १०३५ गज़ (= ५७,०३५ गज़) के बराबर है। यदि हम ख ग को चार गज़ के बराबर मान लें तो, ज्या के नाप के अनुसार, इसका सम्बन्ध क ट से वैसा ही है जैसा कि ५७०३५ का, अर्थात् उन गज़ों का जोकि हमने क़द के नाप के तौर पर पाये हैं, ज्या के नाप के अनुसार क ट से, अर्थात् २२५ से है। अब यदि हम ज्या को गिनें तो हम इसे ०° ०′ १″ ३‴ पायेंगे, और इसके वृत्तांश का नाप भी इतना ही है। परन्तु, पृथ्वी की गुलाई का प्रत्येक अंश १३ योजन, ७ क्रोश, और ३३३$\frac{१}{३}$ गज़ को दिखलाता है। इसलि पृथ्वी पर दृष्टि-क्षेत्र २९१$\frac{२}{३}$ गज़ है। (एतावत्) पृष्ठ १३८

(इस गिनती की व्याख्या के लिए टीका देखिए ।)

बलभद्र की इस गणना का स्रोत पुलिश-सिद्धान्त है, जोकि वृत्त के चतुर्थांश के खण्ड-मण्डल को २४ कर्दजात में बाँटता है। वह कहता है—"यदि कोई इसके लिए युक्ति पूछे तो उसे जानना चाहिए कि इनमें से प्रत्येक कर्दजात वृत्त का $\frac{१}{९६}$ भाग = २२५ मिनट (= ३$\frac{३}{४}$ अंश) है । और यदि हम इसकी ज्या को गिनें तो हम इसे भी २२५ मिनटों के बराबर पाते हैं ।" इससे मालूम होता है कि जो भाग इस कर्दज से छोटे हैं उनमें ज्यायें अपने वृत्तांशों के बराबर हैं । और, क्योंकि आर्यभट्ट और पुलिश के अनुसार, पूर्ण ज्या (sinus totus) का ३६० अंशों के वृत्त के साथ व्यास का सम्बन्ध है, इसलिए इस गणित-सम्बन्धिनी समानता से बलभद्र ने यह समझा कि वृत्तांश लम्ब रूप है; और कोई भी विस्तार जिसमें कोई बहिर्वर्तुलता आगे को बढ़कर दृष्टि को लाँघने से नहीं रोकती, और जो इतना छोटा नहीं कि दिखाई ही न दे सके, वह दिखाई देता है ।

परन्तु यह भारी भूल है; क्योंकि वृत्तांश कभी लम्ब रूप नहीं होता और न वह ज्या ही, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो कभी वृत्तांश के बराबर होती है । यह केवल ऐसे ही अंशों के लिए स्वीकार करने योग्य है जोकि गिनती के सुभीते के लिए मान लिये गये हैं, परन्तु यह पृथ्वी के अंशों के लिए कभी और कहीं भी सत्य नहीं ।

पुलिश के अनुसार पृथ्वी का मेरु-दण्ड ।

यदि पुलिश कहता है कि पृथ्वी एक मेरुदण्ड के सहारे है तो उसका यह मतलब नहीं कि सचमुच ही ऐसा कोई मेरुदण्ड विद्यमान है, और कि उसके बिना पृथ्वी गिर पड़ेगी । वह ऐसी बात कैसे कह सकता था, क्योंकि उसकी सम्मति है कि पृथ्वी के गिर्द चार आबाद शहर हैं, जिसकी व्याख्या इस बात से की गई है कि प्रत्येक भारी वस्तु सब तरफ़ों से पृथ्वी की

ओर नीचे गिरती है? परन्तु पुलिश का यह मत है कि मध्यवर्ती भागों के निश्चल होने का कारण परिधि-सम्बंधी भागों की गति है, और मण्डल की गति तब ही हो सकती है जब पहले इसके दो ध्रुव और उनको मिलाने वाली एक रेखा मान ली जाय। यह रेखा कल्पना में मेरुदण्ड है। ऐसा मालूम होता है मानों उसके कहने का मतलब यह है कि आकाश की गति पृथ्वी को अपने स्थान में रखती है, और पृथ्वी के लिए इसको स्वाभाविक स्थान बनाती है, कि जिसके बाहर यह कभी हो ही नहीं सकती थी। और यह स्थान गति के मेरुदण्ड के मध्य में स्थित है। मण्डल के दूसरे व्यासों की भी मेरु-दण्डों के रूप में कल्पना की जा सकती है, क्योंकि उन सब में मेरु-दण्ड बनने की शक्ति है, और यदि पृथ्वी एक मेरु-दण्ड के बीच में न होती तो ऐसे मेरुदण्ड भी हो सकते थे जो पृथ्वी के बीच से न गुज़रते। इसलिए रूपक के तौर पर कहा जा सकता है कि पृथ्वी मेरु-दण्डों के सहारे है।

ब्रह्मगुप्त और ग्रन्थकार की इस विषय में राय कि पृथ्वी चलती है या खड़ी है।

पृथ्वी के खड़ा होने का विषय, जो कि ज्योतिष का एक प्रारम्भिक प्रश्न है, और जो अनेक बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित करता है, हिन्दू-ज्योतिषियों के लिए यह भी एक सिद्धान्त है। ब्रह्मगुप्त ब्रह्मसिद्धान्त में कहता है: —

"कुछ लोगों का मत है कि पहली गति (पूर्वसे पश्चिम को) याम्योत्तरवृत्त में नहीं है, परन्तु पृथ्वी से सम्बन्ध रखती है।

पृष्ठ १३९

किन्तु वराहमिहिर यह कहकर उनका खण्डन करता है कि 'यदि ऐसी अवस्था होती तो पक्षी अपने घोंसले से निकलकर पश्चिम की ओर उड़ जाने के पश्चात् कभी भी वहाँ वापस न आ सकता।' और, वास्तव में, यथार्थ बात है भी ऐसी ही जैसी वराह-मिहिर कहता है।"

ब्रह्मगुप्त उसी पुस्तक में किसी दूसरे स्थल पर कहता है—"आर्य-भट्ट के अनुयायियों का मत है कि पृथ्वी चलती है और आकाश खड़ा है। लोगों ने उनका यह कहकर खण्डन करने का यत्न किया है कि यदि ऐसी बात होती तो पत्थर और पेड़ पृथ्वी से गिर पड़ते।"

परन्तु ब्रह्मगुप्त उनके साथ सहमत नहीं। वह कहता है कि उनके सिद्धान्त से आवश्यक तौर पर यह परिणाम नहीं निकलता, क्योंकि वह समझता था कि सब भारी चीज़ें पृथ्वी के केन्द्र की ओर आकर्षित हो जाती हैं। वह कहता है:—"इसके विपरीत, यदि यह अवस्था होती, तो पृथ्वी आकाश के पलों, अर्थात् समयों के प्राणों के साथ बराबर चलने की स्पर्धा न करती।"

इस अध्याय में, शायद अनुवादक के दोष के कारण, कुछ गड़बड़ मालूम होती है। क्योंकि आकाश के पल २१६०० हैं, और प्राण अर्थात् श्वास कहलाते हैं, क्योंकि उनके अनुसार याम्योत्तरवृत्त का प्रत्येक पल या मिनट साधारण मानव-श्वास के समय में घूमता है।

यदि इसको सत्य मान लिया जाय, और यह भी मान लिया जाय कि पृथ्वी पूर्व की ओर का अपना पूर्ण भ्रमण उतने प्राणों में करती है जितने में उस (ब्रह्मगुप्त) के मतानुसार आकाश करता है, तो हम कोई कारण नहीं देखते कि पृथ्वी को आकाश के साथ बराबर चलने से कौनसी चीज़ रोक सकती है।

इसके अतिरिक्त, पृथ्वी का घूमना किसी प्रकार भी ज्योतिष के मूल्य को कम नहीं करता, क्योंकि ज्योतिष-सम्बन्धी सभी रूपों का समाधान इस कल्पना के अनुसार बिलकुल वैसा ही अच्छी तरह से हो सकता है जैसा दूसरी के अनुसार। परन्तु, कई दूसरे कारण ऐसे हैं जो इसको असम्भव बनाते हैं। इस समस्या का समाधान सबसे

ज़ियादा मुश्किल है। क्या प्राचीन और क्या आधुनिक दोनों ज्योतिषियों ने पृथ्वी के घूमने के प्रश्न पर गहरा विचार किया है, और इसका खण्डन करने का यत्न किया है। हमने भी मिफ़्ताह इल्मुल हैआ (ज्योतिष की चाभी) नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें हमारा ख़याल है कि हम अपने अग्रगामियों से, शब्दों में नहीं तो, मज़मून में तो हर सूरत में बढ़ गये हैं।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

पृथ्वी की प्रथम दो गतियों (एक तो प्राचीन ज्योतिषियों के मतानुसार पूर्व से पश्चिम को और दूसरी विषुवों का अयन-चलन) पर हिन्दू-ज्योतिषियों तथा पुराणकारों दोनों के मतानुसार ।

इस विषय पर हिन्दू-ज्योतिषियों के प्रायः वही विचार हैं जोकि हमारे हैं । हम उनके प्रमाण देते हैं, पर साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि जो कुछ हम देने में समर्थ हैं वह वास्तव में बहुत अपर्याप्त है ।

इस विषय में पुलिश का प्रमाण

पुलिश कहता है—"वायु स्थिर तारकाओं के मण्डल को घुमाता है; दोनों ध्रुव इसको अपने स्थान में रखते हैं, और इसकी गति मेरु पर्वत पर रहने वालों को बाईं ओर से दाईं ओर को और वडवामुख-निवासियों को दायें से बायें को मालूम होती है ।"

एक दूसरे स्थल पर वह कहता है: "यदि कोई मनुष्य उन तारों की गति की दिशा के विषय में पूछे जिनको हम पूर्व में उदय होते और पश्चिम की ओर घूमकर छिपते देखते हैं, तो उसे जानना चाहिए कि जिस गति को हम पश्चिमाभिमुख-गति के रूप में देखते हैं वह देखने वालों के स्थानों के अनुसार भिन्न भिन्न मालूम होती है । मेरु पर्वत के अधिवासियों को यह गति बायें से दायें को, और

वडवामुख के अधिवासियों को, इसके विपरीत, दायें से बायें को दिखाई देती है। विषुवत-रेखा के अधिवासियों को यह केवल पश्चिमाभिमुख, और पृथ्वी के उन खण्डों के अधिवासियों को, जो विषुवत् रेखा और ध्रुवों के बीच में स्थित हैं, उनके स्थानों के न्यून या अधिक उत्तरी या दक्षिणी अक्ष के अनुसार न्यून या अधिक दबी हुई देख पड़ती है। इस सारी गति का कारण वायु है, जो मण्डलों को घुमाता, और नक्षत्रों तथा दूसरे तारों को पूर्व में उदय और पश्चिम में अस्त होने के लिए बाध्य करता है। परन्तु, यह केवल एक निमित्त है। तत्त्वतः नक्षत्रों की गतियों का रुख पूर्व की ओर है, अर्थात् अलशरतान से अलबुतैन की ओर है, जिनमें से पिछला स्थान पहले के पूर्व में है। परन्तु यदि जिज्ञासु चान्द्र स्थानों को नहीं जानता, और उनकी सहायता से अपने लिए इस पूर्वाभिमुख गति की कल्पना प्राप्त करने में असमर्थ है, तो उसे स्वयं चन्द्रमा को देखना चाहिए कि यह सूर्य से किस प्रकार एक बार और दूसरी बार परे जाता है; फिर यह कैसे उसके निकट आकर अन्त को उसके साथ मिल जाता है। इससे दूसरी गति उसकी समझ में आ जायगी"।

पृष्ठ १४०

ब्रह्मगुप्त कहता है—"पृथ्वी-मण्डल सम्भवतः बड़ी से बड़ी शीघ्रता के साथ बिना कभी मन्द होने के दो ध्रुवों के गिर्द घूमता हुआ उत्पन्न किया गया है, और तारे वहाँ पैदा किये गये हैं जहां न बल-हूत है और न शरतान अर्थात् उनके बीच के सीमान्त पर, जोकि महाविषुव है"।

ब्रह्मगुप्त और बलभद्र के अवतरण

टीकाकार बलभद्र कहता है—"सारा जगत् दो ध्रुवों पर लटका हुआ वर्तुलाकार घूम रहा है। उसकी यह गति कल्प से आरम्भ

होती है और कल्प के साथ समाप्त होजाती है। परन्तु लोगों को इससे यह न कहना चाहिए कि पृथ्वी, अपनी सतत गति के कारण, अनादि और अनन्त है"।

ब्रह्मगुप्त कहता है—"निरक्ष स्थान साठ घटिकाओं में बाँटे जाने पर, मेरु के अधिवासियों के लिए दिङ्मण्डल है। उनका पूर्व पश्चिम है; और उस स्थान के पीछे (विषुवत्-रेखा के परे) दक्षिण की ओर वडवामुख और इसको घेरने वाला सागर है। जब मण्डल और तारे घूमते हैं, तो याम्योत्तरवृत्त (उत्तर में) देवों और (दक्षिण में) दैत्यों का सम्मिलित? दिङ्मण्डल बनजाता है, जिसको वे इकट्ठे देखते हैं। परन्तु गति की दिशा उनको भिन्न भिन्न दिखाई देती है। जिस गति को देवता दाईं ओर की गति के रूप में देखते हैं, दैत्यों को वही बाईं ओर की गति दिखाई देती है, और व्युत्क्रमेण, ठीक उसी तरह जैसे दाईं ओर कोई चीज़ रखने वाले मनुष्य को, जल में, वह चीज़ अपने बाईं ओर दिखाई देती है। इस एकरूप-गति का कारण, जो न कभी बढ़ती और न कभी घटती है, वायु है, परन्तु यह वह साधारण वायु नहीं जिसे हम सुनते और स्पर्श करते हैं; क्योंकि साधारण वायु तो मन्द, और शीघ्र हो जाता और बदल जाता है, परन्तु वह वायु कभी मन्द नहीं होता"।

एक दूसरे स्थल पर ब्रह्मगुप्त कहता है—"वायु सारे स्थिर तारों और नक्षत्रों को पश्चिम की ओर एक ही परिभ्रमण में घुमा देता है; परन्तु तारे भी मन्द गति के साथ पूर्व की ओर इस प्रकार चलते हैं, जैसे कुम्हार के चक्कर पर धूलि-कण चक्कर के घूमने की दिशा से विपरीत दिशा में घूमता है। इस कण की जो गति दिखाई देती है वह उस गति से अभिन्न है जोकि सारे चक्कर को घुमा रही है, परन्तु इस की व्यक्तिगत गति का अनुभव नहीं होता। इस विषय में लाट, आर्यभट्ट,

और वसिष्ठ सहमत हैं, परन्तु कई लोग समझते हैं कि पृथ्वी घूम रही है और सूर्य खड़ा है। जिस गति की कल्पना मनुष्य पूर्व से पश्चिम की ओर की गति के रूप में करते हैं, देव उसकी कल्पना बायें से दायें की ओर, दैत्य दायें से बायें की ओर की गति के रूप में करते हैं।"

ग्रन्थकार की आलोचनायें। वायु पृथ्वी-मण्डल के सञ्चालक के तौर पर।

इस विषय पर मैंने भारतीय पुस्तकों में केवल इतना ही पढ़ा है।

मैं समझता हूँ उन्होंने इस विषय को लोगों को समझाने और इसके अध्ययन को सुगम करने के उद्देश से ही वायु को संचालक कहा है; क्योंकि लोग स्वयं अपनी आँख से देखते हैं कि जब वायु पङ्खों वाले यन्त्रों और इस प्रकार के खिलौनों को लगता है तो उनमें गति पैदा कर देता है। परन्तु ज्यों ही वे आदि संचालक (परमेश्वर) का वर्णन करने लगते हैं, तो वे एकदम नैसर्गिक वायु से, जिसका निश्चय कि इसके सारे रूपों में विशेष कारणों-द्वारा होता है, मुक़ाबला करना छोड़ देते हैं। क्योंकि यद्यपि यह वस्तुओं को गति देता है, पर चलना इसका तत्त्व नहीं; और इसके अतिरिक्त, किसी दूसरी चीज़ के साथ संसर्ग के बिना यह चल नहीं सकता, क्योंकि वायु एक पिण्ड है, और इस पर बाह्य प्रभाव या साधन क्रिया करते हैं, जिससे इसकी गति उनकी शक्ति के समान होती है।

उनके इस कथन का कि वायु नहीं ठहरता केवल यही मतलब है कि संचालक-शक्ति सदैव कार्य करती रहती है। इससे वैसा चलना या ठहरना नहीं पाया जाता जैसा कि पिण्डों के लिए उचित है। फिर, उनके इस कथन का कि यह कभी मन्द नहीं होता यह तात्पर्य है कि यह सब प्रकार की दुर्घटनाओं से रहित है; क्योंकि मन्द होना और दुर्बल होना केवल ऐसे ही पिण्डों या भूतों में पाया जाता है जो विपरीत गुणों वाले तत्त्वों के बने हुए हों।

पृष्ठ १४१

इस कथन का तात्पर्य कि दो ध्रुव स्थिर तारों के मण्डल को रखते हैं, (पृष्ठ २२५) यह नहीं कि वे उसे गिरने से बचाए रखते हैं, बल्कि यह है कि उसको गति की स्वाभाविक अवस्था में बनाए रखते या क़ायम रखते हैं। एक प्राचीन यूनानी के विषय में एक कथा है। वह समझता था कि आकाश-गङ्गा किसी समय सूर्य की सड़क थी, और पीछे से उसने इसको छोड़ दिया। ऐसी बात का यह मतलब होगा कि गतियाँ नियमित न रहीं, और इससे कुछ मिलते-जुलते इस कथन का कि ध्रुवों के स्थिर तारों के मण्डल को बनाए रखने (अर्थात् उसकी रक्षा करने) की ओर लक्ष्य किया जा सकता है।

दो ध्रुवों के मण्डल को रखने पर।

गति की समाप्ति के विषय में (कि यह कल्प के साथ समाप्त होती है, इत्यादि) (पृष्ठ २२७) बलभद्र के वाक्य का अर्थ यह है कि प्रत्येक वस्तु जिसका अस्तित्व है और जिसका गणित की रीति से निश्चय हो सकता है, निस्सन्देह, दो कारणों से सान्त है—प्रथम, क्योंकि इसका आदि है, क्योंकि प्रत्येक संख्या एक और उसके दूनों की बनी है, और खुद एक का अस्तित्व उन सब के पहले है; और, दूसरे क्योंकि इसके एक अंश का समय के वर्तमान निमेष में भाव है, कारण यह कि यदि भाव के सातत्य के द्वारा दिनों और रातों की संख्या बढ़ जाती है तो उन का प्रारम्भ रखना जहाँ से कि वे शुरू हुए थे आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य का यह मत हो कि मण्डल में (उसके स्थिर गुणों के तौर पर) समय का भाव नहीं, और यदि वह यह समझता हो कि दिन और रात का केवल सापेक्ष अस्तित्व है, वे केवल पृथ्वी और उस के अधिवासियों की अपेक्षा से ही विद्यमान हैं, कि यदि, उदाहरणार्थ, जगत् में से पृथ्वी को निकाल लिया जाय, तो दिन और रात का और दिनों के बने हुए तत्त्व-समुच्चय को

समय का सापेक्ष स्वरूप।

मापने की सम्भावना का भी अभाव हो जायगा, तो इससे वह बल-भद्र पर अप्रस्तुतानुसंधान की आवश्यकता डालता है, और उसको पहली गति का नहीं, प्रत्युत दूसरी गति का कारण सिद्ध करने के लिए बाध्य करता है। दूसरी गति का कारण नक्षत्रों के चक्र हैं जिनका केवल मण्डल (आकाश से) सम्बन्ध है, पृथ्वी से नहीं। इन चक्रों को बलभद्र कल्प शब्द से प्रकट करता है, क्योंकि इसमें वे सब शामिल हैं और इसके प्रारम्भ के साथ ही उन सब का प्रारम्भ होता है।

यामयोत्तरवृत्त साठ घटिका में विभक्त है।

यदि ब्रह्मगुप्त याम्योत्तरवृत्त के विषय में कहता है कि यह साठ भागों में विभक्त है तो यह ऐसा ही है जैसे हममें से कोई कहे कि याम्योत्तरवृत्त चौबीस भागों में विभक्त है; क्योंकि समय को गिनने और मापने के लिए याम्योत्तर-वृत्त एक माध्यम है। इसका परिभ्रमण चौबीस घण्टे, या, हिन्दुओं के शब्दों में; साठ घटिका (या घड़ी) रहता है। यही कारण है जो उन्होंने राशियों के उदय होने को याम्योत्तर वृत्त के समय (३६० अंशों) में नहीं, प्रत्युत घटिकाओं में गिना है।

स्थिर तारों पर

यदि, फिर, ब्रह्मगुप्त कहता है कि वायु स्थिर तारों और नक्षत्रों को घुमाता है, इसके अतिरिक्त यदि वह, विशेष रूप से, नक्षत्रों में पूर्वाभिमुख मन्दगति ठहराता है, तो वह पाठक को यह समझाता है कि स्थिर तारों में ऐसी कोई गति नहीं होती, अन्यथा वह कहता कि उनमें भी नक्षत्रों के समान वैसी ही मन्द पूर्वाभिमुख गति होती है, इन नक्षत्रों का उनसे आकार और उस परिवर्तन के सिवा जोकि ये प्रतीप गति में दिखलाते हैं, कोई भेद नहीं। कई लोग कहते हैं कि प्राचीन लोग पहले उनकी (स्थिर तारों की) गतियों को नहीं जानते थे, बाद को चिरकाल पश्चात् उन्हें

उनका पता लगा। इस सम्मति की इस बात से पुष्टि होती है कि ब्रह्म-गुप्त की पुस्तक, विविध चक्रों में, स्थिर तारों के चक्रों का उल्लेख नहीं करती, और वह उनके दिखाई देने और न दिखाई देने को सूर्य के अपरिवर्तनीय अंशों पर अवलम्बित करता है।

आकाश की गति की दिशा जैसी कि वह पृथ्वी के भिन्न भिन्न बिन्दुओं से दिखाई देती है।

यदि ब्रह्मगुप्त यह कहता है कि विषुवत्-रेखा के अधिवासियों के लिए पहली गति दाँई और बाँई ओर की गति नहीं है तो पाठकों को निम्नलिखित याद रखना चाहिए। दो ध्रुवों में से किसी एक के नीचे रहने वाला मनुष्य जिस ओर भी मुड़ता है चलते हुए आकाशस्थ पिण्ड सदा उसके सामने रहते हैं, और क्योंकि वे एक दिशा में चलते हैं, इसलिए आवश्यक तौर पर पहले वे उसके एक हाथ के सम्मुख ठहरते हैं, और फिर, आगे चलते हुए, उसके दूसरे हाथ के सामने आ ठहरते हैं। दो ध्रुवों के अधिवासियों को इस गति की दिशा, जल या दर्पण में किसी वस्तु के प्रतिबिम्ब के सदृश, जहाँ कि उसकी दिशायें बदली हुई दिखाई देती हैं इसके सर्वथा विपरीत दिखाई देती है। यदि मनुष्य का प्रति-बिम्ब जल या दर्पण में पड़े तो वह दर्शक के सम्मुख खड़े मनुष्य से भिन्न दिखाई देगा। उसका दाँयां पार्श्व दर्शक के बाँयें पार्श्व के सामने, और उसका बाँयां पार्श्व दर्शक के दाँयें पार्श्व के सामने होगा।

पृष्ठ १४२

इसी प्रकार उत्तरी अक्ष के स्थानों के अधिवासियों के लिए घूमते हुए आकाशस्थ पिण्ड दक्षिण की ओर उनके सम्मुख हैं, और दक्षिणी अक्ष के स्थानों के अधिवासियों के सम्मुख वे उत्तर की ओर हैं। उनको गति वैसी ही मालूम होती है जैसी कि वह मेरु और वडवामुख के अधिवासियों को मालूम होती है। परन्तु विषुवत्-रेखा पर रहने वालों के लिए आकाशस्थ पिण्ड प्रायः उनके सिर के ऊपर

घूमते हैं, जिससे वे उनको किसी दिशा में भी अपने सम्मुख नहीं कर सकते । किन्तु, वास्तव में, वे विषुवत् रेखा से थोड़ा सा विचलित होते हैं, जिससे वहाँ के लोगों के सामने दो पार्श्वों पर एकरूप गति होती है, अर्थात् दाँयें से बाँयें को उत्तरीय आकाशस्थ पिण्डों की गति, और बाँयें से दाँयें को दक्षिणी नक्षत्रों की गति । इसलिए उनके शरीरों में दोनों ध्रुवों के अधिवासियों की (अर्थात्, तारों को भिन्न भिन्न दिशाओं में घूमते हुए देखने की) शक्ति संयुक्त है, और तारों को दाँयें से बाँयें या इसके विपरीत घूमते देखना सर्वथा उनकी अपनी इच्छा पर अवलम्बित है ।

जब ब्रह्मगुप्त कहता है कि रेखा साठ भागों में विभक्त है तो उसका अभिप्राय विषुवत् रेखा पर खड़े मनुष्य के खस्वस्तिक में से गुज़रने वाली रेखा से है । पुराणों के कर्त्ता आकाश को पृथ्वी पर खड़े और ठहरे हुए गुम्बज़ या शिखरतोरण के रूप में, और तारों को पूर्व से पश्चिम को पृथक् पृथक् घूमते हुए भूतों के रूप में प्रकट करते हैं । इन मनुष्यों को दूसरी गति की कोई धारणा कैसे हो सकती है ? और यदि उनमें ऐसी कोई धारणा होती है तो उसी श्रेणी के मनुष्यों का एक प्रतियोगी एक ही चीज़ के पृथक् पृथक् तौर पर दो भिन्न भिन्न दिशाओं में चलने की सम्भावना को कैसे मान सकता ?

उनकी कल्पनाओं के विषय में जो बातें हम जानते हैं वह यहाँ वर्णन करते हैं, यद्यपि हमें मालूम है कि पाठकों को इनसे कुछ लाभ न होगा क्योंकि वे सर्वथा निरर्थक हैं ।

मत्स्यपुराण का अवतरण ।

मत्स्यपुराण कहता है—"सूर्य और तारे दक्षिण की ओर उसी शीघ्रता से गुज़रते हैं जिससे कि एक तीर मेरु-पर्वत के गिर्द घूमता है । सूर्य कुछ उस शहरवी की तरह घूमता है जिसका सिरा कि बहुत शीघ्रतासे घूमते समय जल

रहा हो। सूर्य वास्तव में (रात्रि समय) छिप नहीं जाता; वह उस समय केवल कुछ लोगों के लिए, मेरु के चारों पार्श्वों पर चार नगरों के अधिवासियों के लि अदृश्य हो जाता है। लोकालोक पर्वत के उत्तरी पार्श्वों से शुरू करके वह मेरु पर्वत के गिर्द घूमता है; वह लोकालोक के आगे नहीं जाता, और न उसके दक्षिणी पार्श्व को ही आलोकित करता है। वह रात को दिखाई नहीं देता क्योंकि वह बहुत दूर है। मनुष्य उसको १००० योजन की दूरी से देख सकता है, परन्तु जब वह इतने बड़े अन्तर पर होता है तो आँख के पर्याप्त निकट की एक छोटी सी वस्तु भी उसको देखने वाले के लिए अदृश्य बना सकती है।

"जब सूर्य पुष्कर द्वीप के खस्वस्तिक में होता है तो वह पृथ्वी के एक-तीसवें भाग की दूरी घण्टे के तीन-पाँचवें भाग में चलता है। इतने समय में वह २१ लक्ष और ५०००० योजन अर्थात् २१५०००० योजन चलता है। तब वह उत्तर की ओर मुड़ता है, उसके तय करने का अन्तर तिगुना हो जाता है। फलतः, दिन लम्बे हो जाते हैं। जो सफ़र सूर्य एक दक्षिणी दिन में तय करता है वह ६ कोटि और १००४५ योजन है। फिर जब वह उत्तर को वापस आता और क्षीर अर्थात् आकाश-गङ्गा के गिर्द घूमता है तो वह एक दिन में १ कोटि और २१ लक्ष योजन चलता है।"

अब पाठकों से हमारा निवेदन है कि वह देखें कि ये बातें कैसी उलझी-पुलझी हैं। यदि मत्स्यपुराण का कर्त्ता कहता है कि तारे तीर के समान शीघ्रता से गुज़रते हैं, इत्यादि, तो हम समझते हैं कि यह अशिक्षित जनों के लिए एक अतिशयोक्ति है; परन्तु हमारे लिए यह कहना आवश्यक है कि तारों की तीर-की-सी गति केवल दक्षिण में ही नहीं,

मत्स्यपुराण की कल्पना पर ग्रन्थकार की समालोचना।

प्रत्युत उत्तर में भी है। उत्तर और दक्षिण में ऐसी सीमायें हैं जहाँ से कि सूर्य वापस मुड़ता है, और दक्षिणी सीमा से उत्तरी सीमा तक सूर्य के जाने का समय उसके उत्तरी सीमा से दक्षिणी सीमा तक जाने के समय के बराबर है। इसलिए उसकी उत्तराभिमुख गति तीर के समान शीघ्र कहलाने की वैसी ही अधिकारी है। पृष्ठ १४३ परन्तु यहाँ उत्तर ध्रुव के विषय में ग्रन्थकार के धर्म्म-सम्बन्धी मत का भाव मिलता है क्योंकि वह समझता है कि उत्तर ऊपर और दक्षिण नीचे है। इसलिए तारे सी-सा (see-saw) नामक खेल के तख़्ते पर बैठे हुए बच्चों की भाँति दक्षिण की ओर नीचे जाते हैं; परन्तु, यदि, ग्रन्थकर्त्ता का अभिप्राय यहाँ दूसरी गति से है, जब कि वास्तव में यह पहली है, तो हमें कहना पड़ता है कि दूसरी गति में तारे मेरु के गिर्द नहीं घूमते, और इस गति का क्षेत्र मेरु की आकाश-कक्षा की ओर चक्र का एक-बारहवाँ झुका हुआ है।

इसके अतिरिक्त, यह उपमा जिसमें वह सूर्य की गति को जलते हुए शहतीर के साथ मिलाता है कितनी दूर की है! यदि हमारा यह मत होता कि सूर्य एक अविरत गोल कालर के सदृश चलता है, तो उसकी यह उपमा इस मत का खण्डन करने के लिए उपयोगी होती। परन्तु, चूँकि हम सूर्य को, एक प्रकार से, आकाश में खड़ा एक पिण्ड समझते हैं, इसलिए उसकी उपमा निरर्थक है। और यदि उसका अभिप्राय केवल इतना ही कहने का है कि सूर्य एक चक्र खींचता है, तो उसका सूर्य को जलते हुए शहतीर से मिलाना प्रयोजनाधिक है, क्योंकि एक रस्सी के सिरे से बाँधा हुआ पत्थर भी सिर के गिर्द घुमाने से वैसा ही चक्र खींचता है (उसको जलता हुआ वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं)।

उसका यह कथन, कि सूर्य कुछ लोगों पर चढ़ता और दूसरों

पर डूबता है, सच है; परन्तु यहाँ भी वह अपने धर्म-विज्ञान-सम्बन्धी मतों से मुक्त नहीं। यह बात उसके लोकालोक पर्वत के उल्लेख से, और उसकी इस टिप्पणी से प्रकट होती है कि सूर्य की किरणें इसके वन्य या दक्षिणी पार्श्व पर नहीं, बल्कि मानुष या उत्तरी पार्श्व पर पड़ती हैं।

फिर, रात्रि के समय सूर्य अपने बड़े अन्तर के कारण नहीं छिप जाता, प्रत्युत इसलिए कि वह किसी चीज़ से—हमारे मतानुसार पृथ्वी से, और मत्स्यपुराण के कर्त्ता के अनुसार मेरु-पर्वत से—ढक जाता है। वह यह कल्पना करता है कि सूर्य मेरु के गिर्द घूमता है, और हम उसके एक पार्श्व पर हैं। फलतः सूर्य के मार्ग से हमारा अन्तर बदलता रहता है। यह मूलतः उसका अपना विचार है। इसका समर्थन पीछे के इन वचनों से होता है। सूर्य के रात्रि-समय अदृश्य होने का उसके हमसे अन्तर के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

जिन संख्याओं का मत्स्यपुराण का कर्त्ता उल्लेख करता है, मैं समझता हूँ वे भ्रष्ट हैं, क्योंकि कोई भी गिनती इनका समर्थन नहीं करती। वह सूर्य के उत्तर के रास्ते को उसके दक्षिण के रास्ते से तिगुना बताता है, और इसीको दिन की लम्बाई के भेद का कारण ठहराता है। वास्तव में दिन और रात का समाहार सदा अभिन्न होता है, और उत्तर में दिन और रात का एक दूसरे से नित्य सम्बन्ध है, इसलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम उसके वचन एक ऐसे अक्ष के बतलायें जहाँ कि गरमी का दिन ४५ घटिका, और सरदी का दिन १५ घटिका लम्बा होता है।

इसके अतिरिक्त, उसका यह कहना कि सूर्य उत्तर में शीघ्रता करता है (वहाँ दक्षिण की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से चलता है), प्रमाण-हीन है। उत्तरी अक्ष के स्थानों के याम्योत्तरवृत्त एक-दूसरे से

बहुत ज़ियादा अन्तर पर नहीं, क्योंकि वे ध्रुव के समीप हैं, परन्तु याम्योत्तरवृत्त ज्यों ज्यों विषुव-रेखा के निकट होते जाते हैं त्यों त्यों उनका एक-दूसरे से अन्तर बढ़ता जाता है। अब यदि सूर्य छोटी दूरी को तय करने के लिए जल्दी चलता है तो उसको बड़ी दूरी को तय करने के लिए जितना समय लगता है उसकी अपेक्षा कम समय का प्रयोजन होगा, विशेषतः यदि इस लम्बे मार्ग पर उसका कूच मन्द हो। वास्तव में अवस्था इसके विपरीत है।

जब सूर्य पुष्कर-द्वीप के ऊपर घूमता है उसके इस वाक्य का तात्पर्य मकर-संक्रान्ति की रेखा से है। उसके मतानुसार, इस रेखा पर, चाहे यह मकर-संक्रान्ति हो या दूसरी, प्रत्येक दूसरे स्थान की अपेक्षा दिन लम्बा होना चाहिए। ये सब बातें अस्पष्ट हैं।

इसी प्रकार की भावनायें वायुपुराण में भी पाई जाती हैं, उदाहरणार्थ, "कि दक्षिण में दिन बारह मुहूर्त्त और उत्तर में अठारह मुहूर्त्त है, और कि दक्षिण और उत्तर के बीच सूर्य का झुकाव १८३ दिन में १७२२१ योजन है अर्थात् प्रत्येक दिन के लिए ९४ ($\frac{१९}{१८३}$) योजन है।"

वायुपुराण का अवतरण।

एक मुहूर्त्त एक घण्टे के चार-पाँचवें (=४८ मिनट) के बराबर होता है। वायुपुराण का वाक्य उस अक्ष पर लागू है जहाँ कि सब से बड़ा दिन $१४\frac{२}{६}$ घण्टे होता है।

पृष्ठ १४४

वायुपुराण के बताये योजनों की संख्याओं के विषय में यह स्पष्ट है कि ग्रन्थकार का तात्पर्य मण्डल के दुगने झुकाव के अंश से है। उसके अनुसार झुकाव चौबीस अंश है; इसलिए सारे मण्डल के योजन $१२९१५७\frac{१}{३}$ होंगे। और जिन दिनों में सूर्य दुगना झुकाव तय करता है वे, दिनों के भग्नांशों का कुछ ख़याल न करके, जोकि प्रायः एक दिन के पाँच-आठवें हैं, सौर वर्ष का आधा हैं।

फिर, वायुपुराण कहता है "कि उत्तर में सूर्य दिन के समय हौले हौले और रात के समय तेज़ी से चलता है, और दक्षिण में इसके विपरीत। इसलिए उत्तर में अठारह मुहूर्त्त भर दिन लम्बा है।" ये केवल एक ऐसे व्यक्ति के शब्द हैं जिसको सूर्य की पूर्वी गति का कुछ भी ज्ञान नहीं, जो यन्त्रों से दिन के वृत्तांश को माप नहीं सकता।

विष्णु-धर्म्म का अवतरण

विष्णु-धर्म्म कहता है—"सप्तर्षि की कक्षा ध्रुव के नीचे स्थित है; उसके नीचे शनि की कक्षा; फिर वृहस्पति की; फिर मङ्गल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्र की। वे पूर्व की ओर चक्की की तरह, एक प्रकार की एकरूप गति में जोकि प्रत्येक तारे का विशेष गुण है, घूमते हैं। उनमें से कुछ तो शीघ्रता से घूमते हैं और कुछ हौले हौले। अनन्त काल से मृत्यु और जीवन उन पर सहस्रों बार आते हैं।"

यदि आप इस वचन की वैज्ञानिक नियमों के अनुसार परीक्षा करेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि यह सर्वथा क्रम-हीन है। सप्तर्षि को ध्रुव के नीचे और ध्रुव का स्थान अबाधित उच्चता मानने से सप्तर्षि मेरु के निवासियों के खस्वस्तिक के नीचे ठहरता है। उसका यह कथन तो सत्य है परन्तु नक्षत्रों के विषय में उसकी भूल है। क्योंकि, उसके अनुसार, नीचे शब्द का अर्थ पृथ्वी से बड़ी या छोटी दूरी समझा जाना चाहिए; और जब तक हम यह न मान लें कि सब नक्षत्रों में से शनि का विषुवत्रेखा से सब से ज़ियादा झुकाव है, उसके बाद सब से बड़ा झुकाव वृहस्पति का है, फिर मङ्गल, सूर्य, शुक्र, इत्यादि का, और साथ ही उनके झुकाव का यह परिमाण एकरूप है, तब तक इस प्रकार अर्थ समझने से, उसका (पृथ्वी से नक्षत्रों की दूरियों के विषय में) कथन ठीक नहीं है। परन्तु यह बात सत्यता के अनुरूप नहीं।

यदि हम विष्णु-धर्म्म के सारे कथन का सारांश लें तो ग्रन्थकर्त्ता की इतनी बात तो ठीक है कि स्थिर तारे नक्षत्रों से उच्चतर हैं, परन्तु उसका ध्रुव को स्थिर तारों से उच्चतर न मानना भूल है।

नक्षत्रों का चक्की-सदृश परिभ्रमण पश्चिम की ओर पहिली गति है, न कि ग्रन्थकर्त्ता की बताई हुई दूसरी गति। उसके मतानुसार, नक्षत्र उन व्यक्तियों की आत्मायें हैं जिन्होंने अपने गुणों से अभ्युदय को प्राप्त किया है, और जो मानव-रूप में अपने जीवन की समाप्ति के बाद इसमें वापस आगये हैं। मेरी राय में, ग्रन्थकर्त्ता सहस्रों बार शब्दों में संख्या का प्रयोग इसलिए करता है कि या तो वह यह बताना चाहता था कि उनका अस्तित्व इस परिभाषा के हमारे अर्थों में अस्तित्व है, यह शक्ति से क्रिया में विकास (इसलिए परिमित और माप-द्वारा गिने जाने तथा निश्चय किये जाने के योग्य कोई वस्तु) है, या उसका उद्देश यह प्रकट करता है कि उनमें से कुछ आत्मायें मोक्ष प्राप्त कर लेती हैं, और बाक़ी प्राप्त नहीं करतीं। इसलिए उनकी संख्या में अधिकता या न्यूनता हो सकती है, और इस प्रकार की प्रत्येक वस्तु परिमित रूप रखती है।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद ।

दश दिशाओं के लक्षणों पर ।

शून्य में पिण्डों का विस्तार तीन दिशाओं में होता है— लम्बाई, चौड़ाई, और गहराई या ऊँचाई । किसी वास्तविक दिशा का, कल्पित का नहीं, पथ परिमित है ; इसलिए इन तीन पथों को दिखलाने वाली रेखायें परिमित हैं, और इनके छः सिरों के बिन्दु या सीमायें दिशायें हैं । यदि तुम उन रेखाओं के मध्य में, अर्थात् जहाँ वे एक दूसरे को काटती हैं, एक जन्तु की कल्पना करो, जो उनमें से एक की ओर मुँह करता है, तो उस जन्तु के सम्बन्ध से ये दिशायें हैं, सामने, पीछे, दाँयें, बाँयें, ऊपर, और नीचे ।

यदि इन दिशाओं का जगत् के सम्बन्ध में प्रयोग किया जाय तो उन्हें नए नामों का प्रयोजन होताहै । क्योंकि नक्षत्रों

पृष्ठ १४१

का उदय और अस्त होना दिङ्मण्डल पर अवलम्बित है और पहिली गति दिङ्मण्डल द्वारा अभिव्यक्त होती है, इसलिए दिङ्मण्डल से दिशाओं का निश्चय करना सब से ज़ियादा आसान है । (सामने, पीछे, बाँयें और दाँयें के अनुरूप) चार दिशायें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, तो प्रायः मालूम हैं, परन्तु जो दिशायें इनमें से प्रत्येक दो के बीच स्थित हैं वे कम मालूम हैं । ये आठ दिशायें बनती हैं ; और ऊपर और नीचे को मिलाकर, जिनकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं, दस दिशायें हैं ।

यूनानी लोग दिशाओं का निश्चय राशियों के चढ़ने और डूबने

के स्थानों से करते थे, उनको हवाओं के नाते में लाकर सोलह दिशायें प्राप्त करते थे ।

अरबी लोग भी हवाओं के चलने के बिन्दुओं से दिशाओं का निश्चय करते थे । दो प्रधान हवाओं के बीच चलने वाली किसी भी हवा को वे प्रायः नकबा कहते थे । बहुत थोड़ी अवस्थाओं में वे अपने विशेष नामों से पुकारी जाती थीं ।

दिशाओं के नाम रखने में हिन्दुओं ने हवा के चलने का कोई ख़याल नहीं रक्खा । वे केवल चार मुख्य दिशाओं तथा उनके बीच की उपदिशाओं को पृथक् पृथक् नामों से पुकारते हैं । इसलिए, जैसा कि नीचे के चित्र में दरसाया गया है, दिगन्तसम क्षेत्र में उनकी आठ दिशायें हैं—

दक्षिण-पश्चिम ।		दक्खिन		दक्षिण-पूर्व ।
	नैर्ऋत	दक्षिण	आग्नेय	
पश्चिम	पश्चिम	मध्य-देश	पूर्व	पूरब
	वायव्य	उत्तर	ईशान	
उत्तर-पश्चिम ।		उत्तर		उत्तर-पूर्व ।

इनके अतिरिक्त दिगन्तसम क्षेत्र के दो ध्रुवों के लिए दो और दिशायें हैं, अर्थात् ऊपर और नीचे। इनमें से पहली को उपरि और दूसरी को अधस और तल कहते हैं।

इन और अन्य जातियों में प्रचलित दिशाओं का आधार जन-अनुमति है। क्योंकि दिङ्मण्डल असंख्य चक्रों द्वारा विभक्त है, इसलिए इसके केन्द्र से पैदा होने वाली दिशायें भी असंख्य हैं। प्रत्येक सम्भव व्यास के दो सिरों को सामने और पीछे समझा जा सकता है, इसलिए पहले को समकोण पर काटने वाले (और उसी क्षेत्रमें स्थित) व्यास के दो सिरे दाँयां और बाँयां है।

हिन्दू कभी किसी चीज़ का, चाहे वह चीज़ बुद्धि का विषय हो और चाहे कल्पना का, उसमें मनुष्य-धर्म्म का आरोप किये बिना या उसे व्यक्ति के रूप में प्रकट किये बिना वर्णन नहीं कर सकते। वे एकदम उसका विवाह करते, उसकी शादी रचाते, उसकी पत्नी को गर्भवती बनाते और उसकी कोख से कुछ पैदा करा देते हैं। यही बात इस अवस्थामें भी है। विष्णु-धर्म्म कहता है कि अत्रि तारे ने जोकि सप्तर्षि नामक तारों पर शासन करता है एक स्त्री के रूपमें प्रकट की गई दिशाओं से, यद्यपि उनकी संख्या आठ है, विवाह किया, और उसकी कोख से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ।

एक दूसरा ग्रन्थकर्ता कहता है—दक्ष अर्थात् प्रजापति ने धर्म्म अर्थात् पुरस्कार के साथ अपनी दस पुत्रियों अर्थात् दस दिशाओं का विवाह कर दिया। उनमें से एक के अनेक बच्चे उत्पन्न हुए। वह स्त्री वसु और उस के बच्चे वासु कहलाते थे। उनमें से एक चन्द्रमा था।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे मुसलमान लोग चन्द्रमा के ऐसे जन्म पर हँसेंगे। परन्तु मैं उनको इसी प्रकार की कुछ और भी

सामग्री देता हूँ। इस प्रकार उदाहरणार्थ, वे बयान करते हैं—कश्यप और उसकी भार्या अदिति का पुत्र सूर्य छठे मन्वन्तर में विशाखा नक्षत्र पर उत्पन्न हुआ था; धर्म्म का पुत्र चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र पर पैदा हुआ था; प्रजापति का पुत्र मङ्गल पूर्वाषाढा पर; चन्द्र का पुत्र बुध, धनिष्ठा पर; अङ्गिरस् का पुत्र वृहस्पति पूर्वफाल्गुनी पर; भृगु का पुत्र शुक्र पुष्य पर; शनि रेवती पर; मृत्यु के देवता यम का पुत्र केतु आश्लेषा पर, और राहु रेवती पर पैदा हुआ था।

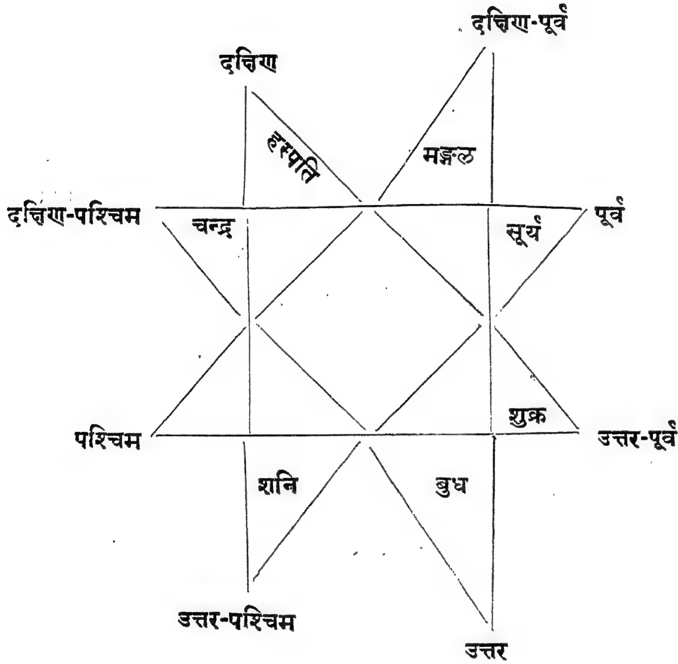
पृष्ठ १४६

अपनी रीति के अनुसार, हिन्दू लोग दिगन्तसम क्षेत्र में आठ दिशाओं के लिए विशेष अधिष्ठाता ठहराते हैं। उनको नीचे की तालिका में दिखलाया जाता है—

उनके अधिष्ठाता।	दिशायें	उनके अधिष्ठाता।	दिशायें
इन्द्र।	पूर्व।	वरुण।	पश्चिम।
अग्नि।	दक्षिण-पूर्व।	वायु।	उत्तर-पश्चिम।
यम।	दक्षिण।	कुरु।	उत्तर।
पृथु।	दक्षिण-पश्चिम।	महादेव।	उत्तर-पूर्व।

हिन्दू लोग इन आठ दिशाओं का एक चित्र बनाते हैं। इसको

वे राहु-चक्र कहते हैं। इसके द्वारा वे जूआ खेलने के लिए शकुन या भविष्यद्वाणी लेने का यत्न करते हैं। वह चित्र यह है:—



इस चित्र का उपयोग इस प्रकार होता है—पहले तुम्हें प्रस्तुत दिन का अधिष्ठाता और इस चित्र में उस का स्थान मालूम होना चाहिए। फिर तुम्हें दिन के आठ भागों में से उस भाग को जानना चाहिए जिसमें तुम दैवयोग से उपस्थित हो। ये आठों, दिन के अधिष्ठाता से आरम्भ करके अविरत परम्परा में पूर्व से दक्षिण और पश्चिम की रेखाओं पर गिने जाते हैं। इस प्रकार तुम प्रस्तुत आठवें का अधिष्ठाता

मालूम कर लेते हो। उदाहरणार्थ, यदि तुम वृहस्पतिवार का पाँचवाँ-आठवाँ जानना चाहते हो जब कि दक्षिण में दिन का अधिष्ठाता वृहस्पति है और दक्षिण से आने वाली रेखा उत्तर-पश्चिम में समाप्त होती है, तो हमें मालूम हो जाता है कि पहले-आठवें का अधिष्ठाता वृहस्पति, दूसरे का शनि, तीसरे का सूर्य, चौथे का चन्द्र, और पाँचवें का उत्तर में बुध है। इस प्रकार तुम दिन और रात में से अहोरात्र के अन्त तक आठवें गिन जाते हो। इस प्रकार जब दिन के उस आठवें की दिशा मालूम हो गई जिसमें कि तुम हो तो इसको वे राहु समझते हैं; और जब तुम खेलने लगो तो इस प्रकार बैठो कि यह दिशा तुम्हारी पीठ के पीछे रहे। तब तुम, उनके विश्वासानुसार, जीत जाओगे। पाठकों का यह काम नहीं कि वे उस मनुष्य से घृणा करें जो ऐसे शकुन के कारण, नाना खेलों में पाँसे की एक फेंक पर अपने सारे भाग्य की बाज़ी लगा देता है। उसके पाँसे खेलने का दायित्व उस पर छोड़ना ही पर्याप्त है।

पृष्ठ १४७

—:०:—

उन्तीसवाँ परिच्छेद।

हिन्दुओं के मतानुसार पृथ्वी कहाँ तक बसी हुई है।

वासयोग्य जगत् पर ऋषि भुवनकोश की राय।

भुवनकोश ऋषि की पुस्तक में लिखा है कि वासयोग्य जगत् हिमवन्त से दक्षिण की ओर फैलता है और भरत नामक एक मनुष्य के कारण, जो उनका शासन और रक्षा करता था, भारतवर्ष कहलाता है। केवल इस वासस्थान के अधिवासियों के लिए ही दूसरे जन्म में पुरस्कार और दण्ड नियुक्त है। यह नौ भागों में विभक्त है। उनको नव-खण्ड-प्रथम कहते हैं। प्रत्येक दो खण्डों के बीच एक समुद्र है जिसको वे एक खण्ड से दूसरे खण्ड में जाने के लिए पार करते हैं। वासयोग्य जगत् की चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक १००० योजन है।

हिमवन्त से ग्रन्थकर्त्ता का अभिप्राय उत्तरी पर्वतों से है, जहाँ शीत के कारण, जगत् वास-योग्य नहीं रहता। इसलिए सारी सभ्यता का इन पर्वतों के दक्षिण में होना आवश्यक है।

उसके ये शब्द कि अधिवासियों को पुरस्कार और दण्ड मिलता है, यह प्रकट करते हैं कि कई दूसरे लोग ऐसे भी हैं जिनको पुरस्कार और दण्ड नहीं मिलता। इन प्राणियों को उसे या तो मनुष्य-पदवी से उठाकर देव-पदवी पर ले जाना चाहिए, जोकि उन तत्त्वों की सरलता के कारण जिनके कि वे बने हुए हैं और अपनी प्रकृति की पवित्रता के कारण ईश्वरीय आज्ञा कभी उल्लङ्घन नहीं करते और सदा भक्ति में लगे रहते हैं; या उसे उनको गिराकर निर्विवेक पशु बना देना चाहिए। इसलिए उसके अनुसार वास-स्थान (अर्थात् भारतवर्ष) के बाहर मनुष्य नहीं।

केवल हिन्द ही भारतवर्ष नहीं है, जैसा हिन्दू समझते हैं, जिन के अनुसार उनका देश ही जगत् है और उनकी जाति ही केवल मानव-जाति है; क्योंकि हिन्द में कोई ऐसा सागर नहीं है जो उसके एक खण्ड को दूसरे खण्ड से अलग किए हुए उसमें आर-पार स्थित हो। इसके अतिरिक्त, वे इन खण्डों को द्वीपों से अभिन्न नहीं मानते, क्योंकि ग्रन्थकार कहता है कि उन समुद्रों पर लोग एक तट से दूसरे तट पर जाते हैं। फिर, उसकी बातों से यह परिणाम निकलता है कि पृथ्वी के सारे अधिवासी और हिन्दू पुरस्कार और दण्ड के अधीन हैं, और वे एक बड़ा धर्म्म-समाज है।

नौ भाग प्रथम अर्थात् प्राथमिक भाग कहलाते हैं, क्योंकि वे अकेले हिन्द को भी नौ भागों में विभक्त करते हैं। इसलिए वासस्थान की बाँट प्राथमिक परन्तु भारतवर्ष की बाँट गौण है। इसके अतिरिक्त, नौ भागों में एक तीसरी बाँट भी है, क्योंकि उनके फलित ज्योतिष-वेत्ता किसी देश के शुभाशुभ स्थानों को मालूम करने का यत्न करते समय प्रत्येक देश को नौ भागों में बाँटते हैं।

वायु-पुराण का अवतरण

वायु-पुराण में भी हमें इसी प्रकार का एक ऐतिह्य मिलता है। वह यह है कि "जम्बु-द्वीप का मध्य भारतवर्ष कहलाता है, जिसका अर्थ है वे लोग जो कोई वस्तु प्राप्त करते और अपना पोषण अपने आप करते हैं। वे चार युग मानते हैं। वे पुरस्कार और दण्ड के अधीन हैं; और हिमवन्त देश के उत्तर में स्थित है। यह नौ भागों में विभक्त है, और उनके बीच जहाज़ों के तैरने लायक़ समुद्र हैं। इसकी लम्बाई ९००० योजन, इसकी चौड़ाई १००० है; और क्योंकि यह देश सन्नार (?) भी कहलाता है, इसलिए इस पर शासन करने वाले प्रत्येक शासक को सन्नार (?) कहते हैं। इसके नौ भागों की आकृति निम्नलिखित प्रकार की है।"

तब ग्रन्थकार पूर्व और उत्तर के बीच के खण्ड के पर्वतों, और वहाँ से निकलने वाली नदियों का वर्णन करने लगता है, परन्तु वह इस वर्णन के आगे नहीं जाता । इससे हमें वह यह समझाता है कि उसके मतानुसार एक खण्ड वास-स्थान है । परन्तु एक दूसरे स्थल पर वह अपना खण्डन करता है, जहाँ कि वह कहता है कि जम्बू-द्वीप नव-खण्ड-प्रथम में मध्य है, और दूसरे आठ दिशाओं की ओर स्थित हैं । उन पर देवता, मनुष्य, पशु और पेड़ हैं । इन शब्दों से उसका मतलब द्वीप प्रतीत होता है ।

पृष्ठ १४८

यदि वास-स्थान की चौड़ाई १००० योजन है, तो इसकी लम्बाई अवश्य २८०० के लगभग होनी चाहिए ।

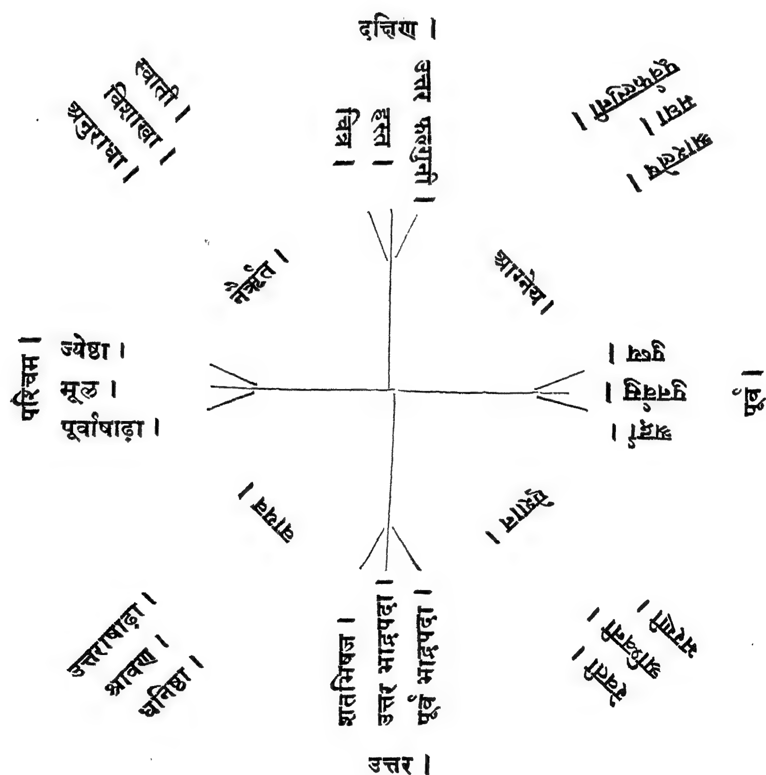
फिर, वायु-पुराण प्रत्येक दिशा में स्थित नगरों और देशों का उल्लेख करता है । हम उनको तालिकाओं में दिखलायेंगे और साथ ही दूसरे स्रोतों से प्राप्त वैसी ही जानकारी भी देंगे, क्योंकि इस रीति से विषय का अध्ययन दूसरी रीतियों की अपेक्षा सुगमतर हो जाता है । नीचे का नक़शा भारतवर्ष के सात खण्डों में बाँट को दिखाता है ।

नाग द्वीप ।		दक्षिण । गभस्तिमत् ।	ताम्रवर्ण ।	
पश्चिम ।	सौम्य ।	इन्द्र-द्वीप या मध्य-देश ।	कशेरुमत् ।	पूर्व ।
गान्धर्व ।		उत्तर	नगर सम्वृत्त ।	

हम पहले कह चुके हैं कि पृथ्वी का वह भाग जिसमें वास-स्थान स्थित है, कछुवे के सदृश है; क्योंकि इसके किनारे गोल हैं । यह पानीसे ऊपर उठा हुआ

कूर्म-चक्र के आकार पर ।

और चारों ओर से पानीसे घिरा हुआ है, और इसके उपरितल पर मण्डलाकार बहिर्वर्तुलत्व है। परन्तु सम्भव है कि इस नाम की उत्पत्ति यह हो कि उनके गणित तथा फलित-ज्योतिषी दिशाओं को नक्षत्रों के अनुसार बाँटते हैं। इसलिए वह देश भी नक्षत्रों के अनुसार ही बँटा हुआ है, और इस बाँट को दिखलाने वाला आकार कछुवे के सदृश है। इसीलिए यह कूर्म्म-चक्र अर्थात् कछुवे का चक्र या कछुवे का आकार कहलाता है। नीचे का आकार बराहमिहिर की संहिता से लिया गया है।



वराहमिहिर नव-खण्ड में से प्रत्येक को वर्ग कहता है। पृष्ठ १४९

वह कहता है—"उन (वर्गों) के द्वारा भारतवर्ष, अर्थात् जगत् का आधा, मध्यवर्ती, पूर्वी इत्यादि, नौ भागों में बँटा हुआ है।" तब वह दक्षिण को जाता है, और इस प्रकार सारे दिङ्मण्डल के गिर्द घूमता है। वह भारतवर्ष का मतलब केवल हिन्द को ही समझता है यह बात उसके इस कथन से प्रकट होती है कि प्रत्येक वर्ग का एक प्रदेश है, जिस पर जब कोई अनिष्टपात होता है तो उसका राजा मार डाला जाता है। इस प्रकार वर्ग और उनके प्रदेश ये हैं:—

वराहमिहिर के अनुसार भारतवर्ष की बाँट।

पहले या मध्यवर्ती	वर्ग	का	प्रदेश	पाञ्चाल है।
दूसरे	वर्ग	,,	,,	मगध है।
तीसरे	वर्ग	,,	,,	कालिङ्ग है।
चौथे	वर्ग	,,	,,	अवन्ति अर्थात उज्जैन है।
पाँचवें	वर्ग	,,	,,	अनन्त है।
छठे	वर्ग	,,	,,	सिन्धु और सौवीर है।
सातवें	वर्ग	,,	,,	हारहौर है।
आठवें	वर्ग	,,	,,	मदुरा है।
नवें	वर्ग	,,	,,	कुलिन्द है।

ये सब प्रदेश हिन्द विशेष के हैं।

इस प्रबन्ध में देशों के जो नाम दिये गये हैं उनमें बहुत ऐसे हैं जिनको अब लोग प्रायः नहीं जानते। इस विषय में काश्मीर-निवासी उत्पलसंहिता नामक पुस्तक की टीका में कहता है—"देशों के नाम, विशेषतः युगों में, बदल जाते हैं। इस प्रकार मुलतान पहले काश्यपपुर कहलाता था, फिर हंसपुर, फिर बगपुर, फिर साम्भपुर, और फिर मूलस्थान अर्थात् असली

भौगोलिक नामों के परिवर्तन पर।

जगह कहलाने लगा, क्योंकि मूल का अर्थ जड़, आरम्भ और स्थान का अर्थ जगह है।"

युग समय की एक लम्बी अवधि है, परन्तु नाम जल्दी जल्दी बदल जाते हैं, जब, उदाहरणार्थ, कोई भिन्न भाषा वाली विदेशी जाति देश पर अधिकार कर लेती है। उनकी जिह्वायें प्रायः शब्दों को चीरती-फाड़ती हैं और इस प्रकार उनको अपनी भाषा में बदल देती हैं, जैसा कि, उदाहरणार्थ, यूनानियों की रीति है। या तो वे नामों के मूल अर्थों को बनाये रखते हैं, और उसके एक प्रकार के अनुवाद का यत्न करते हैं, परन्तु फिर उनमें विशेष परिवर्तन होजाते हैं। इस प्रकार शाश नगर, जिसका नाम तुर्की भाषा से निकला है, जहाँ कि वह ताशकन्द अर्थात् पत्थरों का शहर कहलाता है, जाओग्राफ़िया (भूगोल) नामक पुस्तक में पत्थरों का बुर्ज कहलाता है। इस प्रकार पुराने नामों के अनुवादों के रूप में नये नाम पैदा होजाते हैं। या, दूसरे, बर्बर लोग स्थानीय नामों को लेते और बनाये रखते हैं, परन्तु ऐसी आवाज़ों के साथ और ऐसे रूपों में जोकि उनकी जिह्वाओं के लिए उपयुक्त हैं, जैसा कि अरबी लोग विदेशी नामों को अरबी बनाने में करते हैं। ये नाम उनके मुँह में कुरूप होजाते हैं—उदाहरणार्थ, बूशङ्ग को वे अपनी पुस्तकों में फ़ूसञ्ज, और सकिलकन्द को वे अपनी राजस्व-पुस्तकों में फ़ार्फ़ज़ा (शब्दशः उद्धृत) कहते हैं। परन्तु इससे भी अधिक कुतूहल-जनक और विचित्र बात यह है कि अनेक बार वही भाषा उसको बोलने वाले उन्हीं लोगों के मुँह में बदल जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि विलक्षण और अपरूप शब्दाकार उत्पन्न हो जाते हैं, जोकि सिवा उस व्यक्ति के जोकि व्याकरण के किसी भी नियम का पालन नहीं करता और किसी की समझ में नहीं आते। और ऐसे परिवर्तन, बिना किसी कठिन कारण या प्रयोजन के,

कुछ ही वर्षों में पैदा कर दिये जाते हैं। निस्सन्देह, हिन्दू यह सारा काम एक विशेष कामना की प्रेरणा से करते हैं। वे चाहते हैं कि हमारे पास उतने नाम हों जितने कि सम्भवतः हो सकते हैं, और वे उन पर अपनी व्युत्पत्ति के नियमों और कलाओं का उपयोग करना चाहते हैं। वे ऐसे साधनों-द्वारा प्राप्त की हुई अपनी भाषा की अति विपुलता पर अभिमान करते हैं।

देशों के नीचे दिये नाम, जो कि हमने वायु-पुराण से लिये हैं, चार दिशाओं के अनुसार क्रम में रक्खे गये हैं, परन्तु संहिता से लिये हुए नामों की व्यवस्था आठ दिशाओं के अनुसार की गई है। ये सब नाम उस प्रकार के हैं जिसका कि हमने यहाँ वर्णन किया है (अर्थात् वे आजकल के प्रचलित नाम नहीं)। हम उनको इन तालिकाओं में दिखलाते हैं :—

वायु-पुराण के अनुसार मध्य राज्य के जुदा जुदा देश। पृष्ठ १५०

कुरु, पाञ्चाल, साल्व, जाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार (!), बोध, पथेश्वर, वत्स, किसद्य, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल, अर्थयाषव (?), पुलिङ्ग (!), मषक (!), वृक।

पूर्व की जातियाँ :—

अन्ध्र, वाक, मुद्रकरक (?), प्रात्रगिर (?), वहिर्गिर, प्रथङ्ग (?), वङ्गेय, मालव (!), मालवर्तिक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, आविक, (?), ताम्रलिप्तिक, माल, मगध, गोविन्द (गोनन्द ?)।

दक्षिण की जातियाँ :—

पाण्ड्य, केरल, चौल्य, कुल्य, सेतुक, मूषिक, रुमन (?), वनवासिक, महाराष्ट्र, माहिष, कलिङ्ग, अभीर, ईषीक, आटव्य, पृष्ठ १५१ शवर (?), पुलिन्द्र, विन्ध्यमूलि, वैदर्भ, डण्डक, मूलिक (!), अस्सक, नैतिक (!)। भोगवर्धन, कुन्तल अन्ध्र, उद्भिर, नलक,

अलिक, दाक्षिणात्य, वैदेश, शूर्पाकारक, कोलवन, दुर्ग, तिल्लीत (?), पुलेय, क्राल (!), रूपक, तामस, तरूपन (?), करस्कर, नासिक्य, उत्तरनर्मद, भानुकच्छ्र (?) महेय, सारस्वत (?) कच्छाय, सुराष्ट्र, अनर्त्त, हुद्बुद (?)।

पश्चिम की जातियाँ :—

मलद (?), करुष, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, बशार्ण (?), भोज, किष्किन्द, कोसल, तरैपुर, वैदिक, थरपुर (?), तुम्बुर, षत्तुमान (?) पध, कर्णप्रावरण (!), हून, दर्व, हूहक (!), त्रिगर्त्त, मालव, पृष्ठ १५२ किरात, तामर।

उत्तर की जातियाँ :—

वाह्लीक (!), वाढ, वान (?), आभीर, कलतोयक, अपरान्त (?), पह्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, अर्थात् मुलतान और जहरावार, मध्र (?), शक, द्रिहाल (?), लित्त (कुलिन्द), मल्ल (?), कोद्दर (?), आत्रेय, भरद्व, जाङ्गल, दसेरुक (!), लम्पाक, तालकून (?), सूलिक, जागर।

कूर्म्म-चक्र के देशों के नाम, वराहमिहिर की संहिता के अनुसार।

१. राज्य के मध्यवर्ती देशों के नाम :—

भद्र, अरि, मेद, माण्डव्य, साल्वनी, पोज्जिहान, मरु, वत्स, घोष, यमुना की उपत्यका, सारस्वत, मत्स्य, माथुर, कोप, ज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, गौरग्रीव, बज़ान के समीप उद्देहिक, पाण्डु, गुड = थानेशर, अश्वत्थ, पञ्चाल, साकेत, कङ्क, कुरु = तानेशर, पृष्ठ १५३ कालकोटि, कुकुर, परियात्र, औदुम्बर, कपिष्ठल, गज।

२. पूर्व के देशों के नाम :—

अञ्जन, वृषबध्वज, पद्म-तुल्य (शब्दशः उद्धृत), व्याघ्रमुख, अर्थात् व्याघ्र के मुँह वाले लोग, सुह्म, कर्वट, चन्द्रपुर, शूर्पकर्ण, अर्थात्

छलनी के सदृश कानों वाले लोग, खष, मगध, शिबिर पर्वत, मिथिला, समतट, ओड्र, अश्ववदन, अर्थात् घोड़े के मुँह वाले लोग, दन्तुर, अर्थात् लम्बे दाँतों वाले लोग, प्राग्ज्योतिष, लोहित्य, क्षीर-समुद्र, (अक्षरशः उद्धृत) अर्थात् दूध का समुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि, अर्थात् सूर्य के चढ़ने का पर्वत, भद्र, गौरक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, अर्थात् एक पैर वाले लोग, ताम्रलिप्तिका, कौसलक, वर्धमान।

३. दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) के देशों के नाम :—

कोसल, कलिङ्ग, वङ्ग, उपवङ्ग, जठर, अङ्ग, सौलिक, विदर्भ, वत्स, अंध्र, चोलिक (?), ऊर्ध्वकर्ण, अर्थात् वे लोग जिन के कान ऊपर की ओर को हैं, वृष, नालिकेर, चर्मद्वीप, विन्ध्य पर्वत, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट्य, व्यालग्रीव, अर्थात् वे लोग जिनकी छातियाँ साँप हैं, महाग्रीव, अर्थात् जिन की छातियाँ चौड़ी हैं, किष्किन्ध, बन्दरों का देश, कण्डकस्थल, निषाद, राष्ट्र, दाशार्ण, पुरिक, नग्नपर्ण, शवर।

पृष्ठ १५४

४. दक्षिण के देशों के नाम :—

लङ्का, अर्थात् पृथ्वी का गुम्बज़, कालाजिन, सैरीकीर्ण (?), तालिकट, गिर्नगर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र, मालिन्द्य, भरुकच्छ, कङ्कट, तङ्कण, वनवासि, समुद्र तट पर, शिबिक, फणिकार, समुद्र के समीप कोङ्कन, आभीर, आकर, वेणा नदी, अवन्ति, अर्थात् उज्जैन नगरी, दशपुर, गोनर्द, केरलक, कर्णाट, महाटवि, चित्रकूट, नासिक्य, कोल्ल-गिरि, चोल, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कौवेर्य, ऋष्यमूक, वैडूर्य, शङ्ख, मुक्त, अत्रि, वारिचर, जर्मपट्टन, द्वीप, गणराज्य, कृष्ण वैडूर्य, शिबिक, सूर्याद्रि, कुशुमनग, तुम्बवन, कार्मेणेयक, याम्योदधि, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपट्टन, दीवार्श (!), सिंहल, ऋषभ, बलदेव

पृष्ठ १५५

पट्टन, डण्डकावण, तिमिङ्गिलाशन (?), भद्र, कच्छ, कुञ्जरदरी, ताम्रपर्ण।

५. दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत) के देशों के नाम :—

काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, अर्थात् मुलतान और जहरावार, वडवा-मुख, आरवाम्बष्ठ, कपिल, पारशव, अर्थात् फ़ारस के लोग, शूद्र, बर्बर, किरात, खण्ड, क्रव्य, आभीर, चञ्चूक, हेमगिरि, सिन्धु, कालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर, द्रमिड, महार्णव, नारीमुख, अर्थात् स्त्रियों के मुँह वाले लोग, अर्थात् तुर्क, आनर्त, फेणगिरि, यवन, अर्थात् यूनानी, मारक, कर्णप्रावरण।

६. पश्चिम के देशों के नाम :—

मणिमान्, मेघवान्, वनौघ, अस्तगिरि, अर्थात् सूर्य के छिपने का देश, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, अर्थात् पाँच नदियों का संगम, मठर, पारत, तारकुति (?), जृङ्ग, वैश्य, कनक, शक म्लेच्छ, अर्थात् अरबी लोग।

७. उत्तर-पश्चिम (वायव) के देशों के नाम :—

माण्डव्य, तुखार, तालहल, मद्र, अश्मक, कुलूतलहड, स्त्री-राज्य अर्थात् वे स्त्रियाँ जिनमें आधे वर्ष से अधिक कोई पुरुष नहीं रहता, नृसिंहवन अर्थात् सिंह के मुख वाले लोग, खस्थ, अर्थात् पेड़ों से पैदा हुए लोग, जो नाभि-नाल से उनके साथ लटक रहे हैं, वेनुमती (?) अर्थात् तिर्मिध, फल्गुलु, गुरुहा, मरुकुच्च, चर्मरङ्ग, अर्थात् रङ्गीन चमड़ों वाले लोग, एक विलोचन, अर्थात् एक आँख वाले लोग, सूलिक, दीर्घग्रीव, अर्थात् लम्बी छातियों वाले लोग जिसका अर्थ लम्बी गर्दनों वाले लोग है, दीर्घमुख, अर्थात् लम्बे मुखवाले लोग, दीर्घकेश, अर्थात् लम्बे बालों वाले लोग।

पृष्ठ १५६

८. उत्तर के देशों के नाम:—

कैलास, हिमवन्त, बसुमन्त, गिरि, धनुषमन् (!), अर्थात् धनुष वाले लोग, क्रौञ्च, मेरु, कुरव, उत्तरकुरव, चुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, अर्थात् एक प्रकार के यूनानी, भोगप्रस्थ आर्जुनायन, अग्नीत्य, आदर्श, अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, तुरगानन, अर्थात् घोड़े के मुख वाले लोग, श्वमुख, अर्थात् कुत्ते के मुख वाले लोग, केशधर, चपिट-नासिक, अर्थात् चपटी नाक वाले, दासेर, कवाटधान, शरधान, तक्षशिला, अर्थात् मारीकल, पुष्कलावती, अर्थात् पूकल, कैलावत, कण्ठधान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दण्ड, पिङ्गलक, मानहल, हूण, कोहल, शातक, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवति, हेमताल, राजन्य, खजर, यौधेय, दासमेय, श्यामाक, क्षेमधूर्त (?) ।

९. उत्तर-पूर्व (ऐशान) के देशों के नाम:—

मेरु, कनष्ठ राज्य, पशुपाल, कीर, कश्मीर, अभि, शारद, ताङ्गण, कुलूत, सैरिन्ध, राष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्व, डामर, वन राज्य, किरात, चीन, कौणिन्द, भल्ल, पलोल, जटासुर, कुनठ, खष, घोष, कुचिक एकचरण, अर्थात् एक पैर वाले लोग, अनुविश्व, सुवर्णभूमि, अर्थात् सोने की भूमि, अर्वसुधन (अक्षरशः उद्धृत) नन्दविष्ठ, पौरव, चिरनि-वासन, त्रिनेत्र, अर्थात् तीन आँखों वाले लोग, पुञ्जाद्रि, गन्धर्व ।

पृष्ठ १५७

हिन्दू-ज्योतिषी वास-योग्य जगत् की द्राघिमा का निश्चय लङ्का से करते हैं जो कि इसके मध्य में विषुव-रेखा पर स्थित है, और यम-कोटि इसके पूर्व में, रोमक इसके पश्चिम में, और सिद्ध पुर विषुव-रेखा के उस भाग पर स्थित है जोकि लङ्का के अत्यन्त सम्मुख है । तारों के चढ़ने और छिपने के विषय में उनके मन्तव्यों से प्रकट होता है कि यम-कोटि और रूम का एक-दूसरे से आधे चक्र का अन्तर है । ऐसा जान पड़ता है कि वे पश्चिम (अर्थात्

रोमक, यमकोटि, और सिद्ध पुर ।

उत्तर अफ़रीका) के देशों को रूम या रोमन-राज्य के ठहराते हैं, क्योंकि रूम या बाईज़ण्टाईन यूनानी उसी समुद्र (भूमध्य-सागर) के विपरीत तटों पर रहते हैं; क्योंकि रोमन-राज्य का उत्तरी अक्ष बहुत ज़ियादा है और यह उत्तर में ऊँचा घुस गया है। इसका कोई भी भाग दक्षिण की ओर दूर तक नहीं फैलता, और, निस्सन्देह, यह कहीं भी विषुव-रेखा तक नहीं पहुँचता, जैसा कि हिन्दू रोमक के विषय में कहते हैं।

हम यहाँ लङ्का के विषय में और अधिक न कहेंगे (क्योंकि हम इसका वर्णन एक अलग परिच्छेद में करने वाले हैं)। याकूब और अलफ़ज़ारी के अनुसार, यम-कोटि वह देश है जहाँ समुद्र में तार नगर है। मैंने भारतीय साहित्य में इस नाम का कुछ भी पता नहीं पाया। क्योंकि कोटि का अर्थ क़िला, और यम मृत्यु का देवता है, इसलिए इस शब्द को देखकर मुझे कङ्गदिज़ याद आता है, जोकि, फ़ारस वालों के कथनानुसार, समुद्र के पीछे, बहुत ही सुदूर पूर्व में कैकाऊस या जम-द्वारा निर्मित हुआ था। कैखुसरौ अफ़रासियाब तुर्क को ढूँढते हुए समुद्र को पार करके कङ्गदिज़ में गया था, और वह अपने संन्यास और देश-निकाले के जीवन में वहाँ गया था। दिज़ का अर्थ फ़ारसी भाषा में भारतीय भाषा के कोटि शब्द की तरह क़िला है। बल्ख़ के अबू मअ्शर ने कङ्गदिज़ को द्राघिमा का ०° या पहला याम्योत्तर-वृत्त मानकर उस पर अपने भूगोल शास्त्र की नींव रक्खी है।

हिन्दुओं ने सिद्धपुर के अस्तित्व की कल्पना कैसे कर ली यह मैं नहीं जानता, क्योंकि हमारी तरह उनका विश्वास है कि बसे हुए आधे चक्र के पीछे ऐसे समुद्रों के सिवा और कुछ नहीं जोकि जहाज़ों के चलने के लिए अयोग्य हैं।

हिन्दू लोग किसी स्थान का अक्ष किस प्रकार मालूम करते हैं

इसका हमें पता नहीं लगा। वास-योग्य जगत् की द्राघिमा आधा चक्र है यह सिद्धान्त उनके ज्योतिषियों में बहुत फैला हुआ है। उनका (पाश्चात्य ज्योतिषियों से) केवल उस बात पर भेद है जो कि इसका आरम्भ है। जहाँ तक हम हिन्दुओं के इस सिद्धान्त को समझे हैं यदि हम उसकी व्याख्या करें तो उनके रेखांश का आरम्भ उज्जैन है, जिसको वे (वासयोग्य जगत् के) एक चतुर्थांश की पूर्वी सीमा समझते हैं, और दूसरे चतुर्थांश की सीमा, जैसा कि हम बाद को दो स्थानों के रेखांशों के भेद पर लिखे हुए परिच्छेद में बयान करेंगे, सभ्य संसार के अन्त से कुछ दूरी पर पश्चिम में है।

उज्जैन का याम्योत्तर वृत्त जो कि पहला याम्योत्तरवृत्त है।

पृष्ठ १५८

इस विषय पर पश्चिमी ज्योतिषियों का सिद्धान्त दुहरा है। कई तो रेखांश का आरम्भ (अटलाण्टिक) सागर के तट को मानते और पहले चतुर्थांश का विस्तार वहाँ से बल्ख़ के उपान्त तक करते हैं। अब, इस कल्पना के अनुसार, ऐसी चीज़ों को मिला दिया गया है जिन का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार शपूर्कान और उज्जैन को एक ही याम्योत्तर वृत्त पर रक्खा गया है। यह सिद्धान्त, जो सचाई के इतना कम अनुरूप है, सर्वथा मूल्य-हीन है। कई और लोग सुखियों के द्वीपों को रेखांश का आरम्भ मानते, और वास-योग्य जगत् के चतुर्थांश का विस्तार वहाँ से जुर्जान और निशापूर के पड़ोस तक करते हैं। ये दोनों कल्पनायें हिन्दुओं की कल्पना से सर्वथा विपरीत हैं। परन्तु इस विषय का निरूपण अधिक यथार्थ रीति से किसी अगले परिच्छेद में किया जायगा।

दूसरे पहले याम्योत्तर वृत्त जिनका पश्चिमी ज्योतिषियों ने उपयोग किया है।

यदि मैं, ईश्वर-कृपा से, काफ़ी देर तक जीता रहा तो मैं निशापूर के रेखांश पर एक विशेष प्रबन्ध लिखूँगा, जहाँ इस विषय का पूर्ण रूप से अन्वेषण किया जायगा।

तीसवाँ परिच्छेद ।

लङ्का अर्थात् पृथ्वी के गुम्बज़ (शिखर-तोरण) पर ।

पृथ्वी के गुम्बज की परिभाषा के अर्थ ।

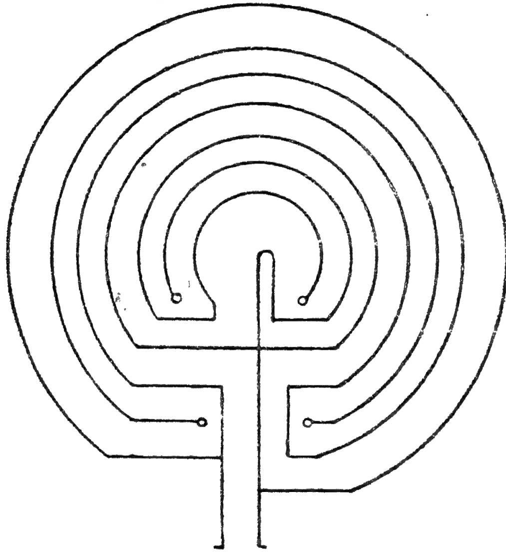
विषुव-रेखा पर पूर्व से पश्चिम तक वास-योग्य जगत् के, अन्वायतन विस्तार के मध्य को (मुसलमानों के) ज्योतिषी पृथ्वी का गुम्बज़ कहते हैं, और वह बड़ा चक्र जो ध्रुव और विषुव-रेखा के इस बिन्दु में से गुज़रता है गुम्बज़ का याम्योत्तरवृत्त कहलाता है। परन्तु हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि पृथ्वी का स्वाभाविक आकार चाहे कैसा ही क्यों न हो, इस पर कोई भी ऐसा स्थान नहीं जो अकेला, दूसरे स्थानों से अलग, गुम्बज़ नाम का अधिकारी हो; यह एक ऐसे बिन्दु को दिखलाने के लिए केवल एक उपमात्मक परिभाषा है, जिससे पूर्व और पश्चिम में वास-योग्य जगत् के दोनों सिरे तुल्य अन्तर पर हैं; यह बिन्दु गुम्बज़ या ख़ेमे की चोटी के सदृश है, क्योंकि इस चोटी से नीचे लटकने वाली सभी चीज़ें (ख़ेमे के रस्से या दीवालें) एक ही लम्बाई रखती हैं, और वहाँ से उनके निचले सिरों के एक जैसे ही अन्तर होते हैं। परन्तु हिन्दू इस बिन्दु को कभी ऐसी परिभाषा से नहीं पुकारते जिसका अर्थ हमारी भाषा में गुम्बज निकले; वे केवल यह कहते हैं कि लङ्का वास-योग्य जगत् के दो सिरों के बीच है और निरक्ष है। वहाँ रावण राक्षस ने, दशरथ के पुत्र राम की स्त्री को उठाकर ले जाने के उपरान्त, अपनी क़िला-बंदी की थी।

राम की कहानी।

उसका पेच घुमाववाला दुर्ग, شنكتلر (?) कहलाता है, और हमारे

(मुसलिम) देशों में यह यावन-कोटि कहलाता है, जिसको प्रायः रोम बताया जाता है ।

इस पेच-घुमाववाले दुर्ग की कल्पना इस प्रकार है :—



दुर्ग में जानेवाले मार्ग का द्वार ।

राम ने १०० योजन लम्बे बाँध पर से सागर को पार करके रावण पर आक्रमण किया । यह बाँध उसने एक पर्वत से सेतुबंध अर्थात् समुद्र का पुल नामक स्थान से, लङ्का के पूर्व में बनाया था । उसने उसके साथ लड़ाई की और उसको मार डाला, और राम के भाई ने रावण के भाई को मार डाला, जैसा कि राम और रामायण की कथा में वर्णित है । तब उसने तीर मारकर बाँध को दस भिन्न भिन्न स्थानों से तोड़ डाला ।

पृष्ठ १५६

हिन्दुओं के मतानुसार, लङ्का राक्षसों का गढ़ है। यह पृथ्वी के ऊपर ३० योजन अर्थात् ८० फ़र्सख़ है। इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक १०० योजन है; इसकी चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक उतनी ही है जितनी कि ऊँचाई (अर्थात् तीस)।

लङ्का द्वीप पर।

लङ्का और वडवामुख द्वीप के कारण ही हिन्दू दक्षिण को अनिष्ट का अपशकुन समझते हैं। पुण्यशीलता के किसी भी काम में वे दक्षिण की ओर नहीं चलते। दक्षिण केवल दुष्ट कर्मों के सम्बन्ध में ही आता है।

जिस रेखा पर ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं का आधार (रेखांश के ०° के तौर पर) है, जो लङ्का से मेरु तक एक सीधी रेखा में गुज़रती है, वह इन स्थानों में लाँघती है:—

पहला याम्योत्तर वृत्त।

(१) मालव (मालवा) में उज्जैन (उज्जयिनी) नगर में से,

(२) मुलतान प्रान्त में क़िला रोहितक के पास से जो कि अब उजड़ है,

(३) उनके देश के मध्य में कुरुक्षेत्र अर्थात् तानेशर (स्थानेश्वर) के मैदान में से,

(४) यमुना नदी में से, जिस पर मथुरा नगरी स्थित है,

(५) हिमवन्त के पहाड़ों में से जो सदा बर्फ़ से ढँके रहते हैं, और जहाँ से उनकी नदियाँ निकलती हैं। उनके पीछे मेरु पर्वत है।

उज्जैन नगर, जिसको स्थानों के रेखांशों की तालिकाओं में उज्जैन लिखा गया है, और समुद्र पर स्थित बताया गया है, वास्तव में समुद्र से १०० योजन के अन्तर पर है। किसी अविवेकी मुसलमान ज्योतिषी ने यह सम्मति प्रकट की है कि उज्जैन अलजूज़जान में अलशबूर्क़ान के याम्योत्तरवृत्त पर स्थित है, परन्तु यह बात नहीं, क्योंकि यह अलशबूर्क़ान की अपेक्षा पूर्व की ओर

उज्जैन की स्थिति।

विषुव-रेखा के अनेक अंश अधिक है। उज्जैन के रेखांश के विषय में, विशेषतः ऐसे (मुसलिम) ज्योतिषियों में जो पूर्व और पश्चिम दोनों में, द्राघिमा के प्रथम अंश-विषयक भिन्न भिन्न सम्मतियों को एक दूसरे के साथ मिला देते हैं, और उनको यथार्थ रीति से पहचानने में असमर्थ हैं, कुछ गड़बड़ है।

लङ्का और लङ्कबालूस के विषय में ग्रन्थकार की अनुमिति।

कोई भी माझी ऐसा नहीं जो समुद्र में उस स्थान के गिर्द फिरा हो जो लङ्का का ठहराया जाता है, जिसने उस दिशा में सफ़र किया हो, और फिर जिसने आकर वहाँ का ऐसा वर्णन सुनाया हो जो कि हिन्दुओं के ऐतिह्यों के अनुसार ठीक हो या उनसे मिलता हो। वास्तव में कोई भी ऐतिह्य ऐसा नहीं जिससे कोई चीज़ हमें (उससे जितनी वह हिन्दुओं के संवादों के अनुसार है) अधिक सम्भव दिखाई देने लगे। परन्तु लङ्का नाम से मेरे मन में एक सर्वथा विपरीत विचार पैदा होता है, अर्थात् लौङ्ग को लवङ्ग इसलिए कहते हैं कि यह लङ्ग नाम के एक देश से आता है। सारे माझियों के एकरूप वृत्तान्त के अनुसार, जो जहाज़ इस देश को भेजे जाते हैं वे अपनी खेप, अर्थात् प्राचीन पश्चिमी दीनार और विविध प्रकार का माल, भारत के डोरिये के कपड़े, नमक, और व्यापार की अन्य सामान्य वस्तुयें नौकाओं में रखते हैं। ये माल चमड़े की चादरों पर रखकर समुद्र-तट पर रख दिये जाते हैं। प्रत्येक चादर पर उसके स्वामी के नाम का निशान रहता है। तब सौदागर अपने जहाज़ों को वापस आजाते हैं। दूसरे दिन जाकर वे मूल्य के रूप में चादरों को लौङ्गों से, थोड़ा या बहुत, जैसा कि वहाँ के अधिवासियों के पास हो, ढँका हुआ पाते हैं।

जिन लोगों के साथ यह व्यापार किया जाता है उनको कई लोग तो राक्षस कहते हैं और कई वन्य मनुष्य।

हिन्दू जो उन (लङ्का के) प्रान्तों के पड़ोसी हैं यह विश्वास रखते हैं कि शीतला एक वायु है जो आत्माओं को उठाकर ले जाने के लिए लङ्का द्वीप से महाद्वीप की ओर बहती है। एक वृत्तान्त के अनुसार, कई मनुष्य लोगों को इस वायु के चलने की चेतावनी पहले ही दे देते हैं, और वे ठीक तौर पर बता सकते हैं कि यह हवा देश के भिन्न भिन्न भागों में किस किस समय पहुँचेगी। शीतला के निकल आने के बाद वे विशेष चिह्नों से पहचान लेते हैं कि यह तीक्ष्ण है कि नहीं। उग्र शीतला को दूर करने के लिए वे एक प्रकार की चिकित्सा करते हैं जिसमें वे शरीर का एक अङ्ग नष्ट कर देते हैं, परन्तु मार नहीं डालते। ओषधि के रूप में वे लौङ्गों को सुवर्ण-रेणु के साथ रोगी को पिलाते हैं ; इसके अतिरिक्त, पुरुष लौङ्गों को जो कि खजूर के मग़ज़ के सदृश होते हैं, अपनी गर्दनों से बाँधते हैं। यदि ये पूर्वोपाय किये जायँ तो शायद दस में से नौ मनुष्य इस रोग से बचे रहेंगे।

शीतला का कारण एक विशेष वायु।

पृष्ट १६०

इस सारे से मैं यह समझता हूँ कि जिस लङ्का का उल्लेख हिन्दू करते हैं वह लौङ्गों के देश लङ्ग से अभिन्न है, यद्यपि उनके वर्णन पूरे नहीं उतरते। परन्तु लङ्ग के साथ कोई व्यवहार नहीं रक्खा जाता, क्योंकि लोग कहते हैं कि जब दैवयोग से कोई व्यापारी इस द्वीप में पीछे रह जाय तो फिर उसका कोई चिह्न नहीं मिलता। मेरी इस अनुमिति की पुष्टि इस बात से होती है कि, राम और रामायण की पुस्तक के अनुसार, सिन्ध के प्रसिद्ध देश के पीछे नर-मांसाहारी राक्षस हैं। और दूसरी ओर, यह बात सभी नाविक जानते हैं कि लङ्गबालूस द्वीप के अधिवासियों की क्रूरता और पशुतुल्यता का कारण मनुष्य-मांस-भोजन है।

इकतीसवाँ परिच्छेद।

विविध स्थानों के उस प्रभेद पर जिसे हम रेखांश-भेद कहते हैं।

जो मनुष्य इस विषय में विशुद्धता प्राप्त किया चाहता है उसे दो प्रस्तुत स्थानों के याम्योत्तरवृत्तों के मण्डलों के बीच के अन्तर का निश्चय करने का यत्न करना चाहिए। मुसलिम ज्योतिषी दो याम्योत्तर वृत्तों के बीच के अन्तर के अनुरूप निरक्ष समयों द्वारा गिनते, और दो स्थानों में से एक (पश्चिमी स्थान) से गिनना आरम्भ करते हैं। निरक्ष मिनटों (प्राणों) का जो समाहार वे मालूम करते हैं वह दो द्राघिमाओं के बीच का प्रभेद कहलाता है; क्योंकि वे विषुव-रेखा के ध्रुव (जोकि वास-योग्य जगत् की सीमा माना गया है) में से गुज़रनेवाले बड़े चक्र से किसी स्थान के याम्योत्तरवृत्त के अन्तर को उस स्थान का रेखांश मानते हैं, और इस पहले याम्योत्तरवृत्त के लिए उन्होंने वासयोग्य जगत् की (पूर्वी नहीं) पश्चिमी सीमा चुनी है। इन निरक्ष समयों को, प्रत्येक याम्योत्तरवृत्त के लिए इनकी संख्या चाहे कुछ ही क्यों न हो, चाहे चक्र के ३६० वें भाग, या, दिवा-क्षणपादों के बराबर करने के लिए, इसके ६० वें भाग या फ़ुर्सख़, या योजन के रूप में गिना जाय, बात एक ही है।

रेखांश मालूम करने की हिन्दू-विधि।

हिन्दू इस विषय में ऐसी विधियों का प्रयोग करते हैं जिनका आधार वही नियम नहीं जोकि हमारा है। वे सर्वथा भिन्न भिन्न हैं;

और चाहे वे कैसे ही भिन्न भिन्न हों, पर यह पूर्णरूप से स्पष्ट है कि उनमें से कोई भी यथार्थ लक्ष्य तक नहीं पहुँचता। जिस प्रकार हम (मुसलमान) प्रत्येक स्थान के लिए उसकी द्राघिमा लिखते हैं, उसी तरह हिन्दू उज्जैन के याम्योत्तरवृत्त से उसके अन्तर के योजनों की संख्या लिखते हैं। किसी स्थान की स्थिति जितनी अधिक पश्चिम की ओर होती है उतनी ही योजनों की संख्या अधिक होती है; जितना अधिक यह स्थान पूर्व की ओर होगा उतनी ही यह संख्या कम होती है। इसको वे देशान्तर अर्थात् स्थानों के बीच का भेद कहते हैं। फिर, वे देशान्तर को ग्रह (सूर्य) की औसत दैनिक गति से गुणते हैं, और गुणन-फल को ४८०० पर बाँटते हैं। तब भाग-फल ग्रह की गति के उस परिमाण को दिखलाता है जो प्रस्तुत योजन की संख्या के अनुरूप है, अर्थात् वह जिसे सूर्य के मध्यम स्थान में जोड़ना चाहिए, जैसा कि, यदि तुम प्रस्तुत स्थान की द्राघिमा मालूम करनी चाहते हो, तो चन्द्रमा या उज्जैन की आधी रात के लिए पाया गया है।

पृथ्वी की परिधि पर।

जिस संख्या को वे विभाजक (४८००) बनाते हैं, वह पृथ्वी की परिधि के योजनों की संख्या है, क्योंकि स्थानों के याम्योत्तरवृत्तों के गोलों के बीच के भेद का सारी पृथ्वी की परिधि के साथ वही नाता है जैसा कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक ग्रह (सूर्य) की मध्यम गति का उसके पृथ्वी के गिर्द सारे दैनिक परिभ्रमण के साथ है।

यदि पृथ्वी की परिधि ४८०० योजन है तो व्यास लगभग १५२७ होता है; परन्तु पुलिश इसको १६०० योजन, और ब्रह्मगुप्त १५८१ योजन गिनता है, एक योजन आठ मील के बराबर होता है। अलअर्कन्द नामक ज्योतिष के गुटके में यही मूल्य १०५० दिया

गया है। परन्तु, इब्न तारिक़ के अनुसार, यह संख्या त्रिज्या है, और व्यास २१०० योजन है। प्रत्येक योजन चार मील के बराबर गिना गया है, और परिधि ६५९६ $\frac{?}{?}$ योजन बताई गई है।

ब्रह्मगुप्त ने अपने खण्ड-खाद्यक नामक प्रबन्ध में पृथ्वी की परिधि के योजनों की संख्या ४८०० मानी है, परन्तु संशोधित संस्करण में वह, इसके स्थान में, पुलिश से सम्मत, संशोधित परिधि का प्रयोग करता है। जिस संशोधन का वह प्रस्ताव करता है वह यह है कि वह पृथ्वी की परिधि के योजनों के स्थान के अक्ष के पूरक की ज्याओं से गुणता है, और गुणन-फल को पूर्ण ज्या पर बाँटता है; तब भाग-फल पृथ्वी की संशोधित परिधि, या प्रस्तुत स्थान के समान्तर चक्र के योजनों की संख्या है। कई बार यह संख्या याम्योत्तरवृत्त का कालर कहलाती है। इससे लोग प्रायः भूलकर ४८०० योजनों को उज्जैन नगर के लिए संशोधित परिधि समझने लगते हैं। यदि हम (ब्रह्मगुप्त के संशोधन के अनुसार) गिनें तो हम उज्जैन का अक्ष १६$\frac{1}{4}$ अंश पाते हैं, पर वास्तव में यह २४ अंश है।

पृष्ठ १६१
खण्ड-खाद्यक और करणतिलक के अवतरण।

करणतिलक नामक पुस्तक का कर्त्ता यह संशोधन इस प्रकार करता है। वह पृथ्वी के व्यास को १२ से गुणता और गुणन-फल को स्थान की विषुवीय छाया पर बाँटता है। शङ्कु क इस छाया से वही सम्बन्ध होता है जो स्थान के समान्तर चक्र की ज्या का, पूर्ण ज्या से नहीं, बल्कि स्थान के अक्ष की त्रिज्या के साथ है। यह प्रत्यक्ष है कि इस विधि का कर्त्ता यह समझता है कि हमारे सामने यहाँ उसी प्रकार का समीकरण है जिसको हिन्दू व्यस्त त्रैराशिक अर्थात उलटी गतिवाले स्थान कहते हैं। इसका एक उदाहरण यह है।

व्यस्तत्रैराशिक समीकरण।

यदि एक १५ वर्ष की वेश्या का मूल्य १० दीनार हो तो ४० वर्ष की आयु में उसका क्या मूल्य होगा ?

विधि यह है कि तुम पहली संख्या को दूसरी से गुणते हो (१५ × १० = १५०), और गुणन-फल को तीसरी संख्या पर बाँटते हो (१५० ÷ ४० = ३$\frac{३}{४}$)। तब भागफल या चौथी संख्या, अर्थात् ३$\frac{३}{४}$ दीनार, वृद्धावस्था में उसका मूल्य होगा ।

अब करणतिलक का कर्त्ता, यह मालूम करलेने के बाद कि अक्ष के साथ सीधी छाया बढ़ती है पर चक्र का व्यास घटता है, पूर्वोक्त गणना के सादृश्य के अनुसार, यह समझता था कि इस बढ़ने और घटने के बीच एक निश्चित अनुपात है । इसीलिए वह यह मानता है कि चक्र का व्यास घटता है, अर्थात् जिस परिमाण से सीधी छाया बढ़ती है उसीसे वह पृथ्वी के व्यास की अपेक्षा क्रमशः छोटा होता जाता है । इससे वह संशोधित व्यास से संशोधित परिधि को आँकता है।

इस प्रकार दो स्थानों के बीच आयत-भेद मालूम करने के बाद, वह एक चान्द्रग्रहण को देखता है, और दो स्थानों में इसके दिखाई देने के समय के बीच का भेद दिवा-क्षणपादों में स्थिर करता है। पुलिश इन दिवा-क्षणपादों को पृथ्वी की परिधि से गुणता है, और गुणन-फल को ६० पर, अर्थात् दैनिक परिभ्रमण के मिनटों (या ६० वें भागों) पर बाँटता है । तब भागफल दो स्थानों के बीच के अन्तर के योजनों की संख्या है।

यह गिनती ठीक है । इसका फल उस बड़े चक्र को बताता है जिस पर कि लङ्का स्थित है।

ब्रह्मगुप्त के गिनने की रीति भी, सिवा इस बात के कि वह ४८०० से गुणता है, यही है । अन्य विस्तारों का पहले उल्लेख हो चुका है ।

हिन्दू-ज्योतिषियों की विधि चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध, इस बात को मनुष्य साफ़ पहचानता है कि हिन्दू ज्योतिषियों का लक्ष्य क्या है। परन्तु दो भिन्न भिन्न स्थानों के अक्षों से उनकी देशान्तर की गणना के विषय में हम यही बात नहीं कह सकते। अलफ़ज़ारी ने ज्योतिष पर अपने प्रबन्ध में इस गणना का वृत्तान्त इस प्रकार दिया है:—

अलफ़ज़ारी के अनुसार देशान्तर की गणना ।

"दो स्थानों के अक्षों की त्रिज्याओं के वर्गों को जोड़ो और उस जोड़ का वर्गमूल लो। यह मूल विभाग (Portio) है।

"फिर, इन दो त्रिज्याओं के भेद को वर्ग करो और इसमें विभाग को मिलाओ। समाहार को ८ से गुणो और गुणन-फल को ३७७ पर बाँटो। तब, भाग-फल, स्थूल गणना के अनुसार, दो स्थानों के बीच का अन्तर है।

"फिर, दो अक्षों के बीच के भेद को पृथ्वी की परिधि के योजनों से गुणो, और गुणन-फल को ३६० पर बाँटो।"

यह बात स्पष्ट है कि पिछली गणना दो अक्षों के भेद को अंशों (डिग्रियों) और मिनटों के माप से योजनों के नाप में बदल देने के सिवा और कुछ नहीं। तब वह आगे कहता है:—

"अब भाग-फल का वर्ग मोटे तौर पर गिने हुए अन्तर के वर्ग में से निकाला जाता है, और अवशेष का तुम वर्गमूल ले लेते हो, जो सीधे योजनों को दिखाता है।"

यह प्रत्यक्ष है कि पिछली संख्या अक्ष के चक्र पर दो स्थानों के याम्योत्तरवृत्तों के मण्डलों के बीच के अन्तर को दिखलाती है, पर मोटे तौर पर गिनी हुई संख्या द्राघिमा में दो स्थानों के बीच का अन्तर है।

पृष्ठ १६२

गणना की यह विधि, एक बात के सिवा, अलफ़ज़ारी के वर्णन के अनुसार ही हिन्दुओं की ज्योतिष की पुस्तकों में मिलती है । जिस विभाग (portio) का यहाँ उल्लेख हुआ है वह दो अक्षों की त्रिज्याओं के वर्गों के भेद का मूल है, दो अक्षों की ज्याओं के वर्गों का जोड़ नहीं ।

ग्रन्थकर्त्ता इस विधि की समालोचना करता है ।

परन्तु यह विधि चाहे कुछ ही हो यह ठीक निशाने तक नहीं पहुँचती । हमने इस विषय पर विशेषरूप से लिखी हुई अपनी अनेक पुस्तकों में इसका सविस्तर वर्णन किया है, और वहाँ हमने दिखलाया है कि दो स्थानों के बीच के अन्तर और उनके बीच के द्राघिमा के भेद को केवल उनके अक्षों के द्वारा ही मालूम कर लेना असम्भव है, और केवल उसी अवस्था में ही जब इन दो चीज़ों में से एक चीज़ (दो स्थानों के बीच का अन्तर या उनकी द्राघिमाओं के बीच का भेद) मालूम हो, तब ही, इससे और दो अक्षों के द्वारा, तीसरा मूल्य मालूम हो सकता है ।

इसी नियम पर आश्रित निम्नलिखित गणना पाई गई है, पर इस बात का कोई चिह्न नहीं मिलता कि इसका आविष्कार किसने किया था :—

देशान्तर की एक और गणना ।

" दो स्थानों के अन्तर के योजनों को ९ से गुणो, और गुणन-फल को + + (क्रमि-भुक्त) पर बाँटो; इसके वर्ग और दो अक्षों के भेद के वर्ग के भेद का मूल । इस संख्या को ६ पर बाँटो । तब इसका भाग-फल दो द्राघिमाओं के भेद के दिवा-च्रणपादों की संख्या है । "

यह साफ़ है कि इस गणना का कर्त्ता पहले (दो स्थानों के बीच का) अन्तर लेता है, तब वह उसको चक्र की परिधि के नाप में लाता है । परन्तु यदि हम इस गणना को उलटायें और बड़े चक्र के

भागों (या अंशों) को उसकी विधि के अनुसार योजनों में बदलें तो हमें ३२०० की संख्या प्राप्त होती है, अर्थात् जो संख्या हमने अल-अर्कन्द के प्रमाण से दी है उससे १०० योजन कम। इसका दुगना, ६४००, इब्न तारिक़ की बताई संख्या (अर्थात् ६५८६ $\frac{१}{९८}$) के पास पास पहुँचता है, और इससे केवल २०० योजन कम है।

अब हम कुछ स्थानों के वे अक्ष देंगे जिनको कि हम ठीक समझते हैं।

उजैन के याम्योत्तर-वृत्त पर कुसुमपुर के आर्य्यभट की आलोचना।

हिन्दुओं के सभी ग्रन्थ इस बात पर सहमत हैं कि जो रेखा लङ्का को मेरु से मिलाती है वह वास-स्थान की लम्बाई के रुख़ दो आधों में बाँटती है, और वह उजैन नगर, क़िला रोहितक, यमुना नदी, तानेशर के मैदान, और ठण्डे पर्वतों में से गुज़रती है। स्थानों की द्राघिमायें इस रेखा से उनके अन्तर के द्वारा मापी जाती हैं। इस विषय पर मुझे कुसुमपुर के आर्यभट की पुस्तक के नीचे दिये वाक्य के सिवा उनमें और कोई भेद मालूम नहीं:—

"लोग कहते हैं कि कुरुक्षेत्र अर्थात् तानेशर का मैदान उस रेखा पर स्थित है जो लङ्का को मेरु से मिलाती और उजैन में से गुज़रती है। वे यह बात पुलिश के प्रमाण से कहते हैं। परन्तु वह इतना बुद्धिमान् न था कि इस विषय को अधिक उत्तम रीति से जानता। ग्रहणों के समय उस बयान को सत्यतर प्रमाणित करते हैं, और पृथुस्वामिन् कुरुक्षेत्र और उजैन की द्राघिमाओं के बीच के भेद को १२० मानता है।"

ये आर्यभट के शब्द हैं।

याकूब इब्न तारिक़ अपनी "मण्डलों की रचना" नामक पुस्तक में

उजैन के अक्ष पर। कहता है कि उजैन का अक्ष $४\frac{३}{६}$ अंश है; परन्तु वह यह नहीं बताता कि यह उत्तर में स्थित है या दक्षिण में। इसके अतिरिक्त वह, अल-अर्कन्द नामक पुस्तक के प्रमाण से, इसे $४\frac{२}{६}$ अंश बयान करता है। परन्तु हमने उसी पुस्तक में उजैन और अलमन्सूरा (जिसको ग्रन्थकर्त्ता ब्रह्मणवाट अर्थात् बम्हन्वा कहता है) के बीच के अन्तर से सम्बन्ध रखनेवाली एक गणना में उजैन का एक सर्वथा भिन्न अक्ष पाया है, अर्थात् उजैन का अक्ष २२° २९′; और अलमन्सूरा का अक्ष २४° १′ देखा है।

उसी पुस्तक के अनुसार लोहानिय्ये अर्थात् लोहरानी में सीधी छाया $५\frac{३}{६}$ कला है।

"परन्तु दूसरी ओर, हिन्दुओं के सभी ग्रन्थ इस बात में सहमत हैं कि उजैन का अक्ष २४ अंश है और सूर्य इसके ऊपर कर्क-संक्रान्ति के समय पराकाष्ठा पर पहुँचता है।

टीकाकार बलभद्र कनौज का अक्ष २६° ३५′, और तानेशर का ३०° १२′ देता है। पृष्ठ १६३

कतलग़तगीन के विद्वान् पुत्र अबू अहमद ने कर्ली (?) नगरी का अक्ष गिना था। उसने इसको २८° ०′, और तानेशर के अक्ष को २७′ पाया था। उसने मालूम किया था कि इन दोनों का एक दूसरे से तीन दिन के कूच का अन्तर है। इस भेद का कारण क्या है यह मैं नहीं जानता।

करणसार नामक पुस्तक के अनुसार, कश्मीर का अक्ष ३४° ९′ है, और वहाँ सीधी छाया $८\frac{७}{६०}$′ कला है।

मैंने खुद लौहूर किले का अक्ष ३४° १०′ मालूम किया है। लौहूर से कश्मीर की राजधानी का अन्तर ५६ मील है। यह रास्ता

आधा करख़्त और आधा मैदान है। जो और अक्ष मैं ख़ुद मालूम कर सका हूँ वे मैं यहाँ कहता हूँ:—

ग़ज़न	...	...	...	३३°	३५′
काबुल	...	...	...	३३°	४७′
राजा की गार्द-चौकी, कन्दी			...	३३°	५५′
दुनपूर	...	...	...	३४°	२०′
लमग़ान	...	...	...	३४°	४३′
पुरशावर	...	...	...	३४°	४४′
वैहन्द	...	...	...	३४°	३०′
जैलम	...	...	...	३३°	२०′
नन्दन का क़िला	...	...	...	३२°	०′

शेषोक्त स्थान और मुलतान के बीच कोई २०० मील का अन्तर है।

सालकोट	...	...	...	३२°	५८′
मन्दककोर	...	...	...	३१°	५०′
मुलतान	...	...	...	२९°	४०′

यदि स्थानों के अक्ष मालूम हों, और उनके बीच के अन्तर माप लिये जायँ, तो जिन पुस्तकों का हमने पाठकों के सामने उल्लेख किया है उनमें बतलाई विधियों के अनुसार उन स्थानों की द्राघिमाओं का अन्तर भी मालूम हो सकता है।

हम स्वयं भी उनके देश में उन स्थानों से आगे नहीं गये जिनका हमने उल्लेख किया है, और न हम उनके साहित्य से ही (भारत के स्थानों के) अधिक अक्ष और रेखांश जान सके हैं। केवल जगदीश ही हमें अपने उद्देशों तक पहुँचने में सहायता देते हैं!

बत्तीसवाँ परिच्छेद।

सामान्यतः काल और संस्थिति (मुद्दत) सम्बन्धी कल्पना पर, और संसार की उत्पत्ति तथा विनाश पर।

समय की कल्पना पर अलराज़ी और अन्य तत्त्ववेत्ताओं का मत।

मुहम्मद इब्न ज़करिय्या अलराज़ी के कथनानुसार यूनानियों के अति प्राचीन तत्त्ववेत्ता इन पाँच पदार्थों को नित्य समझते थे, स्रष्टा, विश्वात्मा, आदि अव्यक्त, केवल आकाश, और केवल काल। इन्हीं पदार्थों पर अलराज़ी ने उस कल्पना की नींव रक्खी थी जो इस सारे तत्त्व-ज्ञान का आधार है। फिर काल और संस्थिति में वह यह भेद करता है कि काल के लिए संख्या का प्रयोग होता है, संस्थिति के लिए नहीं; क्योंकि जिस चीज़ की संख्या है वह सान्त है, पर संस्थिति अनन्त है। इसी प्रकार, तत्त्ववेत्ताओं ने काल को आदि और अन्तवाली संस्थिति, और नित्यत्व को आदि और अन्त से रहित संस्थिति बताया है।

अलराज़ी के अनुसार, वे पाँच पदार्थ साक्षात् विद्यमान जगत् के आवश्यक गृहीतपद हैं। क्योंकि जगत् में जिसकी इन्द्रियों-द्वारा उपलब्धि होती है वह अव्यक्त है जिसने कि संयोग के द्वारा आकार धारण कर लिया है। इसके अलावा, अव्यक्त कुछ आकाश (स्थान) को घेरता है, इसलिए हमें आकाश का अस्तित्व अवश्य मानना पड़ता है। इन्द्रिय-जगत् में जो परिवर्तन दिखाई देते हैं वे हमें काल के अस्तित्व को मानने पर बाध्य करते हैं, क्योंकि उनमें से कुछ तो जल्दी होते हैं

और कुछ देर से, और पहले और पीछे, और जल्दी और देर से, और समकालीन की उपलब्धि केवल काल की कल्पना के द्वारा ही हो सकती है, जो विद्यमान जगत् का एक आवश्यक गृहीतपद है ।

फिर, विद्यमान जगत् में सजीव प्राणी हैं । अत: हमारे लिए आत्मा का अस्तित्व मानना आवश्यक है । इन सजीव प्राणियों में बुद्धिमान् लोग भी हैं जो कलाओं को उच्चतम उत्कर्ष तक पहुँचा सकते हैं ; इससे हमें एक ऐसे स्रष्टा का अस्तित्व मानना पड़ता है जो विज्ञ और चतुर है, जो सम्भवत: सर्वोत्तम रीति से प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था करता है, और लोगों के अन्दर मोक्ष के उद्देश से ज्ञान-शक्ति फूँकता है ।

इसके विपरीत, अनेक तार्किक नित्यत्व और काल को एक ही चीज़ समझते हैं, और केवल गति को ही, जो काल को मापने का काम देती है, सान्त समझते हैं ।

एक दूसरा तार्किक नित्यत्व को मण्डलाकार गति बयान करता है । निस्सन्देह इस गति का उस भूत के साथ अटूट सम्बन्ध है जो इसके द्वारा चलता है, और जिसका स्वरूप अत्यन्त श्रेष्ठ है, क्योंकि यह नित्य बना रहता है । इसलिए वह अपने वितर्कण में चलनेवाले भूत को छोड़कर इसके चलानेवाले के पास, और चलानेवाले चालक से आदि चालक के पास, जो निश्चल है, आता है ।

इस प्रकार की खोज बड़ी ही सूक्ष्म और दुर्बोध है । यदि यह न हो, तो लोगों का आपस में इतना मत-भेद कभी न हो कि कुछ लोग तो यह कहें कि काल बिलकुल कोई चीज़ ही नहीं, और दूसरे यह कहें कि काल एक स्वतन्त्र वस्तु है । अफ्रोडिसियस के सिकन्दर के अनुसार, अरस्तू (अरिस्टाटल) अपनी पुस्तक क़िताबुल समाए तबीई الطبيعي। كتاب السماع में यह वितर्कण देता है :—"प्रत्येक चलती हुई चीज़ किसी

चालक द्वारा चलाई जाती है"; और जालीनूस इसी विषय पर कहता है कि मैं, काल को प्रमाणित करना तो दूर रहा, उसकी कल्पना को भी नहीं समझ सकता।

इस विषय पर हिन्दुओं की कल्पना विचार में निर्बल और बहुत कम विकसित है। वराहमिहिर अपनी संहिता के आरम्भ में, उसका वर्णन करते हुए जो कि सनातन काल से विद्यमान है, कहता है:—प्राचीन पुस्तकों में कहा गया है कि प्राक्तन पदार्थ अंधकार था, जो कि काले रङ्ग से अभिन्न नहीं, प्रत्युत एक सोये हुए व्यक्ति की अवस्था के सदृश एक प्रकार का अभाव है। तब परमेश्वर ने इस जगत् को ब्रह्मा के लिए एक गुम्बज़ के रूप में पैदा किया। उसने इसके दो भाग कर दिये, एक ऊपर का और दूसरा नीचे का, और इसमें सूर्य और चन्द्र की स्थापना की।" कपिल कहता है—"परमेश्वर का अस्तित्व सदा से है, और उसके साथ यह जगत् और इसके सारे पदार्थ और पिण्ड भी अनादि काल से हैं। परन्तु वह जगत् का कारण है, और अपने स्वरूप की सूक्ष्मता के कारण जगत् के स्थूल स्वरूप से उच्च है।" कुम्भक कहता है—"सनातन वस्तु महाभूत अर्थात् पाँच तत्त्वों का मिश्रण है। कई लोग काल को और कई प्रकृति को सनातन पदार्थ बताते हैं, और कई ऐसे भी हैं जो "कर्म" को अधिष्ठाता मानते हैं।"

काल पर हिन्दू दार्शनिकों के मत।

विष्णु-धर्म्म नामक पुस्तक में वज्र मार्कण्डेय से कहता है—"मुझे कालों की व्याख्या समझाइए;" इस पर मार्कण्डेय उत्तर देता है—"संस्थिति आत्मपुरुष है"। अर्थात् एक श्वास और पुरुष है, जिसका अर्थ विश्वपति है। फिर उसने उसको समय के विभागों और उनके अधिष्ठाताओं की व्याख्या सुनाई, जिस प्रकार हमने उचित परिच्छेदों में इन बातों का सविस्तर वर्णन किया है।

हिन्दुओं ने संस्थिति को दो अवधियों में बाँटा है, एक तो गति की अवधि, जो काल के रूप में स्थिर की गई है, और दूसरी निश्चलता की अवधि, जिसका निश्चय केवल काल्पनिक रीति से, जिस चीज़ का निश्चय पहले किया जा चुका है उसकी, अर्थात् गति की अवधि की, उपमिति के अनुसार हो सकता है । हिन्दू स्रष्टा के नित्यत्व को परिमेय नहीं, निर्णेय मानते हैं, क्योंकि वह निरवधि है । परन्तु हम यह कहने से रुक नहीं सकते कि ऐसी चीज़ की कल्पना करना जो निर्णेय हो पर परिमेय न हो, बड़ा कठिन है, और यह सारी कल्पना बहुत ही क्लिष्ट है । हम इस विषय पर हिन्दुओं के मत के विषय में जितना कुछ जानते हैं उसमें से यहाँ उतना ही लिखेंगे जितना पाठकों के लिए पर्याप्त होगा ।

ब्रह्मा का दिन जोकि सृष्टि की अवधि है, ब्रह्मा की रात, जोकि सृष्टि के अभाव की अवधि है ।

सृष्टि के विषय में हिन्दुओं की साधारण धारणा लौकिक है, क्योंकि, जैसा कि हमने अभी कहा, वे प्रकृति को अनादि मानते हैं । इसलिए वे सृष्टि शब्द से अभाव से किसी वस्तु का भाव नहीं समझते । वे सृष्टि का अर्थ केवल चिकनी मिट्टी को तोड़ मरोड़कर उसके नाना आकार तथा संयोग, और ऐसी व्यवस्थायें बनाना समझते हैं जो उन विशेष प्रयोजनों और लक्ष्यों को पूरा करेंगी जो सम्भाव्य रूप से उसमें हैं । इस कारण वे सृष्टि का अभिसम्बन्ध देवताओं, और राक्षसों, प्रत्युत मनुष्यों के साथ भी ठहराते हैं, जो इस कारण सृष्टि उत्पन्न करते हैं कि या तो वे किसी शास्त्र-विहित कर्तव्यता को पूरा करते हैं जोकि बाद को सृष्टि के लिए उपकारी प्रमाणित होती है, या वे यशस्काम और ईर्ष्यालु होजाने के बाद अपने मनोविकारों को शमन करना चाहते हैं । इसी प्रकार, उदाहरणार्थ, वे कहते हैं कि विश्वामित्र ऋषि ने भैंसे इस उद्देश से उत्पन्न की थीं कि जो उपयोगी और उत्तम पदार्थ वे देती

हैं उन सबका मनुष्य-जाति उपभोग करे। इस सारे को देखकर टिमिउस (Timæus) नामक पुस्तक में प्लेटो के ये शब्द याद आते हैं—
"उपास्यों अर्थात् जिन देवताओं ने अपने पिता की एक आज्ञा के अनुसार, मनुष्यों की सृष्टि की थी, उन्होंने एक अमर आत्मा को लेकर आरम्भ किया था ; इससे उन्होंने उस पर ख़रादी की तरह एक नश्वर शरीर गढ़ा था।"

यहाँ इस प्रबन्ध में हमें काल की एक संस्थिति मिलती है, जिसको मुसलमान लेखक, हिन्दुओं के दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए, जगत् के वर्ष कहते हैं। लोग समझते हैं कि उनके आरम्भों और अन्तों पर सृष्टि और विनाश नवीन प्रकार की रचनाओं के तौर पर होते हैं। परन्तु, यह सर्वसाधारण का विश्वास नहीं। उनके अनुसार, यह संस्थिति ब्रह्मा का दिन और ब्रह्मा की एक क्रमागत रात है ; क्योंकि उत्पत्ति का काम ब्रह्मा के सिपुर्द है। फिर, उत्पन्न होना उस चीज़ में एक गति है जो अपने से किसी भिन्न पदार्थ से पैदा होती है, और इस गति के सबसे बड़े स्पष्ट कारण उल्कोत्पन्न सञ्चालक अर्थात् तारे हैं। परन्तु जब तक ये प्रत्येक दिशा में न चलें और अपने रूपों (=अपनी दशाओं) को न बदलें, ये अपने नीचे के जगत् पर नियमित प्रभाव कभी नहीं डाल सकते। इसलिए, पैदा होना ब्रह्मा के दिन तक ही परिमित है, क्योंकि, जैसा हिन्दुओं का विश्वास है, केवल इसमें ही, अपने पूर्व-प्रतिष्ठित क्रम के अनुसार तारे चलते और उनके गोले घूमते हैं, और फलतः पृथ्वीतल पर उत्पन्न होने की क्रिया बिना किसी रोक-टोक के विकास पाती है। पृष्ठ १६५

इसके विपरीत, ब्रह्मा की रात में मण्डल अपनी गतियों को बन्द कर देते हैं, और सारे तारे, अपने तोरणों और ग्रन्थियों सहित, एक विशेष स्थान में निश्चल ठहर जाते हैं।

फलतः पृथ्वी के सभी व्यापार उसी एक स्थिर दशा में हैं, और उत्पन्न होना बन्द हो गया है, क्योंकि जो वस्तुओं को उत्पन्न करता है वह निश्चल है। इस प्रकार क्रिया करने और अपने पर क्रिया कराने के दोनों काम रुक गये हैं; तत्त्व नवीन रूपान्तरों और संयोगों में प्रविष्ट होने से ठहरे हुए हैं, जैसा वे अब + + + (कृमिभुक्त शायद रात) में निश्चल हैं, और वे उन नवीन भूतों से सम्बन्ध के लिए तैयारी कर रहे हैं जो आनेवाले ब्रह्मा के दिन पैदा होंगे।

इस प्रकार ब्रह्मा के जीवन में अस्तित्व चक्कर काटता है। इस विषय का प्रतिपादन हम इसके उचित स्थान पर करेंगे।

ग्रन्थकार की गुण-दोष-विवेचक टिप्पणी।

हिन्दुओं की इन कल्पनाओं के अनुसार, सृष्टि और विनाश केवल पृथ्वी-तल के लिए ही है। ऐसी सृष्टि से मिट्टी का एक भी ऐसा टुकड़ा पैदा नहीं होता जो पहले मौजूद न था और ऐसे विनाश से मिट्टी के एक भी ऐसे टुकड़े का अभाव नहीं होता जो अब मौजूद है। जब तक हिन्दुओं का यह विश्वास है कि प्रकृति अनादि है तब तक उनके लिए सृष्टि की भावना रखना सर्वथा असम्भव है।

ब्रह्मा का जागना और सोना।

हिन्दू अपने सर्वसाधारण के सामने उपर्युक्त दो संस्थितियों को अर्थात् ब्रह्मा के दिन और ब्रह्मा की रात को उसके जागने और उसके सोने के रूप में प्रकट करते हैं; और हम इन परिभाषाओं को बुरा नहीं कहते, क्योंकि वे किसी ऐसी वस्तु को दरसाती हैं कि जिसका आदि और अन्त है। फिर, ब्रह्मा का सारा जीवन, जो ऐसी अवधि के बीच जगत् में गति और निश्चलता के अनुवर्तन का बना है, केवल भाव पर ही, अभाव पर नहीं, लागू समझा जाता है, क्योंकि इसके बीच मिट्टी के टुकड़े

का और साथ ही उसके आकार का भाव है । ब्रह्मा से उच्चतर सत्ता, अर्थात् पुरुष के सामने ब्रह्मा का जीवन केवल एक दिन है (परिच्छेद ३५) । जब वह मर जाता है तो उसकी रात में सारे मिश्रण वियुक्त हो जाते हैं और मिश्रणों के विनाश के फल से वह भी स्थगित हो जाता है जो उस (ब्रह्मा) को प्रकृति के नियमों के अन्दर रखता था । तब यह पुरुष का और उसके अधीनस्थ सभी वस्तुओं (मूलार्थतः, और उसके वाहनों) का विश्राम है ।

ब्रह्मा की निद्रा पर अशिष्ट और वैज्ञानिक कल्पनायें ।

जब साधारण लोग इन बातों का वर्णन करने लगते हैं तो वे ब्रह्मा की रात को पुरुष की रात के पीछे ले आते हैं; और क्योंकि पुरुष मनुष्य का नाम है, इसलिए वे उसमें सोने और जागने का अध्यारोप करते हैं । वे उसके खर्राटे मारने से विनाश निकालते हैं, जिसके परिणाम से सब संयुक्त पदार्थ जुदा जुदा हो जाते हैं, और प्रत्येक खड़ी चीज़ उसके माथे के स्वेद में डूब जाती है । और वे इसी प्रकार की और भी बातें गढ़ते हैं जिनको मानने से मन और सुनने से कान इन्कार करते हैं ।

इसलिए सुशिक्षित हिन्दू (ब्रह्मा के जागने और सोने के विषय में) इन मतों में भाग नहीं लेते, क्योंकि वे सोने के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं । वे जानते हैं कि शरीर, जो कि विरोधी रसों का मिश्रण है, आराम लेने के लिए निद्रा की आवश्यकता रखता है, और उसे निद्रा का इसलिए भी प्रयोजन है कि वे सब चीज़ें जिनकी प्रकृति को आवश्यकता है, नष्ट होजाने के बाद, भली भाँति पुनः स्थापित हो जायँ । इसलिए, निरन्तर ह्रास के कारण शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है ताकि घुलते रहने से जो चीज़ नष्ट होगई है उसकी पुनः स्थापना हो जाय । फिर, अपनी जाति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए शरीर द्वारा इसे मैथुन की आवश्यकता है, क्योंकि मैथुन

के बिना जाति नष्ट हो जायगी। इनके अतिरिक्त, शरीर को अन्य पदार्थों की, कुत्सित परन्तु प्रयोजनीय चीज़ों की, आवश्यकता है, परन्तु अमिश्र द्रव्यों को उनकी आवश्यकता नहीं, जिस प्रकार उस (परमेश्वर) को आवश्यकता नहीं जोकि उनसे भी ऊपर है, और जिसके सदृश और कोई वस्तु नहीं।

फिर, हिन्दुओं का मत है कि बारह सूर्यों के संयोग के परिणाम से जगत् नष्ट हो जायगा। ये सूर्य भिन्न भिन्न मासों में एक दूसरे के बाद प्रकट होते हैं, और पृथ्वी को जलाकर, भस्म करके, और उसके सभी गीले पदार्थों को सुखाकर और कुम्हलाकर ध्वंस कर देते हैं। फिर, जगत् चार वर्षाओं के संयोग के कारण नष्ट होता है। ये वर्षायें अब वर्ष की भिन्न भिन्न ऋतुओं में आती हैं; जो चीज़ भस्म हो चुकी है वह जल को आकृष्ट करती है और उसमें घुल जाती है। अन्ततः, पृथ्वी प्रकाश के अवसान से और अन्धकार तथा अभाव की प्रधानता से नष्ट होती है। इस सारे से जगत् वियुक्त होकर परमाणु बन जायगा और बिखर जायगा।

जगत् के अन्त के विषय में कल्पनायें।

मत्स्य-पुराण कहता है जो आग जगत् को जलाती है वह जल से उत्पन्न हुई है; और उस समय तक यह कुश-द्वीप अन्तर्गत महिष पर्वत पर रहती थी, और इस पर्वत के नाम से ही पुकारी जाती थी।

विष्णु-पुराण कहता है कि "महर्लोक ध्रुव के ऊपर स्थित है, और वहाँ ठहरने की संस्थिति एक कल्प है। जब तीन लोक जलते हैं तो आग और धूआँ अधिवासियों को पीड़ित करते हैं। तब वे उठकर जनलोक में जा बसते हैं। यह लोक ब्रह्मा के पुत्रों का निवास-स्थान है। यह ब्रह्मा सृष्टि के पूर्व था और उसके पुत्र

पृष्ठ १६६

ये हैं अर्थात् सनक, सनद, सनन्दनाद (?), असुर, कपिल, वोढु, और पञ्चशिख।"

अबू मअशर भारतीय कल्पनाओं का प्रयोग करता है।

इन वाक्यों का पौर्वापर्य इस बात को स्पष्ट कर देता है कि जगत् का यह विनाश कल्प के अन्त में होता है, और इसी से अबू मअशर की यह कल्पना निकाली गई है कि ग्रहयुति पर जल-प्रलय होता है, क्योंकि वास्तव में, प्रत्येक चतुर्युग की समाप्ति पर और प्रत्येक कलि-युग के आरम्भ में ग्रहों का संयोग होता है। यदि यह संयोग पूर्ण संयोग न हो, तो जलप्रलय की विनाशक शक्ति भी तीव्र रूप धारण नहीं करती। इन विषयों का हम जितना अधिक अन्वेषण करेंगे उतना ही अधिक इस प्रकार की कल्पनाओं पर प्रकाश पड़ेगा, और उतनी ही अधिक उत्तम रीति से पाठक इस प्रबन्ध में आने वाली परिभाषाओं को समझेंगे।

अलेरान शहरी से बौद्ध कल्पनायें।

अलेरान शहरी बौद्धों के विश्वास को दरसानेवाले एक ऐतिह्य का उल्लेख करता है। मेरु पर्वत के पार्श्वों पर चार लोक हैं जो बारी बारी से आबाद या निर्जल हैं। जब किसी लोक पर सात सूर्यों के, एक दूसरे के बाद, उदय होने के कारण अग्नि का प्राधान्य हो जाता है, जब निर्झरों का जल सूख जाता है, और ज्वलन्त अग्नि प्रचण्ड होकर उस लोक के भीतर घुस जाती है तो वह लोक निर्जल हो जाता है। जब अग्नि उस लोक को छोड़ कर किसी दूसरे लोक में चली जाती है तो वह आबाद हो जाता है, उसके चले जाने के बाद वहाँ प्रबल वायु उठकर मेघों को ढकेलता और उनको बरसाता है जिससे वह लोक सागर के सदृश बन जाता है। इसकी झाग के सीप और घोंघे बन जाते हैं। इनके

साथ आत्माओं का सम्बन्ध है, और जब पानी पृथ्वी के नीचे चला जाता है तो इनमें से मनुष्यों की उत्पत्ति होती है । कई बौद्ध यह समझते हैं कि मरते हुए लोक से बढ़ते हुए लोक में एक मनुष्य अकस्मात् आ जाता है । क्योंकि वह अकेला होने के कारण दुःख अनुभव करता है इसलिए उसके विचार से एक भार्या पैदा होती है, और इस जोड़े से उत्पत्ति का आरम्भ होता है ।



तेंतीसवाँ परिच्छेद ।

—:०:—

भिन्न भिन्न प्रकार के दिन या अहोरात्र के मान की कल्पनाओं पर, और विशेषतः दिन तथा रात के प्रकारों पर ।

मुसलमानों, हिन्दुओं, और दूसरों के साधारण व्यवहार के अनुसार, एक दिन या अहोरात्र का अर्थ ब्रह्माण्ड के चक्रावर्त में सूर्य के एक परिभ्रमण की संस्थिति है, जिसमें कि वह बड़े चक्र के आधे से चलकर फिर वहाँ ही वापस आजाता है। साक्षात् यह दो आधों में बँटा हुआ है—दिन (अर्थात् पृथ्वी के विशेष स्थान के अधिवासियों को सूर्य के दिखाई देने का समय), और रात (अर्थात् उसके उनको दिखाई न देने का समय)। उसका दिखाई देना या न दिखाई देना दो सापेक्ष बातें हैं, जिनमें आकाश-कक्षाओं के अनुसार भेद होता है। यह अच्छी तरह से जाना हुआ है कि विषुव-रेखा का दिङ्मण्डल, जिसको हिन्दू निरक्ष देश कहते हैं, चक्रों को याम्योत्तरवृत्त के बराबर दो आधों में काटता है। फलतः वहाँ दिन और रात सदा बराबर होते हैं। परन्तु जो आकाश-कक्षायें समान्तर चक्रों को उनके ध्रुव में से गुज़रने के बिना काटती हैं वे उनको दो असमान आधों में बाँटती हैं। जितने छोटे ये समान्तर चक्र होंगे

दिन और रात का लक्षण।

उतनी ही अधिक यह बात होगी । फलतः, उनके दिन और रात असमान हैं । सिवा दो विषुवों के समयों के, जब मेरु और वडवामुख को छोड़ कर, बाक़ी पृथ्वी पर सब कहीं दिन और रात समान होते हैं । तब इस रेखा के उत्तर और दक्षिण सभी स्थान रेखा की इस विशेषता के भागी होते हैं, परन्तु केवल इसी समय होते हैं, किसी दूसरे समय नहीं ।

मनुष्याहोरात्र ।

दिन का आरम्भ सूर्य का दिङ्मण्डल के ऊपर चढ़ना, और रात का आरम्भ उसका इसके नीचे छिप जाना है । हिन्दू दिन को अहोरात्र का प्रथम भाग और रात को द्वितीय भाग समझते हैं । इसलिए वे पहले को सावन अर्थात् सूर्य के उदय पर अवलम्बित दिन कहते हैं । इसके अतिरिक्त, वे इसको मनुष्याहोरात्र अर्थात् मनुष्यों का दिन भी कहते हैं, क्योंकि, वास्तव में, उनके बहुत से लोग इसके सिवा और किसी प्रकार के दिन को जानते ही नहीं । अब हम इस बात को मानकर कि पाठक सावन को जानते हैं इस प्रसङ्ग में, इसके द्वारा बाक़ी सब प्रकार के दिनों का निश्चय करने के लिए, इसका आदर्श या परिमाण के रूप में उपयोग करेंगे ।

पृष्ठ १६७

पितरों का दिन ।

मनुष्याहोरात्र के उपरान्त पितृणाम् अहोरात्र अर्थात् पितरों का अहोरात्र है, जिनकी आत्मायें, हिन्दुओं के विश्वासानुसार, चन्द्र-लोक में निवास करती हैं । इसके दिन और रात किसी विशेष आकाश-कक्षा के नाते से चढ़ने और छिपने पर नहीं, प्रत्युत प्रकाश और अन्धकार पर आश्रित हैं । जब चन्द्रमा उनकी अपेक्षा से मण्डल के उच्चतम भागों में होता है तब उनके लिए दिन होता है ; और जब यह नीचतम भागों में होता है तो उनके लिए रात होती है । यह स्पष्ट है कि उनका दुपहर संयोग का

समय या पूर्णिमा है, और उनकी आधी रात विरोध या अमावास्या है। इसलिए पितरों का अहोरात्र एक पूर्ण चान्द्र मास है; उनका दिन अर्धचन्द्र के समय शुरू होता है, जब कि चन्द्रमा के शरीर पर प्रकाश बढ़ने लगता है, और रात अर्धचन्द्र के समय शुरू होती है जब कि उसका प्रकाश घटने लगता है। पितरों के अहोरात्र के मध्याह्न और अर्धरात्रि के पूर्वोक्त निर्णय से आवश्यक तौर पर यह परिणाम निकलता है। इसके अतिरिक्त, एक तुलना से यह बात पाठकों की समझ में आजायगी, चन्द्रमा के पिण्ड पर प्रकाश के उज्ज्वल अर्ध को सूर्य के आधे गोले के आकाश-कक्षा पर उदय होने से, और दूसरे अर्ध को आकाश-कक्षा के नीचे छिपने से उपमा दी जा सकती है। इस अहोरात्र का दिन एक मास के अन्तिम चतुर्थांश से शुरू होकर अगले मास के प्रथम चतुर्थांश तक रहता है; और रात एक मास के प्रथम चतुर्थांश से लेकर उसीके दूसरे चतुर्थांश तक रहती है। इन दो आधों का जोड़ पितरों का अहोरात्र है।

इस प्रकार विष्णु-धर्म नामक पुस्तक के रचयिता ने इस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, परन्तु पीछे से वह इसको बहुत थोड़ी समझ के साथ दुबारा बयान करता है, और पितरों के दिन को विरोध से संयोग तक मास के कृष्ण पक्ष के साथ और उनकी रात को इसके शुक्ल पक्ष के साथ मिला देता है, पर यथार्थ बात वही है जो हम अभी कह चुके हैं। इस मत की इस बात से भी पुष्टि होती है कि वे अमावास्या के दिन पितरों को भोजन का दान देते हैं, क्योंकि वे मध्याह्न को खाना खाने का समय बताते हैं। इसी कारण वे पितरों को उस समय भोजन चढ़ाते हैं जिस समय वे आप खाते हैं।

इसके बाद दिव्याहोरात्र अर्थात् देवों का दिन-रात है। यह मालूम है कि सबसे पड़े अक्ष का दिङ्मण्डल, अर्थात् ९० अंश, जहाँ ध्रुव ख-मध्य में ठहरता है, ठीक ठीक तौर पर नहीं प्रत्युत क़रीबन क़रीबन, विषुव-रेखा है, क्योंकि यह पृथ्वी के उस स्थान के दृश्य दिङ्मण्डल के थोड़ा सा नीचे है—जिसे मेरु पर्वत घेरे हुए है; इसकी चोटी और ढलानों के लिए प्रस्तुत दिङ्मण्डल और विषुव-रेखा सर्वथा अभिन्न हो सकती हैं, यद्यपि दृश्य दिङ्मण्डल इसके कुछ नीचे (अर्थात् दूर दक्षिण की ओर) स्थित है। फिर, यह स्पष्ट है कि राशि-चक्र विषुव-रेखा-द्वारा कट जाने से दो आधों में बँटा हुआ है, एक आधा तो विषुव-रेखा के ऊपर (अर्थात् इसके उत्तर में) है, और दूसरा आधा इसके नीचे। उत्तरी झुकाव (उत्तरायण) की राशियों में सूर्य की गति चक्की के घूमने के सदृश होती है क्योंकि दिन के जो वृत्तांश वह बनाता है वे, छाया यन्त्रों के सदृश, दिङ्मण्डल के समान्तर होते हैं। जो लोग उत्तर ध्रुव के नीचे रहते हैं उनको सूर्य दिङ्मण्डल के ऊपर दिखाई देता है, इसलिए उनके यहाँ दिन होता है, पर जो दक्षिण ध्रुव के नीचे रहते हैं उनके लिए सूर्य दिङ्मण्डल के नीचे छिपा होता है, इसलिए उनके यहाँ रात होती है। तब, जब सूर्य दक्षिणी राशियों (दक्षिणायन) में जाता है तो वह दिङ्मण्डल के नीचे (अर्थात् विषुव-रेखा के दक्षिण में) चक्की के सदृश घूमता है; इसलिए यह उत्तर ध्रुव के नीचे रहनेवालों के लिए रात और दक्षिण ध्रुव के नीचे के लोगों के लिए दिन होता है।

देवों का दिन।

पृष्ठ १६८

देवकों अर्थात् आध्यात्मिक प्राणियों के निवास-स्थान दो ध्रुवों के नीचे हैं, इसलिए इस प्रकार का दिन उनके नाम पर देवों का अहो-रात्र कहलाता है।

कुसुमपुर का आर्यभट कहता है कि देव सौर वर्ष का एक आधा और दानव उसका दूसरा आधा देखते हैं; पितर चान्द्र मास का एक आधा और मनुष्य उसका दूसरा आधा देखते हैं। इस प्रकार राशि-चक्र में सूर्य के एक बार घूम जाने से देव और दानव दोनों के दिन और रात हो जाते हैं और उनका जोड़ अहोरात्र है।

फलतः, हमारा वर्ष देवों के अहोरात्र से अभिन्न है। परन्तु इसमें (पितरों के अहोरात्र की तरह) दिन और रात बराबर नहीं होते, क्योंकि सूर्य उत्तरायण में अपने 'भूम्युच्च (apogee)' के गिर्द हौले हौले चलता है, जिससे दिन कुछ अधिक लम्बा हो जाता है। परन्तु यह भेद दृग्गोचर दिङ्मण्डल और प्रकृत दिङ्मण्डल के बीच के भेद के बराबर नहीं, क्योंकि यह सूर्य के गोले पर देखा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त, हिन्दुओं के मतानुसार, उन स्थानों के अधिवासी, मेरु पर्वत पर रहने के कारण, पृथ्वीतल के ऊपर उठे हुए हैं। जो कोई यह मत रखता है उसका मेरु पर्वत की उँचाई के विषय में वैसा ही मत है, जैसा कि हमने उचित स्थान पर वर्णन किया है। मेरु की इस उँचाई के फल से, उसकी आकाश-कक्षा का थोड़ा नीचे (अर्थात् विषुव-रेखा की अपेक्षा अधिक दक्षिणतः) चला जाना ज़रूरी है, और इसके परिणाम से रात की अपेक्षा दिन के लम्बा होने का परिमाण घट जाता है (क्योंकि तब सूर्य अपने उत्तर 'भूम्युच्च' तक सर्वथा नहीं पहुँचता, जहाँ कि यह सबसे लम्बे दिन बनाता है)। यदि यह एक ऐसी चीज़ होने के अतिरिक्त, जिसके विषय में हिन्दुओं का आपस में ही मत-भेद है, उनके केवल एक धार्म्मिक ऐतिह्य के सिवा कोई और चीज़ होता, तो हम, ज्योतिष-सम्बन्धी गणना के द्वारा, विषुव-रेखा के नीचे मेरु पर्वत के दिङ्मण्डल के इस दबाव का परिमाण मालूम करने का यत्न करते, परन्तु, चूँकि (मेरु पर्वत के केवल एक

कल्पना होने के कारण) इस विषय में कोई फ़ायदा नहीं, इसलिए हम इसे छोड़ते हैं ।

किसी अशिक्षित हिन्दू ने लोगों को ऐसे अहोरात्र के उत्तर में दिन, और दक्षिण में उसकी रात के विषय में बातें करते सुना। इन तत्त्वों के सम्बन्ध में उसने वर्ष के दो आधों को राशि-चक्र के दो आधों के द्वारा स्थिर किया, एक तो वह जो मकर संक्रान्ति से चढ़ता है, जिसे उत्तरायण कहते हैं, और दूसरा जो कर्क संक्रान्ति से उतरता है, जिसे दक्षिणायन कहते हैं। तब उसने इस अहोरात्र के दिन को चढ़ते हुए आधे से, और इसकी रात को उतरते हुए आधे से अभिन्न मान लिया। इस सारे को उसने अपनी पुस्तकों में अमर कर दिया ।

विष्णु-धर्म्म के कर्त्ता का कथन भी इससे कुछ बहुत अच्छा नहीं। वह कहता है:—"मकर से शुरू होनेवाला आधा असुरों अर्थात् दानवों का दिन है और उनकी रात कर्क से आरम्भ होती है।" इसके पहले उसने कहा था:—"मेष के साथ आरम्भ होनेवाला आधा देवों का दिन है।" इस लेखक ने इस विषय को समझे बिना ही यह सब लिखा है, क्योंकि वह दो ध्रुवों को एक दूसरे के साथ गड़बड़ कर देता है (क्योंकि इस कल्पना के अनुसार, सूर्य के परि-भ्रमण का आधा, जो मकर संक्रान्ति से आरम्भ होता है, उत्तर ध्रुव के नीचे के लोगों या देवों का, न कि दक्षिण ध्रुव के नीचे के लोगों या असुरों का दिन होगा, और कर्क संक्रान्ति से आरम्भ होनेवाले सूर्य का परिभ्रमण असुरों का दिन होगा, न कि उनकी रात)। यदि इस ग्रन्थकर्त्ता ने वाक्य को वस्तुतः समझा होता, और उसे ज्योतिष का ज्ञान होता, तो वह दूसरे सिद्धान्तों पर पहुँचता ।

इसके बाद ब्रह्माहोरात्र अर्थात् ब्रह्मा का अहोरात्र है। यह (पितरों के अहोरात्र के सदृश) प्रकाश और अन्धकार से, या (देवों के अहोरात्र के सदृश) किसी नक्षत्र के दिखाई देने या छिप जाने से नहीं, प्रत्युत सृष्ट पदार्थों के भौतिक स्वरूप से बनाया गया है जिसके फल से वे दिन में चलते और रात में ठहरते हैं। ब्रह्मा के अहोरात्र की लम्बाई हमारे ८६४०००००० वर्ष हैं। इसके आधे में, अर्थात् दिन में, आकाश अपने अन्दर की सभी चीज़ों के साथ घूमता है, पृथ्वी उत्पन्न करती है, और उत्पत्ति और विनाश के परिवर्तन अवनी-तल पर अनवरत होते रहते हैं। दूसरे आधे अर्थात् रात में जो बातें दिन में होती हैं उनके सर्वथा विपरीत होता है; पृथ्वी में परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि जो चीज़ें परिवर्तन उत्पन्न करती हैं वे आराम कर रही हैं और सभी गतियाँ बन्द हैं, मानों प्रकृति रात और शीतकाल में आराम करती है, और दिन तथा ग्रीष्म में नवीन जीवन के लिए तैयारी करती हुई अपने आपको इकट्ठा करती है।

ब्रह्मा का दिन।

पृष्ठ १६९

ब्रह्मा का प्रत्येक दिन और प्रत्येक रात एक एक कल्प होते हैं, और कल्प समय की वह अवधि है जिसको मुसलिम लेखक सिन्धिन्द का वर्ष कहते हैं।

अन्ततः पुरुषाहोरात्र अर्थात् सर्वात्मा का अहोरात्र है। इसको महाकल्प अर्थात् सबसे बड़ा कल्प भी कहते हैं। हिन्दू समय की कल्पना के सदृश किसी चीज़ के द्वारा सामान्य रूप से केवल संस्थिति का निश्चय करने के उद्देश से इसका प्रयोग करते हैं; परन्तु इसका दिन और रात के रूप में निर्देश नहीं करते। मैं समझता हूँ कि इस अहोरात्र के दिन का अर्थ आत्मा के अव्यक्त के साथ सम्बन्ध की संस्थिति, और रात का अर्थ

पुरुष का दिन।

उनके एक दूसरे से वियोग की, और (अव्यक्त के साथ मिले रहने की थकावट से) आत्माओं के विश्राम की संस्थिति है, और वह अवस्था जो आत्मा के अव्यक्त के साथ संयोग या इसके अव्यक्त से वियोग की आवश्यकता पैदा करती है वह इस अहोरात्र के अन्त पर अपने सामयिक अन्त को पहुँच जाती है। विष्णु-धर्म्म कहता है— "ब्रह्मा की आयु पुरुष का दिन है, और पुरुष की रात भो उतनी ही लम्बो होती है।"

हिन्दू इस बात में सहमत हैं कि ब्रह्मा की आयु उसके सौ वर्ष होती है। हमारे वर्षों की संख्या जो उसके एक वर्ष के बराबर होती है अपने आपको हमारे वर्षों की संख्या के साथ ३६० का गुणन प्रकट करती है, जोकि उसके एक अहोरात्र के बराबर होता है। हम उसके अहोरात्र की लम्बाई पहले बता आये हैं। अब ब्रह्मा का एक वर्ष हमारे ३११०४०००००००० वर्षों (अर्थात् ३६० × ८६४००००००००) के बराबर होता है। इसी प्रकार के सौ वर्ष, हमारे वर्षों की गिनती में, उसी संख्या में दो शून्य बढ़ाकर दिखाये जाते हैं, जिससे सारे दस शून्य अर्थात् ३११०४०००००००००० हो जाते हैं। समय की यह अवधि पुरुष का एक दिन है; इसलिए उसका अहोरात्र इसका दुगना अर्थात् हमारे ६२२०८०००००००००० वर्ष होता है।

पुलिश-सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मा की आयु पुरुष का एक दिन है। परन्तु यह भी कहा गया है कि पुरुष का एक दिन परार्ध कल्प होता है। दूसरे हिन्दू कहते हैं कि परार्ध-कल्प ख अर्थात् बिन्दु का दिन है। ख का अर्थ वे आदि कारण समझते हैं जिस पर सारा अस्तित्व निर्भर करता है। संख्याओं के दर्जों के सोपान में कल्प का अठारहवाँ स्थान है (देखो पृष्ठ ६२)। यह परार्ध कहलाता है जिसका अर्थ आकाश का आध है। अब इसका दुगना

परार्धकल्प।

सारा आकाश और सारा अहोरात्र होगा। इसलिए ख को ८६४ की संख्या के बाद चौबीस शून्य लगाकर प्रकट किया जाता है। यह संख्या हमारे वर्षों की है।

इन परिभाषाओं को विविध प्रकार की संख्याओं के बने हुए मूल्यों की अपेक्षा समय की सामान्य कल्पना को प्रकट करने का एक दार्शनिक साधन समझना चाहिए, क्योंकि वे संयोग और वियोग की, उत्पत्ति और विनाश की क्रियाओं से निकाली गई हैं।

चौंतीसवाँ परिच्छेद ।

—o:o—

समय के छोटे छोटे भागों में अहोरात्र के विभाग पर ।

घटी ।

हिन्दू लोग समय के अत्यन्त सूक्ष्म कणों की कल्पना करने में मूर्खता से परिश्रम कर रहे हैं, परन्तु उनके प्रयत्नों से कोई सर्वसम्मत और एकरूप-पद्धति नहीं बनी। इसके विपरीत तुम्हें शायद ही कोई दो पुस्तकें या दो मनुष्य ऐसे मिलें जो इस विषय को अभिन्न रूप से प्रकट करते हों। पहली बात तो यह है कि अहोरात्र साठ मिनटों या घटियों में विभक्त है। काश्मीर-निवासी उत्पल की स्रूधव नामक पुस्तक में लिखा है—"यदि तुम एक लकड़ी के टुकड़े में बारह उङ्गली के व्यास और छः उङ्गली की ऊँचाई का एक गोलाकार सूराख़ करो तो इसमें तीन मना पानी आवेगा। यदि तुम इस सूराख़ के पेंदे में एक तरुणी स्त्री के, वृद्धा या बालिका के नहीं, छः गूँथे हुए बालों के बराबर एक दूसरा सूराख़ करोगे तो इस सूराख़ में से वह तीन मना पानी एक घटी में बाहर बह जायगा।"

चषक।

प्रत्येक मिनट साठ सिकेण्डों में बँटा हुआ है जिनको चषक या चखक, और विघटिका भी कहते हैं।

प्रत्येक विघटिका छः भागों या प्राणों अर्थात् श्वासों में विभक्त है।

प्राण।

पूर्वोक्त सूधव नाम की पुस्तक में प्राण की इस प्रकार व्याख्या की गई है—"यह एक ऐसे सोये हुए व्यक्ति का श्वास है जो कि स्वाभाविक निद्रा में सो रहा हो, न कि उसका जो कि रोग-ग्रस्त है, जिसे मूत्र के रुकने का कष्ट है, जो भूखा है, या जिसने बहुत अधिक खा लिया है, जिसका मन किसी शोक या पीड़ा में डूबा हुआ है; क्योंकि सोये हुए व्यक्ति का श्वास उसके आत्मा की अवस्थाओं के अनुसार बदलता रहता है, ये अवस्थाएँ, उसके शरीर की उन अवस्थाओं के अनुसार, जो उसके आमाशय के भरा होने या ख़ाली होने पर निर्भर हैं, और उस रस को कुपित करने-वाली विविध दुर्घटनाओं के अनुसार, जो परम वाञ्छनीय समझा जाता है, कामना या भय से उत्पन्न होती हैं।"

पृष्ठ १७०।

चाहे हम प्राण का इस नियम से निश्चय करें (एक अहोरात्र =२१६०० प्राण), या हम प्रत्येक घटी को ३६० भागों में बाँटें (६०×३६०=२१६००), या मण्डल के प्रत्येक अंश को साठ भागों में विभक्त करें (३६०×६०=२१६००) सब तरह बात एक ही रहती है।

विनाडी।

इस विषय में, यहाँ तक, सभी हिन्दुओं का एक मत है, यद्यपि वे भिन्न भिन्न परिभाषाओं का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ, ब्रह्मगुप्त चषक या सेकण्डों को विनाडी कहता है और इसी तरह कुसुमपुर का आर्यभट कहता है। इसके अतिरिक्त आर्यभट मिनटों को नाडी कहता है। परन्तु इन दोनों ने प्राण से छोटे समय के कणों का, जो मण्डल के मिनटों के समान (६०×३६०) हैं, प्रयोग नहीं किया। क्योंकि पुलिश कहता है:—"मण्डल के मिनट, जो कि २१६०० हैं, विषुवों के समय, और जब मनुष्य का स्वास्थ्य बिलकुल

ठीक हो, मनुष्य के स्वाभाविक श्वासों से मिलते हैं। मनुष्य के एक श्वास में मण्डल एक मिनट घूम जाता है।"

कई अन्य लोग मिनट और सेकण्ड के बीच एक तीसरा मान, चण, डालते हैं, जो एक मिनट का चतुर्थांश (या पन्द्रह सेकण्ड) होता है। प्रत्येक चण पन्द्रह कलाओं में विभक्त है, जिनमें से प्रत्येक कला मिनट के साठवें भाग के बराबर होती है, और इसीका दूसरा नाम चषक है।

चण।

समय के इन भग्नांशों के निम्न क्रमों में तीन नाम मिलते हैं जिनका सदैव एक ही अन्वय में उल्लेख होता है। इनमें सबसे बड़ा निमेष अर्थात् वह समय है जिस में आँख, स्वाभाविक अवस्था में, दो अविच्छिन्न दृष्टियों के बीच खुली होती है। लव समय का मध्यम और त्रुटि उसका सबसे छोटा अंश है। त्रुटि शब्द का अर्थ प्रदेशिनी अंगुली का अङ्गूठे के अन्दर की ओर चटकाना है। यह उनके आश्चर्य या प्रशंसा की सूचक एक चेष्टा है। इन तीन मापों के बीच के सम्बन्ध में बहुत भिन्नता है। कई हिन्दुओं के मतानुसार—

निमेष, लव, त्रुटि।

२ त्रुटि = १ लव
२ लव = १ निमेष।

फिर, निमेष और समय के भग्नांशों के अगले उच्चतर क्रम के बीच के सम्बन्ध के विषय में उनका मतभेद है, क्योंकि कई तो काष्ठा में पन्द्रह निमेष और कई तीस निमेष मानते हैं। फिर कई लोग इन तीन मानों में से प्रत्येक को आठों में बाँटते हैं, जिससे—

८ त्रुटि = १ लव,
८ लव = १ निमेष,
८ निमेष = १ काष्ठा (?)

पिछली पद्धति का सूधव नाम की पुस्तक में प्रयोग हुआ है, और **श म य** (?) नामक उनके एक विद्वान् ज्योतिषी ने भी इसे ग्रहण किया है। उसने त्रुटि से छोटा अणु नाम का एक और मान बढ़ाकर इस विभाग को और भी अधिक सूक्ष्म बना दिया है। इन आठ अणुओं की एक त्रुटि होती है।

अगले उच्चतर क्रम, निमेष से बड़े समय के भाग, काष्ठा और कला हैं। हम अभी कह चुके हैं कि कई हिन्दू कला को चषक का ही दूसरा नाम समझते हैं, और एक कला को तीस काष्ठा के बराबर मानते हैं। फिर—

काष्ठा कला।

१ काष्ठा = १५ निमेष।

१ निमेष = २ लव।

१ लव = २ त्रुटि।

कई दूसरे इस प्रकार गिनते हैं—

१ कला = अहोरात्र का $\frac{1}{86}$ वाँ मिनट = ३० काष्ठा।

१ काष्ठा = ३० निमेष।

और अगले भग्नांश वैसे ही हैं जैसे कि अभी बयान किये गये।

अन्ततः, अनेक लोग इस प्रकार गिनते हैं—

१ चषक = ६ निमेष।

१ निमेष = ३ लव।

यहाँ उत्पल का ऐतिह्य समाप्त हो जाता है।

वायु-पुराण के अनुसार—

१ मुहूर्त्त = ३० कला।

१ कला = ३० काष्ठा।

१ काष्ठा = १५ निमेष।

वायु-पुराण ने इससे छोटे भग्नांशों को छोड़ दिया है।

हमारे पास इस प्रश्न के निश्चय करने के लिए कोई साधन नहीं कि इन शैलियों में से कौनसी सबसे अधिक प्रमाण-सिद्ध है। इसलिए हमारे लिए सबसे अच्छी बात यही है कि हम उत्पल और श स य (?) की कल्पना को न छोड़ें। वह कल्पना समय के सभी मानों को प्राण की अपेक्षा अधिकतर छोटों में आठ पर बाँटती है:—

पृष्ठ १७१

१ प्राण = ८ निमेष।
१ निमेष = ८ लव।
१ लव = ८ त्रुटि।
१ त्रुटि = ८ अणु।

सारी प्रणाली इस तालिका में दिखलाई जाती है:—

समय के मापों के नाम।	छोटा माप बड़े में कितनी बार सम्मिलित है।	एक दिन में इसके कितने सम्मिलित हैं।
घटी, नाडी	६०	६०
क्षण	४	२४०
चषक, विनाडी, कला	१५	३६००
प्राण	६	२१६००
निमेष	८	१७२८००
लव	८	१३८२४००
त्रुटि	८...	११०५९२००
अणु	८...	८८४७३६००

हिन्दुओं ने अहोरात्र को आठ प्रहरों अर्थात् घड़ी के परिवर्तनों में भी बाँटा है, और उनके देश के कई भागों में घटी के अनुसार जल-घड़ियों की व्यवस्था की गई है, जिससे आठ घड़ियों के समयों का निश्चय किया जाता है। एक घड़ी के बीत जाने पर, जो साढ़े सात घड़ी की होती है, वे नक्क़ारा और शङ्ख, जिसे फ़ारसी में सपेद मुहरा कहते हैं, बजाते हैं। मैंने पुर्शूर नगर में यह देखा है। धर्म्मपरायण लोगों ने इन जल-घड़ियों के लिए मृत्यु-पत्रों द्वारा अपनी सम्पत्ति दान की है, और उनके कार्य निर्वाह के लिए उत्तरदान और स्थिर आय नियत की है।

प्रहर।

फिर, दिन तीस मुहूर्त्तों में बाँटा गया है, परन्तु यह बाँट विशेष स्पष्टता से ख़ाली नहीं; क्योंकि कभी कभी तुम यह समझते हो कि मुहूर्त्तों की लम्बाई सदा तुल्य होती है; इस कारण वे उनका घटी से मिलान करते हैं और कहते हैं कि दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है, या वे उनका घड़ियों के साथ मुक़ाबला करके कहते हैं कि एक घड़ी तीन और तीन-चौथाई मुहूर्त्त के बराबर होती है। यहाँ मुहूर्त्तों का इस प्रकार प्रयोग किया गया है मानों वे विषुवीय होरा (अर्थात् अहोरात्र के इतने इतने समान भाग) हैं। परन्तु, एक दिन के या एक रात के ऐसे घण्टों की संख्या अक्ष के प्रत्येक अंश पर भिन्न भिन्न है। इससे हमारा ख़याल होता है कि दिन के समय मुहूर्त्त की लम्बाई रात के समय से भिन्न होती है (क्योंकि यदि चार घड़ियाँ या पन्द्रह मुहूर्त्त एक दिन या एक रात को दिखलाते हैं, तो, विषुवों के समयों के सिवा, मुहूर्त्त, दिन और रात में एक समान लम्बे नहीं हो सकते)।

मुहूर्त्त।

दूसरी ओर, जिस प्रकार हिन्दू मुहूर्त्तों के अधिष्ठाताओं की गिनती करते हैं उससे हम विपरीत मत की ओर अधिक झुक जाते

हैं, कि मुहूर्त्तों की लम्बाई, वास्तव में, भिन्न भिन्न है, क्योंकि दिन और रात के सम्बन्ध में वे इनमें से प्रत्येक के लिए केवल पन्द्रह पन्द्रह अधिष्ठाता मानते हैं। यहाँ मुहूर्त्तों के साथ वक्र होरा (अर्थात् बारह समान भाग दिन के और बारह समान भाग रात के, जिनमें दिन और रात के भेद के अनुसार भेद होता है) के सदृश व्यवहार किया गया है।

इस पिछले मत की पुष्टि हिन्दुओं की एक ऐसी गणना द्वारा होती है जिससे वे (दिन के बीते हुए) मुहूर्त्तों की संख्या उन अङ्कों द्वारा मालूम कर सकते हैं जिनको उस समय मनुष्य की छाया मापती है। पिछली संख्या में से तुम मध्याह्नकाल में मनुष्य की छाया के अंकों को निकाल दो, और अवशिष्ट संख्या को नीचे के चित्र के मध्यवर्ती स्तंभ में ढूँढ़ो। यह चित्र हमने उनके कुछ पद्यात्मक निबन्धों से लिया है। ऊपर के या निचले स्तंभों का अनुरूप क्षेत्र मुहूर्त्तों की उस संख्या को दिखलाता है जिसको तुम मालूम करना चाहते थे।

वे मुहूर्त्त जो मध्याह्न के पूर्व बीत चुके हैं।	१	२	३	४	५	६	७	
प्रस्तुत छाया मध्याह्न-छाया से कितनी कला बड़ी है।	९६	६०	१२	६	५	३	२	
वे मुहूर्त्त जो मध्याह्न के पश्चात् बीते हैं।	१४	१३	१२	११	१०	९	८	

सिद्धान्त का टीकाकार, पुलिश, इस अन्तिम मत पर टिप्पणी करता हुआ उन लोगों पर दोषारोपण करता है जो सामान्यतः मुहूर्त्त को दो घटी के बराबर बताते हैं, और कहता है कि वर्ष के भिन्न भिन्न भागों में अहोरात्र की घटियों की संख्या भिन्न भिन्न होती है, पर इसके मुहूर्तों की संख्या नहीं बदलती। परन्तु एक दूसरे स्थल पर मुहूर्त्त के मान के विषय में तर्क करते हुए वह अपना ही खण्डन कर डालता है। वह एक मुहूर्त्त को ७२० प्राण या श्वास के बराबर ठहराता है। एक प्राण दो चीज़ों का बना है—अपान या साँस का भीतर ले जाना, और प्राण या साँस का बाहर निकालना। इसी अर्थ की बोधक निःश्वास और अवश्वास नामक दो और परिभाषाएँ हैं। परन्तु जब एक चीज़ का वर्णन किया जाय तो दूसरी उसमें चुपचाप ही समाविष्ट और स्वीकृत होती है; जैसा कि, उदाहरणार्थ, जब तुम दिनों का ज़िक्र करते हो तब उनमें रातों का भी समावेश होता है, जिसका तात्पर्य दिनों और रातों दोनों को प्रकट करना है। इसलिए एक मुहूर्त्त ३६० अपान और ३६० प्राण के बराबर है।

मुहूर्त्त की लम्बाई अस्थिर है या स्थिर।

पृष्ठ १७२

इसी प्रकार, घटी के मान का ज़िक्र करते हुए वह केवल एक ही प्रकार के श्वास का, जोकि दूसरे प्रकार को भी जतलाता है, उल्लेख करता है, क्योंकि सामान्यतः वह इसे (१८० अपान और १८० प्राण के स्थान में) ३६० साँसों के बराबर बयान करता है।

अब यदि मुहूर्त्त साँसों से मापा जाता है तो यह घटी और विषुवीय होरा पर उनके इसकी माप के मानयन्त्र होने के कारण अवलम्बित है। परन्तु यह पुलिश के आशय के सर्वथा विपरीत है, क्योंकि वह अपने उन विपक्षियों के विरुद्ध युक्ति देता है जो यह मानते हैं कि, यदि मुहूर्त्तों को गिननेवाला विषुव-रेखा पर या

अन्यत्र रहता है तो, विषुवों के समय को छोड़कर, दिन में केवल पन्द्रह मुहूर्त्त होते हैं। पुलिश कहता है कि अभिजित मध्याह्न और दिन के दूसरे आधे के आरम्भ से मिलता है; इसलिए, उसकी युक्ति यह है कि यदि दिन के मुहूर्तों की संख्या बदलती तो मध्याह्न को दिखलानेवाले अभिजित नामक मुहूर्तों की संख्या भी बदलेगी (अर्थात् यह सदा दिन का आठवाँ मुहूर्त्त न कहलायगी)।

व्यास कहता है कि युधिष्ठिर का जन्म शुक्ल पक्ष में, मध्याह्न काल आठवें मुहूर्त्त पर हुआ था। यदि कोई विपक्षी इससे यह परिणाम निकाले कि यह विषुव का दिन था तो हम उत्तर में मार्कण्डेय के कथन का प्रमाण पेश करते हैं, अर्थात् युधिष्ठिर का जन्म ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को हुआ था, और वर्ष का यह समय विषुव से बहुत दूर है।

आगे चलकर, व्यास फिर कहता है कि युधिष्ठिर का जन्म अभिजित पर जब कि रात की जवानी बीत चुकी थी, भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष के आठवें (मुहूर्त्त) में आधी रात को हुआ था। यह समय भी विषुव से बहुत दूर है।

वसिष्ठ बयान करता है कि वासुदेव ने कंस की बहिन के पुत्र, शिशुपाल, को अभिजित में मारा। हिन्दू शिशुपाल की यह कहानी सुनाते हैं। वह चार हाथोंवाला उत्पन्न हुआ था, और (एक दिन उसकी माता ने यह आकाश-वाणी सुनी; "जब वह व्यक्ति जो इसे मारेगा स्पर्श करेगा तब इसके दो फालतू हाथ गिर पड़ेंगे।" इसपर उन्होंने बालक को उपस्थित जनों में से प्रत्येक की छाती के साथ लगाया। जब वासुदेव ने उसे स्पर्श किया तो, आकाश-वाणी के अनुसार, दो हाथ गिर पड़े। तब मौसी बोली, "निश्चय ही एक दिन तुम मेरे पुत्र को मारोगे।"

शिशुपाल की कथा।

इस पर वासुदेव ने, जो अभी बालक ही था, उत्तर दिया, "मैं तब तक ऐसा नहीं करूँगा जब तक किसी जानबूझ कर किये गये अपराध के कारण वह उसके लिए योग्य न ठहरेगा, और न मैं उससे तब तक कोई कैफ़ियत ही तलब करूँगा जब तक कि इसके दुष्कर्म दस से अधिक न बढ़ जायँगे।"

इसके कुछ काल उपरान्त युधिष्ठिर परम प्रसिद्ध श्रेष्ठ जनों की उपस्थिति में यज्ञ का आयोजन करने लगा। उसने व्यास से परामर्श लिया कि उपस्थित अतिथियों का किस क्रम से, और ऐसी सभा के प्रधान का किस रीति से, प्याले में जल और पुष्प देकर, सत्कार करना उचित है। व्यास ने उसे वासुदेव को अध्यक्ष बनाने की सम्मति दी। इस सभा में उसका मौसेरा भाई, शिशुपाल, भी उपस्थित था। अब वह यह समझकर क्रोध करने लगा कि वासुदेव की अपेक्षा इस सम्मान का मैं अधिक अधिकारी था। वह शेख़ी बघारने लगा, बल्कि यहाँ तक कि उसने वासुदेव के माता-पिता को गालियाँ भी दीं। वासुदेव ने उपस्थित जनों से कहा कि आप इसके असद्व्यवहार के साक्षी रहें, और जो कुछ यह करता है इसे करने दें। परन्तु, जब बात बहुत लम्बी हो गई, और दस (मुहूर्त्तों) की संख्या से बढ़ गई तब वासुदेव ने प्याला उठा कर उसपर प्रहार किया, जैसे लोग चक्र चलाते हैं, और उसका सिर काट डाला। यह शिशुपाल की कथा है।

पुलिश का दोष-प्रख्यापन। जो मनुष्य पूर्वोक्त कल्पना को (पुलिश के सदृश, अर्थात् कि मुहूर्त्त अहोरात्र के तीस समान भाग हैं), प्रमाणित करना चाहता है वह इसमें तब तक सफल-मनोरथ नहीं

होगा जब तक वह यह प्रमाणित न करेगा कि अभिजित मध्याह्न के साथ और आठवें मुहूर्त्त के मध्य के साथ इकट्ठा आता है (जिससे दिन में एक समान साढ़े सात मुहूर्त्तों के दुगने मुहूर्त्त होते हैं और रात में भी उतने ही)। जब तक वह यह प्रमाणित नहीं करता तब तक दिनों और रातों की तरह मुहूर्त्तों की लम्बाई में भेद है, यद्यपि भारत में यह भेद केवल बहुत थोड़ा है, और यह सम्भव है कि विषुवों से दूर समयों में मध्याह्न या तो आठवें मुहूर्त्त के आरम्भ में या उसके अन्त में, या इसके अन्दर आता हो।

इस लेखक (पुलिश) की विद्वत्ता, जो इसको प्रमाणित करना चाहता था, कितनी कम शुद्ध है, यह इस बात से स्पष्ट है कि वह अपनी युक्तियों में गर्ग से इस विषय का एक ऐतिह्य पेश करता है कि विषुव के अभिजित पर कोई छाया नहीं होती; क्योंकि, पहले तो पृष्ठ १७३ यह बात विषुवों के दो दिनों को छोड़कर, ठीक नहीं है; और, दूसरे, यदि यह ठीक भी होती तो इसका उस विषय के साथ जिसको कि वह प्रमाणित करने का यत्न करता है, कोई सम्बन्ध न होता (क्योंकि दिन और रात की भिन्न भिन्न लम्बाई और उनके विभागों का प्रश्न विषुव-रेखा से सम्बन्ध नहीं रखता, जहाँ दिन और रात सदा एक दूसरे के बराबर होते हैं, प्रत्युत इसका सम्बन्ध पृथ्वी के केवल दक्षिणी या उत्तरी अक्षों से है)।

हम इकहरे मुहूर्त्तों के अधिष्ठाताओं को नीचे की सूची में लिख-
मुहूर्त्तों के अधिष्ठाता। लाते हैं:—

मुहूर्त्तों की संख्या।	दिन में मुहूर्त्तों के अधिपति।	रात में मुहूर्त्तों के अधिपति।
१	शिव अर्थात् महादेव।	रुद्र अर्थात् महादेव।
२	भुजग, अर्थात् साँप।	अज, अर्थात् सारे खुरीदार जन्तुओं का स्वामी।
३	मित्र।	अहिर्बुध्न्य, उत्तरभाद्रपदा का स्वामी।
४	पितृ।	पूषन्, रेवती का स्वामी।
५	वसु।	दस्र, अश्विनी का स्वामी।
६	आपस्, अर्थात् जल।	अन्तक, अर्थात् मृत्यु का देवता।
७	विश्व।	अग्नि, अर्थात् आग।
८	विरिञ्च्य अर्थात् ब्रह्मा।	धातृ, अर्थात् रक्षक ब्रह्मा।
९	केश्वर (?), अर्थात् महादेव।	मृगशीर्ष का स्वामी, सोम।
१०	इन्द्राग्नी।	गुरु अर्थात् बृहस्पति।
११	राजा इन्द्र।	हरि, अर्थात् नारायण।
१२	निशाकर अर्थात् चन्द्र।	रवि अर्थात् सूर्य।
१३	वरुण अर्थात् मेघों का राजा।	मृत्यु का देवता यम।
१४	अर्यमन्।	चित्रा का स्वामी त्वष्टृ।
१५	भागेय (?)।	अनिल अर्थात् हवा।

हिन्दू फलित-ज्योतिष के घण्टों पर।

भारतवर्ष में फलित-ज्योतिषियों के सिवा और कोई होरों का प्रयोग नहीं करता, क्योंकि वे होरा-अधिपतियों का, और, फलतः, अहोरात्रों के अधिपतियों का भी ज़िक्र करते हैं। अहोरात्र का अधिपति साथ ही रात का अधिपति

भी होता है, क्योंकि वे दिन का अधिपति अलग नहीं मानते, और, इस सम्बन्ध में, रात का कभी उल्लेख नहीं होता। वे ऐहिक होराओं के अनुसार अधिपतियों के क्रम की व्यवस्था करते हैं।

वे घंटे को होरा कहते हैं, और यह नाम यह बतलाता हुआ प्रतीत होता है कि वास्तव में वे वक्र होराओं का प्रयोग करते हैं; क्योंकि हिन्दू लोग राशियों के केन्द्रों को होरा कहते हैं, जिनको हम मुसलमान नीम बहर कहते हैं। कारण यह है कि प्रत्येक दिन और प्रत्येक रात में सदा छः राशियाँ दिङ्मण्डल के ऊपर चढ़ती हैं। इसलिए, यदि घंटे का नाम राशि के केन्द्र के नाम से हो तो प्रत्येक पृष्ठ १७४ दिन और प्रत्येक रात में बारह घंटे होते हैं, और फलतः घंटों के अधिपतियों की कल्पना में जिन घंटों का प्रयोग किया गया है वे वक्र होरा हैं, जिस प्रकार उनका हमारे देश में प्रयोग होता है, और वे इन अधिपतियों के कारण अस्तरलाबों पर खुदे हुए हैं।

इस मत की पुष्टि करण-तिलक अर्थात् फलित-ज्योतिष की प्रधान पुस्तक में विजयनन्दिन् के इस वाक्य से होती है। इस नियम की व्याख्या करने के बाद कि वर्ष का और मास का अधिपति कैसे मालूम करना चाहिए, वह कहता है:—"होराधिपति मालूम करने के लिए प्रातःकाल से चढ़ी हुई राशियों का जन्म-पत्रिका के अंश में योग करो, यह सारा मिनटों में गिना जाय, और योग-फल को ६०० पर बाँटो। भाग-फल को अहोरात्र के अधिपति में से, नक्षत्रों की गिनती ऊपर से नीचे की ओर करते हुए, गिन डालो। दिन का जो अधिपति तुम मालूम करते हो वह साथ ही घंटे (होरा) का भी अधिपति है।" उसे इस प्रकार कहना चाहिए था, "जो भाग-फल तुम्हें मिले उसमें एक जमा करो, और योग-फल को अहोरात्र के अधिपति में

से निकाल डालो।" यदि वह यह कहता कि, "उन विषुवीय अंशों को, जोकि चढ़े हैं, गिनो" इत्यादि, तो गणना का फल विषुवीय होरे होता।

चौबीस होरा के नाम।

हिन्दुओं ने वक्र होराओं को विशेष नाम दिये हैं। हमने इनको नीचे की सूची में इकट्ठा कर दिया है। हम समझते हैं कि ये स्रूधव नाम की पुस्तक से लिये गये हैं।

होराओं की संख्या।	दिन के होराओं के नाम।	शुभ या अशुभ।	रात में उनके नाम।	शुभ या अशुभ
१	रौद्र।	अशुभ।	कालारात्रि।	अशुभ।
२	सौम्य।	शुभ।	रोधिनी।	शुभ।
३	कराल।	अशुभ।	वैरह्य (?)।	शुभ।
४	सत्त्र्।	शुभ।	त्रासनीय।	अशुभ।
५	वेग।	शुभ।	गूहनीय (?)।	शुभ।
६	विशाल।	शुभ।	माया।	अशुभ।
७	मृत्युसार।	अशुभ।	हमरीय (?)।	शुभ।
८	शुभ।	शुभ।	जीवहरणी।	अशुभ।
९	क्रोड।	शुभ।	शोषिणी।	अशुभ।
१०	चण्डाल।	शुभ।	वृष्णी।	शुभ।
११	कृत्तिका।	शुभ।	दाहरीय (?)।	सबसे ज़ियादा अशुभ।
१२	अमृत।	शुभ।	चान्तिम (?)।	शुभ।

विष्णु-धर्म्म पुस्तक नागों या साँपों में से नाग कुलिक नाम के एक साँप का उल्लेख करती है। नक्षत्रों के होराओं के विशेष भाग उसके प्रभाव के नीचे हैं। वे अशुभ हैं, और उनमें खाई हुई चीज़ दुःख देती है और उससे कुछ लाभ नहीं होता। रोगी लोग जो विषैली ओषधियों से अपना उपचार करते हैं, चङ्गे नहीं होते प्रत्युत मर जाते हैं। उन समयों में साँप के काटे पर कोई मन्त्र-यन्त्र असर नहीं करता, क्योंकि मन्त्र में गरुड के नाम का उल्लेख होता है, और उन अशुभ समयों में, गरुड के नाम का उल्लेख तो क्या, खुद गरुड भी किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकता।

कुलिक सर्प के प्रभाव के नीचे कौनसा समय होता है।

पृष्ठ १७५

ये समय नीचे की सूची में दिखलाये गये हैं जहाँ कि नाक्षत्रिक घंटा १५० भागों का बना हुआ गिना गया है।

होराधिपति।	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
कुलिक के समय के आरम्भ के पहले होरा के १५० भागों की संख्या।	६७	७१	०	०	१७	१४४	८६
उन भागों की संख्या जिनमें कुलिक का प्रभाव बना रहता है।	१६	८	३७	२	२ १ २	६	६४

पैंतीसवाँ परिच्छेद ।

भिन्न भिन्न प्रकार के मासों और वर्षों पर ।

चान्द्रमास का लक्षण ।

स्वाभाविक मास चन्द्रमा के सूर्य के साथ एक संयोग से लेकर दूसरे संयोग तक की अवधि है । हम इसको भौतिक कहते हैं क्योंकि इसका विकास उसी प्रकार होता है जिस प्रकार सारे प्राकृतिक दृश्य चमत्कारों का, जो अभाव-सदृश एक विशेष आरम्भ से पैदा होते हैं, क्रम से फैलते हैं, बढ़ते हैं, और पराकाष्ठा पर पहुँचकर बिलकुल ठहर जाते हैं, तब उतरते हैं, कम होकर घटते हैं, यहाँ तक कि अन्त को जिस अभाव से वे पैदा हुए थे उसी में वापिस चले जाते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा के पिण्ड पर प्रकाश का विकास होता है, क्योंकि वह चन्द्र-हीन रातों के उपरान्त अर्धचन्द्र, फिर (तीसरी रात के बाद) तरुण चन्द्र, और पूर्ण चन्द्र के रूप में दिखाई देता है, और उसके पश्चात् उन्हीं अवस्थाओं में से अन्तिम रात्रि को लौट आता है , जो मानवीय इन्द्रियों की अपेक्षा से हर सूरत में अभाव के सदृश है । चन्द्र-हीन रातों में चन्द्र क्यों कुछ काल तक बना रहता है यह सब किसी को भली भाँति ज्ञात है, पर वह कुछ समय पूर्ण-चन्द्र के रूप में क्यों बना रहता है यह शिक्षित लोगों को भी उतनी अच्छी तरह मालूम नहीं। उनको जानना चाहिए कि चन्द्रमा का पिण्ड सूर्य के पिण्ड के मुक़ाबले में कितना छोटा है, जिसके फल से आलोकित भाग अन्धकारावृत भाग से कई गुना बड़ा होता है , और

यह एक कारण है जिससे चन्द्रमा के लिए कुछ समय तक पूर्णचन्द्र के रूप में दिखाई देना आवश्यक है।

चन्द्रमा का गीले पदार्थों पर विशेष परिणाम होता है, वे साक्षात् उस के प्रभाव के अधीन हैं, उदाहरणार्थ, सागर में ज्वार-भाटे का घटना और बढ़ना नियत कालिक और चन्द्रकला के साथ साथ होता है, ये सब बातें सागर-तटवासियों और नौका-जीवियों को भली भाँति ज्ञात हैं। इसी प्रकार वैद्य लोग भी यह ख़ूब जानते हैं कि इसका रोगियों के रसों पर प्रभाव पड़ता है, और ज्वर के दिन चन्द्रमा की गति के साथ बराबर बराबर घूमते हैं। पदार्थ-विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि पशुओं और पौधों का जीवन चन्द्रमा पर निर्भर है, और प्रयोग-कर्त्ताओं को मालूम है कि इसका असर मस्तिष्क और मज्जा पर, प्यालों और पीपों में पड़ी हुई मदिरा के तलछटों और अण्डों पर होता है, यह पूर्ण चन्द्रिका में सोनेवाले लोगों के मन को उत्तेजित करता, और ज्योत्स्ना में पड़े हुए सन के कपड़ों पर असर डालता है। किसान लोग जानते हैं कि खीरों, ख़रबूज़ों, कपास इत्यादि के खेतों पर चन्द्रमा कैसे असर करता है, और बल्कि वे नाना प्रकार के बीजों के बोने, पौधों के गाड़ने, पैवन्द लगाने, और पशुओं को ढँकने के समयों को भी चन्द्रमा की गति के ही अधीन रखते हैं। अन्ततः पृष्ठ १७६ ज्योतिषी लोग जानते हैं कि ऋतु-सम्बन्धी घटनायें चन्द्रमा के उन विविध रूपों पर आश्रित हैं जिनमें से कि वह अपने परिभ्रमणों में गुज़रता है।

चन्द्रिका के प्रभाव।

यह मास है, और ऐसे बारह मास वैज्ञानिक भाषा में एक चान्द्रवर्ष कहलाते हैं।

स्वाभाविक वर्ष सूर्य के क्रान्ति-मण्डल में घूमने की अवधि है। हम इसको स्वाभाविक इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें उत्पत्ति-क्रम की वे सब अवस्थायें सन्निविष्ट हैं जो कि वर्ष की चार

सौर मास।

ऋतुओं में से घूमती हैं । इसी बीच में, एक काँच के टुकड़े में से गुज़-रती हुई सूर्य की रश्मियाँ और छायायंत्र की छायाएँ वही आकार, वही स्थिति, और वही दिशा पुनः ग्रहण करती हैं जिसमें, या जिससे, वे आरम्भ हुई थीं । यह वर्ष है, और चान्द्र वर्ष के मुक़ाबले में सौर वर्ष कहलाता है । जिस प्रकार चान्द्र मास चान्द्र वर्ष का बार-हवाँ भाग है, उसी प्रकार कल्पना में सौर वर्ष का बारहवाँ भाग एक सौर मास है । इस गणना का आधार सूर्य का माध्यम भ्रमण है । परन्तु यदि उसके परिवर्तनशील भ्रमण के आधार पर गणना की जाय तो एक सौर मास उसके एक राशि में ठहरने का समय है ।

ये दो प्रकार के परम प्रसिद्ध मास और वर्ष हैं ।

चान्द्रसौरगणना पर ।

हिन्दू लोग ग्रहसंयोग को अमावास्या, उसके उलटे को पूर्णिमा, और दो चतुर्थांशों को **अ त व ह** (?) कहते हैं । उनमें से कई तो चान्द्र मासों तथा दिनों के साथ चान्द्र वर्षों का प्रयोग करते हैं, और कई दूसरे चान्द्र वर्ष परन्तु, प्रत्येक राशि के ० अंश से आरम्भ करके, सौर मासों का व्यवहार करते हैं । सूर्य का किसी राशि में प्रवेश करना सङ्क्रान्ति कहलाता है । परन्तु यह चान्द्र-सौर-गणना केवल क़रीबन क़रीबन है । यदि वे इसका निरन्तर उपयोग करें तो वे शीघ्र ही खुद सौर वर्ष और सौर मासों को ग्रहण करने पर प्रवृत्त होंगे । इस मिश्रित प्रणाली का उपयोग करने से उन्हें केवल इतना ही लाभ है कि उन्हें बीच में (कोई दिन) डालने की ज़रूरत नहीं रहती ।

चान्द्रमास का आरम्भ ।

जो लोग चान्द्र मासों का उपयोग करते हैं वे मास का आरम्भ ग्रहयुति या अमावास्या से करते हैं, और यह वैधिक रीति है । दूसरे लोग इसका आरम्भ उसके उलटा या पूर्णिमा से करते हैं । मैंने लोगों को कहते सुना है कि वराहमिहिर शेषोक्त बात

करता है परन्तु अभी तक मैं इसे उसकी पुस्तकों से नहीं मालूम कर सका। पिछली विधि निषिद्ध है। फिर भी यह पुरानी जान पड़ती है क्योंकि वेद कहता है:—"लोग कहते हैं कि चन्द्रमा पूर्ण हो गया है, और उसके पूर्ण होने से मास भी पूरा हो गया है। उनके ऐसा कहने का कारण यह है कि वे न मुझे ही और न मेरे विवरण ही को जानते हैं, क्योंकि जगत् के स्रष्टा ने सृष्टि का आरम्भ शुक्ल पक्ष से किया था न कि कृष्ण पक्ष से।" परन्तु सम्भवतः ये शब्द केवल मनुष्यों के कहे हुए हैं (न कि वस्तुतः वेद से लिया हुआ कोई वाक्य है।)

मास की दो पक्षों में गिनती।

मास के दिनों की गिनती अमावास्या से आरम्भ होती है और पहला चान्द्र दिन **ब र बा** कहलाता है, और फिर पूर्णिमा के साथ गिनती आरम्भ होती है (अर्थात् वे अमावास्या और पूर्णिमा के साथ आरम्भ करके पन्द्रह दिनों को दुबारा गिनते हैं)। प्रत्येक दो दिन जो अमावास्या या पूर्णिमा से समानान्तर पर हैं एक ही नाम (या संख्या) रखते हैं। उनमें, चन्द्रमा के पिण्ड पर प्रकाश और अंधकार बढ़ने और घटने की अनुरूप कलाओं में होते हैं, और एक दिन में चन्द्र के चढ़ने के घंटे दूसरे में उसके डूबने के घंटों के अनुरूप होते हैं। इन समयों को मालूम करने के लिए वे नीचे की गणना का उपयोग करते हैं:—

मास के बीते हुए चान्द्र दिनों को, यदि वे १५ से कम हों, या, यदि वे ज़ियादा हों तो उनके और १५ के बीच के भेद को, प्रस्तुत रात की घटियों से गुणो। गुणन-फल में २ जमा करके योग को १५ पर बाँटो। तब भाग-फल पहली रात, और प्रस्तुत रात में, जो शुक्ल पक्ष की एक रात है, चन्द्र के डूबने के बीच की, या प्रस्तुत रात में, जो कृष्ण पक्ष की एक रात है, चन्द्र के चढ़ने के बीच की घटियों और समय के गौण भग्नांशों की संख्या को प्रकट करता है।

इस गणना का आधार इस बात पर है कि पहली रात और उसी चन्द्रपरिवर्तन-काल की किसी अगली रात में चन्द्रमा के चढ़ने या डूबने के बीच के समय की अवधि में दो मिनटों (घटियों) का फ़र्क़ पड़ जाता है, और रातें बदलती रहती हैं अर्थात् वे या तो तीस घटी से कुछ अधिक या कुछ कम लम्बी होती हैं। इसलिए यदि तुम प्रत्येक अहोरात्र की तीस तीस घटियाँ गिनो और उनके योग को घटियों की आधी संख्या पर बाँटो, तो प्रत्येक अहोरात्र के लिए दो घटी निकलेंगी। परन्तु, उन्होंने अहोरात्रों की संख्या को रात के मान से अर्थात् उसकी घटियों की संख्या से गुणा था, क्योंकि ये दो घटियाँ (मिनट) रातों के भेद से मिलती हैं, किन्तु प्रस्तुत रात की और चन्द्रपरिवर्तन-काल की पहली रात की घटियों के योग के आधे से गुणना अधिक यथार्थ होता। दो घटियों का जमा करना व्यर्थ है, क्योंकि वे उस क्षण को दिखलाती हैं जब कि अर्धचन्द्र पहले पहल दिखाई देता है, किन्तु यदि इस क्षण को मास का आरम्भ मान लिया जाय, तो वे दो घटियाँ ग्रहयुति में चली जायँगी।

पृष्ठ १७७

क्योंकि मास दिनों के बने हुए हैं, इसलिए जितने प्रकार के दिन हैं उतने ही प्रकार के मास हैं। प्रत्येक मास में तीस दिन होते हैं। हम यहाँ नागरिक दिन (सावन परिच्छेद ३३) मान के रूप में उपयोग करेंगे।

विविध प्रकार के मास।

एक कल्प में सूर्य और चन्द्र के परिभ्रमणों की हिन्दू-गणना के अनुसार, एक चान्द्रमास $= २९\frac{१८६००५}{३२६२२२}$ अहोरात्र। यह संख्या कल्प के दिनों की संख्या को इसके चान्द्रमासों की संख्या पर बाँटने से प्राप्त होती है। कल्प के चान्द्र मासों की संख्या कल्प में सूर्य और

चाँद के परिभ्रमणों के बीच के अन्तर अर्थात् ५३४३३३०००००० को प्रकट करती है ।

एक मास के तीस चान्द्र दिन होते हैं क्योंकि यह संख्या वैधिक है जैसे वर्ष के दिनों की संख्या के लिए ३६० की संख्या वैधिक है ।

सौरमास के तीस सौर दिन और $३०\frac{१३६२९८७}{३११०४००}$ नागरिक दिन होते हैं।

पितरों का मास हमारे ३० मासों के बराबर होता है, और इसमें $८८५\frac{१६३४१०}{१७८१११}$ नागरिक दिन होते हैं ।

देवताओं का मास ३० वर्षों के बराबर होता है और इसमें $१०९५७\frac{२४१}{३२०}$ नागरिक दिन होते हैं ।

ब्रह्मा का मास ६० कल्प के बराबर होता है और इसमें ९४६७४९८७०००००० नागरिक दिन होते हैं ।

पुरुष का मास २१६०००० कल्प के बराबर होता है और इसमें ३४०८२९९५३२००००००००० नागरिक दिन होते हैं ।

ख के मास में ९४९७४९८७०००००००००००००००००००००० नागरिक दिन होते हैं ।

इन मासों में से प्रत्येक को बारह से गुणा करने से हमें अनुरूप वर्ष के दिनों की संख्या मिल जाती है ।

विविध प्रकार के वर्ष ।

चान्द्रवर्ष में $३५४\frac{६५३६४}{१७८१११}$ नागरिक दिन होते हैं ।

सौर वर्ष के $३६५\frac{८२७}{३२००}$ नागरिक दिन होते हैं ।

पितरों का वर्ष ३६० चान्द्र मासों, या $१०६३१\frac{१६९१}{१७८१११}$ नागरिक दिनों का होता है ।

देवताओं का वर्ष हमारे ३६० वर्षों, या १३१४९३ $\frac{३}{८०}$ नागरिक दिनों का होता है।

ब्रह्मा के वर्ष में ७२० कल्प या ११३६०९९८४४०००००० नागरिक दिन होते हैं।

पुरुष के वर्ष में २५९२०००० कल्प या ४०८९९५९४३८४०००००००००० नागरिक दिन होते हैं।

ख के वर्ष में ११३६०९९८४४००००००००००००००००००००००००००० नागरिक दिन होते हैं।

इस पिछली संख्या का हिन्दुओं ने उल्लेख किया है, यद्यपि उन की पुस्तकों में लिखा है कि पुरुष के दिन के आगे संख्याओं की कोई संहति नहीं, क्योंकि यह प्रथम और अन्तिम है, अतीत में इसका कोई आरम्भ और भविष्य में इसका कोई अन्त नहीं। अन्य प्रकार के दिन, जिनके (पितरों, देवों, और ब्रह्मा के) मास और वर्ष बने हुए हैं, उन सत्ताओं से सम्बन्ध रखते हैं जो भूतों के क्रम में पुरुष के नीचे हैं, और जिनकी संस्थिति का निश्चय समय की विशेष सीमाओं के द्वारा किया जाता है। पुरुष का दिन उस चीज़ को प्रकट करने के लिए जो आत्मन् से ऊपर है हिन्दू मन का एक विभेद मात्र है, क्योंकि वे पुरुष और आत्मा में, सिवा उस क्रम या अन्वय के जिसमें वे उनको गिनते हैं, कोई भेद नहीं समझते। वे पुरुष का वर्णन सूफ़ियों की सी परिभाषाओं में करते हैं, अर्थात् वह पहला नहीं, और न कोई और चीज़ ही है। संस्थिति की भावना का, विद्यमान वर्तमान काल से दोनों ओर अर्थात् अतीत की ओर जो अब नहीं रहा, और भविष्यत् की ओर जो सम्भवतः आएगा, कल्पना में विस्तार करना, और संस्थिति

पुरुष का दिन।

पृष्ठ १७८

को मापना सर्वथा सम्भव है; और यदि इसके किसी भाग का दिनों द्वारा निश्चय हो सकता है तो कल्पना में भी मासों और वर्षों के रूप में इसका आम्रेडन हो सकता है। इस सारे में हिन्दुओं का संकल्प यह है कि हमें उनके गढ़े हुए वर्षों का सम्बन्ध जीवन की विशेष अवधियों के साथ, आरम्भ का उत्पन्न होने के साथ और अन्त का विनाश और मृत्यु के साथ, करना चाहिए। परन्तु सृष्टि का स्रष्टा परमेश्वर इन दोनों से परे है, और साथ ही अमिश्र पदार्थ (पवन, अग्नि, पृथ्वी, और जल नियत कालिक प्रत्यागमनों में) न उत्पन्न ही और न विनष्ट ही होते हैं। इसलिए हम पुरुष के दिन पर ही ठहर जाते हैं, और समय की इससे भी बड़ी अवधियों के उपयोग की आवश्यकता नहीं समझते।

सप्तर्षि और ध्रुव के वर्षों के विषय में ऐतिह्य।

जो बातें सहज आवश्यकता पर आश्रित नहीं होतीं, वे मतभेद और स्वच्छन्द व्यवस्था के लिए खुला क्षेत्र हैं, जिस से बहुसंख्यक कल्पनायें सुगमता से पैदा हो जाती हैं। उनमें से कुछ एक का विकास तो किसी विशेष नियम और क्रम के अनुसार होता है और कुछ बिना किसी ऐसे नियम के ही बन जाती हैं। पिछली श्रेणी में मैं निम्नलिखित ऐतिह्य की गिनती करता हूँ, परन्तु दुर्भाग्यवश मुझे यह याद नहीं रहा कि किस स्रोत से यह मुझ तक पहुँचा है:—"मनुष्यों के ३३००० वर्ष सप्तर्षि का एक वर्ष होते हैं; मनुष्यों के ३६००० वर्ष ब्रह्मा का एक वर्ष, और मनुष्यों के ९९००० वर्ष ध्रुव का एक वर्ष होते हैं।" परन्तु, ब्रह्मा के वर्ष के विषय में, हमें याद है कि वासुदेव रणक्षेत्र में खड़ी दोनों सेनाओं के बीच अर्जुन से कहता है:—"ब्रह्मा का दिन दो कल्प है;" और ब्रह्म-सिद्धान्त में पराशर के पुत्र व्यास से, और स्मृति नाम की पुस्तक से एक ऐतिह्य है कि कल्प देवक अर्थात् ब्रह्मा का दिन और साथ ही उसकी रात भी

है। फलतः जिस कल्पना का वहाँ उल्लेख हुआ है वह (ब्रह्मा का एक वर्ष ३६००० वर्षों से अनन्त गुना लम्बा होने से) स्पष्टतया अशुद्ध है। फिर ३६००० वर्ष क्रान्ति-मण्डल में स्थिर तारों के एक परिभ्रमण की अवधि हैं, क्योंकि वे १०० वर्ष में एक अंश चलते हैं, सप्तर्षि उन्हीं में से है। परन्तु हिन्दू लोग अपने पौराणिक साहित्य में सप्तर्षि को स्थिर तारों से जुदा बताते हैं और पृथ्वी से उसका इतना अन्तर मानते हैं जो वास्तविक अन्तर से भिन्न है, और इसीलिए वे उसमें ऐसे गुण और अवस्थायें बयान करते हैं जो वास्तव में उसमें नहीं हैं। यदि सप्तर्षि के एक वर्ष से उस कल्पना के कर्त्ता का मतलब उसके एक परिभ्रमण से है तो हम नहीं समझते कि यह दूसरे स्थिर तारों की अपेक्षा क्यों इतनी अधिक शीघ्रता से घूमता है (क्योंकि, उस अवस्था में, उसके पथ का व्यास दूसरों के व्यास से बहुत बड़ा होगा), और यह प्रकृति के नियमों (जिनके अनुसार सारे स्थिर तारे पृथ्वी से एक ही अन्तर पर और एक ही समय में घूमते हैं) का क्यों अपवाद स्वरूप है; और ध्रुव का कोई परिभ्रमण ऐसा नहीं जिसे इसका वर्ष समझा जा सके। इस सारे से मैं इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि इस कल्पना का कर्त्ता वैज्ञानिक शिक्षा से सर्वथा शून्य था, और उन मूर्खों का सरदार था जिन्होंने केवल सप्तर्षि और ध्रुव की पूजा करनेवाले लोगों के लाभार्थ उन वर्षों की कल्पना की थी। उसे वर्षों की एक बहुत बड़ी संख्या की कल्पना इसलिए करनी पड़ी थी, क्योंकि जितनी दुर्दान्त यह संख्या होगी उतना ही इसका अधिक असर होगा।

छत्तीसवाँ परिच्छेद।

काल के चार परिमाणों पर जिन्हें मानकहते हैं।

मान और प्रमान का अर्थ माप है। याकूब इब्न तारिक़ ने अपनी पुस्तक 'गगनमण्डल की रचना' تركيب الافلاك में चार प्रकार के मानों का उल्लेख किया है, परन्तु वह उनको पूरे तौर से नहीं जानता था, और, इसके अतिरिक्त, यदि यह नक़ल करनेवाले का दोष नहीं तो, नामों का वर्णविन्यास भी अशुद्ध है।

वे यह हैं:—

सौर-मान, अर्थात् सूर्य-सम्बंधी माप।

सावन-मान, अर्थात् वह माप जो चढ़ने पर आश्रित है (नागरिक माप)।

चान्द्र-मान, अर्थात् चाँद-सम्बंधी माप।

नक्षत्र-मान, अर्थात् नक्षत्र-सम्बंधी माप।

चारों प्रकार के मान के दिन हैं अर्थात्, अलग अलग प्रकार के दिन हैं, जिनका जब दूसरे दिनों के साथ मुक़ाबला किया जाय तो मान का एक विशेष प्रभेद दिखाई देता है। परन्तु, ३६० की संख्या उन सबमें सामान्य है (प्रत्येक श्रेणी के ३६० दिनों का एक वर्ष होता है)। दूसरे दिनों का निश्चय करने के लिए नागरिक दिनों का परिमाण के तौर पर उपयोग किया जाता है।

चार भिन्न भिन्न प्रकारके वर्षों और दिनों का नाप।

सौर-मान के विषय में यह सभी जानते हैं कि सौर वर्ष में ३६५ $\frac{८२७}{३२००}$ नागरिक दिन होते हैं। इस संख्या

को ३६० पर बाँटने, या इसे १० सेकण्डों ($=\frac{१}{३६०}$ दिन) से गुणने से सौर दिन का मान १ $\frac{५६०९}{३८४०००}$ नागरिक दिन निकलता है।

विष्णु-धर्म्म के अनुसार यह सूर्य के अपनी भुक्ति से गुज़रने का समय है।

सावन-मान पर आश्रित, नागरिक दिन का यहाँ, उस के द्वारा अन्य प्रकार के दिनों को मापने के लिए, दिन-मान के रूप में उपयोग किया गया है। पृष्ठ १७९

चन्द्र-मान पर आश्रित चान्द्र दिन तिथि कहलाता है। चान्द्र वर्ष को ३६० पर, या चान्द्र मास को ३० पर बाँटने से चान्द्र दिन का मान $\frac{५०१६०५१}{३१५५८३२९}$ नागरिक दिन (अशुद्ध है:— $\frac{१०५१९४४३}{१०६८६६६०}$ नागरिक दिन पढ़ो) निकलते हैं।

विष्णु-धर्म्म के अनुसार, यह वह समय है जिसमें चन्द्र, सूर्य से बहुत दूर होने की अवस्था में, दिखाई देता रहता है।

नक्षत्र-मान चन्द्रमा के अपने सत्ताईस नक्षत्रों में से गुज़रने की अवधि, अर्थात् २७ $\frac{११२५०}{३५००२}$ दिन है। यह संख्या वह भागफल है जो कल्प के दिनों को एक कल्प में चन्द्रमा के परिभ्रमणों की संख्या पर बाँटने से प्राप्त होती है। इसको सत्ताईस पर बाँटने से १ $\frac{४१७}{३५००२}$ नागरिक दिन या चन्द्रमा का एक नक्षत्र में से गुज़रने का समय निकल आता है। उसी संख्या को १२ से गुणने से, जैसा हम ने चान्द्र मास के साथ किया है, ३२७ $\frac{१५०५१}{१७५०१}$ नागरिक दिन चन्द्र के अपने सभी नक्षत्रों में से बारह दफ़े गुज़रने के समय के रूप में

निकल आते हैं । पहली संख्या को ३० पर बाँटने से हमें नाक्षत्रिक दिन के मान के रूप में $\frac{३१८७७१}{३५००२०}$ नागरिक दिन मिलते हैं ।

विष्णु-धर्म्म के अनुसार नाक्षत्रिक मास केवल सत्ताईस दिन का होता है, परन्तु दूसरे मानों के मासों में तीस दिन होते हैं ; और यदि वर्ष इन दिनों का बना हुआ हो तो इसमें ३२७ $\frac{१५०५१}{१७५०१}$ दिन होते हैं । यह स्पष्ट है कि विष्णु-धर्म्म के पाठ में कोई दोष है , क्योंकि मास बहुत छोटा गिना गया है ।

सौर-मान, चन्द्र-मान और सावन मान से क्या काम लिया जाता है ।

सौर-मान चतुर्युगी के चार युगों और कल्प के वर्षों की , जन्म-पत्रिकाओं के वर्षों की, विषुवों और अयनांत बिन्दुओं की , ऋतुओं या वर्ष के छठे भागों की , अहोरात्र में दिन और रात के बीच के भेद की गिनती में काम आता है । इन सबकी गिनती सौर वर्षों, मासों, और दिनों में होती है ।

चन्द्र-मान ग्यारह करणों की गिनती में , अधिमास के निर्णय में, ऊनरात्र के दिनों की संख्या के परिसंख्यान में, और चान्द्र और सौर ग्रहणों के लिए अमावास्या और पूर्णिमा के गिनने में काम आता है । इन सबमें हिन्दू चान्द्र वर्षों, मासों, और दिनों का, जिन्हें तिथि कहते हैं, प्रयोग करते हैं ।

सावन-मान वार, अर्थात् सप्ताह के दिनों, और अहर्गण, अर्थात् शाक के दिनों के समाहार की गिनती में ; विवाह और उपवास के दिनों के निश्चय में ; सूतक, अर्थात् प्रसवावस्था के दिनों ; मृतक के घर और बर्तनों की अपवित्रता के दिनों ; चिकित्सा (अर्थात् वे विशेष मास और वर्ष जिनमें हिन्दू आयुर्वेद विशेष ओषधियों के सेवन की आज्ञा देता है); और प्रायश्चित्त (अर्थात् निष्कृति के दिन जिनको ब्राह्मण उन लोगों के लिए अपरिहार्य ठहराते हैं जिन्होंने कोई पाप किया है,

और जिनमें उन लोगों को उपवास करना और शरीर पर गोबर और घृत मलना पड़ता है) का निर्णय करने में काम आता है। सब चीज़ों का निश्चय सावन-मान के अनुसार किया जाता है।

इसके विपरीत, वे नक्षत्र-मान से किसी चीज़ का निश्चय नहीं करते, क्योंकि यह चन्द्र-मान के ही अन्दर है।

समय का कोई भी नाप जिसको लोगों की कोई श्रेणी सर्वसम्मति से दिन कहने लगी, मान समझा जा सकता है। ऐसे कुछ दिनों का किसी पूर्व परिच्छेद (देखो परि०३३) में उल्लेख हो चुका है। परन्तु चार सर्वोत्तम मान वे हैं जिनकी व्याख्या हमने वर्तमान परिच्छेद में की है।

सैंतीसवाँ परिच्छेद ।

मास और वर्ष के विभागों पर ।

चूँकि वर्ष क्रान्तिमण्डल में सूर्य का एक परिभ्रमण है इसलिए यह क्रान्तिमण्डल के सदृश ही बँटा हुआ है। क्रान्तिमण्डल दो अयनान्त बिन्दुओं के आधार पर दो अर्धों में विभक्त है। इसी के अनुरूप वर्ष भी दो अर्धों में विभक्त है जिनको कि अयन कहते हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायन।

मकर-संक्रान्ति को छोड़ने पर सूर्य उत्तर ध्रुव की ओर चलने लगता है। इसलिए वर्ष के इस भाग को, जो कि आधे के लगभग है, उत्तर से सम्बद्ध किया जाता है, और यह उत्तरायण, अर्थात् मकर से शुरू करके छः राशियों में से सूर्य के कूच करने की अवधि, कहलाता है। फलतः क्रान्तिमण्डल के इस अर्ध को मकरादि अर्थात् मकर से शुरू होनेवाला कहते हैं।

पृष्ठ १८०

कर्क-संक्रान्ति के बिन्दु को छोड़ने पर सूर्य दक्षिण ध्रुव की ओर चलना आरम्भ करता है; इसलिए इस दूसरे आधे को दक्षिण से सम्बद्ध किया जाता है, और यह दक्षिणायन, अर्थात् कर्क से शुरू करके छः राशियों में से सूर्य के कूच करने की अवधि, कहलाता है। फलतः क्रान्ति के इस अर्ध को कर्कादि, अर्थात् कर्क से शुरू होनेवाला कहते हैं।

अशिक्षित लोग केवल इन विभागों या वर्षार्धों का ही प्रयोग करते हैं, क्योंकि दो अयनान्त बिन्दुओं की बात उनको अपनी इन्द्रियों के निरीक्षण से साफ़ समझ में आजाती है ।

उत्तर कूल और दक्ष कूल ।

फिर, क्रान्तिमण्डल, भूमध्य-रेखा से अपने झुकाव के अनुसार, दो अर्धों में विभक्त है । यह बाँट अधिक वैज्ञानिक है और पहली बाँट की अपेक्षा सर्वसाधारण को कम ज्ञात है, क्योंकि यह गणना और विचार पर आश्रित है । प्रत्येक अर्ध कूल कहलाता है । जिसका उत्तरी झुकाव है वह उत्तर कूल या मेषादि, अर्थात् जो मेष से शुरू होता है, कहलाता है ; और जिसका दक्षिणी झुकाव है उसे दक्ष कूल या तुलादि, अर्थात् तुला से शुरू होनेवाला, कहते हैं ।

ऋतुयें ।

फिर, क्रान्तिमण्डल इन दोनों बाँटों द्वारा चार भागों में विभक्त है, और वे काल-परिमाण जिनमें सूर्य इनमें से पार जाता है वर्ष की ऋतुयें—वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, और हेमन्त, कहलाती हैं । इसीके अनुसार राशियाँ मौसमों में बँटी हुई हैं । परन्तु, हिन्दू वर्ष को चार में नहीं, प्रत्युत छः भागों में विभक्त करते हैं, और इन छः भागों को ऋतु कहते हैं । प्रत्येक ऋतु दो मास, अर्थात् दो क्रमागत राशियों में से सूर्य के गुज़रने के काल की बनती है । उनके नाम और अधिपति, अत्यन्त प्रचलित सिद्धान्त के अनुसार, नीचे के चित्र में दिखलाये गये हैं ।

मुझे बताया गया है कि सोमनाथ के प्रान्त के लोग वर्ष को तीन भागों में विभक्त करते हैं। प्रत्येक भाग में चार मास होते हैं। पहला भाग, वर्षा-काल, आषाढ मास से आरम्भ होता है ; दूसरा शीत-काल, अर्थात् सरदी का मौसिम ; और तीसरा उष्ण-काल, अर्थात् गरमी है ।

उत्तरायण, जिसका सम्बन्ध देवों से है।				
	ऋतु की राशियाँ।	मकर और कुम्भ।	मीन और मेष।	वृषभ और मिथुन।
	उनके नाम।	शिशिर।	वसन्त या कुसुमाकर।	ग्रीष्म या निदाघ।
	उनके अधिपति	नारद।	अग्नि।	इन्द्र।

				दक्षिणायन जिसका सम्बन्ध पितरों से है।
वृश्चिक और धनु।	कन्या और तुला।	कर्क और सिंह।	ऋतु की राशियाँ।	
हेमन्त।	शरद्।	वर्षकाल।	उनके नाम।	
वैष्णव।	प्रजापति।	विश्वेदेवाः।	उनके अधिपति।	

मैं समझता हूँ कि हिन्दू क्रान्तिमण्डल को चक्र के एक ऐसे द्वार पर बाँटते हैं जो चक्र की परिधि को, दो अयनान्त बिन्दुओं से आरम्भ करके छः भागों में विभक्त करता है। यह मान त्रिज्या के बराबर है, और इसीलिए वे क्रान्तिमण्डल के छठे भागों का उपयोग करते हैं। यदि वास्तव में यही बात है तो हमें यह भूल न जाना चाहिए कि हम भी क्रान्तिमण्डल को कभी तो दो अयनान्त बिन्दुओं से और कभी बिषुवीय बिन्दुओं से आरम्भ करके बाँट देते हैं, और हम क्रान्तिमण्डल के बारहवें भागों में बाँट का उसकी चौथे भागों में बाँट के साथ साथ उपयोग करते हैं।

पृष्ठ १८१

मासों के इकहरे आधों के अधिपति।

मास अमावास्या से लेकर पूर्णिमा तक और पूर्णिमा से अमावास्या तक दो अर्धों में बाँटे हुए हैं। विष्णु-धर्म्म जिस प्रकार मासों के अर्धों के अधिपतियों का उल्लेख करता है वह नीचे की सूची में दिखाया गया है:—

मासों के नाम ।	प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष के अधिपति ।	प्रत्येक मास के कृष्णपक्ष के अधिपति ।
चैत्र ।	त्वष्टृ ।	याम्य ।
वैशाख ।	इन्द्राग्नी ।	आग्नेय ।
ज्यैष्ठ ।	शुक्र ।	रौद्र ।
आषाढ़ ।	विश्वेदेवाः ।	सार्प ।
श्रावण ।	विष्णु ।	पित्र्य ।
भाद्रपद ।	अज ।	सान्त ।
आश्वयुज ।	अशन (?) ।	मैत्र ।
कार्तिक ।	अग्नि ।	शक्र ।
मार्गशीर्ष ।	सौम्य ।	निर्ऋति ।
पौष ।	जीव ।	विष्णु ।
माघ ।	पित्र्य ।	वरुण ।
फाल्गुन ।	भग ।	पूषन् ।

अड़तीसवाँ परिच्छेद।



दिनों के बने हुए काल के विविध मानों पर, इनमें ब्रह्मा की आयु भी है।

पृष्ठ १८२.

दिन को दिमस् (दिमसु), श्रेष्ठ भाषा में दिवस, रात को रात्रि, और दिन-रात को अहोरात्र कहते हैं। काल के इकहरे मानों का संक्षेप। महीना मास और उसका आधा पक्ष कहलाता है। पहला या सफ़ेद आधा शुक्ल पक्ष कहलाता है, क्योंकि इसकी रातों के पहले भागों में जब लोग अभी सोये नहीं होते चन्द्रालोक होता है, और चन्द्रमा के पिण्ड पर प्रकाश बढ़ता और तमोमय अंश घटता है। दूसरा या काला आधा कृष्णपक्ष कहलाता है, क्योंकि इसकी रातों के पहले भाग तमोमय होते हैं, और दूसरे भागों में चन्द्रालोक होता है; परन्तु केवल उसी समय जब कि लोग सो जाते हैं। ये वे रातें होती हैं जिनमें चन्द्रमा के गोले पर प्रकाश घटता और तमोमय अंश बढ़ता है।

दो मासों को मिलाने से एक ऋतु बनती है, परन्तु यह केवल एक क़रीब क़रीब का लक्षण है, क्योंकि जिस मास में दो पक्ष होते हैं वह चान्द्र मास है, और जिसका दूना एक ऋतु होती है वह सौर मास है। छः ऋतुओं का मनुष्यों का एक वर्ष, एक सौर वर्ष, होता है, जिसको बरह या बर्ख या बर्ष कहते हैं। इन तीन आवाज़ों ह, ख, और ष की हिन्दुओं के मुख में बहुत गड़बड़ हो जाती है (संस्कृत वर्ष)।

मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्षों का देवों का एक बरस होता है जो दिब्ब-बरह (दिव्य-वर्ष) कहलाता है, और देवों के १२००० वर्षों का सर्वसम्मति से एक चतुर्युग माना जाता है । केवल चतुर्युग के चार भागों और इसके गुणन के विषय में ही जिनका मन्वन्तर और कल्प बनता है मतभेद है । इस विषय की पूर्ण व्याख्या उचित स्थान (देखो परिच्छेद ४१ तथा ४४) पर की जायगी ।

दो कल्प ब्रह्मा का एक दिन होता है । चाहे हम दो कल्प कहें और चाहे २८ मन्वन्तर, बात एक ही है, क्योंकि ब्रह्मा के ३६० दिन ब्रह्मा का एक वर्ष, अर्थात् ७२० कल्प या १००८० मन्वन्तर होते हैं ।

इसके अतिरिक्त, वे कहते हैं कि ब्रह्मा की आयु उसके १०० वर्ष, अर्थात् ७२००० कल्प या १००८००० मन्वन्तर होती है ।

उपस्थित पुस्तक में हम इस सीमा के आगे नहीं जाते । विष्णु-धर्म्म पुस्तक में मार्कण्डेय का एक ऐतिह्य है । इसमें वज्र के एक प्रश्न का उत्तर मार्कण्डेय इन शब्दों में देता है:—"कल्प ब्रह्मा का एक दिन, और उतनी ही उसकी एक रात होती है । इसलिए ७२० कल्पों का उसका एक वर्ष होता है, और उसकी आयु ऐसे १०० वर्षों की होती है । ये १०० वर्ष पुरुष का एक दिन होते हैं और इतनी ही उसकी रात होती है । परन्तु पुरुष के पहले अभी कितने ब्रह्मा गुज़र चुके हैं यह बात सिवा उस व्यक्ति के और कोई नहीं जानता जो गङ्गा की रेत को या वर्षा के बिन्दुओं को गिन सकता है ।"

उनतालीसवाँ परिच्छेद ।

काल के उन परिमाणों पर जो ब्रह्मा की आयु से बड़े हैं ।

समय के सबसे बड़े परिमाणों के विषय में पद्धति का अभाव ।

जो बातें क्रमहीन हैं, जो इस पुस्तक के पूर्ववर्ती भागों में वर्णित नियमों के विरुद्ध हैं वे सब हमारी प्रकृति को बीभत्स और हमारे कानों को अप्रिय मालूम होती हैं। परन्तु हिन्दू एक ऐसी जाति है जो बहुत से ऐसे नामों का उल्लेख करती है जो सबके सब—जैसा कि उनका मत है—**एक, आदि** (परमेश्वर) के या उसके पीछे किसी और के, जिसकी ओर सङ्केत मात्र किया गया है, बोधक होते हैं। जब वे इस प्रकार के परिच्छेद पर आते हैं तो वे उन्हीं नामों को दुहराते हैं जो कि बहुसंख्यक सत्ताओं के सूचक हों, और उनके लिए आयु नियत करते और बड़ी बड़ी संख्याओं की कल्पना करते हैं। बस केवल इस पिछली चीज़ की ही उन्हें आवश्यकता है; वे इसका अतिशय स्वतंत्रता के साथ उपयोग करते हैं, और संख्यायें तितिक्षु हैं, जहाँ उन्हें रख लो वहीं खड़ी रहती हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी ऐसा विषय नहीं जिस पर स्वयं हिन्दुओं का आपस में एक मत हो, और यह बात हमें इसका प्रयोग ग्रहण करने से रोकती है। इसके विपरीत, काल के इन काल्पनिक परिमाणों पर उतना ही मतभेद है जितना दिन के उन विभागों पर जो प्राण से कम हैं (देखो परिच्छेद ३४)।

उत्पल कृत स्पूधव नाम की पुस्तक कहती है कि "एक मन्वन्तर राजा इन्द्र की आयु है, और २८ मन्वन्तर पितामह अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन होते हैं। उसका जीवन १०० वर्ष, या केशव का एक दिन है। केशव की आयु सौ वर्ष, या महादेव का एक दिन है। महादेव की आयु १०० वर्ष, या ईश्वर का एक दिन है। ईश्वर परमात्मा के निकट है और उसकी आयु १०० वर्ष, या सदाशिव का एक दिन है। सदाशिव की आयु १०० वर्ष, या सनातन विरञ्चन का एक दिन है। विरञ्चन अमर है और पहली पाँच सत्ताओं के नष्ट हो जाने के उपरान्त भी बना रहता है।"

पृष्ठ १८३.
कल्पों द्वारा निश्चित काल के सबसे बड़े मान।

हम अभी कह चुके हैं कि ब्रह्मा की आयु ७२००० कल्प की होती है। जिन संख्याओं का हम यहाँ उल्लेख करेंगे वे सब कल्प हैं।

ब्रह्मा की आयु को केशव का एक दिन मान कर तीन सौ साठ दिन के बने हुए उसके एक वर्ष के २५९२०००० कल्प, और उसकी आयु के २५९२०००००० कल्प होते हैं। कल्पों की यह पिछली संख्या महादेव का १ दिन है; इसलिए, उसकी आयु, ९३३१२००००००.०० कल्प होती है। यह पिछली संख्या ईश्वर का १ दिन है; इसलिए उसकी आयु ३३५९२३२०००००००००००० कल्प हुई। यह पिछली संख्या सदाशिव का एक दिन है, इसलिए उसकी आयु १२०९३२३५२००००००००००००००० कल्प हुई। यह पिछली संख्या विरञ्चन का एक दिन है, जिसका कि परार्धकल्प सापेक्ष रूप से केवल एक बहुत थोड़ा अंश है।

इन गणनाओं का स्वरूप चाहे कुछ ही हो, प्रकट रूप से दिन और शतक ही ऐसे तत्त्व हैं जिनसे यह सब कुछ आदि से अन्त तक बनाया गया है। परन्तु, दूसरे लोग दिन के पूर्वोल्लिखित छोटे छोटे अंशों पर अपनी पद्धति बनाते

उसीका त्रुटियों द्वारा निर्णय।

हैं (परिच्छेद ३४ में)। फलतः उनका अपनी रचना के विषय में आपस में मतभेद पाया जाता है, क्योंकि जिन अंशों को लेकर वे रचना करते हैं वे अंश ही भिन्न भिन्न होते हैं। हम यहाँ इस प्रकार की एक पद्धति देंगे। इसको उन लोगों ने गढ़ा है जो निम्नलिखित मान-पद्धति का प्रयोग करते हैं:—

१ घटी = ६० कला।
१ कला = ३० काष्ठा।
१ काष्ठा = ३० निमेष।
१ निमेष = २ लव।
१ लव = २ त्रुटि।

इस प्रकार के विभाग का कारण, उनके मतानुसार, यह है कि शिव का दिन इसी प्रकार के कणों का बना हुआ है; क्योंकि ब्रह्मा की आयु हरि, अर्थात् वासुदेव की एक घटी है। वासुदेव की आयु १०० वर्ष, या रुद्र अर्थात् महादेव की एक कला है; महादेव की आयु सौ वर्ष, या ईश्वर की एक काष्ठा है; ईश्वर की आयु १०० वर्ष, या सदाशिव का एक निमेष है; सदाशिव की आयु १०० वर्ष, या शक्ति का एक लव है; शक्ति की आयु १०० वर्ष, या शिव की एक त्रुटि है।

अब, यदि, ब्रह्मा की आयु
७२००० कल्प है, तो
नारायण की आयु,
१५५५२००००००० कल्प;
रुद्र की आयु,
५३७४७७१२०००००००००० कल्प;

ईश्वर की आयु,

५५७२५६२७८०१६०००००००००००००००००० कल्प ;

सदाशिव की आयु,

१७३३२८९९२७१४०९६६४००००००००००००००००००००००००-
०० कल्प;

शक्ति की आयु,

१०७८२४४९९७८७५८५२३७८११२००००००००००००००००-
०००००००००००००० कल्प है ।

यह पिछली संख्या एक त्रुटि को प्रकट करती है ।

यदि तुम उपर्युक्त पद्धति के अनुसार इसका एक दिन बनाओ तो इसमें ३७२६४१४७१२६५८९४५८१८७५५०७२०००००००००००-
००००००००००००००००००००००० कल्प होते हैं। यह पिछली संख्या शिव का एक दिन है। शिव को वे सनातन, उत्पन्न होने और सन्तान उत्पन्न करने से मुक्त, और उन सर्वगुणों और विशेषणों से रहित वर्णन करते हैं जिनका प्रयोग सृष्ट पदार्थों पर हो सकता है। यह सबसे पिछली संख्या अङ्क के छप्पन क्रमों (अर्थात् इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, इत्यादि इत्यादि) को दिखलाती है; परन्तु यदि उन कल्पनाकारियों ने गणित का अध्ययन अधिक प्रयत्न से किया होता तो वे ऐसी दुर्दान्त संख्याओं की कल्पना न करते । परमेश्वर ख़याल रखता है कि कहीं उनके वृक्ष बढ़ कर आकाश में न पहुँच जायँ !

चालीसवाँ परिच्छेद ।



काल की दो अवधियों के मध्यवर्ती अन्तर-संधि--पर जो उन दोनों में जोड़नेवाली शृङ्खला है ।

वास्तविक सन्धि दिन और रात के बीच का अन्तर है, अर्थात् प्रातः अरुण, जिसको सन्धि-उदय अर्थात् सूर्य के उदय होने की सन्धि, और सायँ अरुण, जिसको सन्धि अस्तमन, अर्थात् सूर्य के डूबने की सन्धि कहते हैं । हिन्दुओं को एक धार्म्मिक हेतु से उनका प्रयोजन है, क्योंकि ब्राह्मण लोग इनमें स्नान करते हैं, और इन दोनों के बीच मध्याह्न में भी भोजन के लिए नहाते हैं, जिससे कोई अदीक्षित व्यक्ति यह परिणाम निकाल सकता है कि एक तीसरी सन्धि भी होती है । परन्तु जो मनुष्य इस विषय को यथार्थ रीति से जानता है वह संधियों की संख्या दो से अधिक कभी नहीं मानता ।

पृष्ठ १८४, दो संधियों की व्याख्या ।

दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु के विषय में पुराण यह कथा बयान करते हैं:—

चिर काल तक तपस्या करने से उसने यह वर पाया था कि तुम्हारी प्रत्येक प्रार्थना स्वीकार हो जायगी । उसने अमर जीवन माँगा, परन्तु उसे दीर्घ जीवन मिला, क्योंकि अमरत्व केवल जगत्-कर्त्ता परमेश्वर का ही गुण है । अपनी मनोरथसिद्धि न देखकर उसने कामना की कि मैं न मनुष्य के हाथ से, न देवता के हाथ से, और न दैत्य के हाथ से मारा जाऊँ, और मेरी मृत्यु न पृथ्वी

राजा हिरण्यकशिपु और उसके पुत्र प्रह्लाद की कथा ।

पर हो न आकाश में, न रात में हो और न दिन में। ऐसी शर्तों से उसका उद्देश मृत्यु से, जो मनुष्य के लिए अनिवार्य है, बचने का था। उसकी इच्छा पूरी कर दी गई।

इस इच्छा को देखकर शैतान की इच्छा स्मरण हो आती है कि उसे पुनरुत्थान के दिन तक जीवित रहने दिया जाय, क्योंकि उस दिन सभी प्राणी मृत्यु से जी उठेंगे। परन्तु उसे अपने उद्देश में सफलता न हुई, क्योंकि उसे परम प्रसिद्ध काल के दिन तक ही, जिसके विषय में कहा गया है कि यह कष्टों का अन्तिम दिन है, जीवित रहने की आज्ञा मिली।

राजा का प्रह्लाद नामक एक पुत्र था। जब वह बड़ा हुआ तो राजा ने उसे एक अध्यापक के सिपुर्द कर दिया। एक दिन राजा ने पुत्र को अपने पास बुलाकर पूछा कि तुमने क्या कुछ पढ़ा है। अब लड़के ने उसे एक कविता सुनाई जिसका अर्थ यह था कि केवल विष्णु का ही अस्तित्व है, शेष सब वस्तुएँ माया हैं। यह बात पिता के विचारों के बहुत विरुद्ध थी, क्योंकि वह विष्णु से घृणा करता था। इसलिए उसने आज्ञा दी कि लड़का किसी दूसरे अध्यापक के सिपुर्द किया जाय, और उसे मित्र और वैरी की पहचान सिखलाई जाय। अब विशेष काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त जब उसने उसकी फिर परीक्षा की तो लड़के ने उत्तर दिया, "जो कुछ आपने आज्ञा दी है वह मैंने सीख लिया है, पर मुझे उसकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि मेरी सभी से एक सी मित्रता है, शत्रुता किसी से नहीं।" इस पर उसका पिता बहुत अप्रसन्न हुआ, और उसने लड़के को विष देने की आज्ञा दी। लड़के ने परमेश्वर के नाम से विष खा लिया, और विष्णु का ध्यान करने लगा, और देखिए, इससे उसका बाल बाँका न हुआ! उसका पिता बोला, "क्या तुम टोना-जादू और मंत्र-यंत्र जानते हो?" लड़के

ने उत्तर दिया, "नहीं, परन्तु जिस जगदीश्वर ने मुझे उत्पन्न करके तुझे दिया है वह मेरी रखवाली करता है।" अब राजा का क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने आज्ञा दी कि यह गहरे समुद्र में फेंक दिया जाय। परन्तु समुद्र ने उसे फिर बाहर फेंक दिया, और वह अपने स्थान को लौट आया। तब वह राजा के सामने एक बहुत बड़ी धधकती हुई आग में फेंका गया, पर इससे उसका कुछ न बिगड़ा। ज्वाला में खड़ा होकर वह अपने पिता के साथ परमेश्वर और उसकी शक्ति पर बातचीत करने लगा। जब लड़के ने अकस्मात् यह कह दिया कि विष्णु प्रत्येक स्थान में है तो उसका पिता बोला, "क्या वह द्वारमण्डप के इस स्तम्भ में भी है?" लड़का बोला, "हाँ।" तब उसके पिता ने उछल कर स्तम्भ पर प्रहार किया, जिस पर उसमें से नरसिंह निकला, जिसका धड़ मनुष्य का और सिर सिंह का था, इसलिए वह न मनुष्य, न देवता, और न दैत्य था। अब राजा और उसके आदमी नरसिंह के साथ लड़ने लगे। नरसिंह ने उन्हें ऐसा करने दिया क्योंकि दिन था। परन्तु जब सायँकाल होने लगा, और वे सन्धि या संध्या में हुए, जब न दिन था और न रात, तब नरसिंह ने राजा को पकड़ कर वायु में उठा लिया और उसे वहीं मार डाला; इसलिए वह न पृथ्वी पर था और न आकाश में। राजकुमार आग से बाहर निकाल लिया गया और वह उसके स्थान में राज्य करने लगा।

सन्धि का फलित-ज्योतिष में उपयोग। वराहमिहिर का अवतरण।

हिन्दु फलित-ज्योतिषियों को दो सन्धियों की इसलिए आवश्यकता है क्योंकि कई राशियाँ अतीव प्रबल प्रभाव डालती हैं, जैसा हम बाद को उचित स्थान पर वर्णन करेंगे। वे उनका उपयोग किंचित् बाह्य रीति से करते हैं। वे केवल प्रत्येक सन्धि का काल एक मुहूर्त्त = दो घटी = ४८ मिनट गिनते हैं। परन्तु वराहमिहिर जैसे सर्वोत्कृष्ट ज्योतिषी ने सदा केवल

दिन और रात का उपयोग किया है, और सन्धि के विषय में जन-साधारण के मत का अनुसरण नहीं किया। उसने सन्धि को ठीक वैसा ही वर्णन किया है जैसा कि वास्तव में वह है, अर्थात् वह समय जब सूर्य के पिण्ड का केन्द्र आकाश-कक्षा के ठीक ऊपर स्थित होता है, पृष्ठ १८५ और इस समय को वह विशेष राशियों की बड़ी से बड़ी शक्ति का समय प्रतिष्ठित करता है।

वर्षार्द्ध की सन्धि और अयनचलन के साथ उसकी संहृति पर। अन्य प्रकार की सन्धियाँ।

स्वाभाविक दो दिन की सन्धियों के अतिरिक्त, ज्योतिषी और दूसरे लोग और तरह की सन्धियाँ भी मानते हैं जिनका आधार कोई प्राकृतिक नियम या निरीक्षण नहीं, प्रत्युत केवल कोई उपन्यास होता है। इस प्रकार वे प्रत्येक अयन, अर्थात् प्रत्येक वर्षार्ध की, जिसमें सूर्य चढ़ता और उतरता है, सन्धि मानते हैं। यह सन्धि उसके वास्तविक आरम्भ के पहले सात दिन की होती है। इस विषय पर मेरी एक कल्पना है जो निश्चय से सम्भव, प्रत्युत सम्भाव्य है, अर्थात् यह सिद्धान्त प्राचीन काल का नहीं, प्रत्युत हाल ही की उपज है, और यह सिकन्दर के १३०० के क़रीब (=९८९ ईसवी) पेश किया गया है जब हिन्दुओं को यह मालूम हुआ कि वास्तविक क्रान्ति उनकी गणना की क्रान्ति से पहले होती है। क्योंकि लघुमानस का कर्त्ता पुञ्जल कहता है कि शक काल के सन् ८५४ में वास्तविक क्रान्ति मेरी गणना से ६° ५०′ पहले थी, और यह भेद प्रतिवर्ष एक एक मिनट बढ़ता जायगा।

ये एक ऐसे मनुष्य के शब्द हैं जो या तो स्वयं एक बहुत बड़ा सावधान और व्यवहारज्ञ आलोचक था, या जिसने अपने पूर्ववर्ती ज्योतिषियों के अवलोकनों की, जो उसके पास थे, परीक्षा की थी, और वहाँ से वार्षिक भेद का परिमाण मालूम किया था। निस्सन्देह दूसरे लोगों ने भी वही या वैसा ही भेद मध्याह्न छाया की गणना के

द्वारा मालूम किया है। इसलिए (क्योंकि यह विवेचना पहले ही बहुत प्रसिद्ध थी) कश्मीर के उत्पल ने यह सिद्धान्त पुञ्जल से लिया है ।

मेरे इस अटकलपच्चु अनुमान की पुष्टि इस बात से भी होती है कि हिन्दू लोग सन्धियों को वर्ष की छः ऋतुओं में से प्रत्येक के पहले रखते हैं, जिसके फल से वे पहले ही अगली पूर्ववर्ती राशियों के तेईसवें अंश से आरम्भ करते हैं।

हिन्दू दो भिन्न भिन्न युगों के बीच और मन्वन्तरों के बीच भी सन्धि मानते हैं; किन्तु चूँकि इस कल्पना का आधार आनुमानिक है इसलिए इससे निकाली हुई प्रत्येक बात भी आनुमानिक है। हम उचित स्थान पर इन बातों की पर्याप्त व्याख्या करेंगे।

———

इकतालीसवाँ परिच्छेद ।

"कल्प" तथा "चतुर्युग" की परिभाषाओं के लक्षण, और एक का दूसरी के द्वारा स्पष्टीकरण ।

चतुर्युग और कल्प का मान ।

बारह सहस्र दिव्य वर्ष का, जिनकी लम्बाई पहले बता चुके हैं (परिच्छेद ३५), एक चतुर्युग, और १०० चतुर्युग का एक कल्प होता है; कल्प वह अवधि है जिसके आदि और अन्त में मेषराशि के०° में सात तारों और उनके उच्च नीच स्थानों और पातों का संयोग होता है । कल्प के दिनों को कल्प अहर्गण कहते हैं, क्योंकि अह् का अर्थ दिन और गण का अर्थ समूह है । चूँकि वे सूर्य के उदय से निकाले हुए नागरिक दिन हैं, इसलिए इनको पृथ्वी के दिन भी कहते हैं, क्योंकि सूर्योदय के लिए पहले दिङ्मण्डल मानना आवश्यक है, और दिङ्मण्डल पृथ्वी का एक प्रयोजनीय गुण है ।

इसी कल्प-अहर्गण नाम से लोग विशेष तिथि तक प्रत्येक शाक के दिनों के समूह को भी पुकारते हैं ।

हमारे मुसलिम लेखक कल्प के दिनों को सिन्द-हिन्द के दिन या जगत् के दिन कहते हैं, और उनकी गिनती १५७७९१६४५०००० दिन (सावन या नागरिक दिन), या ४३२०००००००० सौर वर्ष, या ४४५२७७५००० चान्द्र वर्ष करते हैं । दिनों की उसी संख्या को ३६० नागरिक दिनों के वर्षों में बदलने से ४३८३१०१२५० वर्ष, और १२०००००० दिव्य वर्ष बनते हैं ।

आदित्य पुराण कहता है:—"कल्पन कल, जिसका अर्थ संसार में जातियों का अस्तित्व है, और पन जिसका अर्थ उनका विनाश और लोप है, का बना है। इस भाव और विनाश की समष्टि कल्प है।"

ब्रह्मगुप्त कहता है:—"चूँकि ब्रह्मा के दिन के आरम्भ में जगत् में मनुष्यों और ग्रहों का जन्म हुआ, और चूँकि वे दोनों इसके अन्त में नष्ट हो जाते हैं, इसलिए हमें उनके अस्तित्व के इस दिन को, किसी अन्य अवधि को नहीं, कल्प मानना चाहिए।"

एक दूसरे स्थल पर वह कहता है:—"एक सहस्र चतुर्युग देवक, अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन होता है, और उसकी रात भी उतनी ही लम्बी होती है। इसलिए उसका दिन २००० चतुर्युग के बराबर है।"

पृष्ठ १८६

इसी प्रकार पराशर का पुत्र व्यास कहता है:—"जो १००० चतुर्युग का दिन और १००० चतुर्युग की रात मानता है वह ब्रह्मा को जानता है।"

मन्वन्तर और कल्प का आपस में सम्बन्ध।

एक कल्प की अवधि के अन्दर ७१ चतुर्युग १ मनु, अर्थात् मन्वन्तर या मनु-अवधि के बराबर, और १४ मनु १ कल्प के बराबर होते हैं। ७१ को १४ से गुणा करने से १४ मन्वन्तरों के ९९४ चतुर्युग बनते हैं, और कल्प के अन्त तक ६ चतुर्युग बाक़ी रहते हैं।

परन्तु, यदि हम १४ मन्वन्तरों में से प्रत्येक के आदि और अन्त दोनों पर सन्धि मालूम करने के लिए इन ६ चतुर्युगों को १५ पर बाँटें तो, सन्धि की संख्या मन्वन्तरों की संख्या से १ अधिक होने के कारण, भाग फल $\frac{2}{5}$ वाँ होता है। अब यदि हम प्रत्येक दो क्रमागत मन्वन्तरों के बीच $\frac{2}{5}$ चतुर्युग डालें, और यही संख्या पहले मन्वन्तर के आरम्भ और अन्तिम मन्वन्तर के अन्त में जोड़ दें तो

१५ मन्वन्तरों के अन्त में $\frac{२}{५}$ का अपूर्णाङ्क लोप हो जाता है ($\frac{२}{५}$ × १५ = ६)। कल्प के आदि और अन्त के अपूर्णाङ्क सन्धि, अर्थात् साधारण शृङ्खला को दिखलाते हैं। एक कल्प में, इसकी सन्धि सहित, १००० चतुर्युग होते है, जैसा हमने इस परिच्छेद के प्रथम भाग में कहा है।

कल्प के इकहरे भागों का एक दूसरे से स्थिर सम्बन्ध है, एक भाग दूसरे भाग के विषय में साक्षी है। क्योंकि कल्प का आरम्भ महाविषुव, आदित्यवार, ग्रहयुति, ग्रहों के उच्च नीच स्थानों और पातों से होता है। यह शर्तें ऐसे स्थान में पूरी होती हैं जहाँ न रेवती हो और न अश्विनी, अर्थात् उनके बीचों-बीच, चैत्र मास के आरम्भ में, और सूर्य के लङ्का के ऊपर चढ़ने के समय। यदि इन शर्तों में से किसी एक में भी अनियम हो तो शेष सबमें गड़बड़ हो जाती है और वे समर्थनीय नहीं रहतीं।

कल्प के आरम्भ की शर्तें।

कल्प के वर्षों और दिनों की संख्या का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। तदनुसार एक चतुर्युग में, कल्प का $\frac{१}{१०००}$ वाँ भाग होने से, १५७७९१६४५० दिन और ४३२०००० वर्ष होते हैं। ये संख्यायें कल्प और चतुर्युग के बीच के सम्बन्ध को प्रकट करतीं, और इस के अतिरिक्त एक को दूसरे के द्वारा स्थिर करने की रीति को दिखलाती हैं।

इस परिच्छेद का हमारा सारा कथन ब्रह्मगुप्त की कल्पना और इस कल्पना की पुष्टि में उसकी युक्तियों पर निर्भर करता है।

बड़ा आर्यभट और पुलिश ७२ चतुर्युगों का एक मन्वन्तर और १४ मन्वन्तरों का एक कल्प बनाते हैं। वे इनके बीच कहीं संधि नहीं डालते। इसलिए, उनके मतानुसार,

छोटे आर्यभट, पुलिश, और बड़े आर्यभट की कल्पनायें।

एक कल्प में १००८ चतुर्युग; या १२०९६००० दिव्य वर्ष या ४३५४-५६०००० मानव-वर्ष होते हैं।

पुलिश के मतानुसार एक चतुर्युग में १५७७९१७८०० नागरिक दिन होते हैं। इसलिए उसके अनुसार एक कल्प के दिनों की संख्या १५९०५४१११४२४०० होगी। ये वे संख्यायें हैं जिनका प्रयोग वह अपनी पुस्तक में करता है।

मुझे आर्यभट की पुस्तकों का कुछ भी पता नहीं लग सका। उसके विषय में जो कुछ मुझे मालूम है वह ब्रह्मगुप्तके दिये हुए उसके अवतरणों द्वारा मालूम है। ब्रह्मगुप्त "शास्त्र के आधार पर गुणदोषविवेचक अन्वेषण" नाम के एक प्रबंध में कहता है कि आर्यभट के अनुसार चतुर्युग के दिनों की संख्या १५७७९१७५००, अर्थात् पुलिश की बताई संख्या से ३०० दिन कम है। इसलिए आर्यभट के अनुसार कल्प के १५९०५४०८४०००० दिन होंगे।

आर्यभट और पुलिश के अनुसार, कल्प और चतुर्युग का आरम्भ उस मध्यरात्रि से होता है जो उस दिन के बाद आती है जिसका आरम्भ ब्रह्मगुप्त के मतानुसार, कल्प का आरम्भ है।

कुसुमपुर का आर्यभट, जो बड़े आर्यभट का अनुयायी है, अलन्त्फ़ (?) पर अपनी एक छोटी पुस्तक में कहता है, कि "१००८ पृष्ठ ५८१ चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होते हैं। ५०४ चतुर्युगों का पहला आधा जिसमें सूर्य ऊपर को चढ़ता है उत्सर्पिणी कहलाता है, और दूसरा आधा जिसमें सूर्य उतरता है अवसर्पिणी कहलाता है। इस अवधि के मध्य को सम, अर्थात् बराबरी कहते हैं, क्योंकि यह दिन का मध्य है और दोनों सिरे दुर्तम (?) कहलाते हैं।"

जहाँ तक दिन और कल्प के बीच की तुलना का सम्बन्ध है वहाँ तक तो यह दुरुस्त है, परन्तु सूर्य के ऊपर को चढ़ने और उतरने की

बात सत्य नहीं। यदि उसका मतलब उस सूर्य से है जो हमारा दिन बनाता है तो इस बात का स्पष्ट करना उसका कर्तव्य था कि सूर्य का यह चढ़ना और उतरना किस प्रकार का है; परन्तु यदि उसका अभिप्राय किसी ऐसे सूर्य से है जिसका ब्रह्मा के दिन से विशेष सम्बन्ध है तो यह उसका कर्तव्य था कि वह उस सूर्य को हमें दिखाता या हमारे पास उसका वर्णन करता। मैं समझता हूँ इन दो बयानों से लेखक का मतलब यह है कि इस अवधि के पहले आधे में चीज़ों का क्रमिक, वर्धमान विकास, और दूसरे आधे में प्रतीप, ह्रास होता है।

बयालीसवाँ परिच्छेद ।

चतुर्युग की युगों में बाँट, और युगों के विषय में भिन्न भिन्न सम्मतियाँ ।

विष्णु-धर्म्म का रचयिता कहता है; "बारह सौ दिव्य वर्षों का एक युग होता है जिसको कि तिष्य कहते हैं। इस का दूना द्वापर, तिगुना त्रेता, चौगुना कृत और चारों युगों का एक चतुर्युग होता है।

विष्णु-धर्म्म और ब्रह्मगुप्त के अनुसार चतुर्युग के अकेले अकेले भाग।

"इकहत्तर चतुर्युगों का एक मन्वन्तर, और प्रत्येक दो मन्वन्तरों के बीच एक कृतयुग की संस्थिति की सन्धि के सहित १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। दो कल्प ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है, और उस की आयु एक सौ वर्ष या पुरुष अर्थात् आदि मनुष्य का एक दिन होता है। इस पुरुष का न आदि और न अन्त मालूम है।"

यही बात जल के अधिपति, वरुण, ने प्राचीन काल में दशरथ के पुत्र, राम, को बताई थी, क्योंकि वह इन बातों को पूर्ण रीति से जानता था। भार्गव, अर्थात् मार्कण्डेय ने भी, जिसे समय का ऐसा पूर्ण ज्ञान था कि वह प्रत्येक संख्या पर सुगमता से अधिकार कर लेता था, यही जानकारी दी थी। हिन्दुओं के लिए यह मृत्यु के देवता के सदृश है, जो, अप्रतिधृष्य (अप्रतिकार्य) होने से, उनको अपने बैठने की गद्दी के साथ मारता है।

ब्रह्मगुप्त कहता है:—"स्मृति नामक पुस्तक कहती है कि ४००० देवक वर्षों का एक कृतयुग होता है, किन्तु ४०० वर्ष की एक

सन्धि और ४०० वर्ष के सन्ध्यांश को मिलाकर कृतयुग के ४८०० देवक वर्ष होते हैं।

"तीन सहस्र वर्ष का एक त्रेतायुग होता है, परन्तु, सन्धि और सन्ध्यांश को साथ मिलाकर, जिनमें से प्रत्येक तीन तीन सौ वर्ष का होता है, त्रेतायुग में ३६०० वर्ष होते हैं।

"दो सहस्र वर्ष का एक द्वापर होता है, किन्तु सन्धि और संध्यांश को साथ मिलाकर, जिनमें से प्रत्येक दो दो सौ वर्ष का होता है, एक द्वापर में २४०० वर्ष होते हैं।

"एक सहस्र वर्ष का एक कलि होता है, किन्तु संधि और संध्यांश को साथ मिलाकर, जिनमें से प्रत्येक सौ सौ वर्ष का होता है, एक कलियुग में १२०० वर्ष होते हैं।"

यह ब्रह्मगुप्त का दिया हुआ स्मृति नाम्नी पुस्तक का अवतरण है।

इकहरे युगों की संस्थिति।

"दिव्य वर्षों को ३६० से गुणा करने से मानुष-वर्ष बन जाते हैं। तदनुसार चार युगों में निम्नलिखित मानव-वर्ष होते हैं:—

एक कृतयुग में	१४४००००	वर्ष अपने,
इनके अतिरिक्त	१४४०००	,, सन्धि के,
और	१४४०००	,, सन्ध्यांश के होते हैं।
योग	१७२८०००	वर्ष = एक कृतयुग।
एक त्रेतायुग में	१०८००००	वर्ष अपने,
इनके अतिरिक्त	१०८०००	,, संधि के,
और	१०८०००	,, सन्ध्यांश के होते हैं।
योग	१२९६०००	वर्ष = एक त्रेतायुग।

पृष्ठ १८८

एक द्वापर में	७२००००	वर्ष अपने,

इनके अतिरिक्त	७२०००	वर्ष सन्धि के,
और	७२०००	,, सन्ध्यांश के होते हैं।
योग	८६४०००	वर्ष = एक द्वापर।
एक कलि में	३६००००	वर्ष अपने,
इनके अतिरिक्त	३६०००	,, सन्धि के,
और	३६०००	,, सन्ध्यांश के होते हैं।
योग	४३२०००	वर्ष = एक कलियुग।

"कृत और त्रेता का योग ३०२४००० वर्ष होता है, और कृत, त्रेता, और द्वापर का जोड़ ३८८८००० वर्ष।"

आगे चलकर ब्रह्मगुप्त कहता है:—"आर्यभट चार युगों को चतुर्युग के चार समान भाग समझता है। इस प्रकार पूर्वोक्त स्मृति नाम्नी पुस्तक के सिद्धान्त से उसका मतभेद है, और जिसका हमसे मतभेद है वह विरोधी है।" इसके विपरीत, पौलिस जो कुछ करता है उसके लिए ब्रह्मगुप्त उसकी प्रशंसा करता है, क्योंकि उसका स्मृति नाम्नी पुस्तक से मतभेद नहीं; क्योंकि वह कृतयुग के ४८०० वर्षों में से १२०० निकाल देता है, और अवशेष को और भी ज़ियादा हटाता जाता है यहाँ तक कि ऐसे युग निकल आते हैं जो स्मृति के युगों से मिलते हैं, और सन्धि तथा सन्ध्यांश से रहित हैं। स्मृति के ऐतिह्य के सदृश यूनानियों की कोई चीज़ नहीं, क्योंकि वे समय को युगों, मन्वन्तरों, या कल्पों से नहीं मापते।

ब्रह्मगुप्त द्वारा दिये हुए आर्यभट तथा पुलिश के अवतरण।

यह तो हुई ब्रह्मगुप्त के अवतरण की बात।

यह बात भली भाँति विदित है कि पूर्ण चतुर्युग के वर्षों की संख्या के विषय में कोई भी मतभेद नहीं। इसलिए, आर्यभट के अनुसार, कलियुग में ३००० दिव्य वर्ष या १०८०००० मानुष वर्ष होते हैं।

प्रत्येक दो युगों में ६००० दिव्य वर्ष या २१६०००० मनुष्य-वर्ष होते हैं। प्रत्येक तीन युगों में ६००० दिव्य वर्ष या ३२४०००० मनुष्य-वर्ष होते हैं।

पौलिस का नियम ।

एक ऐतिह्य है कि पौलिस अपने सिद्धान्त में इन संख्याओं की गिनती के लिए अनेक नये नियम निर्दिष्ट करता है। इनमें से कुछ तो मानने योग्य हैं और कुछ त्यागने लायक़। इस प्रकार युगों की गिनती के नियम में वह ४८ को आधार रखकर इसमें से एक चौथाई निकाल देता है, जिससे ३६ बाक़ी रह जाते हैं। तब वह फिर १२ को घटाता है, क्योंकि यह संख्या उसके वियोजन का आधार है, जिससे शेष २४ रह जाते हैं, और उसी संख्या को तीसरी बार घटाने से शेष उसके पास १२ रह जाते हैं। इन १२ को वह १०० से गुणता है, और उनका गुणन-फल युगों के दिव्य वर्षों की संख्या को दिखलाता है।

इसकी समालोचना ।

यदि वह ६० की संख्या को आधार बनाता, क्योंकि बहुतसी बातों का निश्चय इससे हो सकता है, और इसके एक-पाँचवें भाग को वियोजन का आधार बनाता, अथवा यदि वह ६० में से अवशिष्ट संख्या के क्रमागत अपूर्णाङ्कों को निकाल देता, पहले $\frac{१}{५}$ = १२, अवशेष $\frac{१}{४}$ = १२ में से, अवशेष $\frac{१}{३}$ = १२ में से, और अवशेष $\frac{१}{२}$ = १२ में से, तो वह उसी परिणाम पर पहुँच जाता जिस पर कि वह इस रीति से पहुँचा है (६०−$\frac{१}{५}$ = ४८, −$\frac{१}{४}$ = ३६, −$\frac{१}{३}$ = २४, −$\frac{१}{२}$ = १२)।

सम्भव है कि पौलिस ने इस विधि का उल्लेख दूसरी विधियों में से एक के रूप में किया है, और विशेष रूप से यह वह विधि नहीं जिसको स्वयं उसने ग्रहण किया था। उसकी सारी पुस्तक का भाषान्तर अभी तक अरबी में नहीं हुआ, क्योंकि उसके गणित-सम्बन्धी

प्रश्नों में एक सुस्पष्ट धार्म्मिक और ईश्वर-तत्त्व-विषयक प्रवृत्ति पाई जाती है ।

इस बात को गिनते समय कि वर्तमान कल्प के पहले ब्रह्मा की आयु के हमारे कितने वर्ष बीत चुके हैं पुलिश अपने दिये नियम को छोड़ देता है । उसके लिखने के समय तक, नये कल्प के आठ वर्ष, पाँच मास और चार दिन बीत चुके थे । वह ६०६८ कल्प गिनता है । क्योंकि, उसके मतानुसार, एक कल्प में १००८ चतुर्युग होते हैं, इसलिए वह इस संख्या को १००८ से गुणा करके ६११६५४४ चतुर्युग प्राप्त करता है । इनको वह ४ से गुणा करके युग बना लेता है, और इससे २४४६६ १७६ युग बन जाते हैं । क्योंकि, उसके मतानुसार, एक युग में १०८०००० वर्ष होते हैं, इसलिए वह युगों की संख्या को १०८०००० से गुणा करके २६४२३४७००८०००० गुणन-फल प्राप्त करता है । यह संख्या उन वर्षों की है जो वर्तमान युग के पहले ब्रह्मा की आयु के बीत चुके हैं ।

पुलिश गिनता है कि वर्तमान कल्प के पहले ब्रह्मा की कितनी आयु बीत चुकी है ।

पृष्ठ १८९

ब्रह्मगुप्त के अनुयायियों को शायद यह बात विचित्र मालूम होगी कि पुलिश ने चतुर्युगों को ठीक ठीक युगों में नहीं, प्रत्युत केवल चौथे भागों (उनको ४ पर बाँट कर) में बदल डाला है, और इन चौथे भागों को एक अकेले चौथे भाग के वर्षों की संख्या से गुणा किया है ।

इस गणना की समालोचना ।

अब, हम उससे यह नहीं पूछते कि चतुर्युगों को चतुर्थांशों के रूप में दिखलाने का क्या फ़ायदा है क्योंकि उनमें कोई ऐसा अपूर्णाङ्क नहीं जिसको इस प्रकार पूर्णाङ्कों में बदल देने की आवश्यकता हो । पूरे चतुर्युगों का एक पूर्ण चतुर्युग के वर्षों, अर्थात् ४३२०००० के साथ गुणन काफ़ी लम्बा होता । परन्तु, हम कहते हैं कि यदि

वह वर्तमान कल्प के बीते हुए वर्षों को उपरोक्त संख्या के संबंध में लाने की कामना से प्रभावित हुआ न होता, और अपने सिद्धान्त के अनुसार पूरे गुज़रे हुए मन्वन्तरों को ७२ से गुणा करता; इसके अतिरिक्त, यदि उसने गुणनफल को एक चतुर्युग के वर्षों से गुणा न किया होता, जिससे १८६६२४०००० वर्ष का गुणाकार प्राप्त होता है, और फिर, यदि वह वर्तमान मन्वन्तर के गुज़रे हुए पूर्ण चतुर्युगों की संख्या को अकेले चतुर्युग के वर्षों से गुणा न करता, जिससे ११६६४०००० वर्ष का गुणाकार प्राप्त होता है, तो उसका ऐसा करना ठीक था। वर्तमान चतुर्युग के तीन युग, अर्थात्, उसके अनुसार, ३२४०००० वर्ष बीत चुके हैं। पिछली संख्या एक चतुर्युग के वर्षों की तीन-चौथाइयों को दिखलाती है। वह वर्षों की यहाँ लिखी संख्या के दिनों की संख्या के द्वारा किसी तिथि का सप्ताह-दिवस मालूम करते समय इसी संख्या का प्रयोग करता है। यदि उपर्युक्त नियम में उसका विश्वास होता तो वह इसका वहाँ प्रयोग करता जहाँ इसकी आवश्यकता है, और वह तीन युगों को एक चतुर्युग का नौ-दशवाँ गिनता।

आर्यभट पर ब्रह्मगुप्त की कठोर आलोचना।

अब यह स्पष्ट है कि ब्रह्मगुप्त उसके प्रमाण पर जो कुछ बयान करता है, और जिसके साथ वह स्वयं भी सहमत है, वह सर्वथा निःसार है; परन्तु वह आर्यभट से, जिसको वह बहुत बुरा भला कहता है, केवल घृणा के कारण ही इस पर आँखें बन्द कर लेता है। और इस दृष्टि से आर्यभट और पुलिश उसके लिए समान हैं। साक्ष्य के रूप में मैं ब्रह्मगुप्त का वह वाक्य लेता हूँ जिसमें वह कहता है कि आर्यभट ने चन्द्रमा के उच्च नीच स्थानों और अजगर तारापुञ्ज के काल-चक्रों से कुछ घटाया है, और इससे ग्रहण की गिनती में गड़बड़ कर दी है। वह इतना अशिष्ट है कि आर्यभट

को एक ऐसे कीड़े से उपमा देता है, जो लकड़ी को खाते हुए अकस्मात् उसमें विशेष अक्षर बना देता है; इन अक्षरों को न वह समझता है और न इनको बनाने की उसकी इच्छा ही होती है। "परन्तु जो इन चीज़ों को भलीभाँति जानता है वह आर्यभट, श्रीषेण, और विष्णुचन्द्र के सम्मुख ऐसे खड़ा होता है जैसे हिरणों के सामने सिंह। वे उसे अपना मुँह नहीं दिखा सकते।" वह ऐसे कटु शब्दों में आर्यभट पर आक्रमण और उसके साथ असद्व्यवहार करता है।

सौर वर्ष की भिन्न भिन्न लम्बाइयाँ।

हम अभी बतला चुके हैं कि इन तीन विद्वानों के अनुसार एक चतुर्युग में कितने नागरिक दिन (सावन) होते हैं। पुलिश ब्रह्मगुप्त की अपेक्षा इसके १३५० दिन अधिक देता है, परन्तु चतुर्युग के वर्षों की संख्या दोनों के अनुसार एक ही है। इसलिए यह स्पष्ट है कि ब्रह्मगुप्त की अपेक्षा पुलिश सौर वर्ष के अधिक दिन मानता है। ब्रह्मगुप्त के वृत्तान्त पर विचार करने से पता लगता है कि आर्यभट चतुर्युग के दिन पुलिश से ५०० कम और ब्रह्मगुप्त से १०५० अधिक मानता है। इसलिए, आर्यभट का सौर वर्ष को ब्रह्मगुप्त से लम्बा और पुलिश से छोटा गिनना आवश्यक है।

तेंतालीसवाँ परिच्छेद।

चार युगों का और चौथे युग की समाप्ति पर जिन बातों के होने की आशा है उन सबका वर्णन।

प्राचीन यूनानियों के पृथ्वी के विषय में अनेक मत थे। दृष्टान्त रूप से हम इनमें से एक का यहाँ वर्णन करते हैं।

प्राकृतिक जल-प्रलय।

पृथ्वी पर, ऊपर और नीचे से, जो आपदायें समय समय पर आती रहती हैं वे गुण और परिमाण में भिन्न भिन्न होती हैं। पृथ्वी ने बहुशः एक ऐसे विप्लव का अनुभव किया है जो गुण में या परिमाण में, या इकट्ठा दोनों में, ऐसा अतुल्य था कि उससे बच सकने का कोई उपाय न था, और भाग जाने या सावधान रहने से कुछ भी बन न पड़ता था। आपद् जल-प्रलय या भूडोल के सदृश आती है, और पृथ्वीतल को तोड़ कर, या जल में डुबाकर जो फूट कर निकलने लगता है, या राख और गरम पत्थरों के साथ जला कर जो कि बाहर फेंके जाते हैं, कड़क से, भूमि-स्खलन से, और आँधी से नाश करती है; इसके अतिरिक्त, संक्रामक तथा अन्य प्रकार के रोगों से, महामारी से, और इसी प्रकार के अन्य साधनों से विध्वंस फैलाती है। इससे एक बड़ा प्रदेश इसके अधिवासियों से ख़ाली हो जाता है; परन्तु जब थोड़ी देर के बाद, विपद् और इसके कार्यों के चले जाने के उपरान्त, देश अपनी पूर्व अवस्था को पुनः लाभ करने और जीवन के नये चिह्न

पृष्ठ १६०

प्रकट करने लगता है, तो भिन्न भिन्न जातियों के लोग, जो पहले गुप्त छिद्रों में और पर्वति-शिखरों पर निवास करते थे, बनैले पशुओं की तरह, वहाँ जमा होने लगते हैं। वे समान शत्रुओं, वन्य पशुओं या मनुष्यों के मुक़ाबले में एक दूसरे की सहायता करने, और सुख और शान्ति के जीवन की आशा में एक दूसरे को सहाय देने से सभ्य बन जाते हैं। इस प्रकार उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है; परन्तु, तब महत्त्वाकांक्षा, क्रोध और द्वेष के पङ्खों के साथ उनके गिर्द चक्कर लगाती हुई, उनके जीवन के विमल आनन्द को बिगाड़ने लगती है।

अनेक बार इस प्रकार की कोई जाति किसी ऐसे व्यक्ति से अपनी वंशावली निकालती है जो पहले पहल उस स्थान में आबाद हुआ था, या जिसने किसी बात में नाम पाया था, जिससे अगली पीढ़ियों की स्मृति में अकेला वही जीता रहता है, और उसके सिवा शेष सब विस्मृत हो जाते हैं। अफ़लातूँ ने नियमों की पुस्तक में ज़िउस, अर्थात्, बृहस्पति को यूनानियों का पूर्व पुरुष बताया है, और हिप्पोक्रटीज़ की वंशावली ज़िउस के साथ मिला दी गई है।

हिप्पोक्रटीज़ की वंशावली।

इसका उल्लेख पुस्तक के अन्त में जोड़े हुए पिछले परिच्छेदों में पाया जाता है। परन्तु हम देखते हैं कि वंशावली में बहुत थोड़ी, चौदह से अधिक नहीं, पीढ़ियाँ हैं। वंशावली यह है:—हिप्पोक्रटीज़—नोसिडिकोस—नेब्रोस—सोस्ट्रेटोस—थियोडोरोस— क्लियोमिटाडस—क्रिसमिस—डर्डनस—सोस्ट्रेटोस—ابلو سوس (?) —हिप्पोलोचोस—पोडलीरियोस—मकेओन—अस्क्लिपियोस—अपोलो—ज़िउस—क्रोनोस, अर्थात् शनि।

चतुर्युग के विषय में हिन्दुओं के भी ऐसे ही ऐतिह्य हैं, क्योंकि

चार कालों या युगों के विषय में हिन्दुओं के मत।

उनके मतानुसार, इसके आरम्भ, अर्थात् कृतयुग के आरम्भ में सुख और शान्ति, सफलता और

विपुलता, स्वास्थ्य और शक्ति, यथेष्ट ज्ञान और बहुत से ब्राह्मण थे। इस युग में, एक पूरे की चार चौथाइयों के सदृश, धर्म्म पूर्ण होता है, और समय की इस सारी अवधि में सब प्राणियों की आयु एकसाँ ४००० वर्ष होती थी।

इस पर पदार्थों का ह्रास आरम्भ हुआ और उनमें विपरीत तत्त्व यहाँ तक मिलने लगे कि त्रेतायुग के आरम्भ में आक्रमण करने वाले अधर्म्म से धर्म्म तीन गुना अधिक, और आनन्द सारे का तीन चौथाई रह गया। इसमें क्षत्रियों की संख्या ब्राह्मणों से अधिक थी, और लोगों की आयु उतनी ही लम्बी थी जितनी वह पूर्व युग में थी। विष्णु-धर्म्म ने ऐसा ही बताया है, परन्तु सादृश्य के अनुसार यह उतनी ही छोटी होनी चाहिए जितना आनन्द कम है, अर्थात् यह एक चौथाई कम होनी चाहिए। इस युग में वे यज्ञ में पशुओं का वध करने और पौधों को चीरने लगे। इन अनुष्ठानों को पहले कोई न जानता था।

इस प्रकार अधर्म्म बढ़ता है, यहाँ तक कि द्वापर के आरम्भ में धर्म्म और अधर्म्म का प्रमाण बराबर हो जाता है और इसके साथ ही आनन्द और विपत्ति भी बराबर हो जाते हैं। जल-वायु के गुणों में भिन्नता आने लगती है, हत्या बहुत बढ़ जाती है, और धर्म्म भिन्न भिन्न हो जाते हैं। आयु छोटी होकर विष्णु-धर्म्म के अनुसार, केवल ४०० वर्ष की रह जाती है। तिष्य, अर्थात् कलियुग के आरम्भ में अवशिष्ट धर्म्म से अधर्म्म तीन गुना अधिक होता है।

त्रेता और द्वापर युगों में होनेवाली घटनाओं के विषय में हिन्दुओं के अनेक परम प्रसिद्ध ऐतिह्य हैं, उदाहरणार्थ, राम की कथा, जिसने रावण को मारा था; परशुराम ब्राह्मण की कथा, जिसने पृष्ठ १९१ अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए प्रत्येक क्षत्रिय को जो उसके

हाथ आया मार डाला था। उनका ख़याल है कि वह आकाश में रहता है, अब तक इक्कीस बार पृथ्वी पर प्रकट हो चुका है, और फिर भी प्रकट होगा। इसके अतिरिक्त, पाण्डु और कुरु के पुत्रों के युद्ध की कथा है।

कलियुग में अधर्म्म बढ़ता है, यहाँ तक कि अन्त में धर्म्म का सर्वथा नाश हो जाता है। उस समय पृथ्वी के अधिवासी नष्ट हो जाते हैं, और जो लोग पर्वतों में बिखरे हुए और अपने आपको गुफाओं में छिपाते फिरते हैं उनमें एक नई जाति उत्पन्न होती है, जो ईश्वर की भक्ति के उद्देश से एकत्र होती, और कराल, पैशाचिक मनुष्य जाति से दूर भागती है। इसलिए यह युग कृतयुग कहलाता है, जिसका अर्थ है "काम को समाप्त करने के बाद चले जाने के लिए तैयार होना।"

शौनक की कथा में जो शुक्र ने ब्रह्मा से सुनी थी परमेश्वर उससे

कलियुग का वर्णन। ये शब्द कहता है:—"जब कलियुग आता है तो मैं धर्मात्मा शुद्धोदन के पुत्र बुद्धोदन को जगत् में धर्म के प्रचार के लिए भेजता हूँ। परन्तु फिर मुहम्मिर अर्थात् रक्तपट-धारी, जिनकी उत्पत्ति उससे हुई है, उसकी लाई हुई प्रत्येक चीज़ को बदल देंगे, और ब्राह्मणों का यहाँ तक निरादर होगा कि शूद्र, जो उनके सेवक हैं, उनके साथ अविनीत बर्ताव करेंगे, और शूद्र और चण्डाल उनके साथ ही दान और नैवेद्य का भाग लेंगे। लोग पाप से धन इकट्ठा करने और ख़ज़ाने भरने में रत होंगे, और भयानक तथा अन्याययुक्त अपराध करने में भी सङ्कोच न करेंगे। इस सारे का परिणाम यह होगा कि छोटे बड़ों के, सन्तान अपने माता-पिता के, और सेवक अपने स्वामियों के विरुद्ध विद्रोह करेंगे। वर्ण एक दूसरे के विरुद्ध हुल्लड़ मचायँगे, चार वर्ण लोप हो जायँगे, और

अनेक मत-मतान्तरों का जन्म होगा। अनेक पुस्तकें बनाई जायँगी, और जिन समाजों में पहले एकता थी वे उनके कारण व्यक्तियों में बँट जायँगे। देवालय नष्ट कर दिये जायँगे और विद्यालय ख़ाली पड़े होंगे। न्याय संसार से उठ जायगा, और राजा लोग लम्बी चौड़ी आशाओं में मूर्खता से फँस कर और इस बात पर विचार न करके कि पापों (जिनके लिए उन्हें प्रायश्चित्त करना होगा) के मुक़ाबले में जीवन कितना छोटा है, अत्याचार और लूटने, छीनने और नष्ट कर डालने के सिवा और कुछ न जानेंगे, मानों वे प्रजा को निगल जाना चाहते हैं। जनता का मन जितना अधिक भ्रष्ट होगा उतना ही अधिक विनाशक रोग फैलेंगे। अन्ततः, लोगों का मत है कि इस युग में प्राप्त किये बहुत से फलित-ज्योतिष-सम्बन्धी नियम निःसार और झूठे हैं।

इन विचारों को मानी ने ग्रहण किया है, क्योंकि वह कहता है:—

मानी का कथन। "तुम को मालूम रहे कि संसार के कार्यों में परिवर्तन आ चुका है; जब से आकाश के राजदूतों अर्थात् ग्रहों में परिवर्तन हुआ है तब से पुरोहित-वर्ग भी बदल गया है, और पुरोहित लोग अब एक गोले के मण्डल के तारों का वैसा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते जैसा उनके पिता कर सकते थे। वे छल से मनुष्यों को भ्रान्ति में डालते हैं। उनकी भविष्यद्वाणी दैव-योग से कभी ठीक होती है परन्तु बहुशः वह झूठ निकलती है।"

विष्णु-धर्म्म के अनुसार कृतयुग का वर्णन। विष्णु-धर्म्म में इन बातों का वर्णन जितना हमने ऊपर दिया उससे बहुत ज़ियादा विपुल है। लोगों को फल और दण्ड का ज्ञान न होगा; वे इस बात को न मानेंगे कि देवताओं का ज्ञान सम्पूर्ण है। उनके जीवनों की लम्बाई भिन्न भिन्न होगी, और उनमें से किसी को भी पता न होगा कि मेरा जीवन कितना लम्बा है। एक भ्रूणावस्था में मरेगा तो दूसरा शैशव-

काल में। धर्म्म-परायण लोग संसार से छीन लिये जायँगे और उनका जीवन लम्बा न होगा, परन्तु पापी और धर्म्महीन लोग चिरकाल तक जीते रहेंगे। शूद्र राजा होंगे, और लालची भेड़ियों की तरह दूसरों का मन-भाता माल छीन लेंगे। ब्राह्मणों के काम भी इसी प्रकार के होंगे परन्तु बहुतायत शूद्रों और दस्युओं की होगी। ब्राह्मणों के नियम अन्यथा हो जायँगे। लोग उन मनुष्यों की ओर कौतुक के तौर पर उङ्गली का इशारा करेंगे जिनका आचरण मितव्ययिता और दरिद्रता का होगा, वे उनका तिरस्कार करेंगे, और विष्णु की पूजा करनेवाले मनुष्य को देखकर आश्चर्य करेंगे; क्योंकि उन सबका चरित एक ऐसा (दुष्ट) हो गया है। इसलिए प्रत्येक कामना शीघ्र ही स्वीकृत होगी, थोड़े से गुण का बड़ा पुरस्कार मिलेगा, पृष्ठ १९२ और थोड़ी सी भक्ति और सेवा से ही यश और माहात्म्य प्राप्त हो जायगा।

परन्तु अन्ततः, इस युग की समाप्ति पर, जब अधर्म्म अपनी चरम सीमा पर पहुँच जायगा तो **ज-व-श** (?) ब्राह्मण का पुत्र गर्ग, अर्थात् कलि, जिसके कारण कि इस युग का यह नाम है, आगे निकलेगा। इसके तेज के सामने कोई ठहर न सकेगा और शस्त्र-विद्या में कोई भी दूसरा उसके तुल्य न होगा। तब वह प्रत्येक वस्तु को जो बुरी हो गई है अच्छी बनाने के लिए अपनी तलवार निकालता है; वह पृथ्वीतल से मनुष्यों के मैल को दूर करता और भूमि को उनसे ख़ाली करता है। वह पवित्र और धर्म्मपरायण लोगों को सन्तानोत्पत्ति के लिए इकट्ठा करता है। तब कृतयुग उनके बहुत पीछे जा पड़ता है, और समय और संसार पवित्रता, पूर्ण धर्म्म और सुख को पुनः लाभ करते हैं।

चरक नाम की पुस्तक के अनुसार आयुर्वेद की उत्पत्ति।

चतुर्युग के चक्र में घूमनेवाले युगों का यह स्वरूप है। तबरिस्तान के अली इब्न ज़ैन के दिये अवतरण के अनुसार, चरक नाम की पुस्तक कहती है:—"प्राचीन काल में पृथ्वी सदा उर्वरा और स्वास्थ्यवर्धक होती थी, और तत्त्व या महाभूत समान रूप से मिश्रित होते थे। मनुष्य परस्पर प्रेम और एकता के साथ रहते थे। उनमें अतिलिप्सा और महत्त्वाकांक्षा, ईर्ष्या और द्वेष, और आत्मा तथा शरीर को अस्वस्थ करनेवाली कोई बात न थी। किन्तु तब ईर्ष्या आई और उसके उपरान्त लालसा ने आकर डेरा डाला। लालसा से प्रेरित होकर वे धन जमा करने का यत्न करने लगे। यह काम अनेकों के लिए कठिन और अनेकों के लिए सुगम था। तब सब प्रकार के विचार, परिश्रम, और चिन्तायें उत्पन्न हुईं जिनका फल युद्ध, कपट, और झूठ हुआ। मनुष्यों के हृदय पत्थर हो गये, प्रकृतियाँ बदल गईं और उनको रोगों का भय हो गया। व्याधियों ने मनुष्यों पर अधिकार कर उनसे ईश्वर की पूजा और विज्ञान की उन्नति छुड़ा दी। अविद्या का राज्य स्थापित हो गया और विपत्ति बढ़ गई। तब धर्म्मपरायण लोग आत्रेय के पुत्र कुश (?) ऋषि के पास गये और मन्त्रणा की; तदनन्तर ऋषि ने पर्वत पर चढ़कर वहाँ से अपने आप को पृथ्वी पर गिरा दिया। इसके बाद परमेश्वर ने उसे आयुर्वेद की शिक्षा दी।"

अराटस का अवतरण।

यह सारा यूनानियों के ऐतिह्यों से, जिनका हमने (अन्यत्र) वर्णन किया है, बहुत मिलता है। क्योंकि अराटस अपनी ज़ाहरात नामक पुस्तक में, और अपनी वक्रोक्तियों में सातवीं राशि के विषय में कहता है:—"उत्तरी आकारों में चरवाहे अर्थात् अलअव्वा के पैरों के नीचे देखो, और तुम्हें कुमारी अपने हाथ में अनाज की महकती हुई बाल, अर्थात् अलसिमाकुल

अज़ल, लिये आती दिखाई देगी । वह या तो उस तारा-जाति की है जिसको प्राचीन तारों का पूर्वज कहा जाता है, या उसको किसी दूसरी जाति ने जन्म दिया है जिसे हम नहीं जानते । लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में वह मनुष्य-जाति में रहती थी । परन्तु उसका निवास केवल स्त्रियों में ही था, पुरुषों को वह दिखाई न देती थी, और न्याय के नाम से प्रसिद्ध थी । वह वृद्धों और मण्डियों तथा बाज़ारों में खड़े होनेवाले लोगों को मिलाया करती और उच्च स्वर से उन्हें सत्यानुरागी बने रहने का उपदेश दिया करती थी । वह मानव-जाति को असंख्य सम्पत्ति का दान देती और उसे स्वत्व प्रदान करती थी । उस समय पृथ्वी स्वर्णीय कहलाती थी । इसके अधिवासियों में से कोई भी कर्म या वचन से अनिष्टकर दम्भ न करता था, और उनमें कोई आपत्ति-जनक भिन्नता न थी । उनका जीवन शान्त था और वे अभी जहाज़ में बैठकर समुद्र-यात्रा न करने लगे थे । गाँवों से ही आवश्यक प्रतिपालन हो जाता था ।

"बाद को, जब स्वर्णीय जाति का अवसान हो गया और उसके स्थान में रजत-जाति आई, तो कन्या (राशि) लोगों के साथ मिलने लगी, परन्तु इससे उसे सुख नहीं हुआ । वह पर्वतों में छिप गई और अब उसका स्त्रियों के साथ पहला सम्बन्ध न रहा । तब वह बड़े बड़े नगरों में गई । उसने उनके अधिवासियों को चेतावनी दी, उनके दुष्कर्म्मों के लिए उन्हें डाँट-डपट की, और उन्हें सुवर्णीय पूर्वजों से उत्पन्न हुई जाति के विनाश का दोष दिया । उसने उन्हें पहले ही बता दिया पृष्ठ १६३ कि तुमसे भी बदतर एक और जाति आयेगी, और युद्ध, रक्तपात, और अन्य महान् विपत्तियाँ उसका अनुसरण करेंगी ।

"इसको समाप्त करने के बाद, वह पर्वतों में अन्तर्धान होगई, और रजत-जाति के अवसान तथा पित्तल-जाति के प्रादुर्भाव तक वहीं

छिपी रही । लोगों ने तलवार बनाई जो कि पाप के करनेवाली है; उन्होंने गो-मांस खाया, वही सबसे पहले यह काम करनेवाले थे । इन सब बातों से उनके पड़ोस में रहना न्याय के लिए गर्ह्य होगया, और वह उड़कर आकाश में चला गया ।"

अराटस की पुस्तक का टीकाकार कहता है:—"यह कन्या ज़ौउस की पुत्री है । वह सार्वजनिक स्थानों और बाज़ारों में लोगों से बातचीत करती थी, और उस समय वे अपने शासकों के आज्ञाकारी थे । न उन्हें बुराई का पता था और न विरोध का । सब प्रकार के विवाद या ईर्ष्या से रहित वे कृषि पर निर्वाह करते थे, और वाणिज्य के लिए या लूट की लालसा से कभी समुद्र-यात्रा न करते थे । उनकी प्रकृति स्वर्ण के सदृश पवित्र थी ।

अराटस पर एक धर्म्मपण्डित की राय ।

"परन्तु जब उन्होंने इन आचरणों को छोड़ दिया और उनमें सत्यानुराग न रहा, तो यथार्थता ने उनसे मिलना छोड़ दिया, परन्तु पर्वतों में रहती हुई वह उन्हें देखती थी । किन्तु जब वह उनके समाजों में इच्छा न रहने पर भी, आती थी तो वह उन्हें धमकाती थी, क्योंकि वे चुपचाप उसके शब्दों को सुनते थे, और इसलिए अब वह पहले के सदृश अपने आह्वान करनेवालों को दर्शन न देती थी ।

"तब, जब, रजत-जाति के उपरान्त, पित्तल-जाति आई, जब एक लड़ाई के बाद दूसरी लड़ाई होने लगी और संसार में अधर्म्म फैल गया, तब वह वहाँ से चली गई, क्योंकि वह किसी प्रकार भी उनके पास रहना न चाहती थी, और उनसे घृणा करती थी, और गगनमण्डल की ओर चली गई ।

"यथार्थता (न्याय) के विषय में अनेक ऐतिह्य हैं । कई एक के मतानुसार वह डेमीटर है, क्योंकि उसके पास अनाज की बाल है; और कई उसे बख़्त (भाग्य) समझते हैं ।"

अराटस का यही कथन है।

निम्नलिखित वाक्य प्लेटो (अफलातूँ) के नियमों की तीसरी पुस्तक में मिलता है:—

प्लेटो के नियमों से अवतरण।

"एथन्सवालों ने कहा:—'पृथ्वी पर ऐसे ऐसे जल-प्रलय, रोग, और विपत्तियाँ आती रही हैं जिनसे सिवा पशुरक्षकों और पर्वतनिवासियों के और कोई नहीं बचा। ये उस जाति के अवशिष्टांश हैं जिसमें कपट और अधिकार-प्रेम न था।'

"कनोसियन ने कहा:—'आरम्भ में, इस संसार-कानन में अपने को अकेला अनुभव करके, मनुष्य एक दूसरे से सच्चा प्रेम करते थे। क्योंकि संसार उन सबके लिए पर्याप्त खुला था और उनको किसी प्रकार का उद्यम करने के लिए बाध्य नहीं करता था। उनमें न दरिद्रता थी, न भोग था, और न प्रणबंध। उनमें न लालच था, और न सोना और न चाँदी। उनमें न कोई धनी था और न कोई निर्धन। उनकी कोई भी पुस्तक देखने से इस सारे के लिए अनेक प्रमाण मिल जायँगे'।"

चवालीसवाँ परिच्छेद।

मन्वन्तरों पर।

जिस प्रकार ७२००० कल्प ब्रह्मा की आयु गिनी जाती है, उसी प्रकार मन्वन्तर, अर्थात् मनु की अवधि, इन्द्र की आयु गिनी जाती है। इन्द्र का शासन इस अवधि की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है। तब उसकी पदवी एक दूसरे इन्द्र को मिल जाती है और नये मन्वन्तर में वही संसार पर शासन करता है।

अकेले अकेले मन्वन्तर, उनके इन्द्र, और इन्द्र की सन्तान।

ब्रह्मगुप्त कहता है:—"यदि किसी मनुष्य का यह मत हो कि दो मन्वन्तरों के बीच कोई संधि नहीं होती, और वह प्रत्येक मन्वन्तर को ७१ चतुर्युग के बराबर गिनता हो तो उसे मालूम हो जायगा कि कल्प में से छः चतुर्युग कम हो जाने से वह बहुत छोटा हो जाता है, और १००० के नीचे ऋण (अर्थात् ९९४ में) १००० के ऊपर योग (अर्थात्, आर्यभट्ट के अनुसार, १००८ में) की अपेक्षा कुछ अच्छा नहीं है। परन्तु ये दोनों संख्यायें स्मृति नाम्नी पुस्तक से नहीं मिलतीं।"

इसके आगे वह कहता है:—"आर्यभट अपनी दो पुस्तकों में, जिनमें से एक दशगीतिका और दूसरी आर्याश्तशत कहलाती है, कहता है कि प्रत्येक मन्वन्तर ७२ चतुर्युग के बराबर होता है। तदनुसार वह कल्प में १००८ चतुर्युग (१४ × ७२) गिनता है।"

विष्णु-धर्म्म नाम्नी पुस्तक में मार्कण्डेय वज्र को यह उत्तर देता है:—पुरुष विश्व का अधिपति है; कल्प का अधिपति ब्रह्मा है जो जगत् का स्वामी है; परन्तु मन्वन्तर का अधिपति मनु है। मनु चौदह हैं और प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में राज्य करनेवाले पृथ्वी के राजा इनसे उत्पन्न हुए थे।"

आगे की सूची में हमने उनके नामों को इकट्ठा कर दिया है:—

मन्वन्तरों की संख्या ।	विष्णु पुराण के अनुसार मन्वन्तरों के नाम ।	विष्णु-धर्म्म के अनुसार उनके नाम ।	अन्य स्रोतों से लिए हुये उन के नाम ।	विष्णु-पुराण के अनुसार इन्द्र के नाम ।	विष्णु-पुराण के अनुसार, मनु की सन्तान के, अर्थात् पृथ्वी के उन राजाओं के नाम जो प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में राज्य करते थे ।
१	स्वायम्भुव	स्वायम्भुव	स्वायम्भुव ।		पहले मन्वन्तर के राजा के रूप में मनु इन्द्र है । इस की दूसरे किसी प्राणी से कोई चीज़ नहीं मिलती ।
२	स्वारोचिष	स्वारोचिष	स्वारोचिष	विपश्चित्	मनु की पहली सन्तान, चैत्रक (?) ।
३	औत्तमि	औत्तमि	औत्तमि	सुशान्ति	सुदिव्य (?) ।
४	स्तामस (?)	स्तामस	उतामस (?)	शिखिन	नर, ख्याति, शान्तहय, जानुजङ्घ ।
५	रैवत	रैवत	रैवत	औतत (?)	बलबंधु, सुसम्भाव्य, सत्यक, सिन्धु (?), रेभ (?) ।
६	चाक्षुष	चक्षुख	चाक्षुष	मनोजव	पुरु, मुरु, शतद्युम्न, प्रमुख (?) ।
७	वैवस्वत	वैवस्वत	वैवस्वत	पुरन्दर	इक्ष्वाकु, नबस (?) धृष्ण, शर्याति ।
८	शावर्णि	शावर्णि	शावर्णि	क़ैद किया हुआ राजा बलि	विरजस्, अश्चावेरि, निर्मोघ ।
९	दक्ष	विष्णु-धर्म्म	(के पाँच शावर्णि — [illegible]) ब्रह्मपुत्र	महावीर्य	घृतकेतु, निरामय, पञ्चहस्त ।
१०	ब्रह्मशावर्णि	धर्म्मपुत्र	विष्णु-पुत्र	शान्ति	सुक्षेत्र, उत्तमौजस, भूरिषेण ।
११	धर्म्मशावर्णि	रुद्रपुत्र	रुद्रपुत्र	वृष	सर्वत्रग, देवानीक, सुधर्मात्मन् (?) ।
१२	रुद्रपुत्र	दक्षपुत्र	दक्षपुत्र	ऋतधामन्	देवत (?), वानुपदेवश्च, देवश्रेष्ठ ।
१३	रौच्य	रैभ्य (?)	रैभ्य (?)	दिवस्पति	चित्रसेन, विचित्र-आद्या ! (?)
१४	भौत्य	भौत्य	भूमि (?)	शुचि	उरुर, गभिर, बुध्नय-आद्या (?)

सातवें मन्वन्तर के परे आगामी मन्वन्तरों की गिनती में जो विभिन्नता पाठकों को दिखाई देती है, मैं समझता हूँ, वह उसी कारण से उत्पन्न हुई है जिससे द्वीपों के नामों में प्रभेद पैदा हुआ है, अर्थात् इसका कारण यह है कि लोग उस क्रम की अपेक्षा जिसमें नाम सन्तानों तक पहुँचाये जाते हैं खुद नामों की ज़ियादा परवा करते हैं। हम यहाँ विष्णु-पुराण के ऐतिह्य का आश्रय लेते हैं, क्योंकि इस पुस्तक में उनकी संख्या, उनके नाम और वर्णन ऐसी रीति से दिये गये हैं कि जिससे यह आवश्यक हो जाता है कि जिस क्रम में यह उनको देता है उस क्रम को भी विश्वासार्ह समझा जाय। परन्तु हमने इन बातों को यहाँ लिखना उचित नहीं समझा क्योंकि उनसे लाभ बहुत कम है।

पृष्ठ १९५. मन्वन्तरों के विषय में विष्णुपुराण का ऐतिह्य।

वही पुस्तक कहती है कि क्षत्रिय राजा मैत्रेय ने व्यास के पिता पराशर से अतीत और भावी मन्वन्तरों के विषय में पूछा। तब पराशर प्रत्येक मनु का नाम बताता है। ये वही नाम हैं जिनको हमारी सूची प्रदर्शित करती है। उसी पुस्तक के अनुसार, प्रत्येक मनु की सन्तान पृथ्वी का राज्य करेगी, और यह उनमें से सबसे पहले उनका उल्लेख करती है जिनके नाम हमने सूची में दिये हैं। उसी पुस्तक के लेखानुसार दूसरे, तीसरे, चौथे, और पाँचवें मन्वन्तरों के मनु प्रियव्रत ऋषि की सन्तान में से होंगे। इस ऋषि पर विष्णु की ऐसी कृपा थी कि उसने इसकी सन्तान को इस प्रतिष्ठा से सम्मानित किया।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद ।

सप्तर्षि नामक तारामण्डल पर ।

वसिष्ठ की भार्या अरुन्धती के विषय में ऐतिह्य ।

बिनातुन नाश को भारतीय भाषा में सप्तर्षि अर्थात् सात ऋषि कहते हैं। कहा जाता है कि वे ऐसे संन्यासी थे जो अपना पोषण केवल भक्ष्य पदार्थों से ही किया करते थे, और उनके साथ एक धर्म्मपरायण स्त्री, अल-सुहा (सप्तर्षि-मण्डल, ξ के समीप तारा ८०) थी। वे खाने के लिए सरोवरों में से कमलनाल उखाड़ लेते थे। इसी बीच में क़ानून (धर्म्म ?) आया और उसने उस स्त्री को उनसे छिपा लिया। उनको एक दूसरे से लज्जा आने लगी, और उन्होंने ऐसी शपथें लीं जिनको धर्म्म ने पसन्द किया था। उनको सम्मानित करने के लिए धर्म्म ने उनको वह उच्च स्थान प्रदान किया जहाँ वे अब दिखाई देते हैं।

वराहमिहिर का अवतरण ।

हम पहले कह आये हैं कि हिन्दुओं की पुस्तकें छन्दों में रची हुई हैं, इसलिए ग्रन्थकार ऐसी उपमाओं और अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं जिनको उनके देशबन्धु प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं। वराहमिहिर की संहिता में सप्तर्षियों का वर्णन भी इसी प्रकार का है। यह वर्णन उस पुस्तक में इस तारामण्डल से निकाले हुए फलित-ज्योतिष-सम्बन्धी पूर्व चिह्नों के पहले आता है। हम अपने अनुवाद के अनुसार वह वचन नीचे देते हैं[1]:—

---

१. संहिता, परिच्छेद १३, श्लोक. १—६.

"जिस प्रकार रूपवती रमणी गूँथे हुए मोतियों की माला, और सुन्दर रीति से पिरोये हुए श्वेत कमलों के हार से अलङ्कृत होती है उसी प्रकार उत्तर प्रदेश इन तारकाओं से अलङ्कृत है। इस प्रकार अलङ्कृत, वे कुमारियों के सदृश हैं जो ध्रुव के गिर्द उसी प्रकार नाचती और घूमती हैं जिस प्रकार ध्रुव उनको आज्ञा देता है। और मैं प्राचीन और सनातन गर्ग के प्रमाण से कहता हूँ कि जब पृथ्वी पर युधिष्ठिर का राज्य था तो सप्तर्षि दसवें नक्षत्र, मघा, में थे, और शक-काल इसके २५२६ वर्ष उपरान्त था। सप्तर्षि प्रत्येक नक्षत्र में ६०० वर्ष रहते हैं, और उत्तर-पूर्व में उदय होते हैं। (सात ऋषियों में से) जो उस समय पूर्व का शासन करता है वह मरीचि है; उसके पश्चिम में वसिष्ठ है, फिर अङ्गिरस्, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, और वसिष्ठ के समीप अरुन्धती नाम की एक सती स्त्री है"।

क्योंकि इन नामों की अनेक बार एक दूसरे के साथ गड़बड़ हो जाया करती है, इसलिए हम इनको सप्तर्षि के अनुरूप तारों के साथ मिलाने की चेष्टा करेंगे :—

मरीचि	इस	तारामण्डल का	२७	वाँ	तारा है।
वसिष्ठ	"	"	२६	वाँ	"
अङ्गिरस्	"	"	२५	वाँ	"
अत्रि	"	"	१८	वाँ	"
क्रतु	"	"	१६	वाँ	"
पुलह	"	"	१७	वाँ	"
पुलस्त्य	"	"	१९	वाँ	"

हमारे समय में, अर्थात् शक-काल के ९५२ वें वर्ष में ये तारे सिंह के $1\frac{1}{3}°$ और कन्या के $13\frac{1}{2}°$ के बीच के स्थान में हैं। स्थिर तारों की निज गति के अनुसार,

गर्ग की समालोचना।

जैसा कि हमें ज्ञात है, यही तारे युधिष्ठिर के समय में मिथुन के ८$\frac{२}{३}$°
और कर्क के २०$\frac{६}{६}$° के बीच के स्थान में थे ।

टोलमी और प्राचीन ज्योतिषियों ने जैसा स्थिर तारों की गति को माना है उसके अनुसार ये तारे उस समय मिथुन के २६$\frac{१}{२}$° और सिंह के ८$\frac{२}{३}$° के बीच के स्थान में थे, और उत्तरोक्त नक्षत्र (मघा) का स्थान सिंह में ०—८०० मिनटों के मध्य में था ।

पृष्ठ १९६

इसलिए युधिष्ठिर के समय की अपेक्षा यदि वर्तमान समय में सप्तर्षियों को मघा में खड़ा प्रकट किया जाय तो बहुत अधिक योग्य होगा । और यदि हिन्दू मघा को सिंह के हृदय से अभिन्न मानते हैं तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह तारा-मण्डल उस समय कर्क के पहले अंशों में खड़ा था ।

गर्ग के शब्द निःसार हैं ; वे केवल यह प्रकट करते हैं कि उसे उस चीज़ का कितना थोड़ा ज्ञान था जिसका जानना उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है जो चर्मचक्षु द्वारा या ज्योतिष-सम्बन्धी यंत्रों द्वारा राशि-चक्र की राशियों के विशेष अंशों पर तारों के स्थानों को स्थिर करना चाहता है ।

मैंने शक-काल के ९५१ वें वर्ष के पञ्चाङ्ग में जो कश्मीर से आया था यह बयान पढ़ा है कि सप्तर्षि सतत्तर वर्षों से अनुराधा नक्षत्र में खड़े हैं । इस नक्षत्र का स्थान वृश्चिक के १६$\frac{२}{३}$° के अन्त और ३$\frac{१}{३}$° के बीच है । परन्तु सप्तर्षि इस स्थान से कोई एक पूरी राशि और २० अंश, अर्थात् १$\frac{२}{३}$ राशियाँ आगे हैं । परन्तु कौन ऐसा मनुष्य है जो हिन्दुओं की सारी भिन्न भिन्न कल्पनाओं को जान सकेगा, यदि वह उनमें निवास नहीं करता !

एक काश्मीरी पञ्चांग से टीका ।

आओ पहले हम यह मान लें कि गर्ग-कथन ठीक है, कि उसने मघा में सात ऋषियों का निश्चित स्थान नहीं बताया, और यह भी मान लें कि यह स्थान मघा का०° था जो हमारे समय के लिए सिंह के०° के बराबर होगा। इसके अतिरिक्त, युधिष्ठिर के समय और वर्तमान वर्ष, अर्थात् अलचोन्द्र के १३४० वें वर्ष के बीच ३४७६ वर्ष का अन्तर है। और अन्ततः, मान लीजिए कि वराहमिहिर का यह कथन ठीक है कि सप्तर्षि प्रत्येक नक्षत्र में ६०० वर्ष रहते हैं। तदनुसार, वर्तमान वर्ष में उन्हें तुला-राशि के १७°१८′ में होना चाहिए जो स्वाती के १०° ३८′ से अभिन्न है। परन्तु यदि हम यह मानें कि वे मघा के मध्य में थे (उसके आरम्भ में नहीं), तो अब उन्हें विशाखा के ३°५८′ में होना चाहिए। और यदि हम यह मानें कि वे मघा के अन्त में स्थित थे तो इस समय उन्हें विशाखा के १०°३८′ में होना चाहिए।

सप्तर्षि की स्थिति के विषय में भिन्न भिन्न बयानों की पड़ताल।

इसलिए यह स्पष्ट है कि काश्मीर के पञ्चाङ्ग का बयान संहिता के बयान से नहीं मिलता। इसी प्रकार यदि हम अयन-चलन के विषय में पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग का नियम ग्रहण कर इस मान के साथ पीछे की ओर गिनती करें तो भी हम किसी प्रकार इस परिणाम पर नहीं पहुँचते कि युधिष्ठिर के समय में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे।

अब तक हम यह समझा करते थे कि हमारे समय में स्थिर तारों का परिभ्रमण पहले समयों की अपेक्षा ज़ियादा तेज़ है, और इसका कारण हम आकाश-मण्डल के आकार की विशेषतायें जतलाने का यत्न करते थे। हमारे मतानुसार, वे ६६ सौर वर्षों में एक अंश चलते हैं। इसीलिए वराहमिहिर पर हमें घोर आश्चर्य होता है, क्योंकि, उसके अनुसार, इस गति का परिमाण पैंतालीस वर्ष में एक अंश, अर्थात्

वर्तमान काल से बहुत ज़ियादा शीघ्र होगा, जब उसका समय हमारे समय से केवल ५२५ वर्ष पहले है।

करणसार नाम्नी पुस्तक का कर्त्ता सप्त ऋषियों की गति को गिनने और किसी निश्चित समय में उसकी स्थिति को मालूम करने के लिए निम्नलिखित नियम देता है :—

प्रत्येक समय में सप्तर्षि की स्थिति मालूम करने के लिए करणसार का नियम।

"शक-काल में से ८२१ घटाओ। अवशेष मूल है, अर्थात् ४००० से ऊपर उन वर्षों की संख्या है जो कलियुग के आरम्भ से बीत चुकी हैं।

"मूल को ४७ से गुणा करो, और गुणन-फल में ६८००० योग करो। योगफल को १०००० पर बाँटो। भाग-फल राशियों और उनके अपूर्णाङ्कों को, अर्थात् सप्त ऋषियों की स्थिति को जिसको मालूम करना अभीष्ट था दिखलाता है।"

इस नियम में बताया हुआ ६८००० का योग, आवश्यक तौर पर मूल के आरम्भ में सप्तऋषियों की वास्तविक स्थिति का १०००० से गुणनफल होगा। यदि हम ६८००० को १०००० पर बाँटें तो भाग-फल ६$\frac{४}{५}$ अर्थात् छः राशियाँ और सातवीं राशि के चौबीस अंश प्राप्त होते हैं।

इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि हम १०००० को ४७ पर बाँटें तो, सौर काल के अनुसार, सप्तर्षि का एक राशि में से २१२ वर्ष, ९ मास, और ६ दिन में चलना निकल आयगा। तदनुसार ये एक राशि के एक अंश में से ७ वर्ष, १ मास, और ३ दिन में, और एक नक्षत्र में से ९४ वर्ष, ६ मास, और बीस दिन में भ्रमण करेंगे।

यदि ऐतिह्य में कोई दोष नहीं तो वराहमिहिर और वित्तेश्वर के मूल्यों के बीच बड़ी भिन्नता है। यदि हम, उदाहरणार्थ, वर्तमान वर्ष (१०३० ईसवी) के लिए ऐसा हिसाब लगायें तो सप्त ऋषियों का स्थान अनुराधा नक्षत्र में ९°१७′ निकलता है।

काश्मीर के लोगों का मत था कि सप्तर्षि एक नक्षत्र में से १०० वर्ष में गुज़रते हैं। इसीलिए उपर्युक्त पञ्चाङ्ग कहता है कि सप्त

ज्योतिष के साथ मिश्रित धर्म्म-सम्बन्धी विचार।

ऋषियों की गति के वर्तमान शतक में से अभी तेईस वर्ष बाक़ी हैं। जिस प्रकार की अशुद्धियों और भ्रमों को हमने यहाँ प्रकट किया है वे, एक तो, ज्योतिष-सम्बन्धी अन्वेषणों में आवश्यक कौशल के अभाव से, और, दूसरे, हिन्दुओं के वैज्ञानिक प्रश्नों और धर्म्म-सम्बन्धी ऐतिह्यों को आपस में मिला देने की रीति से पैदा होते हैं। क्योंकि धर्म्म-पण्डितों का विश्वास है कि सप्तर्षि स्थिर तारों से उच्चतर हैं। उनका मत है कि प्रत्येक मन्वन्तर में एक नया मनु प्रकट होगा जिसकी सन्तान पृथ्वी को नष्ट कर देगी ; परन्तु राज्य की पुनः स्थापना इन्द्र, और भिन्न भिन्न श्रेणियों के देवताओं तथा सप्त ऋषियों द्वारा होगी। देवताओं का होना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्यों को उनके लिए यज्ञ करने और उनकी आहुतियाँ अग्नि में देनी पड़ती हैं ; और सप्त ऋषियों का होना इसलिए आवश्यक है जिससे वे वेदों को नये सिरे से जारी करें क्योंकि प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में वेद नष्ट हो जाते हैं।

पृष्ठ १६०

इस विषय पर हमारी जानकारी का स्रोत विष्णु-पुराण है। नीचे की

भिन्न भिन्न मन्वन्तरों में सप्तर्षि।

सूची में दिखलाये गये प्रत्येक मन्वन्तर में सप्त ऋषियों के नाम भी इसी स्रोत से लिये गये हैं :—

मन्वन्तरों की संख्या ।	मन्वन्तरों में सप्तर्षि अर्थात् बनातुन्नाश ।						
	१	२	३	४	५	६	७
१	इस मन्वन्तर में न इन्द्र था न सप्तर्षि थे, केवल एक मनु ही था ।						
२	ऊर्जस्तम्भ	प्राण	दत्त	निऋषभ	निश्वर	श्चोर्वरी (?)	वांरच (!)
३	वसिष्ठ की सन्तान ।						
४	ज्योति	धामन	पृथु	काव्य	चैत्र और अग्नि	वरक	पीवर
५	हिरण्यरोमन्	वेदश्री	रूर्ध्वबाहु (!)	अपर (!)	वेदबाहु	सुबाहु	पर्जन्य
६	सुमेधस्	विरजस्	हविष्मत्	मधु	अतिनामन्	सहिष्णु	चर्षयः (!)
७	वसिष्ठ	कश्यप	अत्रि	जमदग्नि	गौतम	विश्वामित्र	भरद्वाज
८	दीप्तिमत्	गालव	कृप	द्रोण का पुत्र अश्वत्थामन्	पराशर	पराशर का पुत्र व्यास	ऋष्यश्रृङ्ग
९	सवन	द्युतिमत्	हव्य	वसु	मेधाधृति	ज्योतिष्मत्	सत्य
१०	हविष्मत्	सुकृति	सत्य	अपांमूर्ति	नाभाग	अप्रतिमौजस्	सुचेत्र
११	निश्चर	अग्नीध्र	वपुष्मत्	विष्णु	आरुणि	हविष्मन्त	नघ
१२	तपस्विन्	सुतय	तपोमूर्ति	तपोरति	तपोधृति	द्युति	इश्चान्यः (!)
१३	निर्मोह	तत्त्वदर्शी च	निष्प्रकम्प	निरुत्सुक	धृतिमन्त	व्यय	सुतपस्
१४	अग्निव	शुचि	शुक्र	मागध	अग्नीध्र	युक्तस्त	जित

छयालीसवाँ परिच्छेद।

नारायण, भिन्न भिन्न समयों में उसके प्रादुर्भाव, और उसके नामों पर।

पृष्ठ १६८

नारायण के स्वरूप पर।

हिन्दुओं के मतानुसार नारायण एक लोकोत्तर शक्ति है, जो नियमानुसार भलाई से भलाई और बुराई से बुराई निकालने का यत्न नहीं करती, परन्तु वह जिन उपायों से भी हो सके अधर्म्म और विध्वंस को रोकने की चेष्टा करती है। इस शक्ति के लिए भलाई, बुराई से पहले है, परन्तु यदि भलाई का यथार्थ विकास न हो और न वह फलदायक ही हो, तो यह अगत्या बुराई का प्रयोग करती है। इस कर्म में वह उस सवार के सदृश है जो अनाज के खेत के मध्य में पहुँच चुका है। जब वहाँ जाकर उसे होश आता है और वह दुष्कर्म से बचना और जो अनिष्ट उसने किया है उससे बाहर निकलना चाहता है, तब उसके पास सिवा इसके और कोई चारा नहीं होता कि घोड़े को वापस मोड़े और जिस मार्ग से वह अन्दर आया था उसीसे बाहर निकल जाय, यद्यपि ऐसा करने में वह उतना ही नहीं किन्तु उससे भी अधिक अनिष्ट करेगा जितना उसने खेत में प्रवेश करते समय किया था। परन्तु इसके सिवा और कोई संशोधन सम्भव ही नहीं।

हिन्दू इस शक्ति और अपने तत्त्वज्ञान के आदिकारण के बीच भिन्नता नहीं समझते। जगत् में इसके निवास का स्वरूप ऐसा है कि लोग इसे भौतिक अस्तित्व के सदृश समझते हैं, इसकी उपस्थिति शरीर और वर्णवाली मानते हैं, क्योंकि वे किसी अन्य प्रकार की उपस्थिति की कल्पना नहीं कर सकते।

अन्य समयों के अतिरिक्त, नारायण पहले मन्वन्तर की समाप्ति पर लोक लोकान्तरों का राज्य वालखिल्य (?) से छीन लेने के लिए प्रकट हुआ है। वालखिल्य (?) ने इसका नाम रक्खा था और इसको अपने हाथों में लेना चाहता था। नारायण आया और उसने राज्य को सौ यज्ञों के करनेवाले शतक्रतु को सौंप दिया और साथ ही उसे इन्द्र बना दिया।

एक दूसरे समय वह छठे मन्वन्तर के अन्त में प्रकट हुआ। उस समय उसने विरोचन के पुत्र राजा बलि को मारा। बलि का सारे भूमण्डल पर राज्य था और उसका मन्त्री शुक्र था। उसने अपनी माता से सुना कि उसके पिता का समय उसके अपने समय की अपेक्षा बहुत अच्छा था, क्योंकि यह कृतयुग के निकटतर था। उस समय लोग अधिक सुखी थे, और उनको किसी प्रकार की क्लान्ति न होती थी। तब उसके मन में अपने पिता से स्पर्धा की आकांक्षा और लालसा उत्पन्न हुई। इसलिए उसने पुण्यशीलता के कार्य शुरू कर दिये। वह दान करने, धन बाँटने, और यज्ञ करने लगा जिनके सौ बार करने से करनेवाले को स्वर्ग और पृथ्वी का राज्य प्राप्त हो जाता है। जब वह इस सीमा के पास पहुँचा, या उसने निन्नानवाँ यज्ञ प्रायः समाप्त कर लिया, तब देवता बड़े घबड़ाये और अपने माहात्म्य की रक्षा के लिए डरने लगे, क्योंकि वे जानते थे कि यदि मनुष्यों को उनकी आवश्यकता न रहेगी तो जो भेंट मनुष्य उन्हें चढ़ाते हैं वह मिलनी बन्द हो जायगी।

विरोचन के पुत्र बलि की कथा।

अब वे इकट्ठे होकर नारायण के पास गये और उससे सहायता के लिए प्रार्थना की। उसने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और वामन रूप में, अर्थात् जिसके हाथ और पैर उसके शरीर के मुक़ाबले में बहुत छोटे होते हैं, जिससे उसका रूप भयानक और कुत्सित

समझा जाता है, पृथ्वी पर अवतरित हुआ। जब बलि यज्ञ कर रहा था, उसके ब्राह्मण हवन के इर्द गिर्द खड़े थे, और उसका मन्त्री शुक्र उसके सम्मुख उपस्थित था तब नारायण उसके पास आया। दान देने के लिए ख़ज़ाने खुले पड़े थे, और रत्नों के ढेर लगे हुए थे। अब वामन ब्राह्मणों की तरह वेद के उस भाग का गान करने लगा जिसको सामवेद कहते हैं। उसका स्वर खिन्न और हृदयग्राही था। उसने राजा से प्रार्थना की कि उदारतापूर्वक मेरी मनःकामनाओं को पूर्ण कीजिए। इस पर शुक्र ने चुपके से राजा को कहा :—"यह नारायण है। यह तुझसे तेरा राज्य छीनने आया है।" परन्तु राजा इतना उत्तेजित था कि उसने शुक्र के शब्दों की कुछ परवा न की, और वामन से पूछा कि तुम क्या चाहते हो। तब वामन बोला :—"तेरे राज्य में से चार पग (भूमि) जिससे मैं वहाँ रहूँ।" राजा ने उत्तर दिया, "जो तुम चाहते हो और जिस तरह तुम चाहते हो पसन्द कर लो;" और हिन्दू रीति के अनुसार, अपनी दी हुई आज्ञा के दृढ़ीकरण के चिह्न के तौर पर उसने अपने हाथों पर डालने के लिए जल मँगवाया। अब शुक्र, लोटा तो ले आया परन्तु राजा के प्रेम के कारण, उसने उसकी टोंटी में डाट लगा दी जिससे इससे जल बाहर न निकले। साथ ही उसने डाट के छिद्र को भी अपनी उङ्गली के कुश घास से बन्द कर दिया। परन्तु शुक्र के केवल एक आँख थी ; इसलिए उसे छिद्र का पता न लगा, और पानी बाहर निकल आया। फलतः वामन ने एक पग में पूर्व दिशा को, दूसरे में पश्चिम को, और तीसरे में स्वर्लोक तक ऊपर को माप लिया। उसके चौथे पग के लिए जगत् में कोई स्थान ही न था; इसलिए उसने चौथे पग से राजा को दास बना लिया, और उसको दास बनाने के चिह्न के तौर पर उसके कन्धों के बीच अपना पैर रख दिया। उसने राजा को पृथ्वी के तले पाताल में, जो

पृष्ठ १९९

सबसे निचला स्थान है, गिरा दिया। उसने लोकों को उससे लेकर राज्य को पुरन्दर के सिपुर्द करदिया।

विष्णु-पुराण का अवतरण।

विष्णु-पुराण में लिखा है :—

"राजा मैत्रेय ने पराशर से युगों के विषय में प्रश्न किया। इस पर उसने उत्तर दिया:—'उनका अस्तित्व इसलिए है जिससे विष्णु उनमें किसी बात में लगा रहे। कृतयुग में वह अकेले कपिल के रूप में, ज्ञान के प्रसारार्थ, आता है। त्रेता में वह सहिष्णुता के प्रसार, दुष्टों को जीतने, और पुण्य कार्यों के प्रचार तथा शक्ति के द्वारा तीन लोकों की रक्षा के निमित्त अकेले राम रूप में प्रकट होता है। द्वापर में वह वेद को चार भागों में विभक्त करने और इससे अनेक शाखायें निकालने के लिए व्यास रूप में अवतरित होता है। द्वापर के अन्त में वह राक्षसों के नाश के लिए वासुदेव रूप में; और कलियुग में सबको मारने और युगों के चक्र को नये सिरे से शुरू करने के लिए वह **ज-ष-व** (?) ब्राह्मण के पुत्र कलि के रूप में पृथ्वी पर आता है। यही उस (विष्णु) का काम है।"

उसी पुस्तक में अन्यत्र लिखा है:—"विष्णु, जो नारायण का ही दूसरा नाम है, वेद को चार भागों में विभक्त करने के लिए प्रत्येक द्वापर के अन्त में आता है, क्योंकि मनुष्य दुर्बल हैं और सारे वेद पर चल नहीं सकते। मुखमण्डल में वह व्यास के सदृश होता है।"

सातवें मन्वन्तर के व्यासों की गिनती।

नीचे की सूची में हम उसके नामों को दिखलाते हैं, यद्यपि ये नाम भिन्न भिन्न स्रोतों में भिन्न भिन्न हैं। यहाँ वर्तमान या सातवें मन्वन्तर के बीते हुए चतुर्युगों में प्रकट होनेवाले व्यासों की गिनती दी गई है।

१	स्वयम्भू	१६	धनञ्जय
२	प्रजापति	१७	कृतञ्जय
३	उशनस्	१८	ऋणज्येष्ठ (?)
४	बृहस्पति	१९	भरद्वाज
५	सवितृ	२०	गौतम
६	मृत्यु	२१	उत्तम
७	इन्द्र	२२	हर्यात्मन्
८	वसिष्ठ	२३	वेद-व्यास
९	सारस्वत	२४	वाजश्रवस्
१०	त्रिधामन्	२५	सोमशुष्म
११	त्रिवृष	२६	भार्गव
१२	भरद्वाज	२७	वाल्मीकि
१३	अन्तरिक्ष	२८	कृष्ण
१४	वप्र (?)	२९	द्रोण का पुत्र अश्वत्थामन् ।
१५	त्रय्यारुण		

कृष्ण द्वैपायन पराशर का पुत्र व्यास है। उनतीसवाँ व्यास अभी नहीं हुआ परन्तु भविष्यत् में होगा।

विष्णु-धर्म्म से अवतरण।

विष्णु-धर्म्म नाम्नी पुस्तक कहती है:—"हरि, अर्थात् नारायण, के नाम भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न होते हैं। वे ये हैं:—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।"

मैं समझता हूँ ग्रन्थकार ने यहाँ उचित अनुक्रम का ख़याल नहीं रक्खा, क्योंकि वासुदेव तो चार युगों के अन्त का है।

वही पुस्तक कहती है:—"विभिन्न युगों में उसके रङ्ग भी विभिन्न

होते हैं। कृतयुग में वह सफ़ेद, त्रेता में लाल, द्वापर में पीला, (यह पिछला उसके नर-देह धारण करने का पहला रूप है), और कलियुग में काला होता है।"

ये रङ्ग उनके तत्त्वज्ञान की तीन प्रारम्भिक शक्तियों से कुछ मिलते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार सत्व स्वच्छ श्वेत, रजस् लाल, और तमस काला है। इस पुस्तक के किसी अगले परिच्छेद में हम उसके इस पृथ्वी पर अन्तिम अवतार का वर्णन करेंगे।

पृष्ठ २००।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद ।

वासुदेव और महाभारत के युद्ध पर ।

संसार का जीवन बोने और उत्पन्न करने पर निर्भर करता है। ये दोनों क्रियायें काल-क्रम से बढ़ती हैं, और यह वृद्धि अपरिमित है पर संसार परिमित है।

मानव-जाति के इतिहास के साथ सृष्टि-क्रम का सादृश्य।

जब पौधों या जन्तुओं की किसी श्रेणी की बनावट में वृद्धि का होना बन्द हो जाता है, और उसका विशेष प्रकार उसकी अपनी जाति के रूप में स्थिर हो जाता है, जब इसका प्रत्येक व्यक्ति एक ही दफ़े पैदा और नष्ट नहीं होता, प्रत्युत अपने सदृश एक या इकट्ठे अनेक भूत उत्पन्न करता है, और एक ही बार नहीं बल्कि अनेक बार उत्पन्न करता है, तब वह पौधों या जन्तुओं की अकेली जाति के रूप में पृथ्वी को घेर लेती है, और अपने आपको और अपनी जाति को उस सारे प्रदेश पर फैला देती है जो उसे मिल सकता है।

किसान अपना अनाज छाँटता है, जितने की उसे आवश्यकता होती है उतना उगने देता है, और बाक़ी को उखाड़ डालता है।

जङ्गल का रखवाला जिन शाखाओं को उत्कृष्ट समझता है उनको छोड़ शेष सबको काट डालता है। मधु-मक्खियाँ अपने में से उन मक्खियों को मार डालती हैं जो केवल खाती ही खाती हैं और छत्ते में काम कुछ नहीं करतीं।

सृष्टि का कार्य भी इसी प्रकार होता है; परन्तु इसमें विवेचना नहीं है, क्योंकि इसका काम सभी अवस्थाओं में एक ऐसा होता है।

वह पेड़ों के पत्तों और फलों को नष्ट होने देती है, और इस प्रकार उन्हें उस परिणाम का अनुभव करने से रोकती है जिसको प्रकृति के प्रबन्ध में पैदा करने के लिए वे बनाये गये हैं। वह उनको दूर कर देती है जिससे दूसरों के लिए स्थान हो जाय।

जब पृथ्वी के अधिवासियों के बहुत ज़ियादा बढ़ जाने से यह विनष्ट या विनष्ट-प्राय हो जाती है, तो इसका राजा—क्योंकि इसका राजा है और उसकी सर्वव्यापिनी रक्षा इसके प्रत्येक कण में दिखाई दे रही है—इस बहुत अधिक संख्या को घटाने और जो कुछ इसमें बुरा है उसे काट फेंकने के लिए एक दूत भेजता है।

हिन्दुओं के विश्वासानुसार, इस प्रकार का एक दूत वासुदेव है; जो पिछली दफ़े मनुष्य रूप में भेजा गया था, और वासुदेव कहलाया था। यह वह समय था जब पृथ्वी पर राक्षस बहुत ज़ियादा थे और पृथ्वी उनके अत्याचार से परिपूर्ण थी; उनकी सारी संख्या को उठाने में असमर्थ होने के कारण यह डोलती और उनके चलने की तीव्रता से यह काँपती थी। तब मथुरा नगरी में उस समय के राजा, कंस, की भगिनी के गर्भ से वसुदेव के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह एक पशु पालनेवाला, नीच शूद्र, जट्ट परिवार था। कंस ने अपनी भगिनी के विवाह के समय एक आकाश-वाणी द्वारा सुना था कि मेरी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ से होगी; इसलिए उसने मनुष्य नियत कर रक्खे थे ताकि जिस समय उसके कोई सन्तान उत्पन्न हो वे उसी समय उसे उठाकर उसके पास ले आवें, और वह उसके सभी बच्चों को—क्या लड़का और क्या लड़की—मार डालता था। अन्ततः, उसके यहाँ बलभद्र उत्पन्न हुआ, और नन्द ग्वाले की स्त्री, यशोदा, बालक को उठाकर अपने घर ले गई। वहाँ उसने उसे कंस के गुप्तचरों से छिपाये रक्खा। इसके बाद वह आठवीं बार गर्भवती हुई,

वासुदेव के जन्म की कथा।

और भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष के आठवें दिन की बरसाती रात को, जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में चढ़ रहा था उसने वासुदेव को जन्म दिया। चूँकि पहरेदार सो गये थे और पहरे पर कोई न था इसलिए पिता बालक को चुपके से उठाकर नन्दकुल, अर्थात् यशोदा के पति, नन्द, की गोशाला, में ले गया। यह गोशाला मथुरा के समीप थी ; परन्तु इन दोनों स्थानों के बीच यमुना नदी बहती थी। वसुदेव ने नन्द की लड़की के साथ लड़के का अदल-बदल करलिया। यह लड़की सुयोग से उसी समय उत्पन्न हुई थी जब वसुदेव लड़के को लेकर वहाँ पहुँचा ही था। उसने अपने पुत्र के स्थान में यह लड़की पहरेवालों को दे दी। राजा कंस बालिका को मारना ही चाहता था कि वह वायु में उड़कर अन्तर्धान हो गई।

वासुदेव अपनी दूध-माँ, यशोदा, की रक्षा में पलने लगा। यशोदा को यह मालूम न था कि यह कन्या के बदले में आया हुआ लड़का है। परन्तु कंस को इस बात की कुछ कुछ ख़बर हो गई। उसने छल और कपट की चालों से बालक को अपने क़ाबू में लाने का यत्न किया, परन्तु वे सब चालें उसके विरुद्ध बैठीं। अन्ततः, कंस ने उसके माता-पिता से कहला भेजा कि उसे (वासुदेव को) मेरे सामने कुश्ती लड़ने के लिए भेजो। अब वासुदेव सबके साथ औद्धत्यपूर्ण बर्ताव करने लगा। रास्ते में एक सरोवर में कमलों की रक्षा के लिए उसकी मौसी ने एक सर्प नियत कर रक्खा था। वासुदेव ने उस साँप के नथनों में से लगाम की तरह एक रस्सी डाल दी। इससे उसकी मौसी बहुत अप्रसन्न हुई। इसके अतिरिक्त, उसने उसके धोबी को मार डाला था क्योंकि उसने कुश्ती लड़ने के लिए उसको कपड़े उधार नहीं दिये थे। उसने अपनी सहचरी लड़की का वह चन्दन छीन लिया था जिसका पहलवानों पर लेपन करने की उसे आज्ञा मिली थी। अन्ततः

वह उस मस्त हाथी को मार चुका था जो कंस के द्वार के सामने उस को मारने के लिए खड़ा किया गया था। इन सब घटनाओं को देखकर कंस का क्रोध इतना बढ़ गया कि उसका पित्त फट गया और वह वहीं मर गया। तब उसके स्थान में उसकी भगिनी का पुत्र, वासुदेव, राज्य करने लगा।

भिन्न भिन्न मासों में वासुदेव के नाम।

वासुदेव का प्रत्येक मास में एक विशेष नाम होता है। उसके अनुयायी मासों को मार्गशीर्ष से आरम्भ करते हैं, और वे प्रत्येक मास को ग्यारहवें दिन से शुरू करते हैं क्योंकि उस दिन वासुदेव प्रकट हुआ था।

नीचे की सूची में मासों में वासुदेव के नाम दिखलाये गये हैं।

मास।	वासुदेव के नाम।	मास।	वासुदेव के नाम।
मार्गशीर्ष	केशव	ज्येष्ठ	त्रिविक्रम
पौष	नारायण	आषाढ	वामन
माघ	माधव	श्रावण	श्रीधर
फाल्गुन	गोविन्द	भाद्रपद	हृषीकेश
चैत्र	विष्णु	आश्वयुज	पद्मनाभि
वैशाख	मधुसूदन	कार्त्तिक	दामोदर

वासुदेव की कथा का शेषांश।

अब कंस के साले को क्रोध आया, उसने शीघ्रता से मथुरा को कूच किया, वासुदेव के राज्य पर अधिकार कर लिया, और उसे सागर में निर्वासित कर दिया। तब सागर-तट के निकट बरोदा नामक सोने का एक दुर्ग प्रकट हुआ, और वासुदेव उसमें रहने लगा।

पाण्डु के पुत्र अपने चचेरे भाइयों, कौरव (अर्थात् धृतराष्ट्र) के पुत्रों के अधिकार में थे। धृतराष्ट्र ने उन्हें अपने पास बुलाकर उनके साथ पाँसा खेला। आख़िरी बाज़ा उनकी सारी सम्पत्ति थी। वे अधिक और अधिक हारते चले गये, यहाँ तक कि उसने उन पर दस वर्ष से अधिक काल के देश-निकाले और देश के किसी ऐसे दूरस्थ अञ्चल में जहाँ उन्हें कोई न जाने छिपे रहने की शर्त लगा दी। यदि वे इस शर्त को तोड़ दें तो उन्हें उतने ही वर्षों के लिए और निर्वासित रहना पड़ेगा। यह शर्त पूरी की गई, परन्तु अन्त को उनका लड़ाई के लिए बाहर निकलने का समय आया। अब प्रत्येक दल अपनी सारी सैन्य को इकट्ठा करने और सहायकों के लिए प्रार्थना करने लगा, यहाँ तक कि अन्त को तानेशर के मैदान में प्रायः असंख्य सैन्य एकत्रित हो गई। सारी सेना अठारह अक्षौहिणी थी। प्रत्येक पक्ष वासुदेव को अपना सहायक बनाना चाहता था। इस पर उसने कहा कि या तो मुझे ले लो, या सेना सहित मेरे भाई बलभद्र को। परन्तु पाण्डु के पुत्रों ने उसे लेना अच्छा समझा। वे पाँच मनुष्य थे—उनका सरदार युधिष्ठिर, उनमें वीर-शिरोमणि अर्जुन, सहदेव, भीमसेन, और नकुल। उनके पास सात अक्षौहिणियाँ थीं; और उनके शत्रु उनसे बहुत ज़ियादा थे। यदि वासुदेव के निपुण उपाय न होते और यदि वह उन्हें यह न सिखाता कि किस प्रकार लड़ने से उनकी विजय होगी तो उनकी स्थिति अपने शत्रुओं की अपेक्षा कम अनुकूल हो जाती परन्तु अब उनकी जीत हुई; वह सारी सेना नष्ट हो गई, और उन पाँच भाइयों के सिवा और कोई न बचा। इसके बाद वासुदेव अपने निवास-स्थान को लौट आया, और, अपने परिवार सहित जिसको यादव कहते थे, मर गया। पाँचों भाई भी, उन युद्धों के अन्त पर, वर्ष की समाप्ति के पहले ही मर गये।

वासुदेव ने अर्जुन के साथ सलाह कर रक्खी थी कि वे बायें हाथ या बाईं आँख के फड़कने को इस बात की एक गुह्य सूचना समझेंगे कि उसके साथ कोई घटना घटी है। उस समय दुर्वासा नाम का एक पुण्यात्मा ऋषि रहता था। अब वासुदेव के भाई-बन्धु और नातेदार बड़े अविवेकी और ईर्ष्यालु लोग थे। उनमें से एक ने अपने कोट के नीचे एक नया तवा छिपा लिया, और ऋषि के पास जाकर, हँसी के तौर पर, पूछने लगा कि मेरे गर्भ से क्या उत्पन्न होगा। ऋषि ने कहा, "तेरे पेट में कोई ऐसी चीज़ है जो तेरी और तेरे सारे वंश की मृत्यु का कारण होगी।" जब वासुदेव ने यह सुना तो उसे बहुत खेद हुआ, क्योंकि वह जानता था कि ये शब्द सत्य हुए बिना न रहेंगे। उसने आज्ञा दी कि तवे को रेती के साथ चूर चूर कराकर पानी में फेंक दिया जाय। ऐसा ही किया गया। इसका केवल एक छोटा सा टुकड़ा बच रहा जिसको रेतनेवाले कारीगर ने तुच्छ समझ कर छोड़ दिया। इसलिए उसने इसे वैसे का वैसा पानी में फेंक दिया। उसे एक मछली निगल गई; वह मछली पकड़ी गई, और कैवर्त को वह टुकड़ा उसके पेट में मिल गया। उसने समझा कि मेरे तीर के लिए इसकी बहुत अच्छी नोक बनेगी।

वासुदेव और पाँच पाण्डव भाइयों की समाप्ति।

पृष्ठ २०२

जब पूर्वनिरूपित काल आया, वासुदेव सागर-तट पर एक पेड़ के नीचे एक टाँग दूसरी टाँग पर रक्खे बैठा था। कैवर्त ने भूल से उसे मृग समझ तीर मारा, और उसके दायें पैर को आहत कर दिया। यही घाव वासुदेव की मृत्यु का कारण हुआ। उसी समय अर्जुन का बायाँ पार्श्व, और फिर उसकी बाँह फड़कने लगी। अब उसके भाई सहदेव ने आज्ञा दी कि तुम किसी व्यक्ति का आलिङ्गन न करना, अन्यथा तुम्हारा सारा बल जाता रहेगा (?)। अर्जुन वासुदेव के पास

गया, परन्तु जिस दशा में वह था उसके कारण उसका आलिङ्गन न कर सका । वासुदेव ने अपना धनुष मँगवा कर अर्जुन के हाथ में दे दिया । अर्जुन ने उस पर अपने बल की परीक्षा की । वासुदेव ने उसे आज्ञा दी कि मृत्यु के पश्चात् मेरे शरीर को तथा मेरे नातेदारों के शरीरों को जला देना, और मेरी स्त्रियों को दुर्ग में से ले जाना । इसके बाद वह मर गया ।

तवे को रेतने से जो लोह चूर्न या लोहे के कण गिरे थे उनसे बर्दी नामक एक झाड़ी उग आई थी । इस बर्दी के पास यादव आये और उन्होंने बैठने के लिए इसकी शाखाओं के बण्डल बाँध लिये । जब वे वहाँ सुरा-पान कर रहे थे उन लोगों के बीच झगड़ा हो गया; वे एक दूसरे को बर्दी के बण्डलों के साथ पीटने लगे, और उन्होंने एक दूसरे को मार डाला । यह सारी घटना सर्सती नदी के मुहाने के समीप हुई, जहाँ यह नदी सोमनाथ के स्थान के निकट समुद्र में गिरती है ।

जो कुछ वासुदेव ने कहा था अर्जुन ने वह सब किया । जब वह स्त्रियों को ला रहा था तब लुटेरों ने उस पर अकस्मात् आक्रमण किया । अब अर्जुन अपने धनुष को झुकाने में असमर्थ था । उसने अनुभव किया कि मेरी शक्ति जा रही है । उसने धनुष को अपने सिर के ऊपर चक्राकार घुमाया । जो स्त्रियाँ धनुष के नीचे खड़ी थीं वे सब बच गईं, पर बाक़ी को लुटेरे पकड़ कर ले गये । अब अर्जुन और उसके भाइयों ने देखा कि अब अधिक जीने से कुछ लाभ नहीं, इसलिए वे उत्तर की ओर जाकर उन पर्वतों में घुस गये जिनका हिम कभी नहीं पिघलता । शीत के कारण वे एक दूसरे के बाद मरने लगे और अन्त को अकेला युधिष्ठिर ही शेष रह गया । उसने स्वर्ग में प्रवेश करने की प्रतिष्ठा लाभ की, परन्तु स्वर्ग में जाने के पहले उसका नरक में से

गुज़रना आवश्यक था क्योंकि उसने वासुदेव और अपने भाइयों की प्रार्थना पर अपने जीवन में एक बार झूठ बोला था। उसने द्रोण ब्राह्मण को सुनाकर ये शब्द कहे थे :—"अश्वत्थामन्, हाथी, मर गया है।" बोलते समय वह अश्वत्थामन् और हाथी के बीच कुछ देर ठहर गया था जिससे द्रोण ने भूल से यह समझ लिया कि मेरा पुत्र मर गया है। युधिष्ठिर ने देवताओं से कहा "यदि ऐसा होना आवश्यक ही है तो नरक में पड़े हुए लोगों की ओर से मेरा माध्यस्थ्य स्वीकार कीजिए ; वे सब यहाँ से छोड़ दिये जायँ।" जब उसकी यह कामना पूरी हो गई तब वह स्वर्ग में चला गया।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद ।

अक्षौहिणी की व्याख्या ।

प्रत्येक	अक्षौहिणी	में	१०	अनीकिनी	होती हैं ।
,,	अनीकिनी	,,	३	चमू	,,
,,	चमू	,,	३	पृतना	,,
,,	पृतना	,,	३	वाहिनी	,,
,,	वाहिनी	,,	३	गण	,,
,,	गण	,,	३	गुल्म	,,
,,	गुल्म	,,	५	सेनामुख	,,
,,	सेनामुख	,,	३	पत्ति	,,
,,	पत्ति	,,	३	रथ	,,

शतरञ्ज में रथ रुख़ कहलाता है परन्तु यूनानी इसे युद्ध का रथ कहते हैं। इसकी रचना मङ्कलूस (मिर्टिलोस ?) द्वारा एथन्स में हुई थी, और एथन्स निवासियों का मत है कि सबसे पहले हम ही युद्ध के रथ पर चढ़े थे। परन्तु उस समय के पूर्व ही अफ्रोडिसियोस नामक हिन्दू उन्हें बना चुका था जब कि वह जलप्लावन के कोई ९०० वर्ष बाद मिस्र देश पर राज्य करता था। उनको दो घोड़े खेंचा करते थे।

यूनानियों की कथा इस प्रकार है :—हेफीस्टोस एथीनी से प्रेम करता और उसे अपने अधिकार में लाने की कामना करता था, परन्तु उसने इन्कार करदिया और अविवाहित रहना ही पसन्द किया। अब वह एथन्स के देश में छिप गया और उसे बलात्कार पकड़ लाने

की ठानी । परन्तु जब एथीनी ने उसके बरछी मारी तब उसने उसे छोड़ दिया । उसके पृथ्वी पर गिरे हुए रक्त के एक बिन्दु से एरिचथोनियोस पैदा हुआ । वह सूर्य के मीनार के सदृश रथ पर पहुँचा, बागों को पकड़नेवाला उसी के साथ सवार था । हमारे समय के घुड़दौड़ के चक्कर, अर्थात् दौड़ में दौड़ने और रथों को दौड़ाने की रीतियाँ भी ऐसी ही हैं ।

पृष्ठ २०३

इसके अतिरिक्त एक रथ में एक हाथी, तीन सवार, और पाँच प्यादे भी शामिल होते हैं ।

लड़ाई के आयोजन, छावनी के डालने और छावनी को उठा लेने के लिए ये सब अनुक्रम और विभाग आवश्यक हैं ।

एक अक्षौहिणी में २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० सवार और १०९३५० प्यादे होते हैं ।

प्रत्येक रथ में चार घोड़े और उनका सारथि, तीरों से सुसज्जित, रथ का स्वामी, बरछियाँ लिये उसके दो साथी, एक रखवाला जो स्वामी की पीछे से रक्षा करता है, और एक छकड़ा होते हैं ।

प्रत्येक हाथी पर ये लोग बैठते हैं—हाथी का नायक, और उसके पीछे उप-नायक, जिसको गद्दी के पीछे से हाथी को आँकुस से चलाना पड़ता है, गद्दी पर बैठा हुआ तीरों से सुसज्जित स्वामी, और उसके साथ ही बरछीवाले उसके दो साथी और उसका भंड, हौहव (?),जो अन्य अवसरों पर उसके आगे आगे चलता है ।

तदनुसार रथों और हाथियों पर बैठनेवाले लोगों की संख्या २८४३२३ होती है । घोड़ों पर चढ़नेवालों की संख्या ८७४८० होती है । एक अक्षौहिणी में हाथी २१८७०, रथ भी २१८७०, घोड़े १५३०९०, और मनुष्य ४५९२८३ होते हैं ।

एक अक्षौहिणी के सजीव प्राणियों, हाथियों, घोड़ों, और मनुष्यों की सारी संख्या ६३४२४३ होती है; अठारह अक्षौहिणियों के लिए यही संख्या ११४१६३७४ होती है, अर्थात् ३६३६६० हाथी, २७५५६२० घोड़े, और ८२६७०९४ मनुष्य।

यह अक्षौहिणी और उसके जुदा जुदा भागों की व्याख्या है।

टीका।

पृष्ठ ३० शुक्र से शौनक का ऐतिह्य शायद विष्णु-धर्म्म से लिया गया है।

पृष्ठ ३० इस अवतरण को तीसरी पुस्तक, दूसरे अध्याय के साथ मिलाओ।

पृष्ठ ३१ वसुक्र। यह पाठ यथार्थत: अरबी चिह्नों के अनुरूप नहीं। उनके अनुसार इसे वशुक्र पढ़ना चाहिए। पहला नाम मैंने इसलिए पसन्द किया है क्योंकि सेंट पीटर्स वर्ग के कोश (St. Petersburg dictionary) में यह नाम वैदिक मंत्रों के एक कवि का लिखा है।

पृष्ठ ३२ व्यास के चार शिष्य थे। देखो विष्णु-पुराण, तीसरी पुस्तक, चौथा अध्याय।

पृष्ठ ३२ एक विशेष प्रकार का पाठ। यह चार पाठों, पदपाठ, क्रम-पाठ इत्यादि का वर्णन है।

पृष्ठ ३३ काण्ड। यह स्पष्ट है कि کانری शब्द यजुर्वेद के विभागों को बतला रहा है जिनको कण्डिका कहते हैं। यजुर्वेद का पाठ कांरी का बना है, और इसका नाम (यजुर्वेद का नाम ? इसका कौनसा नाम ?) इससे (कांरी से) निकला है, अर्थात् कांरी का सङ्ग्रह। यहाँ यह मालूम नहीं होता कि ग्रन्थकार यजुर्वेद के कौन से नाम को कांरी से निकला हुआ बताता है। क्या यजुर्वेद का कोई काण्डिक या काण्डिन् नाम भी है जिसका अर्थ कण्डिकाओं का बना हुआ हो।

कॉरी =कण्डिका में ड को अरबी में र कर दिया गया है, जैसा कि كرب कुडव بياري व्याडि, گور गरुड़, درور द्रविड़, ناري नाडी, بناري विनाड़ी, और بيرورج वैदूर्य इत्यादि में। दीर्घ ई प्रत्यय भारतीय वाणी के देशीय रूप का विशेष गुण मालूम होता है, और सम्भवतः यह अधिक प्राचीन प्रत्यय कि का बचा हुआ है। Cf. R. Hornle, "Comparative Grammar of the Gaudian Languages.,"

पृष्ठ ३३। याज्ञवल्क्य—देखो विष्णु-पुराण, तीसरी पुस्तक, पाँचवाँ अध्याय।

पृष्ठ ३७ स्मृति–ग्रन्थकार भूल से इसे पुस्तक कहता है। ये नीति की पुस्तकें हैं, और यहाँ लिखे ब्रह्मा के बीस पुत्र धर्म्म-शास्त्रों के रचयिता हैं।

अलबेरूनी कभी कभी स्मृति नाम की पुस्तक का अवतरण देता है। परन्तु उसके पास यह पुस्तक न थी। उसने वे अवतरण ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त से लिये थे। वास्तव में ब्रह्मगुप्त ने स्मृति के अवतरण दिये हैं। चूँकि, उसके मतानुसार, स्मृति की पुस्तक मनु ने बनाई थी, इसलिए उसका अभिप्राय मनु के धर्म्म-शास्त्र से है। इस धर्म्म-शास्त्र की ओर अलबेरूनी ने केवल एक ही जगह साफ़ तौर पर इशारा किया है, परन्तु वह भी ऐसी रीति से जिससे मैं समझता हूँ यह पुस्तक उसके हाथों में न थी। मनु पर, बड़े मानस (गणित तथा फलित-ज्योतिष की एक पुस्तक ?) के रचयिता के रूप में।

पृष्ठ ३८ न्यायभाषा—نايبهاش को मेरा न्यायभाषा पढ़ना शायद सन्दिग्ध मालूम होता है, क्योंकि पुस्तक के विषय का गौतम के न्याय-दर्शन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, परन्तु यह जैमिनि के मीमांसा से स्पष्टतया अभिन्न प्रतीत होता है। किन्तु मैं नहीं जानता कि इस शब्द को और

किस तरह पढ़ा जाय। यह भी ज्ञात नहीं कि कपिल ने कोई ऐसा ग्रन्थ लिखा है।

मीमांसा—कपिल के विपरीत, जैमिनि वेद को सनातन और अपौरुषेय बताता है। यह सिद्धान्त और जिन जिन विवादों में से यह गुज़र चुका है वे सब इसलाम के कुरान-सम्बन्धी इतिहास में भी पाये जाते हैं। इसलाम की दृष्टि में कुरान भी सनातन और अमानुषिक है।

लौकायतः लोकायत पढ़ो—यह चारवाक मत का जड़वाद-सम्बन्धी सिद्धान्त है कि इन्द्रियों की उपलब्धि ही प्रमाण का एक-मात्र साधन है। इसके लिए देखिए—वेदान्तसार और सर्वदर्शनसंग्रह।

बृहस्पति इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक है; भास्कराचार्य ने उसके सूत्र—बार्हस्पत्यसूत्रम्—का अवतरण दिया है।

पृष्ठ ३९. भारत, अर्थात् महाभारत। भगवद्गीता इसका एक भाग है। वासुदेव के जन्म और पाँच पाण्डवों की कथा महाभारत से ली गई है। मुझे इस बात का पूर्ण निश्चय नहीं कि अलबेरूनी के पास इस पुस्तक की कोई प्रति मौजूद थी। इस पुस्तक के अवतरण देते समय वह इस बात का उल्लेख नहीं करता। यदि यह पुस्तक उसके पास होती तो वह प्रायः इसका उल्लेख करदेता।

पृष्ठ ३९. अलबेरूनी ने महाभारत के पर्वों की जो सूची दी है उसका वास्तविक पर्वों से स्पष्ट भेद है।

पृष्ठ ४२. पाणिनि—हस्तलेख में पाँरिति, پارت है, जिसको मैं समझ नहीं सका। यदि शुद्ध पाठ پارن है, तो हमें स्मरण रखना चाहिए कि ण की आवाज़ में र मिला हुआ है। इसी प्रकार अलबेरूनी ने वणिज को برنج बर्निज लिखा है। इसके अनुसार हमें پارن पार्निनि की आशा करनी चाहिए, परन्तु ग्रन्थकार ने پارن पाँरिनि लिखा है यह मालूम होता है।

पृष्ठ ४२. شکهت शिष्यहित। यह गोटिङ्गन के प्रोफ़ेसर कीलहार्न ने बतलाया है।

पृष्ठ ४३. सातवाहन—इस नाम के अन्य रूप सालवाहन, सालिवाहन हैं; परन्तु अलबेरूनी साफ़ तौर पर समलवाहन लिखता है।

पृष्ठ ४३. मैादकम् के स्थान में मोदकम्=मा उदकम् पढ़ो।

पृष्ठ ४४. अबुल असवद, इत्यादि, साहित्यिक ऐतिह्य के अनुसार उनके व्याकरण-शास्त्र का उत्पादक है।

पृष्ठ ४५. पिङ्गल। چلت चलितु, گیست गैसितु, اولیاند। औलियान्दु के संस्कृत रूप क्या हैं?

पृष्ठ ४६. अलख़लील अरबी साहित्य में छन्दःशास्त्र का पिता है।
Cf. G. Flügel, Grammatische Schulen der Araber, P. 37.

पृष्ठ ४७. "बदनुक् कमसलि सिफ़तिक् व फ़मुक् बिसअते शफ़तिक्" अरबी अक्षरों में यह इस प्रकार लिखा है:—

بدنك کمثل صفتك و فمك بسعة شفتك (स. रा.)

पृष्ठ ४८. हरिभट्ट। इस नाम के किसी अभिधान-प्रणेता का मुझे पता नहीं। हस्तलेख में साफ़ हरिउद्दु लिखा है, जो संस्कृत के अनेक दूसरे रूपों को भी प्रकट कर सकता है।

पृष्ठ ५१. चरण का प्रत्येक तत्त्व, इत्यादि। इस उदाहरण में बताये नियम की इससे अगले उदाहरण में प्रयुक्त नियम से इतनी भिन्नता है कि पहले में १ का घटाना ("और घात (४) से वह १ निकाल देता है") छूट गया है। परन्तु यदि हम उदाहरण के अनुसार नियम के पाठ को शुद्ध भी करें तो भी यह शुद्ध नहीं हो सकता। हम अलबेरूनी से इस बात में सहमत हैं कि हस्तलेख में ज़रूर कोई ख़राबी होगी।

क्योंकि इसका प्रयोग सारे आठ पादों पर नहीं, प्रत्युत केवल दो पर ही हो सकता है, उदाहरणार्थ इन दो पर—

॥<(२ × २ = ४, ४ − १ = ३, ३ × २ = ६,६ − १ = ५)

और

।<। (२ × २ = ४, ४ − १ = ३, ३ × २ = ६)

अर्थात् ये दो पद विन्यास में पाँचवें और छठे स्थानों पर होते हैं।

पृष्ठ ५२. यूनानी भी, इत्यादि । यूनानी छन्दों के साथ मिलान अस्पष्ट है, क्योंकि अरबी पाठ ज़रूर कुछ छूट गया है। मूल अरबी में यह पाठ इस प्रकार है।—

مايتركب من الكلمات سلابي و الحروف بالصوت و عدمه والطول والقصر والتوسط

यहाँ سلابي शब्द अरबी का नहीं मालूम होता। यह शायद यूनानी है। इसका अर्थ Syllable है जिसको हमने भाषा में 'अक्षर' लिखा है। (स० रा०)

पृष्ठ ५२. व्यञ्जन या अक्षर। मैं समझता हूँ ग्रन्थकार का अभिप्राय अक्षर से है। अरबी शब्द حرف के अर्थ, संस्कृत शब्द अक्षर की तरह, वाक्य का अंश Syllable और आवाज़ (प्राय: व्यञ्जन) दोनों हैं।

आर्या। यह पाठ मेरा अपना अनुमान है, क्योंकि हस्तलेख में अरल लिखा है, जिसका अर्थ मैं कुछ नहीं लगा सकता। ग्रन्थकार का दिया वर्णन आर्या छन्द पर लागू हो सकता है। इस छन्द का ज्ञान उसे ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त के अध्ययन से हो सकता था।

पृष्ठ ५५. ख़फ़ीफ़। यह अरबी छन्द पश्चिमी रूप में इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :—

— ◡ — — | — — ◡ — | — ◡ — —

पृष्ठ ५५. वृत्त । برت (ब—र—त) का और भी कुछ पढ़ा जा सकता है। हस्तलेख में वृत्त है।

पृष्ठ ६३. मैंने केवल एक ही पृष्ठ देखा है। इस अनुवाद के स्थान में यह चाहिए, "मैंने केवल एक ही पृष्ठ का अध्ययन किया है।"

पृष्ठ ६५. सिद्धान्त। सिद्धान्तों के साहित्य पर अँगरेज़ी में E. Burgess, Surya Siddhanta (ई० बर्गस का किया सूर्यसिद्धान्त का अनुवाद) P. 418-422 देखा जा सकता है।

श्रीषेण 'ष' के स्थान ख के साथ लिखा है, जैसे कि भाषा = भाखा।

पृष्ठ ६५, ६६. ब्रह्मगुप्त,—इसके ग्रन्थ, ब्रह्मसिद्धान्त, का अलबेरूनी ने बहुत उपयोग किया है। अलबेरूनी ने इसका अरबी में अनुवाद किया (१०३० ईसवी)। हम नहीं जानते कि उसने इसे कभी समाप्त भी किया था या नहीं।

ब्रह्मगुप्त अभी तीस ही वर्ष का था जब उसने यह पुस्तक लिखी। उस पर यह दोष लगाया गया है कि उसने अपने राष्ट्र के धर्मान्ध पुरोहितों और मूर्ख प्राकृत जनों को प्रसन्न करने के लिए झूठ और असारता का प्रचार करके अपने आत्मा के विरुद्ध पाप किया था जिससे वह उन सङ्कटों से बचा रहा जिनमें पड़कर कि सुक़रात ने प्राण दिये थे। इसके अतिरिक्त अलबेरूनी उस पर आर्यभट्ट के साथ अनुचित शत्रुता का भी दोषारोपण करता है।

पूर्वीय सभ्यता के इतिहास में ब्रह्मगुप्त का स्थान बड़ा ही प्रतिष्ठित है। अरबियों के टोलमी (बतलीमूस) से परिचित होने के पहले उसीने उनको ज्योतिष सिखलाई थी; क्योंकि अरबी साहित्य की प्रसिद्ध पुस्तक सिन्द-हिन्द, जिसका बार बार उल्लेख हुआ है परन्तु जो अभी प्रकाश

में नहीं आई, उसके ब्रह्मसिद्धान्त का अनुवाद है; और भारतीय ज्योतिष पर अल अर्कन्द नाम की एक मात्र दूसरी पुस्तक, जो उनको ज्ञात थी, उसके खण्डखाद्यक का अनुवाद था। यह पिछली पुस्तक करणखण्डखाद्यक भी कहलाती है। बलभद्र ने इस पर टीका लिखी थी।

ब्रह्मगुप्त के उत्तरखण्डखाद्यक नामक तीसरे प्रबन्ध का उल्लेख और अवतरण भी यहाँ मिलते हैं।

पृष्ठ ६६. पुलिस — इस नाम और पौलिस को वराहमिहिर कृत संहिता पर उत्पल की टीका में पुलिश और पौलिश लिखा है; किन्तु अलबेरूनी सदा इन्हें س के साथ लिखता है, ش के साथ नहीं, इस लिए मैं समझता हूँ कि वह और उसके पण्डित पुलिस और पौलिस बोलते थे।

अलबेरूनी ने पौलिश सिद्धान्त से प्रायः उतना ही फ़ायदा उठाया है जितना ब्रह्मसिद्धान्त से, और वह इसका अनुवाद कर रहा था।

पुलिस और पौलिस में सम्बन्ध यह है :—

पौलिस (पौलिश) वह ऋषि है जिसने इस सिद्धान्त में अपना ज्ञान दिया है। वह सैन्त्र, अर्थात् सिकन्दरिया नगर का रहने-वाला था।

पुलिस (पुलिश) इस पुस्तक का सम्पादक है। दोनों ही يوناني यूनानी कहलाते हैं (رومي, बाईज़ण्टाइन ग्रीक नहीं)। "पुलिश अपने सिद्धान्त में कहता है कि "पौलिश यूनानी एक स्थान पर कहता है," इत्यादि, (परिच्छेद २६)। इस सिद्धान्त के एक टीकाकार का उल्लेख किया गया है (परिच्छेद ३४, पृष्ठ ३००), जहाँ कि

अब मैं उसका यह अनुवाद पसन्द करता हूँ "पुलिश के सिद्धान्त का टीकाकार," इत्यादि ।

पुलिश पराशर का प्रमाण देता है (परिच्छेद ७९), और छोटे आर्यभट्ट ने पुलिश का अवतरण दिया है (परिच्छेद ३१) ।

पौलिश का प्रमाण ब्रह्मगुप्त ने दिया है (परिच्छेद ४२) ।

Cf. on the Pulisasiddhanta H. Kern, The Brihat-Samhita, preface, p. 48.

पृष्ठ ६८. अरबी शब्द براهين الاعمال का अर्थ डाक्टर ज़ाख़ो ने Ratio metaphysica of all astronomical methods दिया है । मैंने भाषा में इसका अनुवाद 'ज्योतिष की सारी रीतियों का हेतु' किया है । स. रा.

पृष्ठ ६८. बड़ा आर्यभट्ट छोटे आर्यभट्ट से साफ़ पहचाना जाता है, क्योंकि छोटे के साथ सदा "कुसुमपुर" अर्थात् पाटलिपुत्र (पटना) का, लिखा होता है । अलबेरूनी का उससे परिचय केवल ब्रह्मगुप्त की पुस्तकों में उसके अवतरणों द्वारा ही है । वह उसकी दो पुस्तकों—दशगीतिका और आर्याष्टशत—का उल्लेख करता है । इन दोनों ग्रन्थों का सम्पादन कर्न (Kern) ने सन् १८७ ई० में आर्यभटीयम् के रूप में किया है ।

Cf. Dr. Bhau Daji, "Brief Notes on the Age and Authenticity of the Works of Aryabhata," etc., P. 392., in the "Journal of the Royal Asiatic Society," 1865, Vol. 1. 392 Seq.

पृष्ठ ६८. बलभद्र—इसके ग्रन्थों में से इनका उल्लेख है:—

(१) एक तन्त्र ।

(२) एक संहिता ।

(३) वराहमिहिर के बृहज्जातकम् की टीका।

(४) ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्यक की टीका।

(५) वह खण्डखाद्यक तिप्पा नाम की पुस्तक का रचयिता माना जाता है।

अलबेरूनी इसे सदा टीकाकार के नाम से पुकारता है, और बार बार इसके प्रमाण देता है, पर यह नहीं बताता कि ये उसकी किस पुस्तक से लिये गये हैं। वह उसीके प्रमाण पर कनौज और थानेसर का अक्ष देता है, और उसकी बड़ी कड़ी आलोचना करता है।

पृष्ठ ६८. भानुरजस्। अरबी हस्तलेख में बहानर्जुस् है, जिसको मैं पहचान नहीं सका। इसमें थोड़ा सा परिवर्तन بهانرجس से بهانوجس करने से यह भानुयशस् हो जायगा। यह नाम मुझे जी० बुहलर (G. Bühler) ने सुझाया है।

पृष्ठ ६९. कूर-बबया—चूँकि कूर का अर्थ चावल है, इसलिए ببيا बबया का अर्थ ज़रूर पहाड़ होगा। क्या यह पर्वत का देसी रूप है?

पृष्ठ ६९. खण्ड-खाद्यक-तप्पा—हस्तलेख में तप्पा-या तिप्पा (तुप्पा) है। इसके संस्कृत रूप का मुझे पता नहीं।

تپيا को تپين में बदल देने से = टिप्पणी हो जायगा।

पृष्ठ ६९. विजयनन्दिन्—अलबेरूनी उसके ये उद्धरण देता है—(१) किसी स्थान की द्राघिमा निकालने की रीति (परिच्छेद ३१); (२) वर्ष, मास, और होरा के अधिपतियों पर एक टिप्पणी (परिच्छेद ३४); (३) ध्रुव के इर्द गिर्द के तारों पर (परिच्छेद ५७); अहर्गण का एक नियम (परिच्छेद ५३)। डाक्टर भाउ दाजी ने इस नाम के एक ज्योतिषी का उल्लेख किया है। वह उसे रोमक सिद्धान्त के रचयिता श्रीषेण के पूर्व का बताता है। देखो, "The Age and

Authenticity of the Works of Aryabhata," etc. ("Journal of the Royal Asiatic Society," 1864.), p. 408.

पृष्ठ ६६. भदत्त (? मिहदत्त)।—हस्तलेख में مهدت पाठ है। भदत्त का ज़िक्र कर्न (Kern) ने अपनी बृहत्संहिता की भूमिका के पृष्ठ २६ पर किया है। अलबेरूनी वित्तेश्वर की पुस्तक से सप्तर्षि की गति पर (परिच्छेद ४५), तारों के मध्य स्थानों पर (परिच्छेद ५४), सूर्य और चन्द्र के व्यासों पर (परिच्छेद ५५), कश्मीर के अक्ष पर (परिच्छेद ३१), और इस पुस्तक में प्रयुक्त शाक (परिच्छेद ४६) पर टिप्पणी उद्धृत करता है। अलबेरूनी के भारत पर वर्तमान पुस्तक लिखने के पहले इस पुस्तक का ज़रूरी तौर पर अरबी में भाषान्तर हो गया होगा, क्योंकि वह शिकायत करता है कि पुस्तक का जो भाग मेरे पास है वह बहुत बुरी तरह से अनुवादित है (परिच्छेद ५३)।

पृष्ठ ७०. उत्पल।—इन दो करणों के अतिरिक्त उसने ये ग्रन्थ रचे हैं—

(१) मनु के बनाये बड़े मानस की टीका।

(२) प्रश्नचूड़ामणि (परिच्छेद १४)।

(३) वराहमिहिर की संहिता की टीका (परिच्छेद २६)।

(४) सूधव (?) नाम्नी पुस्तक, जिसमें से अलबेरूनी ने ऋतुएँ और काल-गणना-सम्बन्धी बातें ली हैं। Cf. on Utpal Kern's preface to his Brihat-Samhita, p. 61.

पुस्तक का नाम राहुनराकरण, अर्थात् करणों का तोड़ना अपभ्रंश मालूम होता है। करण शब्द पहले और तोड़ना पीछे चाहिए।

पृष्ठ ७०. गणित तथा फलित-ज्योतिष में मनु की प्रामाणिकता के लिए देखो, Kern, preface to Brihat-Samhita, p. 42.

पृष्ठ ७०. पुल्लुल (?)—ग्रन्थकार इससे विषुवों के अयन-चलन के विषय में एक बयान उद्धृत करता है; वह उसकी बहुत प्रशंसा करता है, और कहता है कि उसके एक सिद्धान्त को उत्पल ने ग्रहण किया था (परिच्छेद ४०)।

मुझे कोई ऐसा भारतीय नाम मालूम नहीं। इससे बहुत मिलता-जुलता नाम मुञ्जाल है। कोलब्रुक ने अपने "Essays," में इस नाम के एक ज्योतिषी का उल्लेख किया है।

पृष्ठ ७०. भट्टिल (?)—हस्तलेख में बहत्तल है, और मैं समझता हूँ कि शुद्ध पाठ भट्टिल है। यह नाम शायद भट्ट से निकला है, या उसीको छोटा किया गया है, जैसे कुमार से कुमारिल, षण्ढ से पुषण्डिल। अलबेरूनी योगों पर उनासीवें परिच्छेद में उसका प्रमाण देता है।

पराशर और गर्ग पर देखो Kern, Brihat-Samhita, preface, pp. 31, 33; सत्य, जीवशर्मन् पर, p. 51; मणित्थ पर, p. 52. मौ सम्भवतः मय से मिलता है।

पृष्ठ ७१. वराहमिहिर, इत्यादि—इस लेखक ने न केवल षट्-पञ्चाशिका और होराविंशोत्तरी ही बनाई है प्रत्युत योगयात्रा, तिकनी-यात्रा (?) और विवाहपटल नाम के ग्रन्थ भी लिखे हैं।

वास्तु-विद्या की पुस्तक के रचयिता का नाम अरबी पाठ में नहीं मिलता। यदि यह वराहमिहिर की रचना न थी तो यह नग्नजित् या विश्वकर्मन् की बनाई हुई होगी।

पृष्ठ ७२. सूधव—मुझे इससे मिलता-जुलता कोई संस्कृत रूप ज्ञात नहीं। यह श्रुति का कोई नातेदार मालूम होता है। यदि पुराणों (ऐतिह्यों) के अर्थों में श्रुतियों का प्रचार था तो मैं इसे सूधव से मिलाना चाहता हूँ। यह कहीं श्रोतव्य तो नहीं?

यह शब्द दो भिन्न भिन्न पुस्तकों का नाम है। इनमें से एक तो काश्मीर के उत्पल की है, और दूसरी शुभाशुभ दिनों आदि पर है। इसमें प्रायः चौबीस होरा के नाम थे (परिच्छेद ३४) ; इसमें दिनों के तीसरे भागों के नामों का (परिच्छेद ६१) ; विष्टि के नामों का (परिच्छेद ७८), वर्ष के अशुभ दिनों का (परिच्छेद ७७), और विक्रमादित्य के नाम का उल्लेख था।

بنگال शब्द को बङ्गाल पढ़ना प्रायः ठीक नहीं। क्या यह कहीं पुण्यकाल तो नहीं ?

पृष्ठ ७२. गुढामन् (?), अरबी में जूरामन्—चूंकि इस शब्द का अर्थ अज्ञात किया गया है, इसलिए ऐसा विचार होता है कि इसकी व्युत्पत्ति गुह शब्द = छिपाना से है (देखो गूढ़)। अरबी अक्षर चूडामणि भी पढ़े जा सकते हैं। यदि प्रश्न जूरामन् का अर्थ वस्तुतः वही है जो अलबेरूनी कहता है, तो यह गूढ प्रश्न होना चाहिए था।

पृष्ठ ७२. सङ्गहिल, पीरुवान—इन दो नामों के संस्कृत पर्याय मुझे मालूम नहीं। पहला नाम शायद शृङ्खल या शृङ्खला के सदृश कोई शब्द हो। पृथूदक ब्रह्मसिद्धान्त पर एक टीका का लेखक है।

पृष्ठ ७२. चरक—इसके वैद्यक ग्रन्थ के प्राचीन अरबी अनुवाद के अलबेरूनी ने कहीं कहीं अवतरण दिये हैं। इन अवतरणों से मालूम होता है कि यह अनुवाद अशुद्धियों से रहित न था और न इस का हस्तलेख-ऐतिह्य असावधानता के प्रभावों से ही ख़ाली।

पृष्ठ ७३. पञ्चतन्त्र—इस पुस्तक पर और इसके अनुवाद में इब्नुलमुक़फ़्फ़ा के भाग पर देखो Benfey's introduction to his translation of the Panctantra (Leipzig 1859) पुस्तक के अनुवादों पर, और उस प्रभाव पर जो ग़ज़नी के राजा महमूद का उसके दैव

पर था, Cf. Colebrooke, "Essays," ii. 148. इब्नुल मुक़फ़्फ़ा का ग्रन्थ वह है जिसका सम्पादन एस० डी० सेसी (S. de Sacy) ने १८१६ में किया था।

पृष्ठ ७४. परिच्छेद १५—इस परिच्छेद के अनुवाद में मैंने इन पुस्तकों से बहुत सहायता ली है:—Colebrooke, "On Indian Weights and Measures" ("Essays, i. 528 *seq.*), और Marsden's *Numismata Orientalia*, new edition, Part I., "Ancient Indian Weights," by E. Thomas, London, 1874; A. Weber, Ueber ein Fragment der Bhogavati, II. Theil, p. 265 note.

एक दिर्हम का वज़न = सात मिसकाल ख़लीफ़ा उमर के समय से है।

एक दिर्हम भार = सात दानक भारत में ग्रन्थकार के काल में ही था, क्योंकि सामान्यतः एक दिर्हम = छः दानक। सिन्ध के प्राचीन दीनारों पर देखो, इलियट कृत "भारतवर्ष का इतिहास", ११ (अबू ज़ैद), २४ (मसऊदी), ३५ (इब्न हौक़ल)

पृष्ठ ७७. वराहमिहिर—यह वाक्य बृहत्संहिता, अध्याय ५८, ५, १, का है। इसके अगले यव, अण्डी, माष, और सुवर्ण पर अवतरण मुझे उसकी संहिता में नहीं मिले।

पृष्ठ ७७. चरक—इस पुस्तक का अरबी भाषान्तर विद्यमान नहीं है। इस पुस्तक के अवतरणों में जो भारतीय शब्द मिलते हैं वे ऐसे शुद्ध लिखे हुए नहीं जैसे अलबेरूनी की अपनी पुस्तक में हैं, और उनका शुद्ध रूप पहचानने में अधिक कठिनता का सामना करना पड़ता है।

पृष्ठ ८०. जीवशर्मन्—अलबेरूनी उसकी किसी पुस्तक से अवतरण नहीं देता, किन्तु केवल इतना कहता है "उसने बताया है, ज़िक्र किया है", "मैंने उससे सुना है"। इसके अनुसार यह जान

पड़ता है कि वह, श्रीपाल की तरह, अलबेरूनी का समकालीन था और इसका उससे व्यक्तिगत परिचय था । अलबेरूनी उसके प्रमाण से काश्मीर और स्वात में होनेवाले एक त्योहार का सविस्तर वर्णन देता है (परिच्छेद ७६) । इसके अतिरिक्त, एक जीवशर्मन् एक जातकम् का रचयिता भी बताया गया है (परिच्छेद १४) । परन्तु यह कोई और ही व्यक्ति मालूम होता है, जो वराहमिहिर का पूर्ववर्ती था । देखो, Kern's Preface to Brihat-Samhitâ, p. 29.

पृष्ठ ८०. वराहमिहिर—यह अवतरण बृहत्संहिता, अध्याय तेईस, ५, २. से मिलता मालूम होता है । हर सूरत में यह वही वचन है जिसकी ओर श्रीपाल संकेत करता है ।

पृष्ठ ८०. श्रीपाल—अलबेरूनी उसका दूसरी बार अवतरण परिच्छेद २२ में देता है, जहाँ वह कहता है कि मुलतान में शूल नामक एक तारा दिखाई देता था जिसे लोग अशुभ समझते थे, और परिच्छेद ७९ में वह उसकी पुस्तक से सत्ताईस योगों के नाम नक़ल करता है । शायद श्रीपाल अलबेरूनी के समय में मुलतान में रहनेवाला कोई विद्वान् था । अलबेरूनी उसकी किसी पुस्तक का उल्लेख नहीं करता ।

करस्तून—यह यूनानी शब्द है । इसका अर्थ रुपये तोलने का तराज़ू है । अरबी में यह वाक्य इस प्रकार है:—

موازين الهند للسع قرسطونات ثابته الرمانات متحركه المعاليق
على الارقام والخطوط

डाक्टर ज़ाखो ने अपने अँगरेज़ी अनुवाद में قرسطون के लिए एक ग्रीक नाम दे दिया है । स० रा०

पृष्ठ ८१. शिशुपाल—कृष्ण द्वारा शिशुपाल के मारे जाने की कथा (शिशुपालवध) महाभारत के सभापर्व में है ।

पृष्ठ ८१. अलफ़ज़ारी—यह अरबी साहित्य के जन्मदाताओं में से एक था। इसीने पहले पहल अरबी लोगों में भारतीय ज्योतिष का प्रचार किया था। जहाँ तक मुझे पता है, इसके ग्रन्थ अब विद्यमान नहीं। सम्भवतः यह मुहम्मद इब्न इब्राहीम अलफ़ज़ारी अरबियों में अस्तरलाबों (नक्षत्र-यन्त्रों) के प्रथम निर्माता, इब्राहीम इब्न हबीब अलफ़-ज़ारी, का पुत्र था जिसने बग़दाद की नींव में भूमापक के तौर पर भाग लिया था। देखो, फ़िहरिस्त, पृष्ठ ٢٧٣ Gildemeister, अपनी *Scriptorum Arabum de rebus Indicis loci*, के पृष्ठ १०१ पर हमारे फ़ज़ारी पर अलक़िफ़्ती के एक लेख का अनुवाद देता है।

अलबेरूनी के अवतरणों के अनुसार यह विद्वान् पल का प्रयोग दिन-क्षण के अर्थों में करता था; वह पृथ्वी की परिधि اجوان अर्थात् योजनों में निकालता था; वह (और साथ ही याक़ूब इब्न तारिक़) यमकोटि के समुद्र में तार नामक एक नगर का उल्लेख करता है; वह दो अक्षों से किसी स्थान की द्राघिमा के गिनने की विधि बतलाता है; उसकी पुस्तक में हिन्दू विद्वानों से लिये हुए नक्षत्रों के चक्र थे। ये हिन्दू विद्वान् ख़लीफ़ा अलमन्सूर (हिजरी संवत् १५४=७७१ ईसवी) के पास सिन्ध के किसी भाग से आनेवाले दूत-समूह के सदस्य थे। अलबेरूनी उस पर दोषारोपण करता है कि उसने आर्य-भट्ट शब्द का अशुद्ध अर्थ समझ लिया। कहते हैं इसका अर्थ उसने ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त के मानों का $\frac{१}{१०००}$ समझा है। अन्ततः अलफ़ज़ारी (और साथ ही याक़ूब) ने پدماسه (पदमास ?) का प्रयोग अधिमास के अर्थों में किया है। एवंच, अलबेरूनी देखता है कि अलफ़ज़ारी का दिया हुआ भारतीय ज्योतिष का ऐतिह्य बहुत विश्वासार्ह नहीं, और इसमें दिये नाम अक्सर भ्रष्ट और बहुत बुरी तरह से लिखे हुए हैं।

अलफ़ज़ारी और याकूब इब्न तारिक़ का नाम पाठ में प्रायः इकट्ठा ही आता है, इससे जान पड़ता है कि इन दो लेखकों के बीच अवश्य कोई निकट का सम्बन्ध था। परन्तु इस सम्बन्ध की परीक्षा के लिए मेरे पास कोई साधन नहीं। क्या दोनों ने एक ही हिन्दू पण्डित से पढ़ा है, और क्या उन्होंने एक दूसरे से स्वतन्त्र अपनी जानकारी को लेखबद्ध किया है? या क्या एक ने दूसरे के ग्रन्थ का नया संस्करण या टीका तैयार की है?

पृष्ठ ८२. सिबि—यह शब्द तीन बार आया है, और سيي (सियी ?) लिखा हुआ है; केवल एक ही स्थान में यह سبي मालूम होता था। परन्तु हस्तलेख को दुबारा मिलाने पर मैं देखता हूँ कि मूलतः यहाँ भी سيي ही लिखा था। मुझे इस नाम का कोई मान मालूम नहीं। शायद यह बीसी है, जिसके १६ = १ पन्ती।

पृष्ठ ८२. ख्वारिज़्मी—इस देश, अर्थात् वर्तमान ख़ीवा, के मानों के मिलान से पाठकों को स्मरण हो आयगा कि यह ग्रन्थकार की जन्मभूमि थी।

पृष्ठ ८२. वराहमिहिर—यह वाक्य मुझे उसकी संहिता में नहीं मिला।

पृष्ठ ८४. वराहमिहिर—यहाँ उद्धृत वाक्य संहिता, अध्याय १८, ५. २६—२८ है।

पृष्ठ ८४. अजवान—अलबेरूनी केवल बहुवचन का उल्लेख करता है, एकवचन का नहीं। एकवचन जून या जौन, जोन होगा। मैं समझता हूँ यह संस्कृत शब्द योजन का अरबी रूपान्तर है। योजन को बदलकर जोन करने में शायद अलफ़ज़ारी के हिन्दू अध्यापकों के प्राकृतिक उच्चारण से सुभीता हुआ हो, क्योंकि इस प्राकृत में दो

स्वरों के बीच का ज लोप हो जाता है। देखिए गउ=गज, रअदम्, रजत (Vararuci, ii. 2).

पृष्ठ ८५. अर्शमीदस ने $३\frac{१}{७}$ और $३\frac{१०}{७१}$ के बीच को एक मान नियत किया था. Cf. J. Gow, "Short History of Greek Mathematics." Cambridge, 1884, p. 235.

पृष्ठ ८६. याकूब इब्न तारिक़—यह भारतीय आधार पर ज्योतिष, कालगणना, और गणित भूगोल के क्षेत्र में अलबेरूनी का अत्यन्त प्रमुख अग्रगामी था। 'अलबेरूनी का भारत' में इसके, अलफ़ज़ारी से कहीं ज़ियादा, अवतरण मिलते हैं।

यहाँ वह राशि-चक्र की परिधि और व्यास के माप योजनों में देता है। इन्हीं में अलबेरूनी ने पुलिश की शैली का स्वीकार किया है। वह तार नाम का एक नगर यमकोटि में समुद्र के अन्दर बताता है (परिच्छेद २९)। वह पृथ्वी की परिधि, व्यास, और त्रिज्या के मान योजनों में देता है (परिच्छेद ३१)। वह उज्जैन के अक्ष पर एक आवेदन, और इसी विषय पर अर्कन्द नामक पुस्तक से एक अवतरण (परिच्छेद ३१) देता है। वह काल के चार मानों, यथा सौर मान, चन्द्र मान, इत्यादि का उल्लेख करता है (परिच्छेद ३६)। इसकी पुस्तक में नक्षत्रों के परिभ्रमणों की सूचियाँ थीं। ये एक हिन्दू से ली गई थीं। यह हिन्दू ख़लीफ़ा अलमन्सूर की कचहरी में सिन्ध से आनेवाले एक दूत-समूह के साथ हिजरी संवत् १५४ (=७७१ ई०) में आया था, परन्तु अलबेरूनी इन सूचियों में हिन्दुओं की सूचियों से भारी भ्रंश देखता है (परिच्छेद ५०)। इस पर यह दोषारोपण किया गया है कि इसने आर्यभट्ट शब्द को एक ग्रन्थकार के नाम के स्थान में भूल से एक वैज्ञानिक परिभाषा समझ लिया है, और इसका अर्थ ब्रह्मगुप्त की संहिता में प्रयुक्त मानों

का ٩٠٠٠٠ किया है (परिच्छेद ५०)। उसने अधिमास को بذماسه (पदमास ?) लिखा है (परिच्छेद ५१)। वह अहर्गण में सौर दिनों की गिनती और वर्षों के दिन बनाने की अशुद्ध विधि देता है (परिच्छेद ५१, ५२)। इसके आगे वह अहर्गण की गिनती का विस्तृत विवरण (परिच्छेद ५२) और पृथ्वी से नक्षत्रों की दूरियों को दिखलानेवाली एक सूची देता है। यह सूची उसने एक हिन्दू से ली थी, हिजरी सं० १६१ (७७७, ७७८ ई०), (परिच्छेद ५५)।

तदनुसार ऐसा मालूम होता है कि याकूब की पुस्तक ज्योतिष, कालगणना, और गणित-भूगोल की एक पूर्ण पद्धति थी। यह الزيج, अर्थात् धर्म्मशास्त्र भी कहलाती है।

अलबेरूनी कभी कभी याकूब की दोषालोचना करता है, और समझता है कि उसने भूलें की हैं, भारतीय शब्दों को अशुद्ध लिखा है, और उसने अपने हिन्दू अध्यापक से ली हुई सूचियों को गणना के द्वारा परीक्षा किये बिना ही स्वीकार कर लिया है।

कालगणना को लिखते समय अलबेरूनी के पास याकूब की पुस्तक न थी, क्योंकि वहाँ वह चार मानों और بذماسه (पद-मास ?) शब्द पर याकूब के प्रमाण से, परन्तु किसी दूसरे लेखक के ग्रन्थ से ली हुई, एक टिप्पनी देता है।

याकूब ने सन् १५४ और १६१ हिजरी (७७१, ७७८ ई०) में पठन-पाठन का कार्य किया था, इसलिए आवश्यक है कि वह ईसा की आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में (सम्भवतः बेबीलोनिया में) था। उसके विषय में प्रायः हम इतना ही जानते हैं। Cf. Reinaud, Memoire sur l' Inde, p. 313; Steinschneider, Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellschaft, 24, 332, 354.

फ़िहरिस्त, पृष्ठ ٢٧٤ पर उसके विषय में एक टीका है। इस टीका में कुछ गड़बड़ है। الزيج, अर्थात् शास्त्र नाम की पुस्तक का भूल से उतारिद इब्न मुहम्मद की पुस्तकों में उल्लेख किया गया है, परन्तु यह साफ़ तौर पर वही पुस्तक है जिसे यहाँ शास्त्र الزيج, कहा गया है। इसके दो भाग थे, एक गमनमण्डल पर और दूसरा अवधियों (युगों ?) पर। फ़िहरिस्त के अनुसार उसने दो और पुस्तकें लिखी थीं, एक तो त्रिज्या के कर्दजात में विभाग पर, और दूसरी याम्योत्तरवृत्त के वृत्तांश से जो कुछ निकाला गया है पर।

सिन्ध से आनेवाले जिस दूतसमूह के विषय में यह कहा जाता है कि अरबियों ने पहले पहल उससे भारतीय ज्योतिष पर जानकारी—वास्तव में ब्रह्मगुप्त की दो पुस्तकें, ब्रह्मसिद्धान्त (सिन्द-हिन्द) और खण्डखाद्यक (अर्कन्द)— लाभ की थी, उसका मुझे अरबियों के पुरावृत्त में कोई ऐतिहासिक वर्णन नहीं मिला। जैसे अलबेरूनी समझता है वैसे हमें इब्न वादिह या तबरी बेबीलोनिया में सन् १५४ हिजरी (=७७१ ई०) में किसी सिन्धी दूतसमूह की उपस्थिति का कुछ पता नहीं देते, न, जैसा कि अलहुसैन इब्न मुहम्मद इब्न अलादमी का मत है, सन् १५६ हिजरी (७७३ ई०) में उसका कुछ पता ही चलता है (Gildemeister, Scriptorum Arabum de rebus Indicis loci, p. 101), और न सन् १६१ हिजरी (७७७ ई०) में बेबीलोनिया में हिन्दू विद्वानों की विद्यमानता ही मालूम होती है। इब्न वादिह ने केवल इतना ही कहा है कि जब पहला अबूसईदीय ख़लीफ़ा, अबुल अब्बास सफ़्फ़ाह, अँबार में मर रहा था, उसकी कचहरी में सिंध से एक दूतसमूह आया, हिजरी संवत् १३६ (ईसवी ७५३)। हर सूरत में, ख़लीफ़ा अलमन्सूर के समय में सिंध इसके अधीन था, और इसलाम न केवल सिन्ध में ही,

प्रत्युत युद्ध और वाणिज्य के द्वारा साथ के देशों में भी दूर तक फैल गया था। ज़रूरी तौर पर कई ऐसे अवसर आये होंगे जब सिन्ध के छोटे छोटे मण्डलेश्वरों ने मुसलिम राज्य के राजनैतिक केन्द्र को अपने विशेष दूत भेजे हों।

जिन दिनों याक़ूब पुस्तकें लिखने लगा, अर्कन्द (खण्डखाद्यक) का पहले ही अरबी में भाषान्तर हो चुका था। किसने किया था? क्या अलफ़ज़ारी ने?

अबूसईदीय शासन के पहले पचास वर्षों में दो ऐसे समय थे जिनमें अरबियों ने भारत से कुछ सीखा। पहले तो उन्होंने मन्सूर के राज्यकाल (७५३—७७४ ई०) में, प्रधानतः ज्योतिष, और दूसरे हारूँ के शासनकाल (७८६—८०८ ई०) में, बर्मक नामक पुरोहित-वंश के विशेष प्रभाव से, जिसका सन् ८०३ तक मुसलिम जगत् पर शासन था, विशेष रूप से वैद्यक और फलित-ज्योतिष सीखी।

पृष्ठ ८७. सुक़रात—इस कथन का यूनानी रूप मुझे मालूम नहीं। यह बात द्रष्टव्य है कि प्रसिद्ध ऐतिह्य के अनुसार सुक़रात के बहुत समय बाद लिखने के लिए खालें पहले पहल परगेमम में तैयार की गई थीं।

क़रातीस अर्थात् कागज़—कागज़ के लिए अलबेरूनी ने तवामीर طوامير शब्द दिया है। यह शायद यूनानी शब्द है। इसका अर्थ कागज़ (क़रातीस) किया गया है। स. रा.

पृष्ठ ८८. बाँस के डण्ठल की बनावट पर देखो Wilkinson, "Manners and Customs of the Ancient Egyptians."

अरबी में بردي शब्द आया है। यह बरदी वास्तव में बाँस नहीं, प्रत्युत सर्व की जाति का एक पेड़ होता है। यह मिस्र देश की नील नदी की उपत्यका में बहुत होता है। अति प्राचीन काल

में लोग इसके डण्ठलों पर लिखा करते थे। अँगरेज़ी में इसे papyrus कहते हैं।

पृष्ठ ८६. यूनानी लिपि की बात पूछो इत्यादि।—यूनानी वर्ण-माला की उत्पत्ति पर इस ऐतिह्य का स्रोत Dionysius Thrax के *Ars Grammatica* का कोई विशेष scholia मालूम होता है:— v. Immanuel Bekker, *Anecdota Græca*, Berlin, 1816, vol. ii. p. 780 *seq*. समकालीन टीकायें अधिकतर जोएनीज़ मलेलस (Joannes Malalas) की ओर सङ्केत करती हैं; शायद इन बातों का मूलत: उल्लेख O १२६ क्रमिभुक्त स्थान में था।

शायद भूल से पलेमडीस (Palamedes) को असिधस, और अगेनर (Agenor) को अगेनान (Agenon اغنون) लिखा गया है।

पृष्ठ ६१. बहमन्वा।—इसे बम्हन्वा पढ़ो। इस नाम के दूसरे रूप बामीवान और बाईनवाह हैं:—देखो इलियट रचित "भारतवर्ष का इतिहास" i, ३४, १८६, ३६६, और "जर्नल आव् दि रायल एशियाटिक सोसायटी" सन् १८८४, पृ० २८१ में हैग (Haig) के लेख, और बम्बई शाखा के "जर्नल" में बेलेसिस (Bellasis) के लेख, vol. 1857, p. 413, 467.

अन्ध्रदेश को कनिङ्गहम तेलिङ्गान बताता है। देखो उसका बनाया 'भारत का प्राचीन भूगोल' पृ० ५२७.

भैक्षुकी—अलबेरूनी भैक्षुक लिखता है, जिसका अर्थ सम्भवत: भिक्षुओं या श्रमणों का है। क्या अलबेरूनी का लिखा औदुन पूर मगध में बौद्धों का प्रसिद्ध विहार उदण्ड पुरी ही है ? Cf. H. Kern, *Der Buddhismus und seine Geschichte in Indien*, German by H. Jacobi, Leipzig, 1882, vol. ii. p. 545.

मल्वषौ क्या है यह मुझे मालूम नहीं (मल्ल-विषय ?)।

पृष्ठ १०३. पुषण्ढिल—क्लीब को षण्ढ, कहते हैं।

पृष्ठ १०५. वे अपनी भाषा के विशेष्यों को स्त्रीलिङ्ग देकर बढ़ाते हैं।

इस दुर्ज्ञेय वाक्य का अर्थ यह मालूम होता है:—एक अरबी शब्द, छोटे (छोटे अर्थवाले, रूप में बदला जाने पर, बढ़ जाता है, अर्थात् उसका आकार पहले से बड़ा हो जाता है, जैसे कर्श (एक सागर-जन्तु) का कुरैश (एक छोटा सागर-जन्तु, विशेष संज्ञा के तौर पर, एक जाति जिसमें मुहम्मद साहब पैदा हुए थे) होगया। अल्पार्थक रूप शब्द के आकार को बढ़ाने का काम देता है:—देखो कुरान का कश्शाफ़ १०६, २, التصغير للتعظيم, (न कि للتفخيم)।

पृष्ठ १०५. भारतीय शतरञ्ज का विवरण *Geschichte und Litteratur des Shachspiels*, by A. Van der Linde छप चुका है।

पृष्ठ ११२. नागार्जुन—इस पर देखो A. Weber, *Vorlesungen*, pp. 306, 307 ; H. Kern, Der Buddhismus und seine Geschichte in Indien, ii. 501 ; Beal, "Indian Antiquary," 1886, 353.

पृष्ठ ११३. व्याडि—कोलब्रुक साहब ने इस नाम के एक कोशकार का विक्रमादित्य के सम्बन्ध में उल्लेख किया है, "Essays," ii. 19.

पृष्ठ ११४. रक्तामल = रक्त = लाल, और अमल = आमलक। नहीं मालूम इसका अर्थ तेल और नर-रक्त कैसे समझा जा सकता है।

पृष्ठ ११५. भोजदेव—मालव के इस राजा पर देखो Lassen, *Indische Alterthumskunde*, iii, 845 *seq.*

पृष्ठ ११६. वल्लभी—इस नगरी के अन्त पर देखो, Lassen, *Indische Alterthumskunde*, iii, 532 *seq.*, and also Nicholson and Forbes on the ruins of the place, in "Journal of the Royal Asiatic Society," vol. xiii. (1852), p. 146, and vol. xvii. (1860), p. 267.

पृष्ठ १२३. भारतीय सागर के उत्तरी तट का आकार अलबेरूनी का मनभाता विषय प्रतीत होता है, क्योंकि इसका उल्लेख वह पुनः छब्बीसवें परिच्छेद में करता है।

पृष्ठ १२६. माहूर को अलबेरूनी के बड़े समकालीन अल-उत्बी ने مهورة महुर लिखा है, जो संस्कृत स्वरों (मथुरा) से अपेक्षाकृत अधिक मिलता है।

अलबेरूनी दूरियों की गिनती फ़र्सख़ों में करता है, परन्तु इसके माप के विषय में दुर्भाग्य से उसने कोई माप नहीं दिया। परिच्छेद १५ के अनुसार, १ योजन = ३२००० गज़ = ८ मील; १ मील = ४००० गज़; और परिच्छेद १८ के अनुसार, १ फ़र्सख़ = ४ मील = १ कुरोह; १ फ़र्सख़ = १६००० गज़। Cf. also Aloys Sprenger. *Die Post-und Reiserouten des Orients*, Vorrede; p. xxvi., जो यह सिद्ध करता है कि एक अरबी मील = *prœter propter* २००० मीटर = २१८६ गज़, परन्तु अँगरेज़ी भौगोलिक मील = २०२५ गज़। इसलिए यदि हम अलबेरूनी की दूरियों का अँगरेज़ी मीलों के साथ मिलान करना चाहते हैं तो हमें इस प्रकार गिनना चाहिए—

१ अँगरेज़ी मील = १ १६१/२०२५ अरबी मील।

१ अरबी मील = २०२५/२१८६ अँगरेज़ी मील।

१ फ़र्सख़ = ४ अरबी मील = ३ ७७१/१०९३ अँगरेज़ी मील।

पृष्ठ १२७. अलबेरूनी सोलह भ्रमण-वृत्तान्त देता है। ऐसा जान पड़ता है कि ये वृत्तान्त उसे राजा महमूद के सैनिक तथा नागरिक अफ़सरों ने सुनाये थे (इन मार्गों में से कुछ एक पर उसने बड़ी बड़ी सेनाओं के साथ, उदाहरणार्थ कनौज और सोमनाथ को, कूच किया था)। इसके अतिरिक्त उसने व्यापारियों और माझियों से, तथा हिन्दू और मुसलमान पर्यटकों से इनके विषय में जानकारी लाभ की थी। इन भ्रमणों के शुरू होने के स्थान ये हैं—कनोज, माहूर (वर्तमान मथुरा), अनहिलवारा (अब पत्तन), मालवा में धार, और दो कम प्रसिद्ध स्थान, एक तो बारी, जो कि कनोज-राज्य की पुरानी राजधानी के मुसलमान लोगों के हाथ में चले जाने के बाद इसकी अस्थायी राजधानी बनाया गया था, और दूसरा बज़ाना नामक स्थान।

ये भ्रमण ये हैं—१. कनोज से इलाहाबाद, और वहाँ से भारत के पूर्वी सागर-तट की ओर काञ्ची (काँजीवरम) तक और सुदूर दक्षिण में। २. कनोज (या बारी) से काशी को, और वहाँ से गङ्गा के मुहाने तक। ३. कनोज से पूर्व की ओर कामरूप तक, और उत्तर की ओर नैपाल और तिब्बती सीमा तक। ४. कनोज से दक्षिण की ओर दक्षिणी सागर-तट पर बनवासि तक। ५. कनोज से बज़ाना या नारायण तक, जो उस समय गुजरात की राजधानी था। ६. मथुरा से मालवा की राजधानी, धार, तक। ७. बज़ान से धार और उज्जैन तक। ८. मालवा के अन्तर्गत धार से गोदावरी की ओर। ९. धार से भारतीय सागर के तट पर स्थित तार तक। १०. बज़ान से काठियावाड़ के दक्षिण तट पर सोमनाथ तक। ११. अनहिलवाड़ा से पश्चिमी तट पर, बम्बई के उत्तर में तार तक। १२. बज़ाना से भाती द्वारा सिन्धु नदी के मुहाने पर लोहरानी तक। १३. कनोज से कश्मीर तक। १४. कनोज

से पानीपत, अटक, काबुल, गज़नी तक। १५. बब्रहान से कश्मीर की राजधानी अद्दिष्टान तक। १६. मकरान में, तीज़ से सागर-तट के साथ साथ, लङ्का के सामने, सेतुबन्ध तक।

क़ानून मसऊदी से लिये गये निम्नलिखित अक्षों और द्राघिमाओं को देखिए:—

प्रयाग का वृक्ष, २५° ०′ अक्ष, १०६° २०′ द्राघिमा; कुरह, २६° १′ अक्ष, १०६° ४०′ द्राघिमा; तीऔरी, २३° ०′ अक्ष, १०६° ३०′ द्राघिमा; कजूराह, २४° ४′ अक्ष, १०६° ५०′ द्राघिमा; बज़ान (?) या नारायण, २४° ३५′ अक्ष, १०६° १०′ द्राघिमा; कन्नकर देश, २२° २०′ अक्ष, १०७° ०′ द्राघिमा; शर्वार, २४° १५′ अक्ष, १०७° ५०′ द्राघिमा; पाटलिपुत्र, २२° ३०′ अक्ष, १०८° २०′ द्राघिमा; मुङ्गीरी, २२° ०′ अक्ष, १०९° १०′ द्राघिमा; दूगुम, २२° ४०′ अक्ष, ११०° ५०′ द्राघिमा; बारी, २६° ३०′ अक्ष, १०५° ५०′ द्राघिमा; दूदही, २५° ४०′ अक्ष, १०२° १०′ द्राघिमा; दहमाल, ३१° १०′ अक्ष, १००° ५५′ द्राघिमा; शिशरिह, ३८° ५०′ अक्ष, १०२° १०′ द्राघिमा; भिल्लमाल, २३° ५०′ अक्ष, ८७° ४५′ द्राघिमा; बम्हन्वा, २६° ४०′ अक्ष, ८५° ०′ द्राघिमा; लोहरानी, २४° ४०′ अक्ष, ८४° २५′ द्राघिमा; दैबल, २४° १०′ अक्ष, ८२° ३०′ द्राघिमा; भातीय, २८° ४०′ अक्ष, ९६° ०′ द्राघिमा; उज्जैन, २४° ०′ अक्ष, १००° ५०′ द्राघिमा; तीज़, २६° १५′ अक्ष, ८३° ०′ द्राघिमा; कन्दी, ३३° ४०′ अक्ष, ९५° ५०′ द्राघिमा; दुनपूर, ३३° ४५′ अक्ष, ९६° २५′ द्राघिमा; तञ्जोर, १५° ०′ अक्ष, ११५° ०′ द्राघिमा; रामेश्वर, १३° ०′ अक्ष, ११८° ०′ द्राघिमा; जहरावर ३९° ५०′ अक्ष, ९६° १५′ द्राघिमा; ०,८८ ३१° १′ अक्ष, ९५° ५५′ द्राघिमा। द्राघिमा अतलान्तिक सागर के तट से गिनी गई है; बग़दाद की ७०° है।

पृष्ठ १२७. बर्हमशिल = ब्राह्मशैल = ब्रह्मा की चट्टान। प्रयाग का वृक्ष—गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर इलाहाबाद। उवर्यहार—यह ऊड़िया देश (ऊड़ीसा) का लक्षण मालूम होता है। यह शब्द ऊड़ीयहार भी पढ़ा जा सकता है। क्या ऊड़ीयधारा तात्पर्य है? ऊर्दबीषौ शायद = ऊर्ध्व विषय।

जौर के अधीन—अर्थात् चोला राज्य।

बारी—इस स्थान की स्थिति के विषय में निम्नलिखित वर्णनों पर विचार करना चाहिए:—यह कनोज से पूर्व की ओर, दस फ़र्सख़ या तीन चार दिन के कूच की दूरी पर, गङ्गा के पूर्व में رهب, और كونبي और सरयू नदियों के सङ्गम के पड़ोस में अवस्थित था। अवध से यह पच्चीस फ़र्सख़ के अन्तर पर था। बारी नाम Elliot-Beames, "Memoirs," ii. ४३, में ज़िला आगरा के एक उपभाग के रूप में भी मिलता है।

पृष्ठ १२८. कामरु–साक्षात् कामरूप है और तिलवत = तिर्हूत। तिलवत को भूल से तन्वत भी लिखा गया है। यह शब्द शायद वहाँ रहनेवाली तरू नामक जाति और भुक्ति ऐसे एक शब्द से बना है।

शिलहट राज्य—क्या यह आसाम का उपप्रान्त सिलहट तो नहीं?

भौटेशर—यह भौट्ट-ईश्वर अर्थात् भौटों (तिब्बतियों) का स्वामी है।

पृष्ठ १२९. —कजूराह = खर्जूर-भाग।

पृष्ठ १२९ पर "जो कि कनौज से ३० फ़र्सख़ है।" के आगे हिन्दी-अनुवाद में मुझसे ये शब्द छूट गये हैं—

"इस देश की राजधानी कजूराह है।" स. रा.

तीऔरी—प्राकृत के एक (Vararuci, ii. 2) प्रसिद्ध नियम के अनुसार Tiarovpa (Ptolemy, vii. i. 63) नाम कुछ तिऔरी सा

बन जायगा। अरबी हस्तलेख में यह स्थान कटा हुआ होने के कारण इस स्थान की स्थिति यथार्थ रूप से बताई नहीं जा सकती।

कन्नकर—यह सम्भवतः कङ्कर, अर्थात् मसऊदी के अनुसार बल्हरा देश से अभिन्न है:—v. Elliot, "History of India," i. 25.

पृष्ठ १२६. बज़ान—यह पाठ अटकलपच्चू ही है। इसकी पहचान के लिए देखो Archæological Survey of India, ii. 242. सहन्या (सुहनिया) के लिए भी वही ग्रन्थ ii. 399 देखो।

गुर्ज्जर राजाओं के राज्य गुजरात पर जो आधुनिक गुजरात से भिन्न है, Cf. Cunningham, " Ancient Geography of India" p. 312 *Seq.*; Elliot, l. c. p. 358.

जडूर—यह पाठ अनिश्चित है। शायद अरबी पाठ के सारे चिह्न (احر حلوره) एक स्थान का नाम है।

बामहूर शायद टोलमी के Baμμoγovpa (Pf. vii. and 63) से अभिन्न है, क्योंकि कई अवस्थाओं में ह ग को प्रकट करता है; उदाहरणार्थ چندراه चन्दराह = चन्द्रभागा, ديوهر देवहर, = देवगृह, कुलहर (प्राकृत) = कुलगृह।

पृष्ठ १३०. नमावुर, अलीसपुर—क्या ये नाम मध्य भारत के निमार और एलिचपुर तो नहीं ?

पृष्ठ १३४. अनहिलवाड़ा = अनलवाट = उत्तरीय बड़ोदा के अन्तर्गत आधुनिक पत्तन।

बिहरोज = ब्रोएच।

पृष्ठ १३४. बल्लावर = वल्लापुर, v. Cunningham, l. c. pp. 135, 133. क्या यह आधुनिक फिल्लौर से अभिन्न है ? G. Smith, p. 208.

पृष्ठ १३५. कवीतल = कपिस्थल, अब कपूर्थला, G. Smith, p.

208; *vide* also कैथल in Elliot's "History of India," ii. 337, 353.

पृष्ठ १३६. कुसनारी—मेरी राय में यह कुनहर नदी है (G. Smith, p. 231)। क्या महवी = किशन-गङ्गा है?

पृष्ठ १३६. ऊष्कारा को कनिङ्गहम (l. c. p. 99) ने हुष्कपुर, हुविष्कपुर, बताया है और वरामूला को वराहमूल बयान किया है।

पृष्ठ १३७. ताकेशर शायद ताक्क-ईश्वर है।

राजवरी रजाउरी से अभिन्न प्रतीत होती है।

पृष्ठ १३८. भारत का समुद्र-तट तीज़ से आरम्भ होता है। सागरतट के साथ साथ के इस मार्ग का इब्न खुर्दादबिह के दिये मार्ग के साथ मिलान करो। इसके लिए देखो Elliot, "History of India" i. 15, 16; A. Sprenger, *Die Post und-Reiserouten des Orients*, pp. 80—82.

दैबल—कराची के साथ मिलाने के लिए देखो, Elliot, History of India, i. 375. Daibal-Sindh is *Diulcindi* of Duarte Borbosa, translated by Stanley, p. 49 (Hakluyt Society).

पृष्ठ १३८. बरोई = बड़ोदा, कम्बायत = कम्बे, बिहरोज = बरोएच। सूबार संस्कृत शूर्पारक और अरबियों के सुफ़ाल से अभिन्न है। तान = संस्कृत स्थान, और सन्दान शायद = सन्धान है। सूबार के लिए देखो भगवानलाल इन्द्रजी, "Antiquarian Remains of Sapara," etc., "Journal" of the Bombay branch, 1881, 1882, vol. xv. p. 273.

पृष्ठ १३९. पञ्जयावर तञ्जोर नाम के किसी प्राचीनतर रूप की अशुद्धि प्रतीत होती है।

रामशेर = रामेश्वर?

पृष्ठ १४१. शौहत—जानसन महाशय इसे एक वृक्ष बताता है जिसके धनुष बनाये जाते हैं। और मुलम्मा का अर्थ भिन्न भिन्न रङ्गोंवाला है।

पृष्ठ १४१. इन्द्रवेदी को अन्तर्वेदी में बदल देना चाहिए जो 'इटावा के पास से प्रयाग तक फैलनेवाले निम्नतर दुआब (Lower Doab) का पुराना नाम है।' Elliot-Beames, "Memoirs," ii, 10; Elliot, "History of India," ii. 124.

पृष्ठ १४४. वक्र होरा (ساعات المعوجة)—प्रत्येक दिन और रात का बारह बराबर भागों में विभाग, दिनों और रातों की लम्बाई चाहे कितनी ही क्यों न हों। वर्ष की भिन्न भिन्न ऋतुओं में ये घण्टे भिन्न भिन्न होते थे। इनके विपरीत विषुवीय होरा (सायन ساعات المستوية) अहोरात्र का चौबीसवाँ भाग हैं और सारे व ै में सदा बराबर रहते हैं। Cf. Ideler, Handbuch der Chronologie, i. 86.

पृष्ठ १४५. होरा—फ़ारसी नीम बहर का अर्थ आधा भाग और फलित-ज्योतिष में राशि का आधा या पन्द्रहवाँ अंश है।

पृष्ठ १४५. सूर्य और लग्न (ascendens طلوع ग्रह के उदय होने) के अंशों के बीच के अन्तर को पन्द्रह पर बाँटने से वह समय घण्टों में निकल आता है जो सूर्योदय से लेकर उस समय तक व्यतीत हो चुका है; दिन का अधिपति एक-दम पहले घण्टे का अधिपति होता है, इसलिए यहाँ दिया नियम प्रत्यक्ष रूप से ठीक है (Schram)।

पृष्ठ १४६. ग्रहों के नामों के लिए देखो E. Burgess, Surya Siddhanta, pp. 422, 423, and A. Weber, Indische Studien, ii. 261.

آشینو के स्थान में آتینہ आवनेय पढ़िए। बिबत शब्द सम्भवतः विवस्वन्त का कोई रूप है।

अस्तरलाब—एक यंत्र का नाम है जिससे पहले समयों में समुद्र-तल पर सूर्य या तारों की उँचाई मालूम किया करते थे।

पृष्ठ १४८. सूची—मैं यहाँ मासों के वे नाम देता हूँ जो सम्भवतः

ग्रन्थकार बोलता था परन्तु मैं स्वर-उच्चारण के विस्तार के लिए उत्तर-दाता नहीं हो सकता:—चेत्र, बेशाक, जेर्त, आषार, श्रावन, भाद्रो, आशूज, कार्त्तिक, मङ्गिर, पोष, माग, पागुन शायद इनमें से बहुत से नामों की समाप्ति उ में होती थी, यथा मङ्गिरु। Dawson's "Grammar of the Urdu," 1887 p. 259 में हिन्दुस्तानी नाम मिलाओ।

सूर्य्य के देशी नामों का शायद यह उच्चारण था:—रवि, विष्णु, धाता, विधाता, अर्जमु, भगु, सवित, पूष, त्वष्ट, अर्कु, दिवाकरु, अंशु।

पृष्ठ १४६. मैं वसन्त हूँ—इन शब्दों के बाद ये शब्द जोड़ दीजिए क्योंकि अनुवाद में ये मुझसे छूट गये हैं: "इससे भी सिद्ध होता है कि पहली तालिका में दिया हुआ ऐतिह्य ठीक है।" देखो भगवद्गीता, अध्याय १०, श्लोक ३५।

पृष्ठ १५४. फ्लेग्यास (Phlegyas)—अरबी में इसे फ़िरग़ोरा-ओस लिखा है।

पृष्ठ १५८. ईथर—अरबी में इसका लिए ایثر शब्द है। मण्डल के लिए فلك शब्द है।

पृष्ठ १५८. वसिष्ठ; आर्यभट्ट—ग्रन्थकार इन लोगों के सिद्धान्तों को उनकी अपनी पुस्तकों से नहीं लेता; वह उन्हें उन उद्धरणों से ही जानता है जो ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थों में मिलते हैं। आर्यभट्ट के विषय में यह बात वह आप ही कहता है।

पृष्ठ १६४. क्योंकि जिन लोगों ने—यही एक ऐसा वचन है जिसमें अलबेरूनी स्पष्ट रीति से अपने पण्डितों का उल्लेख करता है। प्रत्यक्ष में उसने संस्कृत सीखने के लिए घोर यत्न किया परन्तु उन कठिनाइयों के कारण जिनकी वह आप ही शिकायत करता है वह सफल-मनोरथ न हो सका। उसने भारतीय साहित्य का अध्ययन देशी पण्डितों की

सहायता से उसी प्रकार किया जिस प्रकार पहले अँगरेज़ विद्वानों ने बङ्गाल में किये थे।

पृष्ठ १६५. सूची—विष्णु-पुराण, ii के साथ मिलाओ, जहाँ पाँचवीं और सातवीं पृथ्वियों को महातल और पाताल कहा गया है।

वायुपुराण भी (राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता द्वारा सम्पादित) कुछ भिन्न नाम उपस्थित करता है, यथा, अतलम्, सुतलम्, वितलम्, गभस्तलम्, महातलम्, श्रीतलम्, पातालम् और कृष्ण भौमन्, पाण्डु, रक्तम्, पील, शर्कर, शिलामयम्, सौवर्ण (vol. i. p. 391, v. 11-14).

पृष्ठ १६६. आध्यात्मिक प्राणी इत्यादि—नामों की यह सूची अक्षरशः वायुपुराण (vol. i. p. 391, v. 15-394, v. 43 (अध्याय ५०) से ली गई है।

पृष्ठ १७३. लोकालोक इसका अर्थ है न-इकट्ठे होने का स्थान। ऐसा जान पड़ता है कि ग्रन्थकार ने इस संयुक्त अक्षर के स्वरूप को नहीं समझा था। लोकालोक = लोक-अलोक, अर्थात् जगत् और न-जगत्।

पृष्ठ १७३. शेषाख्य—प्रत्यक्ष ही शेष-आख्य, अर्थात् शेष के नाम-वाला है।

पृष्ठ १७७. विश्वामित्र के दूसरा जगत् बनाने का यत्न करने की कथा रामायण से ली गई है, परन्तु यहाँ राजा का नाम त्रिशंकु दिया गया है।

पृष्ठ १७८. श्रीपाल के लिए पृष्ठ ८० की टिप्पणी देखो। ग्रन्थकार ने विविध स्थानों पर मुल्तान का ऐसी अद्भुत रीति से वर्णन किया है कि मैं समझता हूँ वह इसे जानता था और कुछ काल वह वहाँ रहा था। जब हिजरी संवत् ४०८ (ईसाई सन् १०१७) में राजा महमूद ख़्वारिज़्म-ख़ीवा को जीतने के बाद वहाँ से लौटा और अपने साथ

विजित मामून वंश के राजों, अनेक विद्वानों (जिनमें एक अलबेरूनी भी था), कर्म्मचारियों, और सैनिकों को पकड़ लाया तब क्या उसने इनमें से कुछ एक को (जिनमें एक अलबेरूनी भी था) राज-बंदियों के रूप में मुलतान (जिसको कि वह कुछ वर्ष पूर्व जीत चुका था) भेज दिया ? इसके उन्नीस वर्ष पश्चात् (४२७ हिजरी) महमूद के पोते मजदूद ने अलतुन्तश वंश के राजाओं को, जिन्होंने मामूनियों के बाद ख़्वारिज़्म का राज्य सम्भाला था, राजबंदी बनाकर लाहोर भेजा था। प्रत्येक अवस्था में यह बात पूर्णतया निश्चित है कि अलबेरूनी महमूद का कृपापात्र नहीं था, अन्यथा वह अपनी एक पुस्तक उसे अवश्य समर्पण करता। Cf. Sachau, *Zur ältesten Geschichte und Chronologie von Khwârizm*, i. pp. 16, 28.

पृष्ठ १७८. सुहैल (Canopus)—इसे आर्य भाषा में अगस्त्य कहते हैं। स. रा.

पृष्ठ १७८. अलजैहानी ख़लीफ़ों के राज्य के पूर्वीय भाग में भूगोल और भ्रमण पर मुसलिम साहित्य के जन्मदाताओं में से एक था। वह नवीं ईसाई शताब्दी के अन्त के क़रीब मध्य एशिया के एक सामानी राजा का मन्त्री भी था। इसकी पुस्तक के अवतरण तो बहुत मिलते हैं पर वह खुद अभी तक प्रकाशित नहीं हुई।

छोटा रीछ (Small bear)—इसे आर्य भाषा में शिशुमार मण्डलम् कहते हैं। स. रा.

पृष्ठ १८०. १०२० और १०३० के अन्दर अन्दर तारे—तारों की यह संख्या अब्दुर्रहमान सूफ़ी की तारा-सूची में गिनी गई है (Cf. Schjellerup, *Description des Etoiles fixes par Alsufi*, St. Petersburg, 1874)। इसी को अलबेरूनी ने अपनी क़ानून मसऊदी नामक पुस्तक में बदल लिया है।

पृष्ठ १८३. यहाँ दिये हुए मूल्य २४° के सबसे बड़े झुकाव के अनुरूप हैं। इस प्रकार क ट = १३९७′ है और २४° की त्रिज्या है, ख ट = २९८′ है और २४° की निचली ज्या (Versed sine) है, और ट ह पिछले और ज्या ३४३८′ का अन्तर है (Schram)।

पृष्ठ १८३. कर्दजात—कर्दज शब्द फ़ारसी कर्दा = काट से निकाला हुआ मालूम होता है, जिसका अर्थ कि वृत्तांश है। ज्या परिधि के ३४३८ मिनटों के बराबर है। इन मिनटों को कर्दजात कहते हैं।

पृष्ठ १८४. २३° के स्थान २४° पढ़िए।

पृष्ठ १८५. कुसुमपुर के आर्यभट्ट के अवतरण अलबेरूनी ने बार बार दिये हैं। वह अयुतम् से लेकर परपद्म तक संख्याओं के क्रम का उल्लेख करता है। यहाँ वह कुरुक्षेत्र की द्राघिमा, पितरों और देवों के दिन और मेरु पर्वत की उँचाई वर्णन करता है। वह चषक को विनाड़ी कहता है। उसकी एक पुस्तक से यह प्रमाण दिया गया है कि १००८ चतुर्युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है; इसका आधा उत्सर्पिणी, और दूसरा आधा अवसर्पिणी (जैन परिभाषायें) हैं। दुर्भाग्य से मुझसे इस पुस्तक का नाम नहीं पढ़ा गया। इसके अक्षर النتف, हो सकते हैं, और यह निश्चय नहीं कि यह अरबी शब्द है या भारतीय।

अलबेरूनी अपने पाठकों को इस आर्यभट्ट को इसी नाम के बड़े पण्डित के साथ, जिसका यह अनुयायी है, गड़बड़ न कर देने की चेतावनी देता है। इस स्थान में ऐसा जान पड़ता है कि अलबेरूनी ने स्वयं छोटे आर्यभट्ट के ग्रन्थ का उपयोग नहीं किया, परन्तु अपने ये शब्द बलभद्र की टीका से लिये हैं। हमें यहाँ यह भी मालूम होता है कि पुस्तक का अरबी में अनुवाद हो चुका था, परन्तु इस बात का पता नहीं लगता कि बलभद्र की कौनसी पुस्तक का। क्या यह ब्रह्म-

गुप्त के खण्डखाद्यक पर उसकी टीका थी ? यह बात मालूम ही है कि उसने खण्डखाद्यक के अरबी अनुवाद का नवीन संस्करण तैयार किया था ; शायद उसने अपने लिए बलभद्र की टीका का अरबी अनुवाद भी प्राप्त करलिया था। इस छोटे आर्यभट पर देखो Kern, Bṛihat Samhitâ, preface, pp. 59, 60, और Dr. Bhâu Dâjî, "Brief Notes on the Age and Authenticity of the Works of Aryabhata, Varâhamihira," etc. p. 392. इसको इसी नाम के बड़े समनामधारी से पहचानने के लिए अलबेरूनी इसे सदा कुसुमपुर (पटना) का आर्यभट्ट कहता है।

पृष्ठ १८६. शुक्तिबाम् — यह शुक्तिमत् के लिए कोई देसी भाषा का रूप प्रतीत होता है। ऋक्षबाम् = ऋक्षवत् (?)।

पृष्ठ १८६. अर्दिया और गिरनगर (?) ऊपर से वही पर्वत हैं जिन को अवस्ता में हरा बरेज़ैती (hara berezaiti) और तायेरा (taera) कहा गया है।

पृष्ठ १९४. जैनु यहाँ यमुना नदी को कहा गया है।

पृष्ठ १९८. वायुपुराण—नदियों के नाम ४५ वें अध्याय में हैं। संस्कृत पाठ में पर्वतों की गिनती का क्रम इस प्रकार है :— पारियात्र, ऋक्ष, विन्ध्य, सह्य, मलय, महेन्द्र, शुक्ति।

वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नो सिन्धुरेव च।
वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥ ९७ ॥
परा चर्म्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि।
शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥ ९८ ॥
शोणो महानदश्चैव नर्म्मदा सुमहाद्रुमा।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ॥ ९९ ॥

तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ॥ १०० ॥
सितेरजा शुक्तिमती मक्रुणा त्रिदिवा क्रमात्।
ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदकाः ॥१०१ ॥
तापी पयोष्णी निर्ब्बिन्ध्या मद्रा च निषधा नदी।
वेन्वा वैतरणी चैव शितिबाहुः कुमुद्वती ॥ १०२ ॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ १०३ ॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वैण्यथ वञ्जुला।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः ॥ १०४ ॥
कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती।
मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥ १०५ ॥
त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या।
लाङ्गूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥ १०६ ॥
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
कूपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥ १०७ ॥

पृष्ठ २०१. नदियों की इस गणना से बहुत मिलती जुलती गणना वायु-पुराण, अध्याय ४५, श्लोक ९४—१०८ में मिलती है:—

पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥ ९४ ॥
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः।
गोमती धुतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥ ९५ ॥
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा।
इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः ॥ ९६ ॥

पृष्ठ २०१. वेदासिनी—विदासिनी लिखिए।

पृष्ठ २०२. कायबिष—कायबिष राज्य को यहाँ काबुल समझ लिया गया है। अरबी वर्णों को कायबिष या कायब्षि दोनों पढ़ा जा सकता है। इसमें केवल व्यञ्जन ही निश्चित है। इससे इण्डो-सीदियन राजा कदफस (Kadaphes) का नाम बड़े बल से स्मरण हो आता है। दो स्वरों के बीच की दन्त-ध्वनि पिछले रूपों में य से प्रकट होती है, यथा बियत्तु = वितस्ता। अथवा क्या इस शब्द को पाणिनि के कापिषी के साथ जोड़ दिया जाय? *Cf.* Panini and Geography of Afghanistan and the Punjâb in "Indian Antiquary," 1872, p. 21.

पृष्ठ २०२. ग़ुज़क—इस दरी (अरबी में अक़बा) का उल्लेख Elliot रचित 'भारतवर्ष का इतिहास' ii. २०, ४४६ (ग़ुरक) में भी है।

पृष्ठ २०२. पर्वान नगर के नीचे—मानचित्रों में इसका उल्लेख Tschârikar के उत्तर में, काग की उड़ान की तरह, कोई आठ मील की दूरी पर है। अन्दराब से पर्वान तक Sprenger (Post- und Reiserouten, map nr. 5) ने सड़क का ख़ाका खींचा है।

पृष्ठ २०२. नूर और क़िरा नदियाँ—क़िरा के स्थान क़िरात पढ़िए।

पृष्ठ २०२. भातुल विश्रास और सतलज के बीच हिमालय के नीचे का प्रदेश मालूम होता है। मसऊदी (Elliot, "History of India," i. 22) इसे पञ्जाब की पाँच नदियों में से एक का नाम बताता है।

सात नदियों का संगम—इस ऐतिह्य का संकेत अवस्ता के हस हेन्दु की ओर है।

पृष्ठ २०४. मत्स्यपुराण इस समय पास न होने के कारण मैं वायु-

पुराण अध्याय ४७, श्लोक ३८—५८ तक, से इसके अनुरूप वचन देता हूँ :—

नद्याः स्रोतस्तु गङ्गायाः प्रत्यपद्यत सप्तधा ।
नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राग्गता ॥ ३८ ॥
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च प्रतीचीं दिशमाश्रिताः ।
सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथी ॥ ३९ ॥
तस्माद्भागीरथी या सा प्रविष्टा लवणोदधिम् ।
सप्तैता भावयन्तीह हिमाह्वं वर्षमेव तु ॥ ४० ॥
प्रसूताः सप्त नद्यास्ताः शुभा बिन्दुसरोद्भवाः ।
नानादेशान् भावयन्त्यो म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः ॥ ४१ ॥
उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ।
सिरिन्ध्रान् कुन्तलांश्चोनान् बर्बरान्यवसान् द्रुहान् ॥ ४२ ॥
रुषाणांश्च कुणिन्दांश्च अङ्गलोकवरांश्च ये ।
कृत्वा द्विधा सिन्धुमरुं सीताऽगात्पश्चिमोदधिम् ॥ ४३ ॥
अथ चीनमरूंश्चैव नङ्गणान् सर्वमूलिकान् ।
साध्रांस्तुषारांस्तम्पाकान् पह्लवान् दरदान् शकान् ।
एतान् जनपदान् चक्षुः स्रावयन्ती गतोदधिम् ॥ ४४ ॥
दरदांश्च सकाश्मीरान् गान्धारान् वरपान् ह्रदान् ।
शिवपौरानिन्द्रहासान् वदातींश्च विसर्जयान् ॥ ४५ ॥
सैन्धवान् रन्ध्रकरकान् भ्रमराभीररोहकान् ।
शुनामुखांश्चोर्ध्वमनून् सिद्धचारणसेवितान् ॥ ४६ ॥
गन्धर्व्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ।
कलापग्रामकांश्चैव पारदान् सीगणान् खसान् ॥ ४७ ॥
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् सभरतानपि ।
पञ्चालकाशिमात्स्यांश्च मगधाङ्गांस्तथैव च ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताँमलिप्तांस्तथैव च।
एतान् जनपदानार्य्यान् गङ्गा भावयते शुभान् ॥ ४९ ॥
ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्।
ततश्चाह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ ॥ ५० ॥
प्लावयन्त्युपभोगांश्च निषादानाञ्च जातयः।
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि ॥ ५१ ॥
केरलानुष्ट्रकर्णांश्च किरातानपि चैव हि।
कालोदरान् विवर्णांश्च कुमारान् स्वर्णभूषितान् ॥ ५२ ॥
सा मण्डले समुद्रस्य तिरोभूताऽनुपूर्वतः।
ततस्तु पावनी चैव प्राचीमेव दिशङ्गता ॥ ५३ ॥
अपथान् भावयन्तीह इन्द्रद्युम्नसरोपि च।
तथा खरपथांश्चैव इन्द्रशङ्कुपथानपि ॥ ५४ ॥
मध्येनोद्यानमस्कारान् कुथप्रावरणान् ययौ।
इन्द्रद्वीपसमुद्रे तु प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥ ५५ ॥
ततश्च नलिनी चागात् प्राचीमाशां जवेन तु।
तोमरान् भावयन्तीह हंसमार्गान् सहूहुकान् ॥ ५६ ॥
पूर्वान् देशांश्च सेवन्ती भित्वा सा बहुधा गिरीन्।
कर्णप्रावरणांश्चैव प्राप्य चाश्वमुखानपि ॥ ५७ ॥
सिकतापर्वतमरून् गत्वा विद्याधरान् ययौ।
नेमिमण्डलकोष्ठे तु प्रविष्टा सा महोदधिम् ॥ ५८ ॥

पृष्ठ २०६. अनुतपत, शिखि, और कर्म के स्थान अनुतप्ता, सिखि, और क्रमु पढ़िए।

पृष्ठ २०८. पैदा किया—यह शब्द यह प्रमाणित करता है कि अलबेरूनी कट्टर इसलाम के इस सिद्धान्त पर विश्वास रखता था कि कुरान को परमेश्वर ने अनादि काल में बनाया था और श्रीमुहम्मद के

मुख से मनुष्य जाति पर उसका प्रकाश कराने के पहले उसे एक तख़्ती पर लिखकर स्वर्ग में सुरक्षित रक्खा हुआ था।

पृष्ठ २०८. इब्नुलमुक़फ़्फ़ा (अब्दुल्ला) और अब्दुलकरीम का उल्लेख ग्रन्थकार की "प्राचीन जातियों की कालगणना-विद्या" में भी है।

पृष्ठ २१२. यमकोटि, लङ्का, इत्यादि—इन्हीं नामों को सूर्य्यसिद्धान्त अ० १२ में मिलाओ।

पृष्ठ २१४. आर्यभट्ट, वसिष्ठ, लाट—ग्रन्थकार इन सब ज्योतिषियों को उनके मूल ग्रन्थों द्वारा नहीं प्रत्युत ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थों में केवल उनके उद्धरणों द्वारा ही जानता था। यहाँ दिये वराहमिहिर के शब्द भी ब्रह्मगुप्त के ही अवतरण प्रतीत होते हैं, यद्यपि वे सम्भवतः वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका से लिये गये होंगे। पुलिस, अलबत्ते, इस नियम का अपवाद स्वरूप है क्योंकि उसका सिद्धान्त अलबेरूनी के हाथ में था और वह उसका अनुवाद कर रहा था।

पृष्ठ २१७. अमरावती, वैवस्वत, इत्यादि—इन चारों नगरों के विषय में विष्णु-पुराण, दूसरा अंश देखो।

पृष्ठ २२०. आह्ल-पुराण-कार्ण—समझ में नहीं आता कि अरबी अक्षरों को किस प्रकार पढ़ा जाय। इस परिभाषा का अनुवाद है वे सच्चे लोग जो पुराण पर चलते हैं।

पृष्ठ २२२. ट क $३\frac{३}{४}°$ की त्रिज्या होने से २२५′ के बराबर है; इसका वर्ग ५०६२५ के बराबर है; $३\frac{३}{४}°$ की निचली ज्या (Versed sine) ट ख ७′ है, और ह ट = व्यासार्ध—ट ख = ३४३८′—७ = ३४३१ (Schram)।

पृष्ठ २२२. ऐसा जान पड़ता है कि नीचे का हिसाब बड़ी असावधानी से किया गया है, क्योंकि इसमें अनेक दोष हैं।

व्यासार्ध ७९५° २७′ १६″ ठीक ठीक निकाला गया है क्योंकि व्यास और परिधि के बीच ७:२२ के अनुपात का प्रयोग करने से हम वस्तुतः इसी संख्या पर पहुँचते हैं। परन्तु पहले ही ख ग के निकालने में दोष है। ऐसा जान पड़ता है कि अलबेरूनी ने ०°७′४५″ के स्थान ०° ७′४२″ को योजनों में बदल डाला है; क्योंकि ३६०° पाँच सहस्र योजन के बराबर हैं, इसलिए १° के लिए हमें १३ योजन, ७ क्रोश, ४४४$\frac{४}{९}$ गज़, १′ के लिए १ क्रोश, ३४०७$\frac{११}{२७}$ गज़, और १″ के लिए १२३$\frac{७७}{८१}$ गज़ प्राप्त होते हैं, और उन अङ्कों के साथ गिनती करने से हमें ०° ७′ ४२″ प्राप्त होते हैं न कि ०° ७′ ४५″, जो कि ५७०३५ गज़ के अनुरूप है। इसके अलावा जिस नियम का वह उपयोग करता है वह सर्वथा भ्रान्त है; यह सत्य नहीं है कि दो दर्शकों की उँचाई के बीच वही सम्बन्ध है जो उनके अपने अपने दृष्टि-क्षेत्रों की त्रिज्याओं (sines) के बीच का है। यदि यह अवस्था होती तो $\sec\alpha - 1 : \sin\alpha = \sec\beta - 1 : \sin\beta$, या α के प्रत्येक मूल्य के लिए quotient $\frac{\sec\alpha - 1}{\sin\alpha}$ एकरूप रहता, पर यह बात इस समय नहीं है। परन्तु उसके अशुद्ध नियम के साथ भी हम वे अङ्क नहीं पा सकते हैं जो उसने पाये हैं। यह नियम है ४ गज़ : दृष्टि-क्षेत्र की त्रिज्या = ५७०३५ गज़ : २२५′, इस प्रकार दृष्टि-क्षेत्र की त्रिज्या = $\frac{४ \times २२५'}{५७०३५}$ होगी; परन्तु वह दृष्टि-क्षेत्र की त्रिज्या ०° ०′ १″ ३‴ के बराबर निकालता है, जो $\frac{१०००'}{५७०३५}$ के अनुरूप है न कि $\frac{९००'}{५७०३५}$ के। इसलिए ऐसा जान पड़ता है

कि अलबेरूनी ने ६०० के स्थान ४ × २२५ = १००० गिन लिया है। फिर प्रत्येक कला (डिग्री) की लम्बाई भी बिलकुल शुद्ध नहीं; यह १३ योजन, ७ क्रोश, ३३३⅓ गज़ नहीं, प्रत्युत, जैसा ऊपर कहा गया, १३ योजन, ७ क्रोश, ४४४⁴⁄₉ गज़ है। अन्ततः यदि हम इस संख्या के द्वारा $0^\circ\ 0'\ 1''\ 3'''$ के गज़ बनायें तो वे १२६⅔ गज़ निकलते हैं, इसलिए जिन २६१⅔ गज़ों का वह उल्लेख करता है उन पर वह मूल शून्यों के भ्रान्त वर्णव्यत्यय के द्वारा पहुँचा प्रतीत होता है (Schram)।

पृष्ठ २३१. एक प्राचीन यूनानी की कथा है—सम्भवतः यह पोर्फाईरी की पुस्तक से ली गई है। यह पुस्तक जगत् के स्वरूप के विषय में अत्यन्त उत्कृष्ट तत्त्ववेत्ताओं की सम्मतियों पर है।

पृष्ठ २३६. बालकों का सी-सा नामक खेल—इसको अरबी में زحلوفات लिखा है। अँगरेज़ी में इसे See-saw सी-सा या देखा-देखी, कहते हैं।

पृष्ठ २४१. यूनानी—ग्रन्थकार ने अरबियों और फ़ारसियों के मतानुसार अपनी "प्राचीन जातियों की कालगणना-विद्या" पृष्ठ ३४०,३४१ में हवाओं का वर्णन दिया है।

पृष्ठ २४३. अत्रि, वत्स, इत्यादि—जिन कहानियों की ओर यहाँ सङ्केत है वे विष्णु-पुराण, i १५३, ii. २१ में पाई जाती हैं।

पृष्ठ २४७. ऋषि भुवन-कोश का केवल यहाँ ही उल्लेख है। किसी अन्य स्रोत से मुझे उसका पता नहीं लगा। इसकी पुस्तक में, जिसका नाम नहीं दिया गया, भूगोल का वर्णन जान पड़ता है।

पृष्ठ-२४८. सञ्चार (?)—हस्तलेख में ऐसा ही जान पड़ता है। परन्तु इन अक्षरों को सञ्चाद भी पढ़ सकते हैं।

पृष्ठ २५२. बूशङ्ग, पश्चिम दिशा में, हिरात के समीप एक स्थान। सकिलकन्द, (इसे इसकिलकन्द भी लिखा है) को Elliot ने अपनी "History of India," i. 336, note 1 में असकन्दरिया बताया है।

पृष्ठ २५३. वायुपुराण का यह अवतरण अध्याय ४५, श्लोक १०९-१३६, में पाया जाता है। अलबेरूनी दिशायें इस प्रकार देता है :—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर; परन्तु संस्कृत-पाठ में यह क्रम है; उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम।

कुरु पाञ्चालाः शल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥ १०९ ॥
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वरैः।
वत्सा किसष्टाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥ ११० ॥
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥ १११ ॥
सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ११२ ॥
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा ॥ ११३ ॥
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः।
अन्तः पुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥ ११४ ॥
बाह्लीका वाढधानाश्च आभीराः कालतोयकाः।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥ ११५ ॥
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः।
शकाह्रदाः कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिकाः ॥ ११६ ॥
रमटा रद्धकटकाः केकया दशमानिकाः।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ ११७ ॥

काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वराः प्रियलौकिकाः ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ॥ ११८ ॥
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरुकाः ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडैः सह ॥ ११९ ॥
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातयः ।
तोमारा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ॥ १२० ॥
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान् देशान्निबोधत ॥ १२१ ॥
अन्ध्रवाकाः सुजरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ।
तथा प्रवङ्गवङ्गेया मालदा मालवर्त्तिनः ॥ १२२ ॥
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमर्थकाः ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्तामलिप्तकाः ।
माला मगधगोविन्दाः प्राच्यां जनपदाः स्मृताः ॥ १२३ ॥
अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चौल्याः कुल्यास्तथैव च ॥ १२४ ॥
सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥ १२५ ॥
अभीराः सहचैषीकाः आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ १२६ ॥
पीनिका मौनिकाश्चैव अस्मका भोगवर्द्धनाः ।
नैर्णिकाः कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ॥ १२७ ॥
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत ।
शूर्पाकाराः कोलवना दुर्गाः कालीतकैः सह ॥ १२८ ॥
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः ॥ १२९ ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ।
भानुकच्छ्राः समा ह्येयाः सहसा शाश्वतैरपि ॥ १३० ॥
कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च अनर्त्ताश्चार्बुदैः सह ।
इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ॥ १३१ ॥

मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ॥ १३२ ॥

तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट् सुरा निषधैः सह ॥ १३३ ॥

अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः ।
एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥ १३४ ॥

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये ।
निगर्हरा हंसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ॥ १३५ ॥

कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः ।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥ १३६ ॥

पृष्ठ २५४–२५७. वराहमिहिर की संहिता का यह अवतरण चौदहवें अध्याय से लिया गया है। इन दो ऐतिह्यों के बीच बहुत सी असंगतियाँ हैं। कई स्थानों में अलबेरूनी और उसके पण्डितों ने अपने हस्तलेख को पर्याप्त विशुद्धता के साथ नहीं पढ़ा होगा। अन्य स्थानों में संस्कृत–हस्तलेख–ऐतिह्य में भारी भूलें दिखाई देंगी। ये भूलें अक्षरों की सामान्य गड़बड़ से पैदा होती हैं क्योंकि ये अक्षर आपस में बहुत मिलते-जुलते हैं। अरबी-हस्तलेख-ऐतिह्य फिर भी शुद्ध है परन्तु अरबी पाठ के नक़ल करनेवाले ने किसी न किसी दशा में अशुद्धियों की संख्या को बढ़ाया होगा। कई भारतीय नामों को समझाने के लिए उसने टिप्पणियाँ दे दी हैं, यथा सौवीर, अर्थात्

मुलतान और जहरावार। पर खेद है कि उसने ये टिप्पणियाँ बहुत थोड़ी दी हैं।

पृष्ठ २५८. अबू माशर अनेक ग्रन्थों, प्रधानतः फलितज्योतिष के ग्रन्थों का रचयिता, २७२ हिजरी = ८८५ ईसवी में मरा। मध्यकालीन योरुप इसे अबू मसेर नाम से जानता था।

पृष्ठ २६०. पृथ्वी का गुम्बज़—यदि यह शब्द भारत से नहीं लिये गये, तो प्रश्न होता है कि किसने इन्हें अरब लोगों में प्रचलित किया? क्या अलफ़ज़ारी ने?

पृष्ठ २६०. रावण राक्षस—ग्रन्थकार का सङ्केत रामायण के पाँचवें और छठे काण्डों की ओर है। पर इनको वह जानता न था, अन्यथा वह इसे इस प्रकार बार बार राम और रामायण की कथा न कहता। मुझे क़िले का नाम समझने में सफलता नहीं हुई; अरबी चिह्न त्रिकूट नाम के साथ जोड़े नहीं जा सकते।

पृष्ठ २६२. लङ्का से मेरु तक एक सीधी रेखा—का आगे भी पृष्ठ २७१ पर उल्लेख है। भारतीय पद्धति के अनुसार, द्राघिमा का पहला अंश (डिग्री) सूर्यसिद्धान्त में भी वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार कुरुक्षेत्र के स्थान कुरुक्खेत्र बोलता था। हर सूरत में उसने क्ष नहीं लिखा। इसलिए संयुक्त क्ष प्राकृत-परिवर्तन द्वारा अवश्य ही क्ख बन गया होगा, यथा पोक्खरो = पुष्कर।

पृष्ठ २६४. लङ्कबालूस को ए. स्प्रङ्गर. A-Sprenger ने निकोबार बताया है; देखो *Post-und Reiserouten des Orients* pp. 88.

पृष्ठ २६६. देशान्तर के निकालने का नियम सूर्यसिद्धान्त में देखो।

पृष्ठ २६६. अल-अर्कन्द को अलबेरूनी ने ब्रह्मगुप्त का खण्ड-खाद्यक समझ लिया है (परिच्छेद ४९)। फिर अन्यत्र (परि० ५३) वह अर्कन्द शब्द को अहर्गण से अभिन्न समझता है। ध्वनि-शास्त्र की रीति से ये दोनों ही समीकरण कठिनता से ही न्याय-सङ्गत हो सकते हैं। इसलिए मैं समझता हूँ कि अर्कन्द का संस्कृत-मूल आर्यखण्ड ऐसा कोई शब्द है, और प्रत्यक्ष ही हर्कन शब्द (एक अरबी पञ्चाङ्ग का नाम, परिच्छेद ५३) अहर्गण से अभिन्न है।

ग्रन्थकार अल-अर्कन्द के अरबी अनुवाद के बुरा होने की शिकायत करता है और अपने जीवन में किसी समय (सम्भवतः 'अलबेरूनी का भारत' की रचना के उपरान्त) उसने इस अनुवाद का एक नया और संशोधित संस्करण प्रकाशित किया है। अरबी अर्कन्द अभी तक योरुप के पुस्तकालयों में नहीं मिला। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक से ये बातें ली हैं:—(१) पृथ्वी का व्यास १०५० योजन है। (२) उजैन का अक्ष २२° २९′ और अलमनसूरा का २४°१′ है। यहाँ ग्रन्थकार कहता है कि याक़ूब इब्न तारिक़ ने भी इस पुस्तक के प्रमाण दिये थे पर वे अशुद्ध थे। (३) लोहरानी में सीधी छाया ५$\frac{३}{९}$ कला है। (४) अलबेरूनी अल-अर्कन्द से शकाब्द के, जिससे उसका तात्पर्य गुप्त-संवत् से है, निकालने की एक रीति उद्धृत करता है (परिच्छेद ५३)।

पृष्ठ २६७ पंक्ति २. व्यास और परिधि के बीच ७:२२ के अनुपात का प्रयोग करने से हम १०५० योजनों के व्यास के अनुरूप परिधि के रूप में ३३०० योजन पाते हैं। इसलिए अल-अर्कन्द नामक पुस्तक में पृथ्वी की परिधि ३३०० योजन दी गई है। यह (परिच्छेद ३१) इस बयान से मिलता है कि ३२०० योजन अल-अर्कन्द में दिये मूल्य से १०० योजन कम हैं (Schram)।

पृष्ठ २६७. व्यस्त त्रैराशिक विशेष बीज-गणित-सम्बन्धी गणना के लिए एक वैज्ञानिक परिभाषा है।

पृष्ठ २६९. अलफ़ज़ारी अपनी ज्योतिष की पुस्तक—यह ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त का अनुवाद था।

पृष्ठ २६९ पंक्ति १. देशान्तर की गणना, जैसा कि अलबेरूनी कहता है, सर्वथा भ्रान्त है, क्योंकि द्राघिमा का अन्तर हिसाब में गिना नहीं गया (Schram)।

पृष्ठ २७० पंक्ति १९. कृमिभुक्त भाग में लिखी हुई संख्या अवश्य ८० होगी, क्योंकि अलबेरूनी थोड़ा आगे चलकर कहता है कि "यदि हम इस गणना को उलटायें और बड़े चक्र के भागों को उसकी विधि के अनुसार योजनों में बदलें तो हमें ३२०० संख्या प्राप्त होती है"। परन्तु ३२०० प्राप्त करने के लिए हमारे लिए आवश्यक है कि $\frac{३६०}{९}$ को ८० से गुणा करें। "दो स्थानों के बीच के अन्तर के योजनों को ९ से गुणो और गुणन-फल को ८० पर बाँटो" यह नियम योजनों में दिये हुए इस अन्तर को अंशों (डिग्रियों) में बदलने का काम देता है। तब यह अन्तर एक समकोन त्रिभुज का कर्ण समझा जाता है। इस त्रिभुज की एक भुज अक्षों का प्रभेद है, दूसरी द्राघिमाओं का अज्ञात प्रभेद; यह पिछला प्रभेद कर्ण और ज्ञात भुज के वर्गों के भेद का वर्गमूल लेने से मालूम हो जाता है। द्राघिमा का यह भेद तब अंशों (डिग्रियों) में प्रकट किया जाता है; दिन-मिनिटों में इसे प्रकट करने के लिए हमें इसे ६ पर बाँटना पड़ेगा, क्योंकि वे एक चक्र में ३६०° होते हैं, परन्तु एक दिन में केवल ६० दिन-मिनिट होते हैं।

पृष्ठ २७२. कतलग़तगीन—جیلغتگین इस तुर्की नाम की व्युत्पत्ति मालूम न होने के कारण मुझे इसके उच्चारण का भी पता

नहीं। इस संयुक्त अक्षर का दूसरा भाग तगीन = शूर मालूम होता है, जैसा तुग़रुल्तग़ीन अर्थात् श्येन के सदृश शूर। क्योंकि جيلغن जीलग़न का अर्थ एक बड़ा भाला है इसलिए इसे जीलग़त्तग़ीन, अर्थात् भाले के साथ शूर, पढ़ने का विचार हो सकता है परन्तु यह बहुत अनिश्चित है। इसी प्रकार की रचना का एक दूसरा नाम कुललुग़तगीन, कतलग़, है परन्तु सम्भवतः यह सर्वथा भिन्न है। *vide* Biberstein-Kazimirski, Menoutschehri Preface. p. 136., Elliot, "History of India," ii. 352, iii. 253.

पृष्ठ २७२. लौहूर क़िले को, जिसे लहूर भी लिखा है (परिच्छेद १८), लौहावर या लाहोर के साथ नहीं मिला देना चाहिए। इसका स्थान अज्ञात है। ग्रन्थकार के क़ानून मसऊदी के अनुसार इसका अक्ष ३३° ४०′, और द्राघिमा ६८° २०′ है। इन अक्षों का Hunter's Gazetteer में दिये अक्षों के साथ मिलान करने से हम देखते हैं कि उनमें कोई बड़ा भेद नहीं :—

			हँटर	अलबेरूनी
ग़ज़न	...	...	३३° ३४′	३३° ३५′
काबुल	...	...	३४° ३०′	३३° ४७′
पेशावर	...	...	३४° १′ ४५″	३४° ४४′
जैलम	...	...	३२° ५५′ २६″	३३° २०′
सियालकोट	...	...	३२° ३१′	३२° ५८′
मुलतान	...	...	३०° १२′	२६° ४०′

वैहन्द और अटक की पहचान पर, Cf. Cunningham "Ancient Geography of India," p. 54....

मन्दक्ककोर, (नाम भिन्न प्रकार से लिखा गया है) क़ानून

मसऊदी (Canon Masudicus) में दिये ग्रन्थकार के लेखानुसार, लाहौर का क़िला था।

नन्दन को इलियट महाशय "History of India," ii. 450, 451) बालनाथ पहाड़ पर, जो झेलम नदी पर झुका हुआ एक सुख-दर्शन पर्वत है और जिसे अब साधारणतः टिल्ला कहते हैं, एक क़िला बताता है।

दुनपूर (उच्चारण सर्वथा अनिश्चित) और अमीर का विश्राम-स्थान कन्दी (कीरी भी पढ़ा जाता है), ग़ज़नी से पेशावर को आने-वाली सड़क पर मालूम होते हैं। कन्दी के समीप राजा मसऊद और उसके भाई मुहम्मद (जिसकी आँखें निकाल डाली गई थीं) के बीच सन् १०४० ईसवी में एक भारी युद्ध हुआ था। यहाँ मसऊद को उन लोगों के सम्बन्धियों ने मार डाला था जिन्होंने दस वर्ष पूर्व इसके भाई के साथ विश्वासघात करके इसके कृपापात्र बनने का यत्न किया था, और जिनको इसके बदले में मृत्यु-दण्ड मिला था। *Cf.* Elliot, *l. c.* iv. 199, note 1, 138, ii. 150, 112(Persian text, p. 274), 273, note 3.

मेरा अनुमान है कि दुनपूर जलालाबाद या इसके समीपवर्ती कोई और स्थान है। जलालाबाद का अक्ष ३४° २४'; दुनपूर का ३४° २०' है।

कन्दी, दुनपूर की अपेक्षा अधिक दक्षिण की ओर और काबुल के अधिक समीप, अवश्य ही गन्दमक या इसका समीपवर्ती कोई स्थान होगा। यदि यह अमीर का विश्राम-स्थान या चौकी कहलाती है तो यह अमीर हमें राजा महमूद का पिता, अमीर सुबुक्तगीन, समझना चाहिए जिसने पहले पहल भारतीय सीमा-प्रदेश तक सड़कें बनाई थीं।

सिन्ध के बम्हन्वा या अलमन्सूरा की पहचान पर देखो Cunningham, *l.l.* p. 271 *seq*.

काबुल-उपत्यका और उपान्त के विषय में अलबेरूनी ने जो कुछ लिखा है वह Aloys Sprenger, *Post-Reiserouten des Orients*, No. 12 में दिखाया गया है; इसी प्रकार पञ्जाब और कश्मीर के मार्ग भी एक ख़ाके में दिखलाये गये हैं।

पृष्ठ २७४. मुहम्मद इब्न, इत्यादि, मध्यकाल का प्रसिद्ध राज़स, (Rázes) है। इसका देहान्त सम्भवतः ६३२ ई० में हुआ। ग्रन्थकार ने इसके ग्रन्थों की एक सूची लिखी है जो लीडन में विद्यमान है; v *Chronologie Orientalischer völker von Alberuni*, Einleitung, p. xi.; Wüstenfeld, *Geschichte der Arabischen Aerzte*, No. 98.

पृष्ठ २७५. अफ़्रोडिसियस का सिकन्दर—अरस्तू का प्रसिद्ध भाष्यकार है। यह ईसा के कोई २०० वर्ष बाद एथन्ज़ नगर में रहता था। *Cf.* Fihrist p. 252, और Zeller, *Geschichte der Griechischen Philosophie* 3, 419. यह उद्धरण Aristotle, Phys. vii. 1. में पाया जाता है।

पृष्ठ २७५ की अन्तिम पंक्ति के साथ अलबेरूनी की मूल अरबी पुस्तक का १६४ वाँ पृष्ठ आरम्भ होता है। हिन्दी अनुवाद में यह रह गया है। स. रा.

पृष्ठ २७६. वराहमिहिर—यह अवतरण संहिता, iv. 6, 7. से मिलता है। कुम्भक के स्थान में संस्कृत-पाठ में कणाद है।

पृष्ठ २७८. अरबी पाठ, पृष्ठ ۱۴۳, में ماثينه के स्थान ماثنه और ماثيا के स्थान ماثنا पढ़ो।

पृष्ठ २७८. तोरणों (اوجات) —ज्योतिष में उन दो स्थानों का नाम है जहाँ पृथ्वी, अपने भ्रमण-पथ पर, सूर्य से दूर से दूर और निकट से

निकट होती है। ग्रन्थियाँ (جوزالحرت)—ज्योतिष में उन स्थानों का नाम है जहाँ चन्द्र पृथ्वी के गिर्द भ्रमण करता हुआ पृथ्वी की कक्षा को काटता हुआ मालूम होता है। अँगरेज़ी में इनको apsides and nodes कहते हैं। संस्कृत में इनके लिए 'उच्च स्थान' और 'पात' शब्द हैं।

पृष्ठ २८०. ब्रह्मा से उच्चतर सत्ता अर्थात् अगली उच्चतर श्रेणी की सत्ता—لمن يعلوه का उलट لمن دونه (निम्नतर श्रेणी की सत्ता के लिए) है। (देखो अरबी पाठ पृष्ठ ١٧٧.)

पृष्ठ २८१. विष्णुपुराण—महर्लोक, इत्यादि, एक कल्प है, ये पहले शब्द, दूसरा भाग, अध्याय ७ में मिलते हैं। ब्रह्मा के पुत्रों का वर्णन दूसरे भाग में है। सनन्दनाद (सनन्द नाथ ?) शायद सनातन को भूल से लिखा गया है। *Cf. Samkhya Kârikâ* with the Commentary of Gaudapâda by Colebrooke-Wilson, p. 1.

पृष्ठ २८८. भूम्युच्च (apogee)—ग्रह की कक्षा में पृथ्वी से दूरतम बिन्दु को ज्योतिष में उस ग्रह का 'भूम्युच्च' कहते हैं।

पृष्ठ २९६. **श-म-य**—यह नाम इसी प्रकार लिखा हुआ है। अरबी अक्षर शम्मी वा शम्मियु पढ़े जाते हैं। इस प्रकार का कोई संस्कृत नाम मुझे ज्ञात नहीं। क्या यह = समय तो नहीं ? यही नाम फिर तीसरी बार परिच्छेद ७७ में आता है और वहाँ **स-म-य** लिखा है। अलबेरूनी कहता है कि स-म-य ने संक्रान्ति की गणना के लिए एक रीति बताई थी; इसलिए शायद वह अलबेरूनी का समकालीन विद्वान् और उसका व्यक्तिगत मित्र (गुरु ?) था। उसकी पुस्तक का नाम नहीं दिया।

पृष्ठ २९८. पुर्शूर (پرشور) सम्भवतः پرشاور पुरुशावर, अर्थात् पेशावर को भूल से लिखा प्रतीत होता है।

पृष्ठ ३०१. अभिजित का अर्थ दिन का ८ वाँ मुहूर्त्त है। अरबी रूप ابجتي। शायद संस्कृत अभिजित के अनुरूप है।

पृष्ठ ३०१. व्यास—यह वर्णन महाभारत, आदिपर्व, श्लोक ४५०६ की ओर सङ्केत करता है परन्तु कालगणना-सम्बन्धी विस्तार वहाँ नहीं मिलता।

पृष्ठ ३०४. मुहूर्त्तों के अधिपतियों के नामों का उल्लेख इन चार लाइनों में भी मिलता है। ये लाइनें Bodleian Library के संस्कृत हस्तलेखों की Aufrecht's Catalogue, p. 332a. से ली गई हैं:—

रुद्रा हि मित्रपितरो वसु वारि विश्वे वेधा विधिः शतमखः पुरुहूतवह्नी।
नक्तश्चरश्च वरुणार्यमयोनयश्च प्रोक्ता दिने दश च पञ्च तथा मुहूर्त्ताः।
निशामुहूर्त्ता गिररिशाजपादाहिर्बुध्न्यपूषाश्वियमाग्नयश्च।
विधातृचन्द्रादितिजीवविष्णुतिग्मद्युतित्वाष्ट्रसमीरणाश्च।

पृष्ठ ३०५. विजयनन्दिन्—अरबी में इस पुस्तक का नाम غرةالزيجات गुर्रतुलज़ीजात होगा।

पृष्ठ ३०६. होरों के नाम—संस्कृत में मुझे ये नाम नहीं मिले। शायद सूर्य्यसिद्धान्त की किसी टीका में इनका उल्लेख हो।

पृष्ठ ३०६. पदार्थ-विद्या के ज्ञाता जानते हैं—चन्द्रकला के भौतिक प्रभावों पर इसी प्रकार का एकवचन ग्रन्थकार की "प्राचानी जातियों की कालगणना" नामक पुस्तक में भी है।

पृष्ठ ३१०. अतूह (?)—हस्तलेख में आत्वहडु सा पढ़ा जाता है।

पृष्ठ ३११. بربه शब्द शायद भूल से برقه बखुं को लिखा गया है जो पक्ष के पहले दिन का नाम है। Cf. Trumpp, "Grammar of the Sindhi Language," p. 158.

पृष्ठ ३११. वेद—ग्रन्थकार वेद से छः प्रमाण देता है: एक तो पतञ्जलि से लिया गया है (परिच्छेद २), एक सांख्य से (परि० २ ,) दो ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मसिद्धान्त से (परिच्छेद ५९), और दो प्रमाण शायद उसे उसके पण्डितों ने बताये थे क्योंकि वह उस विशेष स्रोत का उल्लेख नहीं करता जिससे उसने इन्हें लिया है (परिच्छेद ३५) ।

पृष्ठ ३१५. वासुदेव—यह प्रमाण भगवद्गीता, अध्याय ८, श्लोक १७ से मिलता है ।

स्मृति नामक पुस्तक—यह प्रमाण मानव धर्म्मशास्त्र, अ० १, श्लोक ७२ से लिया प्रतीत होता है ।

पृष्ठ ३१७. —चार मानों (सूर्यसिद्धान्त, अध्याय १४,) पर जो जानकारी याकूब ने दी है अलबेरूनी के पास "काल–गणना" लिखते समय केवल वही थी । यह उसने अबू मुहम्मद अलनाइब अलामुली की किताबुल गुर्रा से ली थी । वहाँ समय की भिन्न भिन्न प्रकार की इन चार अवधियों का उल्लेख है, मान, सौर, सावन, चन्द्र, नक्षत्र ।

पृष्ठ ३१८. भुक्ति, अरबी में बुहूत, ग्रह की दैनिक गति है; देखो सूर्यसिद्धान्त, १, २७ । ऐसा मालूम होता है कि अरबी रूप प्राकृत में से बदलकर नहीं आया, क्योंकि प्राकृत में इसका भुत्ती बन गया होता।

पृष्ठ ३१९. सावन मान—ऐसे ही नियम सूर्यसिद्धान्त अ० चौदह. ३, १३, १५, १८, १९ में देखिए ।

पृष्ठ ३२१. उत्तरायण—दो अयनों पर सूर्यसिद्धान्त, अ० चौदह, ९ देखिए ।

पृष्ठ ३२२. ऋतु—छः ऋतुओं के वर्णन के लिए देखो सूर्यसिद्धान्त, अ० चौदह. १०, १६ ।

पृष्ठ ३२५. दिमस (इसका उच्चारण सम्भवतः दिमसु किया जाता था)=संस्कृत दिवस, उस भारतीय देशी बोली का एक चिह्न है जो अलबेरूनी के गिर्द बोली जाती थी और जिसे शायद वह आप भी बोलता था। मुझे पता नहीं कि यह कौन सी बोली थी, न मुझे मालूम ही है कि अब भी इसके कुछ चिह्न शेष हैं या नहीं। व और म में परिवर्तन निम्नलिखित उदाहरणों में भी दिखाई देता है:— چرمنمت चर्मन्मत=चर्मण्वती (चम्बल), همنت हिमम्मन्त = हिमवन्त, جاگملك जागमलकु = याज्ञवल्क्य, مچي मची = वत्स्य, سگريم सुग्रीमु = सुग्रीव। व से म में बदल जाने के कुछ उदाहरण हार्नले ने अपनी "Comparative Grammar" में भी दिये हैं।

पृष्ठ ३२५. तीन ध्वनियाँ ह, ख, और ष. इत्यादि— ष को ख बोलने पर देखो Hornle, l. c. 19, और फिर ख के ह हो जाने पर भी उसी की पुस्तक का वही प्रकरण देखो। ख का ह बन जाने के उदाहरण, देखिए. منه मुँह=मुख, ببرهان बब्रहान=वप्रखान (?), और آهاري आहारी; देखो आषाढ़, ككهند किखिन्द= किष्किन्ध। प्राकृत में मुहम्=मुख।

पृष्ठ ३२६. १ घटी=१६ कला।

पृष्ठ ३३१. परिच्छेद चालीस—यह रेनाड Reinaud द्वारा भी अनुवादित हो चुका है, Fragments Arabes et Persans, pp. 155-16।

पृष्ठ ३३१. सन्धि उदय और सन्धि अस्तमन—आशा यह की जाती है कि सन्ध्युदय और सन्ध्यस्तमन चाहिए पर यहाँ य का कोई चिह्न नहीं। ये रूप देशी भाषा के हैं और इनका समाधान دتي दुति= द्युति, और انتز अन्तज़ु=अन्त्यज के सदृश होना चाहिए।

हिरण्यकशिपु—इस राजा तथा इसके पुत्र प्रह्लाद की कथा विष्णु-पुराण द्वितीय खण्ड में है ।

पृष्ठ ३३४ पंक्ति १८. देखते हैं कि हिन्दुओं के सौर वर्ष ८५४ शक-काल का आरम्भ ९३२ ईसवी, मार्च २२, ६ घटी, ४०′ १५″ को होता है जो मार्च २२, ७ घण्टे ४० मिनिट सिविल ग्रीनविच समय के अनुरूप है, परन्तु अयन का वास्तविक क्षण मार्च १५, १२ घण्टे १५ मिनिट सिविल ग्रीनविच समय है, इसलिए अयन गिनती से ६ दिन और १९ घण्टे पहले है, और यह पञ्जल के बताये ६°, ५०′ के साथ बहुत अच्छी तरह से मिलता है (*Schram*) ।

पृष्ठ ३३६. अहर्गण = अहर + गण—ग्रन्थकार ने अपने अशुद्ध समाधान को परिच्छेद ५१ में पुनः दुहराया है ।

पृष्ठ ३३६. सिन्द-हिन्द = सिद्धान्त—प्रश्न होता है कि इस शब्द में न् को अरबियों ने डाला है या यह पहले ही हिन्दुओं के उच्चारण में विद्यमान था जिनसे उन्होंने यह शब्द सीखा । इस विषय में मुझे प्राकृत या देशी बोली का कोई नियम ज्ञात नहीं परन्तु कुछ एक भारतीय शब्द ऐसे हैं जो प्रत्यक्ष में ऐसी ही स्वर-विज्ञान-सम्बन्धी क्रिया को प्रकट करते हैं । उदाहरणार्थ, प्राकृत उट्टो (संस्कृत उष्ट्र) पूर्वीय हिन्दी में ऊट या ऊँट बन गया है । Hornle, "Comparative Grammar of the Gaudian Languages", Article 149.

पृष्ठ ३३९. उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी जैनियों की परिभाषायें हैं ।

पृष्ठ ३४१. स्मृति कहती है—यह मनु का धर्म्मशास्त्र है ।

पृष्ठ ३४४. उस की सारी पुस्तक का भाषान्तर—अलबेरूनी पुलिस-सिद्धान्त का अनुवाद कर रहा था । मुसलमान विद्वानों ने इसका उस समय तक अरबी में अनुवाद नहीं किया था, क्योंकि वे इसकी धर्म्म-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति को पसन्द नहीं करते थे ।

पृष्ठ ३४९. हिप्पोक्रटीज़ की वंशावली Tzetzes, chil. vii. host, 115 से मालूम है। Cf. "The Genuine works of Hippocrates" translated by Fr. Adams, London, 1849, vol. i. p. 23. ابلوسوس नाम इपोलोचोस (Hippolochos) नाम का अनुवाद प्रतीत होता है। यदि सूची में से इसे निकाल दिया जाय तो हिप्पेक्रटीज़ से ज़ाउस तक चौदह पीढ़ियाँ पूरी मिल जाती हैं।

अरबी ماخلون ऐसा प्रतीत होता है कि ماخاون की जगह भूल से लिखा गया है।

पृष्ठ ३५०. परशुराम—यह कथा विष्णुपुराण, अ० ४ में देखो।

पृष्ठ ३५२. गर्ग—इसके पिता का नाम जशू या जशो लिखा है। क्या यह यशोदा हो सकता है?

पृष्ठ ३५४. अली इब्न ज़ैन मर्व में एक ईसाई वैद्य था; Cf. Shahrazûri, MS. of Royal Library, Berlin, MS.Or. octav. 217, fol. 144 b; वही बैहक़ी में, Ibid. No. 737, fol. 6 a इस ऐतिह्य के अनुसार, इसका पुत्र फ़िर्दौसुल हिकमा नामक प्रसिद्ध चिकित्सा-ग्रन्थ का रचयिता था। Cf. also Fihrist, p. 296 and notes; Wüstenfeld, *Geschichte der Arabischen Aerzte*, No. 55.

पृष्ठ ३५४. अत्रेय के पुत्र कृष—यदि ग्रन्थकार का तात्पर्य यही है तो अरबी अक्षर قرس को बदलकर فرس करना चाहिए। Cf. A. Weber, Vorlesungen, p. 284, note 309.

पृष्ठ ३५४. अराटस का प्रमाण *Phœnomena*, vv. 96-134 से लिया गया है।

पृष्ठ ३५७. प्लेटो—यह अवतरण *Leges*, iii. 677; से लिया गया है, परन्तु सम्भाषण के वाक्य छोड़ दिये गये हैं।

पृष्ठ ३५९. स्तामस वास्तव में तामस प्रतीत होता है।

चैत्र के स्थान में चैत्रक संस्कृत-पाठ चैत्रकिम्पुरुषाद्याश्च के आरम्भ को अशुद्ध पढ़ने से निकला है।

सुदिव्य परशु (दूसरे पाठ परभु, परम) दिव्य शब्दों के अशुद्ध विभाग से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। बम्बई संस्करण में प्रजाः परमदिव्याद्यास्तस्य है।

पाँचवें मन्वन्तर में इन्द्र का नाम अन्तत संस्कृत ऐतिह्य के विभु के साथ कठिनता से ही मिलाया जा सकना है।

सिन्धुरेव—ये शब्द, इनका यथार्थ उच्चारण चाहे कुछ ही हो, संस्कृत-पाठ में नहीं मिलते।

पुरु मुरु संस्कृत का उरु पुरु है, परन्तु प्रमुख एक भारी भूल है, क्योंकि पाठ में उरुपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः है, अर्थात् उरु, पुरु, शतद्युम्न, और अन्य।

नबस और धृष्णा वास्तव में नभग और धृष्ट हैं।

विरजस, अश्वर्वेरी, निर्मोघ—संस्कृत के इस पाठ विरचाश्चोर्वरीवांश्च निर्मोहाद्यास् को अलबेरूनी ने विरजश्चश्चोर्वरीवांश्च—निर्मोह इस प्रकार बाँट दिया है।

नवें मन्वन्तर के इन्द्र का नाम अद्भुत के स्थान महावीर्य इन शब्दों के मिथ्यार्थ के कारण है:—तेषाम् इन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्य-द्भुतो द्विज।

सुधर्मात्मन्—संस्कृत-पाठ में सर्वधर्मा है।

देववत् और उपदेव के स्थान देवत—वानुपदेवाश्च का कारण देववानुपदेवश्च का अशुद्ध विभाग है।

विचित्र-अद्या वास्तव में विचित्राद्या अर्थात् विचित्र और दूसरे है।

उरुगंभीरबुध्न्यद्या, अर्थात् उरु, गभीर, बुध्न्य और दूसरे को भूल से उरुर, गभी, बुध्न्य-अद्या लिखा गया है।

पृष्ठ ३६१' 'धर्म्मपरायण स्त्री, अर्थात् अरुन्धती।

पृष्ठ ३६३. प्राचीन ज्योतिषी गर्ग पर Cf. Kern, Brihat Samhitâ, preface, pp. 33 seq.

पृष्ठ ३६७. यह सूची विष्णुपुराण, तीसरी पुस्तक, अ० १, २ से ली गई है।

२. मन्वन्तर: दत्तु निरिषभ—वास्तव में दत्तोनि ऋषभ चाहिए। निश्वर—अलबेरूनी निर्शव पढ़ता है।

श्चोर्वरी वांश्च—ग्रन्थकार ने श्चोर्वरीवांश्च (बम्बई संस्करण श्चोर्वरीवांश्च) का अशुद्ध विभाग किया है।

४. मन्वन्तर: ज्योति (ज्योतिः पढ़ो) धामन्—यह ज्योतिर्धामन् का अशुद्ध पाठ है।

चैत्रोग्नी वास्तव में चैत्राग्नी है।

वरक—बम्बई संस्करण, वमक; विलसन-हाल वनक।

५. मन्वन्तर: रुर्ध्वबाहु इन दो शब्दों वेदश्रीरुर्ध्वबाहु की अशुद्ध बाँट से उत्पन्न हुआ है।

ऊर्ध्वबाहुस्तथापरः में अपर को भूल से संज्ञा विशेष समझ लिया गया है।

सुबाहु (स्वबाहु ?)—संस्कृत-पाठ में स्वधामन् है।

६. मन्वन्तर: अतिनामन्—अरबी पाठ में अतिमानु है। या क्या हम اتمان के स्थान اتنام पढ़ें ?

चर्षयः (=तथा ऋषि) भूल से इस वाक्य से निकाला गया है सप्तासन्निति चर्षयः।

९. मन्वन्तर: हव्य, संस्कृत-पुराण में भव्य है। शायद हमें هب के स्थान بهب पढ़ना चाहिए।

मेधाधृति (विलसन-हाल), मेधामृति (बम्बई संस्करण)। यदि हम بيذهادت के स्थान ميذهادت न पढ़ें तो ऐसा जान पड़ता है कि अलबेरूनी ने वेधाधृति पढ़ा है।

१०. मन्वन्तर : सत्य (विलसन-हाल)।—अरबी में कुछ सत्तयो सा है।

सुक्षेत्र—अरबी में सत्यकेतु के स्थान सुशेर है। शायद ग्रन्थकार से यह शब्द छूट गया है और उसने इसके आगे का, अर्थात् सुक्षेत्र, नक़ल करलिया है।

११. मन्वन्तर : निश्चर, अरबी में विश्चर है।

अग्नीध्र = अग्नितेजस्, अरबी में अग्नीत्र كنيتر। है, जिसे शायद كنيتز। (अग्नितेजस्) में बदल देना होगा।

नघ—विलसन-हाल, अनघ।

१२. मन्वन्तर: सुतय, संस्कृत-पाठ में सुतपाश्च है। शायद ग्रन्थकार ने सुतयाश्च पढ़ लिया है।

द्युति और इश्चान्यस् भूल से इस श्लोक से निकाले गये हैं—

तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तमस्तु तपोधनः।

१३. मन्वन्तर : तत्त्वदर्शी च—यह तत्त्वदर्शिन् को भूल से लिखा गया है, क्योंकि संस्कृत-पाठ में तत्त्वदर्शी च है।

व्यय, यह अव्यय को अशुद्ध लिखा गया है। जान पड़ता है ग्रन्थकार ने धृतिमानव्ययश्च के स्थान में धृतिमान् व्ययश्च पढ़ लिया है।

१४. मन्वन्तर: अग्निबाहुः के स्थान में अग्निव किया है।

ग्रीध्र—बम्बई संस्करण में मागधोग्नीध्रण्व च है। और पाठ ग्रोध्र, अग्नीध्र हैं।

युक्तस और जित इस श्लोक से लिये गये हैं—

युक्तस-तथा-जितश्चान्यो मनुपुत्रां अतः शृणु।

पृष्ठ ३६९. बालखिल्य विष्णु-पुराण में वामन ऋषि कहलाते हैं परन्तु मुझे वहाँ उनकी तथा शकक्रतु की यह कथा नहीं मिली।

पृष्ठ ३६९. विरोचन का पुत्र बलि और उसका मन्त्री शुक्र—देखो विष्णुपुराण तीसरी पुस्तक। इसके नाम पर बलिराज्य नामक हिन्दुओं का एक त्योहार है।

पृष्ठ ३७१. विष्णुपुराण—यह प्रमाण तीसरी पुस्तक द्वितीयांश में पाया जाता है।

दूसरा अवतरण विष्णु-पुराण, तृतीय पुस्तक, तृतीयांश से है।

पृष्ठ ३७२. उनतीस द्वापर युगों के व्यासों के नाम विष्णु-पुराण, तृतीय पुस्तक, तृतीयांश से लिये गये हैं। ग्रन्थकार का ऐतिह्य संस्कृत-पाठ से थोड़ा सा भिन्न है, क्योंकि वह सदा उसी व्यास को उसी द्वापर के साथ, विशेषतः सूची के अन्त के समीप, नहीं मिलाता। त्रिवृषन् को छोड़कर, जिसके लिए अरबी में त्रिवर्त या त्रिवृत्त जैसा कुछ लिखा है, दोनों ऐतिह्यों में नाम मिलते हैं। इसके अतिरिक्त, ऋणज्येष्ठ शब्द में (अरबी में रिनजेतु) ग्रन्थकार ने भूल की है। संस्कृत-श्लोक इस प्रकार है—

कृतञ्जयः सप्तदशे ऋणज्येष्टादशे स्मृतः।

अलबेरूनी ने ऋणज्येष्टादशे के स्थान ऋणज्येष्टोष्टादशे पढ़ लिया है और इन शब्दों को भूल से ऋणज्यो अष्टादशे के स्थान ऋणज्येष्टो—

अष्टादशे में बाँट दिया है। फिर उसने ऋणज्येष्ट को रिनजेतुं में बदल-कर ज्येष्ठ (मास का नाम) के सादृश्य का अनुकरण किया है।

पृष्ठ ३७२. विष्णु-धर्म—वासुदेव, सङ्कर्षण इत्यादि विष्णु के नाम युगों में बताने से यह स्रोत भागवतों या पाञ्चरात्रों के सम्प्रदाय की शिक्षा से मिलता है। *Vide* Colebrooke, "Essays," i. 439, 440.

पृष्ठ ३७५. वासुदेव, अर्थात् कृष्ण, के जन्म की कथा विष्णुपुराण, पाँचवीं पुस्तक, तीसरे अध्याय में वर्णित है।

पृष्ठ ३७८. कौरव के पुत्रों, इत्यादि—निम्नलिखित इतिहास महाभा-रत से लिये गये हैं; जुआ खेलना सभा-पर्व से; युद्ध के लिए तैयारी करना उद्योग-पर्व से; ब्रह्मा के शाप से पाँचों भाइयों का विनाश मौसल-पर्व से; उनका स्वर्ग को जाना महाप्रास्थानिक-पर्व से।

इस वर्णन का प्रास्ताविक वाक्य وكان اولاد كورو على بنى العمومتة "कौरव की सन्तान अपने चचेरे भाइयों के ऊपर थी" बड़ा विलक्षण है। शायद इसमें से कुछ शब्द फट गये हैं। पाण्डु मर चुका था और उसके पुत्र अपने चाचा कौरव, अर्थात् धृतराष्ट्र के दरबार में, हस्तिनापुर में, पले थे। मेरी समझ में यह वाक्य कुछ इस प्रकार होना चाहिए था "कौरव के पुत्र अपने चचेरे भाइयों से शत्रुता करते थे" परन्तु अरबी पाठ ऐसा है कि उसका अनुवाद जो मैंने किया है उसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।

पृष्ठ ३८२. अक्षौहिणी पर देखो H. H. Wilson, "Works, 2nd edit., iv. p. 290 (हिन्दुओं की युद्ध-कला पर)।

मङ्कलुस (Mankalus) मिर्तिलुस (Myrtilus) का अशुद्ध रूप प्रतीत होता है। Cf. *Eratosthenis Catasterismorum Reliquiæ*, rec. C. Robert, p. 104. अलबेरूनी का स्रोत जोएनीस

मलालस (Johannes Malalas) की पुरावृत्तपरम्परा ऐसी कोई पुस्तक जान पड़ती है।

दूसरा इतिहास जो Aratus' *Phœnomena* की टीका से लिया गया है, उसी पुस्तक, Eratosthenis, etc., p. 100, 98 में पाया जाता है। इस जानकारी के लिए मैं अपने सहकारी प्रोफ़ेसर सी० राबर्ट का कृतज्ञ हूँ।

पृष्ठ ३८३. लोगों की २८४३२३ संख्या जो रथों और हाथियों पर चढ़ते हैं भूल से लिखी गई है। इसके स्थान में २८४३१० चाहिए। मैं नहीं जानता १३ मनुष्यों की इस अधिकता का क्या कारण है। परन्तु फिर भी अशुद्ध संख्या ऐसे ही रहने देनी चाहिए क्योंकि ग्रन्थकार इसके साथ अगले हिसाब में गिनती करता है।

इस पुस्तक के पहले भाग में और इस दूसरे भाग में सुक़रात आदि कई ऐसे विदेशी विद्वानों का उल्लेख है जिनके विषय में डाक्टर एडवर्ड ज़ाख़ो ने अपनी टीका में कुछ भी नहीं लिखा। वे लोग योरुप में परम प्रसिद्ध हैं इसीलिए ज़ाख़ो महाशय ने उन पर विशेष नोट लिखने की आवश्यकता नहीं समझी। परन्तु हमारे देशवासियों को उन लोगों से बहुत कम परिचय है। वे हमारे लिए ऐसे ही हैं जैसे कि योरुपवालों के लिए वराहमिहिर और आर्यभट्ट। इसलिए हम यहाँ उन विदेशी जनों का कुछ संक्षिप्त सा वृत्तान्त देते हैं।

सुक़रात (सोक्रटीज़)।

यदि पश्चिमी तर्क के इतिहास में तार्किकों को शिक्षा के अतिरिक्त किसी पुरुष के जीवन और व्यक्तित्व के विषय में कुछ कहने की आज्ञा हो तो इतिहास-लेखक निस्सन्देह सुक़रात के विषय में लिखेगा।

सुक़रात की शिक्षा और उसके जीवन में गाढ़ सम्बन्ध है। उसका जीवन अति सरस है। और जो लोग उसके सत्सङ्ग में रहे उनके लिए उसकी शिक्षा की अपेक्षा उसका जीवन अधिक आकर्षणकारी था।

सुक़रात (४६६—३६६ ईसा के पूर्व) ने यूनान के ऐटीका नामक ग्राम में जन्म लिया। उसका पिता मूर्तियाँ बनाकर बेचता था और माता धात्री का काम करती थी। पिता ने पुत्र को अपने ही काम में लगाया, परन्तु सुक़रात की प्रकृति ने इस काम को पसन्द नहीं किया। जो कुछ वह इस छोटे से ग्राम में सीख सकता था उसने सीखा और अपने समय का अधिकांश ज्ञान-ध्यान में बिताने लगा।

महापुरुष एक विशेष सीमा तक ही देश तथा काल की सन्तान होते हैं। वे देश और काल के ऊपर भी उड़ते हैं। सुक़रात के जीवन में यूनानियों के अनेक चिह्न प्रधान थे। उसका जीवन तपोमय था, परन्तु सुखों से उदासीन रहना न तो उसकी शिक्षा का अङ्ग था और न उसके जीवन का अनुष्ठान ही। सुन्दर वस्तुओं से प्रेम करने में वह सच्चा यूनानी था। यूनानी जीवन का एक और चिह्न स्वदेश तथा स्वजाति की मर्यादा का अनुकरण करना था। सुक़रात ने आयु पर्य्यन्त कभी स्वदेशीय तथा स्वजातीय मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया, और अन्त को उसी मर्यादा के आगे शिर नवाकर मृत्यु को स्वीकार किया। परन्तु जहाँ सुक़रात में यूनानी जीवन के ये चिह्न विद्यमान थे वहाँ कई बातों में वह अन्य यूनानियों से सर्वथा भिन्न था। यूनानी विशेष रूप से रसिक थे और अपने शरीर तथा वस्तुओं की अनुरूपता का ध्यान रखना अत्यावश्यक समझते थे; सुक़रात इन बातों की ओर से उदासीन था। उसके वस्त्र अत्यन्त साधारण होते थे। वह नङ्गे पाँव फिरने में लज्जा का अनुभव न करता था। रूखी सूखी रोटी खाकर सादा जीवन व्यतीत करना उसके लिए पर्य्याप्त था। मानसिक जीवन

में भी उसका ध्यान केवल बुद्धि की ओर था। उसके अपने जीवन में रसिकता का सर्वथा अभाव था। सुक़रात के एक मित्र ने मन्दिर में जाकर पूछा, "हम में सबसे अधिक बुद्धिमान् कौन है?" आकाश-वाणी ने उत्तर दिया—"सुक़रात"। सुक़रात इस बात को सुनकर अति विस्मित हुआ, क्योंकि वह समझता था कि मैं कुछ नहीं जानता। सुक़रात अपने समय के विद्वानों के पास गया। उसने उनसे उनके विषयों तथा जीवन के आदर्श के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। उसे विदित हुआ कि उन्हें कुछ ज्ञान नहीं, परन्तु वे इस बात से झिझकते हैं कि उनको और दूसरों को हमारे अज्ञान का पता लग जायगा। सुक़रात ने कहा :—"मैं कुछ नहीं जानता; ये लोग भी कुछ नहीं जानते, परन्तु जहाँ मुझे अपने अज्ञान का ज्ञान है वहाँ इन लोगों को इसका ज्ञान भी नहीं। प्रतीत होता है कि इस भेद के कारण ही आकाश-वाणी ने मुझे सबसे बुद्धिमान् कहा है।"

सुक़रात ने अपने और दूसरों के ज्ञान को बढ़ाना अपने जीवन का काम बनाया। सुक़रात के पूर्ववर्ती तार्किक अपने विचारों के फल विशेष विशेष शिष्यों को बता देना ही पर्य्याप्त समझते थे, परन्तु सुक़रात, इसके विपरीत, सबको विद्यादान देता था। बड़े बड़े तार्किक भारी भारी दक्षिणाएँ देनेवाले धनाढ्यों को ही पढ़ाते थे; इसके विरुद्ध सुक़रात ने आयु भर किसी से शिक्षा के लिए दक्षिणा नहीं ली। परम तार्किकों के सदृश उसकी शिक्षा व्याख्यान रूप में नहीं होती थी। वह बातचीत किया करता था और कहता था कि मैं दूसरों को कुछ नहीं सिखलाता, क्योंकि मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो दूसरों के साथ सीखता हूँ। मेरा काम माता का काम है; मैं बालक से बातें कराता हूँ, उसे सिखलाता नहीं। कभी कभी वह अपने आपको मक्खी से उपमा देता था और कहता था, मैं मनुष्यों को

काटता हूँ जिससे वे सावधान हों और देखें कि वे किस अवस्था में हैं।"

उसका जीवन संयम का जीवन था। उसमें कष्ट सहन करने की योग्यता थी। उसका सारा जीवन दूसरों की शिक्षा और सेवा में व्यतीत हुआ। इस प्रकार के जीवन और काम के लिए उसके देशवासियों ने निश्चय किया कि उसे विष का प्याला पिलाकर उसका अन्त कर दिया जाय। उसने अपनी जाति की आज्ञा के आगे शिर नवाया। उसकी मृत्यु का वर्णन करने के पहले उसके तर्क पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

सुक़रात का तर्क।

अनेक लोगों का मत है कि सुक़रात एक साधारण धर्म्मोपदेशक और प्रचारक था, वह तार्किक न था, और न उसने कभी तर्क की शिक्षा ही दी। हम देख चुके हैं कि सुक़रात का कार्य लोगों की आत्माओं को जगाना और उन्हें सोच-विचार के योग्य बनाना था, न कि तर्क का कोई विशेष सम्प्रदाय बनाना। फिर भी उसकी सारी शिक्षा का आधार तर्क था। यदि हम यह मान भी लें कि उसने मनुष्य-जाति को तर्क का कोई नवीन सम्प्रदाय नहीं दिया तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी सारी शिक्षा की नींव में तार्किक भाव विद्यमान था। इसके अतिरिक्त जिन प्रश्नों का उत्तर तर्क देना चाहता है उन प्रश्नों को सुक़रात ने लोगों के सामने रक्खा। यदि उसने उत्तर नहीं दिये तो कम से कम यह तो बता दिया कि किस दिशा में चलने से उत्तर मिलने की सम्भावना हो सकती है। अति तार्किक सत्य तथा धर्म्म दोनों के सर्वगत अस्तित्व से इन्कार करते थे

और कहते थे कि ये दोनों भिन्न भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न भिन्न हैं। मेरे लिए सत्य का प्रमाण मेरी ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। मेरे लिए धर्म्म का प्रमाण मेरा अपना सुख है। इन दोनों भूलों का संशोधन करके सुक़रात ने तर्क को नूतन जन्म दिया। हेगल की सम्मति है कि सुक़रात स्वयं अति-तार्किक था, और यह भी सम्भव है कि सुक़रात के विरोधियों ने उसे अति-तार्किक जानकर ही उसे मृत्यु-दण्ड दिया हो। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि जो बात अति-तार्किकों की एक श्रेणी बनाती थी वह सिद्धान्तों की एकता न थी, किन्तु व्यवसाय का एक होना था। कई अति तार्किक सिद्धान्तों की दृष्टि से सुक़रात के अनुयायी थे, फिर भी सुक़रात और अति-तार्किकों में एक प्रसिद्ध भेद था:—जहाँ दोनों वर्तमान अज्ञान का स्वीकार करते थे, वहाँ सुक़रात ज्ञान की सम्भावना पर बल देता था। अति-तार्किक कहते थे,—हम कुछ नहीं जानते और कुछ नहीं जान सकते; सुक़रात कहता था,—हम कुछ नहीं जानते परन्तु जान सकते हैं, अतः जानने का यत्न करना चाहिए। अति-तार्किक ज्ञान के अस्तित्व से इनकार करते थे, दूसरी ओर यह ज्ञान सुक़रात के तर्क का केन्द्र था। इसी प्रकार का भेद आचार-शास्त्र के विषय में भी था। अति-तार्किक आत्मा के वर्तमान सुख से बढ़कर धर्म्म का कोई प्रमाण स्थापित नहीं करते थे; सुक़रात सर्वगत धर्म्म के अस्तित्व पर ज़ोर देता था। अति-तार्किक कहते थे कि भिन्न भिन्न मनुष्यों की ज्ञानेन्द्रियाँ एक ही पदार्थ के विषय में भिन्न भिन्न और कभी कभी विरोधी ज्ञान देती हैं; सुक़रात ने इस प्रतिज्ञा को तो स्वीकार किया परन्तु साथ ही यह भी कहा कि इन्द्रिय-ज्ञान में सत्य ज्ञान को ढूँढ़ना ग़लत स्थान में ढूँढ़ना है; वास्तव में सत्य ज्ञान पदार्थों के तत्त्व पर विचार करने से प्राप्त होता है। यथा, हम देखना चाहते हैं कि

न्याय क्या है ? इसके लिए इतना जान लेना पर्य्याप्त नहीं कि हमारा लाभ किस बात में है, परन्तु आवश्यक यह है कि हम इसके भिन्न भिन्न अङ्गों पर दृष्टि डालें; उसके विषय में बुद्धिमानों के भिन्न भिन्न विचारों की तुलना करें, और उनमें से परस्पर विरोधी बातों को अलग करदें, फिर शेष यथार्थ सत्य रह जायगा। एक पदार्थ को भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखो, उसका लक्षण ढूँढ़ो, तब सत्य ज्ञान की प्राप्ति होगी—यह मार्ग सुक़रात के तर्क का विशेष चिह्न है, और, जैसा कि अरस्तू कहता है, पश्चिमी तर्क में सुक़रात व्याप्ति-आगमन (Induction) और लक्षण (definition) का आदि गुरु है।

सुक़रात से पूर्व यूनानी तर्क प्रकृति का तर्क था। सुक़रात ने उसे एक नवीन मार्ग पर डाल दिया और तत्पश्चात् यूनानी तर्क विशेष रूप से आत्मिक तर्क बन गया। प्रकृति को सर्वदा छोड़ नहीं दिया गया, परन्तु प्रधानत्व आत्मा को दिया गया। सुक़रात के पूर्व यूनान के चक्षु बाहर की ओर लगे हुए थे, सुक़रात ने कहा, "अन्दर की ओर देखो"। इसके पूर्व ज्ञान का निर्भर इन्द्रियों पर था, पर सुक़-रात ने कहा, "सत्य ज्ञान के लिए विचार की आवश्यकता है"। इस प्रकार सुक़रात ने तर्क में अपने पूर्वजों से भिन्न भाव स्वीकार किया और नूतन मार्ग चलाया।

सुक़रात का विश्वास था कि मेरे भीतर एक देव-वाक्य मुझे प्रेरणा करता है। यह देव-वाक्य प्रायः निषेध-मुख होता था। उसकी आज्ञायें केवल आचार के विषय में ही नहीं होती थीं, किन्तु सकल कठिन दशाओं में सुक़रात को उससे सहायता मिलती थी। सुक़रात के समय में लोग मन्दिरों में आकाश-वाणी सुनने जाते थे। जहाँ दूसरे लोग बाहर से आकाश-वाणी सुनते थे

वहाँ सुक़रात भीतर से सुनता था।* जिस प्रकार तर्क में उसने बाहर से भीतर की ओर नेत्र फेरे, उसी प्रकार आचार-सम्बन्धी शिक्षा के लिए बाहर के शब्दों की अपेक्षा अन्तरीय वाणी को अधिक गौरव से देखा। कई बार वह विचारों में घण्टों मग्न रहता था। कहते हैं कि एक बार वह सारा दिन एक ही स्थान पर विचार में मग्न खड़ा रहा। सुक़रात के तर्क तथा जीवन का एक-मात्र मूल पाठ यह था—

बाहर के पट बंद कर भीतर के पट खोल।

आचार के विषय में सुक़रात कहता है कि किसी काम का करना ही पर्य्याप्त नहीं, परन्तु यह भी आवश्यक है कि हम इसे सोच विचार कर करें और जानें कि क्या वह काम शुभ है। आचार की नींव ज्ञान पर होनी चाहिए। सुक़रात के मत में आचार तथा ज्ञान का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि चरित्रशुद्धि तथा ज्ञान एक ही वस्तु

* यह देव-वाक्य क्या था? साधारण अर्थों में यह आत्म-वाणी नहीं थी, क्योंकि अन्तःकरण की आज्ञाओं के सम्बन्ध में वह बाह्यता नहीं होती जो सुक़रात इस वाणी के सम्बन्ध में अनुभव करता था। यह भी नहीं कहा जा सकता कि ऐसी दशाओं में सुक़रात भ्रान्ति का आखेट होता था क्योंकि इस प्रकार की दुर्बलता का अन्य कोई उदाहरण उसके जीवन में नहीं मिलता; इसके अतिरिक्त देव-वाक्य प्रायः ठीक मार्ग दर्शाता था। बात यह है कि कभी कभी हमारे आत्मा में अनिश्चित भाव उत्पन्न होते हैं जो हमें कार्य्यों के अच्छा या बुरा होने के विषय में बताते हैं; हम अनुभव करते हैं कि एक काम अच्छा है, परन्तु यह भी देखते हैं कि हमने उसे तर्क से अच्छा सिद्ध नहीं किया। ये मानसिक अवस्थायें आरम्भिक अवस्था में होती हैं और मानसिक जीवन का ऐसा भाग है कि जिसे विशेष नाम नहीं दिया जा सकता। सुक़रात के समय में मनोविज्ञान बाल्यावस्था में था, अतः उसने इन अवस्थाओं को न समझ कर अपने से पृथक् स्वतन्त्र आत्मा की वाणी समझा।

हैं। कोई मनुष्य सच्चे अर्थों में पुण्य कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उसे उसके तत्त्व का ज्ञान न हो, और इसके विपरीत कोई मनुष्य ज्ञान रखता हुआ बुरा काम नहीं कर सकता। मद्यप मद्यपान-काल में भूल जाता है कि मद्यपान बुरा कार्य्य है।

सदाचार के जीवन में सबसे बड़ा धर्म्म यह है कि मनुष्य अपने आपको जाने। सुक़रात सदा अपने शिष्यों से कहता था, "अपने आपको जानो"। उसका जीवन तपस्या का जीवन था। तपस्या-विषय पर वह सदा उपदेश करता था। सच्ची तपस्या इन्द्रियों का संयम और दम है। यह तब ही सम्भव है जब मनुष्य को अपने चरित्र के दुर्बल अंश का ज्ञान हो। हमारे अन्दर देवासुर-सङ्ग्राम हो रहा है। असुर प्रत्येक की अवस्था में विशेष दुर्बल अंश को ढूँढ़ते हैं और उस पर प्रहार करते हैं। एक मनुष्य की अवस्था में यह अंश काम, दूसरे की अवस्था में क्रोध, और तीसरे की अवस्था में कोई और विषय होता है। जो मनुष्य अपने आपको नहीं जानता वह अपने दुर्बल अंश को भी नहीं जानता, और वह अपनी इन्द्रियों को वश में रखने के अयोग्य है।

हम ऊपर कह आये हैं कि सुक़रात अन्य यूनानियों की भाँति सुन्दर वस्तुओं से प्रेम करता था; आनन्द भोग के भी वह विरुद्ध न था। भोग-शक्ति का नितान्त नाश करना नहीं, किन्तु व्यसनों को वश में रखना उसका आचारादर्श था। जहाँ एक ओर यह धारणा है कि सुक़रात सुखी जीवन को धिक्कारता है वहाँ दूसरी ओर कुछ लोग यह समझते हैं कि उसकी शिक्षा के अनुसार सुख-प्राप्ति ही जीवन का आदर्श है। कई लेखकों ने इस गाँठ को इस प्रकार सुलझाने का यत्न किया है कि बुद्धिमानों के लिए सुक़रात की शिक्षा जीवन को धर्म्मपरायण करने की है, परन्तु सर्वसाधारण के लिए उसने भोगों

की आज्ञा दे दी है। बात यह है कि सुक़रात अन्य यूनानियों की भाँति सौन्दर्य्य-प्रेमी था और संयम से भोग भोगने को पाप नहीं समझता था। उसका विचार था कि यदि मनुष्य विषयों पर शासन करता हुआ आनन्द प्राप्त कर सकता है तो इसमें कुछ दोष नहीं। वह स्वयं भी कभी कभी सहभोजों में सम्मिलित होता था, परन्तु जब लोग प्रातःकाल मदमत्त पड़े होते थे सुक़रात अपने कार्य्य में लगा होता था। उसका अपना जीवन कमल-पुष्प के सदृश था जो जल में रहता है पर जल उसमें रच नहीं सकता। यही उसकी आचार-सम्बन्धी शिक्षा थी।

उसकी सम्मति में आदर्श जीवन में आत्मा बाह्य दशाओं से सर्वथा स्वतन्त्र होता है। मनुष्य परवश हो या आत्मवश, दरिद्र हो या धनवान्, स्वतन्त्रता उसके हाथ में है। एक मनुष्य जिसे संसार परवश समझता है राजकीय आत्मा रख सकता है।

सुक़रात की मृत्यु

ऐसी शिक्षा को यूनान-वासियों ने भयजनक जाना और वह महापुरुष जो सारे देश की शोभा था देश का शत्रु समझा गया। मिलिटस नामक एक मनुष्य ने राज्य-परिषद् में यह शिकायत की :—

"मैं, मिलिटस, सुक़रात पर अपराध लगाता हूँ कि वह राज-नियमों को तोड़ता है; जिन देवताओं को राज्य मानता है उनके स्थान में उसने अपनी पूजा के लिए नये नये देवता बना लिये हैं। वह युवकों को बिगाड़ता है और इस प्रकार भी राज्य-नियमों को भङ्ग करता है। सुक़रात युवकों को सिखाता है कि मेरी शिक्षा से तुम अपने माता-पिता से भी अधिक बुद्धिमान् हो जाओगे, अतः युवक माता-पिता से घृणा करने लग गये हैं। यह बताने के लिए कि मूर्खों

को बुद्धिमानों के अधिकार में रहना चाहिए उसने एक बार यह भी कहा था कि यदि किसी मनुष्य का पिता उन्मत्त हो जाय तो उसे मकान में बन्द कर देना चाहिए। इस समय राज्याधिकारी सम्मतियों से चुने जाते हैं। सुक़रात कहता है कि यह रीति अति अनुचित है। यदि माँझी या वंशी बजानेवाले की आवश्यकता हो तो कोई मनुष्य सम्मति नहीं लेता प्रत्युत जो मनुष्य इन कार्य्यों के योग्य हो वही नियत किया जाता है। यदि ऐसे निर्वाचन में भूल भी हो जाय तो बहुत हानि नहीं होती; परन्तु जहाँ मनुष्यों के शासकों के लिए राय ली जाय वहाँ निस्सन्देह मूर्खता का राज्य है। सुक़रात की ऐसी शिक्षा से युवकों के मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि वे देश के शासन-नियमों को घृणा की दृष्टि से देखें और उनका उल्लङ्घन करें।"

मुक़द्दमे के सुनने के लिए तिथि नियत हो गई। सुक़रात तनिक नहीं घबराया और अपने कार्य में लगा रहा। मुक़द्दमा पेश हुआ। राजपरिषद् के सदस्यों ने बहुपक्ष से उसे अपराधी ठहराया। उस समय प्रथा थी कि ऐसे अपराधियों से कुछ दण्ड लेकर वे क्षमा कर दिये जाते थे। सुक़रात से कहा गया कि वह भी इस प्रथा से लाभ उठाये और दण्ड देकर क्षमा प्राप्त करे। पर सुक़रात ने कहा कि "दण्ड देने का यह अर्थ होगा कि मैं भी अपने आपको अपराधी समझता हूँ। मैं यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं।" सुक़रात को मृत्यु-दण्ड दिया गया। उस समय उसने निम्नलिखित वक्तृता दी :—

"एथन्ज़ वासियो! थोड़े समय की बात थी, तुमने वृथा अपने नगर के शत्रुओं को अपने ऊपर यह कलङ्क लगाने का अवसर दिया कि तुमने सुक़रात की हत्या की। यदि तुम थोड़े समय प्रतीक्षा करते तो मैं यों ही मृत्यु का आखेट हो जाता। मेरी मृत्यु के लिए सम्मति देनेवालो! तुम समझते हो कि अल्प योग्यता के कारण मैं तुम्हारे

मनों को जीत नहीं सका और इसीलिए मरता हूँ? नहीं नहीं, तुम भूलते हो। मुझमें यह शक्ति थी कि तुम्हारे मनों पर प्रभाव डालता परन्तु इसके लिए मुझे वे बातें कहनी पड़तीं जो कहने के योग्य नहीं। और लोग तुम्हें प्रसन्न करने के लिए सब कुछ कह लेते हैं और कर लेते हैं परन्तु मैं वही कह और कर सकता हूँ जो एक स्वतन्त्र पुरुष कर सकता है और जो मेरा कर्तव्य है। जिस प्रकार मैंने अपने पक्ष को सिद्ध किया है उसका मुझे अब भी कोई शोक नहीं।"

"मेरे देशवासियो! न न्यायालय में और न युद्ध-क्षेत्र में हमारी यह वृत्ति होनी चाहिए कि चाहे जो हो पर हमारी देह-रक्षा हो जाय। युद्ध में कई ऐसे अवसर आते हैं जब शस्त्र रख देने और शत्रु से क्षमा माँग लेने से मनुष्य की जान बच सकती है। परन्तु ऐसा करना उचित नहीं। शेष भय के अवसरों पर भी यदि मनुष्य सब कुछ करने पर उद्यत हो जाय तो उसकी प्राण-रक्षा हो सकती है। एथन्ज़ वासियो! मृत्यु से बचना कठिन नहीं। कठिन यह है कि मनुष्य पाप से बचा रहे। पाप मृत्यु से भी शीघ्रगामी है। मैं अब वृद्ध हूँ और शनैः शनैः चल सकता हूँ। मृत्यु ने, जो तेज़ चलनेवाली है, मुझे आ पकड़ा है। मुझ पर अपराध लगानेवालों को, जो अब शक्तिशाली और शीघ्रगामी हैं, पाप ने आ घेरा है। हम सब यहाँ से जाते हैं; मुझ पर तुमने मृत्यु का दण्ड लगाया है, और उन पर सत्य ने पाप तथा अन्याय का अपराध लगाया है। मैं अपने भाग्य को सिर और आँखों पर ग्रहण करता हूँ और वे अपने को ग्रहण करते हैं। मुझे मृत्यु-दण्ड देनेवालो! मैं अब एक भविष्यद्वाणी करना चाहता हूँ। जो दण्ड तुमने मुझको दिया है उससे बड़ा दण्ड तुमको मेरी मृत्यु के पश्चात् मिलेगा। तुम समझते हो कि मुझे मारकर तुम सुख से जीवन व्यतीत करोगे और कोई तुमसे तुम्हारे जीवन के विषय में

प्रश्न न करेगा। परन्तु मैं कहता हूँ कि बहुतेरे, जिनको तुमने नहीं देखा और जिनको मैंने रोक रक्खा है, तुमसे उत्तर माँगेंगे। उनमें युवावस्था का रक्त होगा। वे तुम्हें अधिक क्लेश देंगे। बहुत से लोग तुम्हारे अपवित्र जीवनों पर प्रश्न करते हैं। यदि तुम समझते हो कि इन लोगों को मारकर तुम उनका मुँह बंद कर सकते हो तो यह तुम्हारी भूल है। इस प्रकार न तुम अपनी रक्षा कर सकते हो, और न यह सभ्य रीति ही है। सुगम तथा सभ्य रीति यह है कि लोगों के गले काटने के स्थान में तुम अपने जीवनों का सुधार करो।"

"एक और निवेदन मुझे तुमसे करना है। यदि युवा होकर मेरे पुत्र सदाचार का आचरण न करते हुए धन या किसी अन्य पदार्थ की लालसा करें तो उन्हें उसी प्रकार दुःख दो जिस प्रकार कि मैंने तुम्हें दिया है। यदि वे वास्तव में निकृष्ट हों और इस पर भी घमण्ड करें तो उनको लज्जित करो जिस प्रकार कि मैं तुम्हें करता रहा हूँ। यदि तुम यह करोगे तो हमारी ओर जो तुम्हारा कर्तव्य है वह पूर्ण हो जायगा। अब समय है कि हम यहाँ से चल दें, मैं मरने के लिए और तुम जीने के लिए; परन्तु यह परमात्मा ही जानता है कि हममें से किसका दैव उत्तम है।" —पश्चिमी तर्क से उद्धृत।

इसके बाद उसने विष का प्याला बड़ी शान्ति से पी लिया और कुछ ही मिनटों में उसका प्राणान्त हो गया। इस प्रकार उस सुक़रात की, जिसे आकाश-वाणी में सब यूनानियों ने बुद्धिमान् बताया था, मानव-लीला समाप्त हुई। एथन्ज़-वासियों ने अपनी कृतघ्नता पर पश्चात्ताप किया। सब कोई उसके शत्रुओं से घृणा करने लगे और वे बड़ी बुरी तरह से मरे।

सुक़रात का जीवनचरित्र और उसके कथन हम लोगों तक उसके दो प्रधान शिष्यों—ज़ेनोफन और अफ़लातूँ—द्वारा पहुँचे हैं।

सुक़रात की घरवाली ज़ेन्टिपी (Xantippe) बड़ी गुस्सेल थी। वह बात बात पर तुनुक जाती थी। सुक़रात का स्वभाव बिलकुल शान्त था। जब वह चिड़चिड़ाकर बोलती तब यह टाल जाता। एक बार उसने बहुत बक झककर छत पर से सुक़रात के सिर पर सड़ा हुआ गँदला पानी उँड़ेल दिया। इस पर पण्डित सुक़रात ने ज़रासा हँसकर कहा कि इतनी गर्जना के बाद वर्षा होनी ही चाहिए। इस में अचरज ही क्या है?

अफ़लातूँ (प्लेटो)।

यह एक यूनानी तार्किक था। इसका पिता अरिस्टन अरिस्टोक्लीज़ का पुत्र था। इसके द्वारा इसका सम्बन्ध एथन्ज़ के एक प्राचीन राजा कोड्रस (Codrus) के वंशजों के साथ था। माता की ओर से यह सोलन का वंशज था। अफ़लातूँ का पहला गुरु वैयाकरण डायोनिसियुस (Dionysius) था। तत्पश्चात् इसने अरिस्टन नामक एक आरगिव पहलवान से शारीरिक कसरतें सीखीं। कई लोग कहते हैं कि इस पहलवान ने ही इसके चौड़े कन्धों और हृष्ट पुष्ट शरीर के कारण इसका नाम अफ़लातूँ रक्खा था। इसका पहला नाम इसके दादा के नाम पर अरिस्टोक्लीज़ था। इसके बाद वह सङ्गीत और कविता का अध्ययन करने लगा। उसने ओलिम्पिक के खेलों के ऊपर कुछ कविता भी बनाई; परन्तु सुक़रात का एक लम्बा संवाद सुनकर उसने उसे जला दिया और उसका शिष्य बन गया। उसकी कुछ ग़ज़लें (विदग्धमुखमण्डन) अभी तक सुरक्षित हैं। वह कोई दश वर्ष तक सुक़-

रात का शिष्य बना रहा, और ३९९ ई० पूर्व में उसकी मृत्यु के पश्चात् अफलातूँ एथन्ज़ का परित्याग कर ज्ञान की तलाश में भिन्न भिन्न देशों में पर्यटन करने लगा। साइरीन (Cyrene) में उसने रेखागणित तथा गणित की अन्य शाखाओं का अध्ययन किया। वहाँ से वह मिस्र चला गया। यहाँ उसने तेरह वर्षों में वह सब सीखने का यत्न किया जो कुछ पुरोहित लोग उसे पढ़ा सकते थे। फिर वह इटली आया और टरन्टम में आकर बस गया। यहाँ उसने यूरीटस (Eurytus) और अर्चाईटस (Archytas) के साथ मित्रता करली। तत्पश्चात् उसने सिसली द्वीप के अद्‌भुत पदार्थ, विशेषत: एटना पर्वत, देखने के लिए वहाँ की यात्रा की। सिसली में उसका परिचय साईरस्यूस (Syracuse) के प्रजापीड़क राजा, डायोनीस्युस, से हो गया। दुर्भाग्य से इसने राजा को रुष्ट कर दिया। अफलातूँ स्पार्टा के राजदूत के जहाज़ में घर लौट रहा था। राजा ने दूत से कह दिया कि इसे ईगिना में जाकर दास के रूप में बेच देना। परन्तु उसके ख़रीदनेवाले ने उसे स्वतन्त्र करदिया। इस पर वह एथन्ज़ में वापस आकर अकेडेमिया के बाग़ में शिक्षा देने लगा। इसीसे इसके तत्त्वज्ञान को लोग अकेडेमिक कहते थे। डायोनीस्युस के चचा, छोटे डायन, की प्रार्थना पर उसने दुबारा सिसली की यात्रा की। वहाँ इस बार इसका बहुत सत्कार हुआ। परन्तु जब उसने देखा कि प्रजापीड़क डायोनीस्युस उसके उपदेशों पर ध्यान नहीं देता और अपने पिता का अनुकरण करता है तब वह एथन्ज़ को लौट आया और यहाँ बहुत से लोग उसके अनुयायी बन गये। साईरस्यूस में तीसरी बार जाने के बाद वह अपने जन्म-स्थान में आकर बस गया। अपनी आयु के शेष वर्ष उसने यहाँ ही साहित्य और दर्शन के अनुशीलन में व्यतीत किये। इसकी बड़ी बड़ी पुस्तकें ये हैं :—

१. फीडो जो कथोपकथन रूप में है । इसमें सुक़रात की अन्तिम घड़ियों का बड़ा ही ज़ोरदार और करुणापूर्ण वृत्तान्त है । २. " प्रजा-तन्त्र", इसमें सामाजिक आचार के उच्चतम सिद्धान्त हैं । ३. ' टीमि-यस ' जो उसके समय के वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र का संक्षेप है ।

जन्म एथन्ज़ में ४२८ ईसा पूर्व ; मृत्यु ३४७ ईसा पूर्व ।

अरस्तू (अरिस्टाटल)।

सयाने यूनानियों में सबसे अधिक सयाना अरस्तू कहा जाता है। इसका जन्म ईसा से ३८५ वर्ष पहले स्टेगिरा (Stagira) नामक स्थान में हुआ था। इसका पिता मक़दूनिया के राजा का वैद्य था और वैद्यों के प्राचीन वंश में से था । इस प्रकार अरस्तू की नाड़ियों में परीक्षण करनेवालों का रक्त बहता था। ईसा के ३६७ वर्ष पूर्व यह एथन्ज़ में आया और अफलातूँ का शिष्य बन गया । बीस वर्ष के लगभग ये दोनों इकट्ठे रहे। ३४३ से ३४० ई० पू० पर्यन्त वह सिकन्दर का अध्यापक रहा । इस सम्बन्ध से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उसने नाना प्रकार के जीवधारियों के पाठ की सामग्री इकट्ठी करली। ३३४ ई० पू० में उसने स्वतन्त्र तर्क की शिक्षा देना आरम्भ करदिया। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उस पर नास्तिकता और मक़दूनिया का पक्ष लेने का अभियोग लगाया गया । इस कारण उसे एथन्ज़ छोड़ना पड़ा । इसी देश-निकाले की अवस्था में ३२२ ईसा० पूर्व में इसका देहान्त हो गया।—पश्चिमी तर्क ।

देवजानस (डायोजनीस) ।

यह एक अति त्यागवादी तार्किक था । इसके पिता पर नक़ली सिक्के बनाने का अपराध लगा था । इसलिए पिता और पुत्र को अपने जन्म-स्थान को छोड़कर एथन्ज़ में आना पड़ा । यहाँ आकर देव-जानस ने अति त्यागवाद (Cynics) के प्रवर्तक अण्टिस्थनीज़ (Antisthenes) से तत्त्वज्ञान सीखना आरम्भ किया । इसने अपने सम्प्रदाय के काठिन्य को चरम सीमा तक पहुँचा दिया । वह एक मोटा और फटा हुआ अँगरखा पहरता, अत्यन्त साधारण भोजन करता, और सार्वजनिक स्थानों और बराण्डों में रहता था । कहते हैं, उसने एक तगार (टब) को अपना निवास बना लिया था, और इसमें रहने से वह बड़ा प्रसन्न रहता । ईगिना द्वीप को जाते समय मार्ग में वह सागर-दस्युओं के हाथ पड़ गया । उन्होंने इसे ग़ुलाम के तौर पर बेच दिया । परन्तु इसके स्वामी ने इसे स्वतन्त्र कर दिया और अपने बच्चों को पढ़ाने पर लगाया । कोरिन्थ में महा-प्रतापी सिकन्दर इससे मिलने आया । सिकन्दर ने आकर कहा, "मैं महा-राजा सिकन्दर हूँ ।" इस पर देवजानस ने उत्तर दिया, "मैं महा-त्यागी देवजानस हूँ ।" तब महाराजा ने उससे पूछा कि आपको यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताइए । उसने उत्तर दिया कि "मुझे यही आवश्यकता है कि आप मेरे और सूर्य के बीच खड़े होकर मेरी धूप को न रोकिए ।" तत्त्वदर्शी की मानसिक स्वतन्त्रता को देखकर सम्राट् पर बड़ा असर हुआ, और वह बोला, "यदि मैं सिकन्दर न होता तो मैं देवजानस होना पसन्द करता ।"

कहते हैं देवजानस दिन के समय दीपक लिये जा रहा था । लोगों ने इसका कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि मैं किसी ईमानदार मनुष्य को ढूँढ़ रहा हूँ ।

यह बात मानी गई है कि उसका देहान्त कारिन्थ नगर में एक सार्वजनिक बाज़ार में हुआ था । उसकी मृत्यु बड़ी शान्तिमयी थी । एथन्ज़-वासियों ने उसकी अर्थी को बड़े समारोह के साथ निकाला था । सिनोप के लोगों ने उसकी स्मृति में मूर्त्तियाँ खड़ी की थीं । इसका जन्म पोन्टस प्रान्त के सिनोप नगर में ४१४ ई० पू० में हुआ और ३२३ ई० पू० में मृत्यु हुई ।

पाईथेगोरस ।

यह एक यूनानी तत्त्ववेत्ता था । इसका व्यक्तिगत इतिहास बहुत कुछ अन्धकार में है ; परन्तु यह बात मान ली गई है कि यह कई वर्ष तक मिस्र और भारत में अध्ययन करता रहा, और एशिया के एक बड़े भाग की यात्रा करने के बाद अपने जन्म-स्थान को लौट आया । यहाँ आकर जब उसने देखा कि पोलीक्रटीज़ (Polycrates) ने समोस (Samos) का राज्य छीन लिया है तो वह इटली के अन्तर्गत क्रोटोना को चला गया । यहाँ उसने तत्त्वज्ञान की शिक्षा देने में बड़ा नाम पाया । देश के सभी भागों से उसके पास विद्यार्थी आते थे । इन सबको वह पाँच वर्ष के लिए परीक्षा के तौर पर मौन-व्रत धारण कराता था ; इसके बाद उन्हें अपनी सम्पत्ति को सार्वजनिक सञ्चय में अर्पण करना पड़ता था । उसके शिष्य, जिनकी संख्या कोई ३०० के क़रीब थी, एक धार्म्मिक बन्धुता में बँधे हुए थे । उसने क्रोटोना और उसके उपनगरों के लोगों के आचार का बहुत कुछ सुधार किया, और उसके कई शिष्य, विशेषतः ज़ल्यूकस, बहुत अच्छे व्यवस्थापक बन गये । यह पहला व्यक्ति था जिसने तत्त्ववेत्ता, या 'ज्ञानानुरागी' की उपाधि धारण की ।

इसका मत था कि सूर्य ब्रह्माण्ड के मध्य में है और पृथ्वी अन्य ग्रहों सहित इसके गिर्द घूमती है। वह जीवात्माओं के पुनर्जन्म और मांस-भक्षण-निषेध का माननेवाला था। यह कोई भी पुस्तक लिख कर पीछे नहीं छोड़ गया, इसलिए इसकी दार्शनिक शिक्षा के वास्तविक स्वरूप के विषय में बहुत कुछ सन्देह है।

इसका जन्म ५८० ई० पू० के लगभग समोस में हुआ और मृत्यु कोई ५०० ई० पू० में हुई।

पोर्फायरी (Porphyry)

यह अफलातूँ का अनुयायी तार्किक था। इसने एथन्ज़ में लाञ्जीनस से वाग्मिता, और रोम में प्लोटिनस से तत्त्वज्ञान सीखा। इसने प्लोटिनस का जीवनचरित्र भी लिखा। इसका यथार्थ नाम मालचस (Malchus) था जिसका अर्थ 'राजा' है। इसकी विद्वत्ता बहुत बड़ी थी। इसने कई ग्रन्थ रचे, जिनमें से एक ईसाई धर्म्मशास्त्र के विरुद्ध होने के कारण बड़े थियोडोस्युस की आज्ञा से जला दिया गया।

जन्म टायरे (Tyre) में, २३३ ई० में, मृत्यु रोम में, ३०५ ई० में।

प्रोक्लस।

यह ब्रह्मसाक्षात्कारवाद का माननेवाला एक तार्किक था। इसने सिकन्दरिया और एथन्ज़ में अध्ययन किया था और यह प्राचीन जगत् के धर्म्मों और आचारों से परिचित हो गया था। यह विविध

प्रकार के अनुष्ठान करता था और उनको ऐसे अलङ्कार समझता था जिनमें धर्म्म और दर्शनशास्त्र के तत्त्व छिपे पड़े हैं। इससे ईसाई रुष्ट हो गये और उन्होंने इसे एथन्ज़ से निकाल दिया, परन्तु बाद को यह फिर वहाँ लौट आया।

इसका जन्म कानस्टेण्टीनोपल में ४१२ में हुआ, और यह ४८५ में एथन्ज़ में मर गया।

टोलमी (Ptolemy Claudius)

यह भूगोल और गणित का एक विख्यात मिस्री पण्डित था। यह अपनी 'जगत् की व्यवस्था' के लिए प्रसिद्ध है। इसमें इसने पृथ्वी को जगत् का मध्य माना है जिसके गिर्द सूर्य, ग्रह, और तारे घूमते हैं। इसके भूगोल में उस जगत् का वर्णन है जो उसके समय में ज्ञात था। यह पन्द्रहवीं शताब्दी तक इस विद्या की एक बड़ी पाठ्य पुस्तक बनी रही है। पन्द्रहवीं शताब्दी में पुर्तगेज़ों और वीनीशियन लोगों के आविष्कारों ने इस पुस्तक की भूलों को दर्शाया तो इसका गौरव कम हुआ। यह दूसरी शताब्दी के आरम्भ में सिकन्दरिया में हुआ है। अरबी में इसका नाम बतलीमूस लिखा है।

लाईकर्गस।

यह स्पार्टा देश का एक प्रसिद्ध स्मृतिकार हुआ है। इसके जन्म तथा इसके जीवन का इतिहास बहुत कुछ अन्धकार में है। पर कहते हैं कि वह स्पार्टा के राजा यूनोमुस (Eunomus) का पुत्र, और उसके उत्तराधिकारी पोलीडकटस (Polydectes) का भाई था। पोलीडकटस की मृत्यु के बाद उसकी विधवा ने, यद्यपि वह

गर्भवती थी, राजमुकुट लाईकर्गस को देना चाहा; परन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया, और अपने भतीजे चेरीलौस (Charilaus) की अप्राप्तवयस्कता में बड़ी ईमानदारी से संरक्षक का कर्तव्य पालन करता रहा। जब राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हो गया तब लाईकर्गस ने स्पार्टा छोड़ दिया और देश-देशान्तर में पर्यटन करके वहाँ की रीति-नीति का अवलोकन करने लगा। स्वदेश लौटने पर उसने राज्य को बड़ी गड़बड़ अवस्था में पाया। राजा मनमानी करना चाहता था और प्रजा उसकी आज्ञा न मानती थी। लाईकर्गस ने शासन में संस्कार करना आरम्भ किया, और ऐसे कठोर नियम बनाये जो बिगड़े हुए लोगों को ठीक करने के लिए अत्यन्त उपयोगी थे। इसके उपरान्त वह स्पार्टा से चला गया, और यह माना गया है कि वह बड़ी आयु में क्रीट में मर गया।

मृत्यु कोई ८७० ईसा० पूर्व के लगभग हुई।

लाईकर्गस।

इस नाम का एथन्ज़ का एक वागीश भी हुआ है। कहते हैं इसने दर्शनशास्त्र अफलातूँ से और वाग्मिता आईसोक्रटीज़ (Isocrates) से सीखी थी। वह डीमोस्थनीज़ का मित्र और स्वतन्त्रता का कट्टर पक्षपाती था। इसकी एक वक्तृता Reiske's Collection of Greek Orators में भी है। इसका देहान्त ३२३ ई० पू० के लगभग हुआ।

एम्पीडोक्लीज़ (Empedocles)

सिसली द्वीप के अन्तर्गत अग्रीजन्टम नामक स्थान का रहने-वाला एक तार्किक, कवि, और इतिहासज्ञ था। इसने पुनर्जन्म के

सिद्धान्त को ग्रहण किया था और पाईथेगोरस की पद्धति पर एक अत्युत्तम कविता लिखी थी। इसकी कविता बड़ी साहसिक और प्रफुल्ल होती थी, और इसके श्लोक इतने सर्वप्रिय होते थे कि वे ओलिम्पस पर्वत के खेलों के अवसर पर कविवर होमर और हीसायड के श्लोकों के साथ पढ़े जाते थे। यह ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व हुआ है।

बियास (Bias)

यूनान के सात ज्ञानियों में से एक था। इसने अपना जीवन तत्त्वज्ञान के अध्ययन में लगाया था, और जो कुछ इसने सीखा था उसके अनुसार कर्म करता था। वह सार्वजनिक कार्यों में बड़ा भाग लेता था, और अपनी प्रचुर सम्पत्ति का सदुपयोग करता था।

कोरिन्थ का पेरियण्डर।

यह बड़ा प्रजापीड़क था। पर इसके ख़ुशामदी इसे यूनान के सात ऋषियों में से एक कहते थे। इसने पहले स्वदेश की शासन-पद्धति और स्वाधीनता को उलट पलट करना आरम्भ किया, और ६२७ ई० पू० में राजत्व छीन लिया। इसका शासन आरम्भ में तो मृदु था परन्तु शीघ्र ही इसने अपने आपको एक पूरा पूरा स्वेच्छाचारी सिद्ध कर दिया। कोरिन्थवासियों पर इसने भयानक अत्याचार किये, अपनी स्त्री, मेलिसी को मरवा डाला, और उसकी मृत्यु पर दुःख प्रकाशित करने के कारण अपने पुत्र लाईकोफ़्रोन को देश से निकाल दिया। अरस्तू कहता है कि यह पहला शासक था जिसने

स्वेच्छाचारी शासन को एक पद्धति का रूप दिया। इसकी मृत्यु ५८५ ई० पू० में हुई।

थेलीस।

यह एक यूनानी दार्शनिक था। इसने अनेक वर्षों तक देशाटन करके अपनी ज्ञान-वृद्धि की थी। मिस्र में रहकर इसने गणित सीखा था। फिर स्वदेश लौटकर इसने एक दार्शनिक सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की थी। इसका नाम आईओनियन सम्प्रदाय था। इसके शिष्यों में अनेक्सीमेण्डर (Anaximander) अनेक्सीमेनस (Anaximenes) और पाइथेगोरस थे। सोलन और थ्रसाईबुलुस (Thrasybulus) भी प्रायः इसके दर्शनार्थ आया करते थे। लोग प्रायः इसे यूनानी दर्शन का पिता मानते हैं। इसने रेखागणित में कुछ नवीन आविष्कार किये, सबसे पहले सूर्य के अभिव्यक्त व्यास का अवलोकन किया, वर्ष की लम्बाई ३६५ दिन की नियत की, और ग्रहणों की गति और स्वरूप पर विचार किया।

इसका जन्म मिलेटस में ६३६ ई० पू० में हुआ, और मृत्यु कोई ५४५ ई० पू० में।

किलोन।

यह स्पार्टा का एक दार्शनिक था। और यूनान के सात ज्ञानियों में से एक समझा जाता था। इसकी मृत्यु हर्ष की अतिमात्रा के कारण इसके पुत्र की गोद में हुई थी। इसके पुत्र ने ओलिम्पिया में विजय लाभ की थी।

मृत्यु संवत् ५९७ ई० पू०।

पिटेकुस।

यह यूनान के सात ज्ञानियों में से एक था। एथन्ज़वालों को पराजित करने के कारण यह मिटीलीन (Mitylene) का राजा नियत हुआ। पिटेकुस ने एक दार्शनिक की रीति से शासन किया और राजनियम श्लोकों में बनाये ताकि वे अधिक सुगमता से स्मरण रह सकें। इसके उपरान्त इसने अपने पद का परित्याग कर दिया, और जब उसे भूमि की जागीर मिलने लगी तब उसने यह कहकर लेने से इनकार करदिया कि "बहुत से धन का स्वामी होने की अपेक्षा अपने देशवासियों को अपनी निरपेक्षता का विश्वास करा देना मेरे लिए अधिक आनन्ददायक है।"

इसका जन्म लसबोस द्वीप के अन्तर्गत मिटीलीन में कोई ६५२ ई० पू० में हुआ था, और मृत्यु ५६९ ई० पू० में हुई।

क्लियोबूलुस।

यूनान के सात ज्ञानियों में से एक था। यह लिण्डस-निवासी ईवेगोरस का पुत्र था। यह अपने सुन्दर शरीर के लिए प्रसिद्ध था। इसके प्रवाद ये थे, "अपने मित्रों के साथ भलाई करो जिससे उनका तुम्हारे साथ अधिक स्नेह बढ़े; अपने शत्रुओं के साथ भलाई करो जिससे वे तुम्हारे मित्र बन जायँ।"

इसकी मृत्यु ५६० ई० पू० में हुई।

रडमन्थुस (Rhadamanthus)

यह यूनानी और रोमन देवमाला में जूपीटर और योरुपा का पुत्र था। यह क्रीट में उत्पन्न हुआ था और ३० वर्ष की आयु में उस नगर को छोड़कर चला गया। वह कुछ एक साईक्लेड (Cyclades) में से गुज़रा। वहाँ उसने ऐसा न्यायपूर्ण शासन किया कि प्राचीनों ने यहाँ तक कह दिया कि वह हेडीज़ (यमपुरी) का एक विचारपति बन गया, और मृतात्माओं से उनके अपराध स्वीकार कराने और उनके पापों के लिए उन्हें दण्ड देने पर नियुक्त हुआ।

ज़र्दुश्त।

यह फ़ारस देश का एक बड़ा धर्म्म-प्रचारक था। इसने पारसी धर्म्म की नींव रखी। इसका व्यक्तिगत इतिहास बहुत कम ज्ञात है। ज़िन्द और अवस्ता नामक पारसियों की पुस्तकों में इसका वर्णन है। यह ईसा से कोई १२०० वर्ष पूर्व हुआ था।

मीनोस।

यूनानियों की देवमाला में इसे क्रीट का राजा माना गया है। क्रीट में इसका १४३२ ई० पू० में राज्य था। इसने कई नगर बनाये, और उत्तमोत्तम नियम और रीतियाँ प्रचलित कीं। मीनोस के नियम उसकी मृत्यु के एक सहस्र वर्ष पश्चात् तक अफलातूँ के समय में भी प्रचलित थे।

ककराप्स (Cecrops)

इसने एथन्ज़ नगर बसाया था। इसने १६ शताब्दी ई० पू० के लगभग अटिका (Attica) में बस्ती बसाई और देश को बारह मण्डलों में विभक्त किया जिनमें से बाद को एथन्ज़ राजधानी हो गया। इसने एरियोपगुस (Areopagus) की पञ्चायत की प्रतिष्ठा की, मिनर्वा और जूपीटर की पूजा का प्रसार किया, कृषि का प्रचार किया, और विवाह तथा मृत्यु के क्रिया-कर्म्म बाँधे। एथन्ज़ आरम्भ में इसके नाम पर ककरोपिया कहलाता था।

यह १० वीं शताब्दि ई० पू० में हुआ है। इसकी मृत्यु मिस्र के सैस नामक स्थान में हुई थी।

ओलिम्पिया।

पीलोपोनीसस में अलफ्युस नदी पर प्राचीन यूनान का एक सुन्दर नगर था। ओलिम्पियन खेल यहाँ खेले जाते थे। इसमें ओलिम्पियन या ज़ीउस देवता का मन्दिर, हेरियम या हेरा का मन्दिर, दस धनागार, पैदल दौड़ों के चक्कर और क्रीडारङ्ग, और कुछ यूनानी कला के अति उत्कृष्ट ख़ज़ाने थे। प्लायनी कहता है कि मेरे समय में यहाँ ३००० मूर्त्तियाँ थीं।

कोमोडुस

(Commodus, Lucius Aurelius Antonius)

यह रोम के राजा मार्कस औरिलियस का पुत्र था और अपने पिता के पश्चात् सन् १८० में गद्दी पर बैठा था। यह स्वभाव से

ही दुष्ट और दुराचारी था, और अत्यन्त भीषण अत्याचार और पाप करता था। इसका क़द लम्बा और बहुत बलवान् था। यह पहलवानों के साथ लड़ा करता था। उनके पास सीसे के कोमल शस्त्र दिये जाते थे और इसके हाथ में तीक्ष्ण खड्ग होती थी। इसलिए यह सदा जीत जाता था और अपने विपक्षी की हत्या करने से कभी नहीं चूकता था। अखाड़े में बनैले पशुओं को मारकर बड़ा इतराया करता था। वह अपने आपको हरकूलीस रोमेनुस के नाम से देवता के तौर पर पुजवाना चाहता था। इसकी मर्सिया नाम की एक उपपत्नी थी। यह उसे मरवाने की कल्पना सोच रहा था। मर्सिया ने उसके अकलक्टुस नामक कञ्चुकी के साथ मिलकर इसे विष देने का यत्न किया। परन्तु इसमें उन्हें सफलता न हुई; इसलिए उन्होंने इसका गला घोंट दिया।

जन्म १६१ मृत्यु १९२ ई०।

काईरस (Cyrus)

यह फ़ारस का राजा था। यह कम्बासस (Cambyses) और मीडस (Medes) के राजा अस्तयाजस (Astyages) की पुत्री मण्डेन (Mandane) का पुत्र था। इसकी युवावस्था के विषय में भिन्न भिन्न बयान हैं। फ़ारस चिरकाल से मीडस के प्रभाव में था। इसने उसे स्वतन्त्र कराया और ५६० ई० पू० के क़रीब अपने आपको राजा विघोषित किया। थोड़े ही समय में इसने अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत कर दिया। इसका राज्य एशिया में सबसे बड़ा बन गया। इसने लिडिया के राजा क्रीसुस (Crœsus) को पूर्ण रूप से पराजित किया, असिरिया पर चढ़ाई की, और यूफ़्रेटीज़ नदी

की धारा को मोड़कर ५३८ ई० पू० में बेबीलन पर अधिकार कर लिया । परन्तु बाद को सिदियन लोगों (Scythians) ने इसे पराजित करके बंदी बना लिया, और, हेरोडोटस के कथनानुसार, उनकी रानी ने इसे ५२९ ई० पू० में मरवा डाला ।

—:o:—

डरेको (Draco)

यह एथन्ज़ का एक प्रसिद्ध स्मृतिकार हुआ है । इसने ६२४ ई० पू० में एक धर्म्म-शास्त्र बनाया था । इसके नियम इतने कठोर थे कि डेमेडस (Demades) नामक एक वक्ता ने कहा था कि वे रक्त के अक्षरों में लिखे हुए हैं । उसने सब अपराधों का दण्ड मृत्यु रक्खा था । वह कहता था कि छोटे से छोटे अपराध के लिए मृत्यु-दण्ड है । इसलिए घोरतम अपराधों के लिए मैं इससे अधिक दारुण दण्ड नहीं ढूँढ़ सका । इन विधियों पर पहले कार्य होना आरम्भ हुआ परन्तु पीछे से, इनकी अत्यन्त कठोरता के कारण, इन्हें ढीला कर दिया गया । सोलन ने अन्त को इन्हें सर्वथा रद्द कर दिया और केवल हत्यारे के लिए ही मृत्यु-दण्ड रहने दिया । इसकी स्मृति के इतना कठोर होने पर भी उसकी सर्वप्रियता इतनी अधिक थी कि यही इसकी मृत्यु का कारण होगई । एथन्ज़-वासियों ने, अपनी रीति के अनुसार, उसके प्रति अति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए एक व्याख्यान-भवन में उस पर टोपियों और चुग़ों का इतना ढेर लगा दिया कि वह साँस के घुट जाने से मर गया । इसका समय ईसा से सात सौ वर्ष पूर्व है ।

जालीनूस।

(Galenus Claudius)

जालीनूस यूनान का एक बड़ा नामी वैद्य था। इसने यूनान और मिस्र के बड़े बड़े विद्यापीठों में शिक्षा पाई थी। रोम में जाकर इसने अपने व्यवसाय में खूब प्रसिद्धि लाभ की। अनेक लोग उसकी चिकित्सा पर चकित रह जाते थे और इसे जादू का असर समझते थे। राजा मार्कुस औरिलियस से इसका बड़ा प्रेम था। राजा की मृत्यु के बाद वह पर्गमुस को लौट आया और यहाँ ही सन् १६३ ईसवी में नव्वे वर्ष की आयु में मर गया। इसने ३०० से अधिक पुस्तकें लिखीं, परन्तु इनकी एक बड़ी संख्या रोम नगर के शान्ति-मन्दिर में पड़ी हुई जल गई। चिकित्सा में यह केवल हिप्पोक्रटीस से ही दूसरे दरजे पर था। इन दो प्राचीन हकीमों से आधुनिक हकीमों ने बहुत कुछ लिया है।

होमर

होमर यूनानी कवियों में सबसे प्राचीन और सबसे प्रसिद्ध है। परन्तु इसके जन्म-स्थान, इसके जीवन-चरित्र, इसके वास्तविक अस्तित्व और जीवन में इसकी स्थिति के विषय में आधुनिक विद्वानों का मत-भेद है। यूनान के सात भिन्न भिन्न स्थान इसके जन्म-स्थान होने का दावा करते हैं। एक ऐतिह्य कहता है कि यह समर्ना (Smyrna) की एक अनाथ युवती कन्या का जारज पुत्र था। यह लड़की मेलस (Meles) के किनारे रहा करती थी। यही ऐतिह्य कहता है कि भीमियुस, जिसने एक सङ्गीत-विद्यालय खोल रक्खा था, इसकी माता पर आसक्त हो गया और उसने इससे विवाह करके होमर को अपना पुत्र

बना लिया। भीमियुस की मृत्यु के उपरान्त होमर इस विद्यालय का अध्यापक हुआ। तत्पश्चात् इसके मन में 'इलियड' नामक एक महाकाव्य लिखने का विचार उत्पन्न हुआ। इसके लिए मनुष्यों और स्थानों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसने यात्रा की। परन्तु यात्रा से लौटने पर इसके देश-भाइयों ने इसके साथ बुरा सुलूक किया, इस-लिए इसने समर्ना छोड़कर चिओस (Chios) में रहना आरम्भ किया, और वहीं एक विद्यालय स्थापित कर दिया। वृद्धावस्था में अन्धा होजाने के कारण इसे दरिद्रता ने आ दबाया, और यह रोटी के लिए दर दर भीख माँगने लगा। कहते हैं अन्त को Ios आईओस के छोटे से टापू में इसका देहान्त हो गया।

होमर ने दो बड़े महाकाव्य रचे हैं। एक इलियड और दूसरा ओडीसे। ये हमारे रामायण से बहुत मिलते हैं। विद्वान् समालोचकों की सम्मति है कि होमर की कवितायें ऐसे समय में रची गई थीं जब कि लेखन-कला का आविष्कार तक नहीं हुआ था। उसके श्लोक कण्ठस्थ रक्खे जाते थे। कई लोगों का मत है कि होमर इन काव्यों का रचयिता नहीं, संग्रहीता मात्र हुआ है। फिर अनेक लोगा का ऐसा भी कहना है कि होमर नाम का कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं; ये कवितायें भिन्न भिन्न कवियों की रची और संग्रह की हुई हैं।

—:o:—

अराटस (Aratus)

अराटस एक यूनानी कवि और ज्योतिषी था। इसका जन्म सीलिसिया (Cilicia) में ईसा से कोई ३०० वर्ष पहले हुआ था। कहते हैं इसने ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों पर दो ललित कविताएँ लिखी थीं। उनमें से एक का नाम फीनामीना (Phaenomena) और दूसरी

का नाम (Diosemeia) डायोसीमिया था। ये बहुत लोकप्रिय हो गईं और उनके अनेक भाषान्तर और व्याख्यायें तैयार हुईं। पूर्वोक्त का सिसरो ने लातीनी भाषा में अनुवाद किया था, और यह बात मानी गई है कि सेण्टपाल ने एथन्स नगर में उपदेश करते समय इसके एक वाक्य का प्रमाण दिया था।

अर्दशीर (Artaxerxes Bebegan)

यह फ़ारस का राजा, सीसानी वंश का प्रवर्त्तक, बाबक का पुत्र और सस्सान का पोता था। इसने अपने पूर्वाधिकारी अर्तबन को पराजित करके अपने आपको २२३ ईसवी में राजाओं का राजा विघोषित किया। उसने मग लोगों के प्राचीन धर्म्म को पुनर्जीवित किया, नये नये क़ानून बनाये। उनके उत्तम शासन का और लोगों की शिक्षा का प्रबन्ध किया, और तत्पश्चात् अपने राज्य को विस्तृत करना आरम्भ किया। सन् २३२ ई० में अलेग्ज़ेण्डर सेवेरस (Alexander Severus) के फ़ारस पर चढ़ाई करने के कारण, रोमन लोगों के साथ इसका युद्ध हुआ। परन्तु पाँच वर्ष के युद्ध के पश्चात् सन्धि होगई और किसीको कोई लाभ न हुआ। सन् २३८ में इसका देहान्त हो गया।

एस्क्लीपियस (Asclepius)

यह एक यूनानी वैद्य था। वह बिथायनिया (Bithynia) के अन्तर्गत प्रूसा (Prusa) में उत्पन्न हुआ, और सम्भवतः ईसा से

एक सौ वर्ष पूर्व रोम में जाकर आबाद हो गया। इसकी बड़ी ख्याति थी, और यह बड़ा कृतकार्य था। यह रोग को शान्त करने के लिए औषध-सेवन की अपेक्षा जीवन की रीति और भोजन की व्यवस्थिति पर बहुत ज़ोर देता था।